संयुक्तांक : १२५ व १२६
जनवरी - जून २०१४

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानी विशेषांक

२० रुपये

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

जनवरी - जून २०१४

संयुक्तांक : १२५ व १२६

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

अतिथि संपादक
डॉ. रूपसिंह चंदेल

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
अशोक वशिष्ठ
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,

(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ़्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

अनुक्रम

अतिथि संपादकीय ३
"कुछ कही, कुछ अनकही" ४
लेटर बॉक्स ६

कहानियां

पच्चीसवें माले का फ़्लैट – डॉ. अरविंद ९
दीवार के पार – अनिल प्रभा कुमार १५
उसका भोजन –अमरीक सिंह दीप १९
धिनाधिन...धिन...धिनाधिन – अलका सिन्हा २७
वीज़ा – इला प्रसाद ३३
... और जल गया उसका सर्वस्व – उषा राजे सक्सेना ३९
दो पाटन के बीच में... – कृष्ण बिहारी ४९
बेजुबान – गजेंद्र रावत ६१
पीढ़ियां पार्क में – पुन्नीसिंह ६५
मानसी इन वंडर लैंड – पुष्पा सक्सेना ७१
सुबह होने वाली है – बद्री सिंह भाटिया ७९
नटवर का नानका – बलराम अग्रवाल ९१
उसका सच – मंजुश्री ९७
बंदिशें – महेश दवेसर दीपक १०३
खिड़की – तेजेंद्र शर्मा १०९
अनचाहे मोड़ – दामोदर खड़से ११३
एक विधवा और एक चांद – नीला प्रसाद ११९
वैतरणी पार – रणीराम गढ़वाली १२९
रामलखन दुखी नहीं हो पा रहा था – डॉ.रमाकांत शर्मा १३७
सुरली भौजी – डॉ. रूपसिंह चंदेल १४३
कितने प्रश्न – विकेश निझावन १४७
आश-किरण – विजय १५१
उजाले का अंधेरा – विवेक मिश्र १५५
नेफ़्रटीटी की वापसी – संतोष श्रीवास्तव १५७

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१,
९८१९१६२६४८

● अमेरिका व कैनाडा से सीधा संपर्क ●
Tel : 847-944-8813
सुबह, ७ से १० व शाम, ६ से ११ बजे तक
(भारतीय समयानुसार)

● न्यूयॉर्क संपर्क ●
Naresh Mittal
(M) 845-304-2414
Namit Saksena
(M) 347-514-4222

● शिकागो संपर्क ●
Tulika Saksena
(M) 224-875-0738

●"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध●
www.kathabimb.com
e-mail : kathabimb@yahoo.com

"कहानी-विशेषांक" की प्रति प्राप्त करने हेतु डाक-व्यय मिलाकर कृपया ४० रु. भेजें.
सामान्य अंक की एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूना प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ.)

आवरण चित्र : डॉ. शोभित बरतरिया
गंगा तट, रानी घाट, फतेहगढ़ (उ. प्र.)

चित्रांकन : संदीप राशिनकर, इंदौर
मो. : ९४२५३१४४२२, ८०८५३५९९७७०

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कत्लगाह - सुधा अरोड़ा १६१
मुझे माफ़ कर देना - सुभाष नीरव १६९
पंचमी के चांद की विज़िट- सूर्यबाला १७३
हादसे ऐसे भी होंगे - सूरज प्रकाश १७७
उत्तराधिकारी - डॉ. स्वाति तिवारी १८९
अड़तालीस घंटे - शैल अग्रवाल १९३
उस पार - शैलेंद्र तिवारी २०१
खोयी हुई ज़िंदगी- हरि सुमन बिष्ट २०७

लघुकथाएं

सज़ा / **बकुला पारेख** २५
छवि / **सैली बलजीत** ३१
मुर्गियां / डॉ. सुरेंद्र गुप्त ३७
मेरा प्यार यही है / **ज्ञानदेव मुकेश** ४७
हवलदार / **रघुराज सिंह "कर्मयोगी"** ५७
चिंता किस बात की / सैली बलजीत ६०
साइकिल / **डॉ. बी. गोविंद शेनॉय** ६०
सूदखोर / **रघुराज सिंह "कर्मयोगी"** ८३
भूख / **फारुख हुसैन** १३५

ग़ज़लें / कविताएं

दो ग़ज़लें / **मिस्दाक़ आज़मी** १४
चार ग़ज़लें / **डॉ. दिनेश त्रिपाठी "शम्स"** २६
कविता / **अशोक वशिष्ठ** ४३
कविताएं / **संतोष कुमार तिवारी** ७०
ग़ज़ल / **हरिश्चंद्र** ८९
कविताएं / **अनिल पुरोहित** ९०
ग़ज़ल / **"शाद" बागलकोटी** १२८
कविताएं / **सुशांत सुप्रिय** १३६
कविता / **तेज राम शर्मा** १४१
ग़ज़ल / **राजेंद्र निशेश** १७२
मुक्तक / **के. पी. सक्सेना "दूसरे"** १९२

कहानी विशेषांक और मेरी भूमिका

- डॉ. रूपसिंह चंदेल

'कथाबिंब' हिंदी की उन विशिष्ट लघु पत्रिकाओं में से एक है जो एकल प्रयास और सीमित साधनों के बावजूद अनवरत प्रकाशित होती आ रही हैं. ऐसी पत्रिकाओं में 'संबोधन' यदि क़मर मेवाड़ी के नाम का पर्याय बना तो 'कथाबिंब' डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' के नाम का, जिन्हें साहित्य जगत अरविंद नाम से जानता है. यह मेरा सौभाग्य है कि पिछले तीन दशकों से इन दोनों ही मित्रों का मुझे अटूट प्रेम मिलता आ रहा है. इन तीन दशकों में मेरी अनेक कहानियां, उपन्यास–अंश, आलेख, संस्मरण, समीक्षाएं और साक्षात्कार आदि प्रकाशित करने का रिकॉर्ड भी इन्हीं पत्रिकाओं के नाम है. रचना भेजने में जब भी मैंने लंबी चुप्पी ओढ़ी, इन दोनों संपादकों ने पत्र और फ़ोन से मेरी उस चुप्पी को तोड़ने के लिए मुझे विवश किया. आज ऐसे संपादक क्या दुर्लभ नहीं? ऐसी स्थिति में जब अरविंद जी ने मुझे 'कथाबिंब' के इस कहानी विशेषांक का संपादन संभालने का प्रस्ताव दिया तो मैं दुविधा में फंस गया. दुविधा कुछ निजी व्यस्तताओं को लेकर थी... मैं यक-ब-यक न 'हां' कह पाया और 'न' ही मना कर सका. अरविंद जी से जो आत्मीयता मुझे मिली हुई है और जिस प्रगाढ़ आत्मीयता से उन्होंने यह प्रस्ताव किया था उसे टाल जाना मेरे लिए कठिन था. अरविंद जी उन दिनों अपनी छोटी पुत्री के पास शिकागो में थे. उनके प्रस्ताव के उत्तर में मैंने जो भी कुछ उनसे कहा, उसे सुनकर उन्होंने शायद मेरे असमंजस को भांप लिया था और अपने मुंबई लौटने की तिथि सूचित करते हुए ई-मेल लिखा था कि लौटकर वह इस विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे.

अरविंद जी के मुंबई लौटने तक व्यस्तताओं पर पार पाकर मैं इस स्थिति में आ चुका था कि उन्हें विशेषांक के संपादन के लिए अनुकूल उत्तर दे दूं. हमने परस्पर चर्चा की. एक विशेष बात यह रही कि अरविंद जी ने मुझे मुक्त-हस्त छूट दी... रचनाकारों के चयन की पूरी आज़ादी. अंक यादगार बने और पुरानी पीढ़ी से लेकर युवा कथाकारों तक का प्रतिनिधित्व हो इस पर विचार करके मैंने कथाकारों की सूची तैयार की और उनको पत्र भेज दिये. सभी कथाकारों ने सकारात्मक उत्तर दिये और अधिकांश ने सुनिश्चित समय सीमा के अंतर्गत अपनी ताज़ा कहानियां भेज दीं.

किसी संपादक के आग्रह पर नयी कहानी लिख भेजना एक कठिन काम होता है — स्वयं एक कथाकार होने के नाते मैं यह जानता था. जो मित्र समय सीमा के अंतर्गत कहानी नहीं भेज पाये उनकी स्थिति मैं समझ रहा था... इस विशेषांक के लिए नयी कहानी लिखने के लिए कुछ कथाकार मित्रों ने कुछ और समय अवश्य मांगा लेकिन अनिच्छा जाहिर नहीं की. नखरे नहीं दिखाये. कहानी नहीं लिख पाये तो वरिष्ठ कथाकार राजेंद्र राव ने न लिख पाने का कारण भी बताया. दो ऐसे भी कथाकार थे — एक मेरी पीढ़ी के और एक जयश्री राय, जिन्होंने अपनी प्रकाशित कहानी भेजी थीं. जयश्री राय मेरी पीढ़ी के कथाकार से दस क़दम आगे रहीं. उन्होंने संग्रह में प्रकाशित कहानी भेजी. यह संयोग था कि फ़ेसबुक के छपास की वजह से उनकी यह कमज़ोरी पकड़ में आ गयी. मैंने स्पष्टीकरण मांगा. बचने का कोई उपाय न देख उन्हें बताना पड़ा. लेकिन बताते हुए वह यह भाषण देना नहीं भूलीं कि कितनी ही पत्रिकाएं और संपादक उनकी छपी कहानियां गर्व से अपने विशेषांक में छापते हैं. मुझे संतोष है कि कहानियों के स्तर पर यह विशेषांक उस तरह के 'गर्व' से मुक्त है.

हमारी योजना कहानी केंद्रित दो आलेख प्रकाशित करने की भी थी, लेकिन पृष्ठ संख्या की सीमा के कारण हम ऐसा नहीं कर पाये. बहरहाल, इस विशेषांक के लिए मुझे जो सहयोग मिला उसके लिए मैं सभी रचनाकारों का हृदय से आभारी हूं और विशेष रूप से अरविंद जी का जिन्होंने मुझे इसके संपादन का दायित्व सौंपने योग्य समझा.

(अतिथि संपादक)

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" के १२५ व १२६ वें अंकों को संयुक्त करके यह *"कहानी-विशेषांक"* प्रस्तुत है. पिछले वर्ष जब विशेषांक के प्रकाशन के बारे में विचार किया था तो इसका अनुमान कतई नहीं था कि यह कार्य कितना श्रमसाध्य और समय लेने वाला होगा. पूर्व में भी दो बार, दो-दो खंडों में *"कथाबिंब"* के दो "कहानी-विशेषांक" प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रत्येक में मात्र आठ कहानियां ही समाहित थीं. इस बार भी, प्रारंभ में "विशेषांक" में २४ कहानियां लेने की बात थी. विशेषांक के अतिथि संपादक भाई रूपसिंह चंदेल ने रचनाकारों से अक्तूबर-नवंबर २०१३ में संपर्क करना शुरू किया. लगभग सभी रचनाकारों ने तुरंत ही सहमति भेज दी. अधिकांश कहानियां नवंबर-दिसंबर २०१३ में ही आ गयी थीं. कुछ ने अवश्य थोड़ा समय मांगा. करते न करते कहानियों की संख्या ३० पहुंची और अंततः जिन दो रचनाकारों ने प्रारंभ में असमर्थता जाहिर की थी उनकी कहानियां भी आ गयीं -- कुल मिलाकर ३२ कहानियां! अधिक कहानियां यानी अधिक पृष्ठ और अधिक व्यय. हर बार नया बजट बनाना पड़ा. रचनाकारों से संपर्क करने का काम भाई रूपसिंह जी का था. हम दोनों फ़ोन या ई-मेल द्वारा निरंतर एक दूसरे के संपर्क में बने रहे. पिछले अंक में विशेषांक प्रकाशन की घोषणा देखने के बाद अनेक कहानीकारों ने कहानी भेजनी चाही लेकिन परिस्थितिवश मुझे मना करना पड़ा. मैं ऐसे सभी रचनाकारों के प्रति क्षमाप्रार्थी हूं. पिछले ३५ वर्षों में *"कथाबिंब"* को अनेकानेक रचनाकारों का सहयोग मिला है. *"कथाबिंब"* की भूमिका हमेशा ही एक स्वस्थ मंच की रही है. हमने हमेशा नये रचनाकारों को प्रोत्साहन दिया है. आज के कई स्थापित रचनाकारों ने अपनी साहित्य-यात्रा *"कथाबिंब"* से शुरू की थी. इतने बरसों में प्रकाशन में अनेक उतार-चढ़ाव आये. अनेक साहित्यकारों से मैत्रीपूर्ण संबंध बने. सबका नाम गिनाना यहां संभव नहीं है. कानपुर के सुनील कौशिश और भोपाल के कृष्ण कमलेश जिनकी अब मात्र स्मृति शेष है ने प्रारंभिक दिनों में हमेशा हमारा उत्साह बढ़ाया. भाई मिथिलेश्वर के एक लेख ने *"आमने-सामने"* स्तंभ का सूत्रपात किया तबसे आत्मकथ्यों की यह श्रृंखला अटूट चली आ रही है. *"सागर-सीपी"* स्तंभ के साक्षात्कारों हेतु भेंटकर्ताओं के रूप में अनेक लोगों का सहयोग हमें मिला है. इनमें से दो लेखिकाओं के नाम मैं विशेष तौर पर उल्लेख करना चाहूंगा, मधु प्रसाद (अहमदाबाद) और मधु अरोड़ा (मुंबई). सहयोगियों की सूची बहुत लंबी है. *"बाइस्कोप"* स्तंभ की लेखिका, जानी मानी फ़िल्म-कलाकार व पत्रकार सविता बजाज का भी मैं विशेष आभारी हूं. पिछले पांच-छः वर्षों से वे हमारे साथ हैं.

विशेषांक की अधिकांश कहानियां हमें रूप सिंह जी के माध्यम से ई-मेल द्वारा प्राप्त हुई थीं. इससे एक सुविधा अवश्य हुई कि मैटर को टाइप नहीं करना पड़ा लेकिन हर कहानीकार द्वारा अलग सॉफ़्टवेयर के उपयोग करने के कारण अपेक्षित फॉन्ट कन्वर्ज़न में काफ़ी दिक्कत आयी. कन्वर्ज़न के दौरान मात्राएं और बिंदियां अक्षरों से चिपक जाती हैं. इसको सुधारने में बहुत समय जाया हुआ. *"कथाबिंब"* के सहयोगी संपादक अशोक वशिष्ठ जी ने प्रूफ रीडिंग में बहुत मदद की. मैं उनका विशेष आभारी हूं. डीटीपी ऑपरेटर श्वेता घमसे का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने बार-बार, ख़ुशी-ख़ुशी प्रूफ की सभी ग़लतियों को सुधारा. इस सबके बाद भी कुछ ग़लतियां अवश्य रह गयी होंगी. पाठकों से निवेदन है कि कृपया इस ओर ध्यान दिलायें. हम सभी विज्ञापनदाताओं के भी हृदय से आभारी हैं जिनके सहयोग के बिना विशेषांक निकालना कतई संभव नहीं हो पाता.

●

हिंदी लेखकों का एक काफ़ी बड़ा वर्ग है जो अब इंटरनेट का प्रयोग करता है. ब्लॉग्स और ई-पत्रिकाओं के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय पाठकों तक अपनी रचनाएं पहुंचाना चाहता है. लेखक ई-मेल के माध्यम से एक साथ अपनी कहानी कई पत्रिकाओं को प्रकाशन हेतु भेजता है. किसी भी पत्रिका के संपादक के लिए यह संभव नहीं है कि वह ट्रैक रखे कि प्रकाशन हेतु आयी रचना कहीं और तो नहीं छपी है? डाक से आयी रचनाओं के साथ सामान्यतः यह घोषणा रहती है कि यह रचना अप्रकाशित-अप्रसारित है. *"कथाबिंब"* में सदा से हमारी कोशिश रही है कि जल्दी से जल्दी निर्णय की सूचना लेखक को दें ताकि अस्वीकृति की स्थिति में वह रचना को अन्यत्र भेज सके. लेखक ने रचना किस पत्रिका को भेजी, वह छपी या नहीं इसका ट्रैक उसे ख़ुद रखना चाहिए. पूरी तरह यह ज़िम्मेदारी लेखक की ही बनती है. विशेषांक के संबंध में हम शुरू से सतर्क थे कि पूर्वप्रकाशित कोई कहानी न जाने पाये. दो रचनाकारों के बारे में भाई रूपसिंह ने अपने संपादकीय में उल्लेख किया है. लगभग पंद्रह दिन पहले विशेषांक छपने के लिए तैयार था. पहली कहानी के रूप में डेनमार्क निवासी अर्चना पैन्यूली की एक कहानी जानी थी. मालूम पड़ा कि यह कहानी कई ज़गह प्रकाशित हो चुकी है. उनसे संपर्क किया गया तो उनका ज़वाब था कि उन्होंने कहानी प्रकाशन के लिए कई जगह भेजी तो थी पर छपी या नहीं उन्हें ज्ञात नहीं. चाहें तो हम कहानी निकाल दें. इतनी जल्दी दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता था. यह महज इत्तफ़ाक ही था मेरे पास एक कहानी तैयार थी और आकारादि क्रम में उसे अर्चना पैन्यूली के स्थान पर लिया जा सकता था !

अपनी तरफ़ से हमने कोशिश की है कि विशेषांक में नव-सृजित कहानियां ही जायें, अगर फिर भी कोई रचना पूर्व-प्रकाशित है तो इसका पूरा दायित्व रचनाकार का है. पृष्ठ संख्या की सीमा के कारण इस संयुक्तांक में नियमित स्तंभ नहीं जा पाये हैं. विशेषांक के अंतिम पृष्ठ पर पिछले वर्ष के *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"* के परिणाम की घोषणा छपी है. सभी विजेताओं को बधाई. शीघ्र ही सबको पुरस्कार की राशि व प्रशस्ति-पत्र भेजे जा रहे हैं. उन सभी पाठकों के हम आभारी हैं जिन्होंने अभिमत-पत्र भेजकर निर्णय प्रक्रिया में सहयोग किया.

●

विशेषांक की सभी कहानियां हमारे आज के सरोकारों से संबद्ध हैं. मोटे तौर पर इन्हें दो-तीन वर्गों में रखा जा सकता है. कई कहानियां विदेशी पृष्ठभूमि पर आधारित हैं. इनमें अपनी जड़ों की तलाश की झटपटाहट है. शायद यह बात पुरानी पीढ़ी के लोगों पर अधिक लागू होती है. समकालीन कहानी देश काल की सीमाओं को नहीं मानती. परिवेश चाहे जो भी हो जीवन की विसंगतियां और विरोधाभास वर्तमान में एक जैसे हैं. रोज़ी-रोटी की तलाश में आदमी का गांव से शहर आना, लेकिन फिर भी गांव से जुड़ाव, टूटते संयुक्त-परिवार, वैवाहिक-संबंध जनित आपसी टकराव, ज़ायज-नाज़ायज प्रेमसंबंध, जतिवाद, आतंकवाद, प्राकृतिक आपदाओं से सब कुछ बिखर जाना. इन सारी परिस्थितियों और विरोधाभासों को लेकर विशेषांक की कहानियां आपके सामने उपस्थित हैं.

●

इस बार का लोकसभा का चुनाव ४५ दिनों में, नौ चरणों में अभी कुछ दिन पहले सफलतापूर्वक संपन्न हुआ. चुनाव के इस महासमर में अस्सी करोड़ से कुछ अधिक मतदाताओं ने भाग लिया. यह संख्या अमेरिका की जनसंख्या की तीन गुना के आस-पास है. देश की आबादी उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक एक बहुत ही विस्तृत भूभाग में फैली हुई है. कुछ इलाके अति-संवेदनशील हैं. इन्हीं सब कारणों से पूरे देश में एक साथ चुनाव नहीं कराया जा सकता. छुट-पुट घटनाओं को छोड़कर चुनाव शांतिपूर्ण ढंग व निष्पक्षता से संपन्न हुआ. निश्चय ही इसका पूरा श्रेय चुनाव आयोग को जाता है. तमाम एग्जिट पोल्स व सर्वेक्षणों के परिणामों के अनुसार रा. ज. ग. की सरकार बनना लगभग तय है और देश के अगले प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ही होंगे. चुनावों के परिणामों से कॉन्ग्रेस के साथ-साथ अनेक राजनीतिक दलों को धक्का पहुंचेगा. पिछले वर्ष पांच राज्यों में हुए विधान सभा के परिणामों ने स्पष्ट संकेत दिया था कि देश सत्ता परिवर्तन चाहता है. कॉन्ग्रेस के दस साल के शासन से जनता पूरी तरह त्रस्त हो गयी थी. कहीं कोई सुनवाई नहीं. बाबा रामदेव और अण्णा हज़ारे के आंदोलनों ने लोगों को रास्ता दिखाया कि हां परिवर्तन संभव है. इसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी साथ दिया. इन आंदोलनों से जो ज़मीन तैयार हुई उसका सीधा फ़ायदा मिला केजरीवाल को. जोड़-तोड़ से दिल्ली के मुख्यमंत्री बन बैठे. परंतु उन्हें सरकार चलाने का कोई अनुभव नहीं था, हड़बड़ी में वे अपनी सरकार गंवा बैठे. केजरीवाल को लगा कि इससे उन्हें लोकसभा के चुनाव में लाभ होगा. पर हुआ इससे उल्टा. उन पर से जनता का भरोसा उठ गया.

२०१४ का लोकसभा का यह चुनाव पिछले किसी भी चुनाव से सर्वथा अलग है. सत्ता परिवर्तन का एक ऐतिहासिक अवसर! कहना चाहिए, आज़ादी की तीसरी लड़ाई! बहुत कुछ १९७७ में आपातकाल के बाद हुए चुनाव जैसा. लोगों ने ठान लिया कि हमें कॉन्ग्रेस से छुटकारा चाहिए. जाति और धर्म के सारे पुराने समीकरण फेल हो गये. सांप्रदायिकता को मुद्दा बनाने की ज़बरदस्त कोशिश की गयी पर कामयाबी नहीं मिल पायी. जनता के समक्ष स्पष्ट विकल्प उपस्थित होने के कारण "टिना *(देयर इज़ नो आल्टरनेटिव)* फ़ैक्टर" भी इस बार काम नहीं कर पाया. बहुत ही प्रोफ़ेशनल तरीके से २० लाख लोग मोदी को प्रधानमंत्री बनाने में आधुनिकतम तकनीकी का प्रयोग कर, दिन-रात एक कर रहे थे. इस चुनाव में ७० प्रतिशत मतदाता युवा वर्ग के हैं. उनके पास किसी भी प्रकार का बैगेज़ नहीं है. नेहरू-इंदिरा गांधी ने क्या किया? एक परिवार ने देश के लिए कितना बलिदान किया? विधानसभा के चुनावों में हार के बाद युवराज राहुल ने बयान दिया था कि कॉन्ग्रेस अपनी उपलब्धियों का सही ढंग से प्रचार-प्रसार नहीं कर पायी, वे हार से सीख लेकर ऐसी स्ट्रेटिज़ी बनायेंगे जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता. कॉन्ग्रेस ने राहुल को प्रधानमंत्री पद का अपना उम्मीदवार घोषित नहीं किया परंतु सारा प्रचार राहुल केंद्रित ही रहा. कॉन्ग्रेसी दिग्गजों का कहीं पता ही नहीं था. चुनाव प्रचार के दौरान एक पैटर्न बन गया था. दिन भर रैलियों का कवरेज़ और शाम को पैनल डिस्कशन, वे ही लोग सब चैनलों पर. किसने आज क्या कहा, किसको क्या गाली दी? मोदी की लहर है या नहीं? किंतु इधर रोज़ सैन्सेक्स नयी ऊंचाई छू रहा था. मोदी की सरकार के आने मात्र की आहट से रुपया भी तेज़ी पकड़ रहा था.

●

नयी सरकार के सामने अनेक चुनौतियां हैं, काफ़ी ज़िम्मेदारियां हैं. जनता की आशाएं और आकांक्षाएं आसमान छूने लगी हैं. आने वाले समय में, हर क्षण भाजपा और मोदी की अग्निपरीक्षा होगी. नरेंद्र मोदी बराक़ ओबामा की तरह ही "नयी आशा" के प्रतीक हैं.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' अंक १२४ (अक्तू.–दिस. २०१३) में नीरा सिन्हा जी की लघुकथा 'एक लंबी ख़ामोशी' पढ़ी. मन में सवाल उठता है कि क्या पश्मिच में आज़मा कर दरकिनार कर दी गयी हर अच्छी-बुरी बात को अपनाना और आज़माना हमारे लिए आवश्यक अथवा उचित है? फ़ारसी की कहावत है, 'आज़मूदा रां आज़मूदन जहल अस्त' अर्थात 'आज़माये हुए को आज़माना बेवकूफ़ी है.' नये ख़ून में जोख़िम उठाने का जज़्बा होता ही है मगर जहां अंत में नुक़सान एक ही पक्ष का होना निश्चित ही हो वहां पदार्पण करने से पहले अल्ट्रा मॉडर्न मिज़ाज वालियों को भी क्या दस बार सोचना नहीं चाहिए? दुख की बात तो यह भी है कि हमारी शीर्ष न्यायपालिका का रुख भी इस मामले में बस यूं ही सा प्रतीत हुआ है!

'कुछ कही, कुछ अनकही' हर बार की भांति इस बार भी रोचक है. बिना किसी लाग-लपेट के खरी–खरी है. अल्लाह करे जोर-ए-क़लम और ज़्यादह!

- *ओमप्रकाश बजाज*

बी-२, गगन बिहार, गुप्तेश्वर, जबलपुर-४८२००१.

▸▸ 'कथाबिंब' के १२४ वें अंक के साथ सफल प्रकाशन के ३५ वर्ष पूरे करने पर बधाई!

पत्रिका, कथा, लेख, ग़ज़ल एवं कविता आदि के माध्यम से समाज, जिसमें सब कुछ समाहित है, का सत्यार्थ प्रतिबिंब है. 'कुछ कही, कुछ अनकही' बातें साहस व सत्यनिष्ठा का परिचय देती हैं. दिल्ली व देश के अन्य भागों में बढ़ती बलात्कार की घटनाएं दिल दिमाग़ को झकझोर कर रख देती हैं. न्याय प्रणाली और बैंकों में व्याप्त भ्रष्टाचार, विशेषकर ग्रामीण इलाकों में, की घटनाओं को खुलकर सामने लाने व समाप्त करने की प्रक्रिया की सख़्त ज़रूरत है.

इसी अंक में 'संतों की लाड़ो का ब्याह' में लेखक अशोक वशिष्ठ जी ने समाज में व्याप्त कुप्रथा, बुरी आदतें, असंयमित जीवन व बीमार मानसिकता का चित्रण बख़ूबी किया है. लेखक ने सच्चाई को उजागर कर लेखन, एवं समाज के प्रति सत्यनिष्ठा से दायित्व का निर्वाह का परिचय दिया है. लेखन शैली व भाषा की सादगी सराहनीय है. भौतिकवाद के दौर में विभिन्न माध्यमों के द्वारा समाज को नैतिक, मौलिक, धार्मिक, गृहस्थ आश्रम की गरिमा, संबंधों के नैतिक मूल्यों व स्वच्छ, उच्च स्वस्थ मानसिकता का सघन वातावरण बनाने की ज़रूरत है. इस दिशा में 'कथाबिंब' का पूर्ण दायित्व निर्वाह में योगदान सराहनीय है.

– *इंद्रजीत शर्मा*

६०३, एथीना अपा., टायकून्स रेसीडेंसी,
खड़कपाड़ा, कल्याण-४२१३०१

▸▸ 'कथाबिंब' का १२४ वां अंक प्राप्त हुआ. आदरणीया मंजुश्री एवं आपके सहयोग से यह पत्रिका पाठकों को मिल रही है जिससे लाखों पाठक सत्साहित्य का आनंद उठा रहे हैं. यह आपकी कृपा का ही फल है. इस अंक में सम्मिलित संपूर्ण सामग्री बड़ी रोचक, पठनीय लगी. जिसमें पहले ही 'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपके विचारों से अवगत हुआ जिसमें आपने समसामयिक टिप्पणी की है जो बड़ी सराहनीय है. कहानियों में सभी कहानियां प्रेरणादायी लगीं. सुरभि बोहरा की कहानी 'भीगी हथेलियों का स्पर्श' बड़ी मार्मिक लगी. लघुकथाएं सभी श्रेष्ठ एवं सराहनीय है तथा स्थायी स्तंभ भी हर बार की तरह बहुत-बहुत-बहुत ही अच्छे बन पड़े हैं. साधुवाद!

मुझे बड़ी ग्लानि महसूस हो रही है कि मैं पत्रिका का शुल्क समय पर भेज नहीं पाया. इसके पीछे मेरी मानसिक स्थिति का ठीक नहीं होना है. श्रीमान मैं गत अक्तूबर '१३ से जनवरी '१४ तक बड़ी घोर विपदाओं से जूझा हूं. २१ अक्तूबर को मेरी माताश्री के हृदय की बाईपास सर्ज़री हुई जिसमें मैं एक महिना जयपुर रहा. तथा उसके आने के बाद पिताश्री की तबियत नासाज़ रहने लगी और १२ जनवरी २०१४ को उनका हृदयाघात से निधन हो गया. मेरे ऊपर पहाड़-सी विपदा आन पड़ी. क्या करता? सब कुछ बर्बाद हो गया. पिताश्री का ७० वर्ष की उम्र में बिछोह यह मैंने सपने में भी नहीं सोचा था. मां की तबियत ठीक होने की जगह बिगड़ गयी. इसी क्रम में आपके द्वारा प्रेषित अंक मुझे समय-समय पर मिलते रहे, मैं उनको भी बराबर पढ़ नहीं पाया. लेकिन मैं आपका हृदय से आभारी हूं कि आपने मेरी प्राणप्रिय

पत्रिका 'कथाबिंब' को भेजना बंद नहीं किया. दूसरी और पत्रिकाएं होतीं तो शुल्क के अभाव में पत्रिका ही बंद कर देतीं. आप समझते हैं पाठकों की मज़बूरी को. इस घनघोर विपदा की घड़ी में मुझे 'कथाबिंब' पत्रिका ही ऐसी पत्रिका लगी जिसने मुझे काफ़ी शांति पहुंचायी, तथा मेरे सिर पर अपना वृहद हस्त रखती महसूस हुई.

- अरुण कुमार भट्ट

ब्लाक नं. ४४, क्वा. नं. २६२, भा. प. स. कॉलोनी, रावतभाटा (राज.)-३२३३०७.

▶▶ 'कथाबिंब' के सफलतापूर्वक ३५ वर्ष पूरे करने के सुअवसर पर इसके संचालन में निरंतर परिश्रम व निष्ठा के साथ संलग्न रहने के लिए संपादक महोदय एवं कथाबिंब-परिवार के अन्य सदस्यों को मेरी हार्दिक बधाई!

'कुछ कही, कुछ अनकही' के अंतर्गत राजनीतिक माहौल में आये परिवर्तन की सम्यक जानकारी दी गयी है. इसके साथ ही यह भी ज्ञात होता है अन्ना के नहीं चाहने के बावजूद अरविंद केजरीवाल और उनके साथियों ने सक्रिय राजनीति में आने तथा चुनाव लड़ने का मन बनाया. इस तरह 'आप' पार्टी का राजनीतिक क्षितिज पर उदय हुआ. महंगाई, बिजली, पानी और अन्य सुलगते मसलों के निराकरण के लिए दिल्ली के त्रस्त आम नागरिकों को भरोसे का ऐसा मीठा व ज़ायकेदार शर्बत छककर इतना पिलाया कि वहां के मतदाताओं ने उनके प्रत्याशियों की जीत सुनिश्चित कर दी किंतु यह सर्वविदित है कि उनकी जीत क्षणभंगुर साबित हुई और अंततोगत्वा बहुत बड़ी नौटंकी के बाद दिल्ली में राष्ट्रपति शासन लग गया.

समलैंगिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में मैं आपके निर्णय से शत-प्रतिशत सहमत हूं. इस तरह के विकृत संबंध किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं हैं. यह सामाजिक नियम के विरुद्ध है. इससे उपजी विकृत मानसिकता समाज में बिखराव पैदा करके इसके ढांचे को तहस-नहस कर देगी, समाज और दूषित हो जायेगा.

'छोटा सा एक हादसा' (सुरेंद्र अंचल) एक मार्मिक व हृदयस्पर्शी कहानी है. इस तरह के हादसे भ्रष्टाचार की उपज हैं, सतही तौर पर छोटी दिखती हैं ऐसी घटनाएं, पर उस परिवार के लिए बहुत बड़ी पीड़ादायी त्रासदी होती है. अप्रत्याशित दुखद वज्रपात उस कुनबे को अवसाद व्यथा और अनिश्चितता की खाई में ढकेल देता है. कथा के अनुसार यह छोटा-सा कुनबा कई कष्टदायी घटनाओं से पहले से ही पीड़ित था उस पर यह छोटी सी कही जाने वाली घटना उस विधवा के लिए दुख का पहाड़ साबित होता है. जिससे उसकी ज़िंदगी वीरान और मरणतुल्य हो जाती है.

'आदाब' (डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी) एक सार्थक कहानी है जो लोक-कलाकार की वर्तमान समय में दयनीय स्थिति को उजागर करती है. उसके आर्थिक पहलू व तंगहाली का बखान करती है. किंतु एक कलाकार की महानता उस समय दृष्टिगोचर होती है, जब वह अपने पुरस्कार की राशि को अपने अभावग्रस्त उस्ताद की आंखों के मोतिया बिंद के ऑपरेशन के लिए दे देता है, अपनी विपन्नता के बावजूद भी.

'भीगी हथेलियों का स्पर्श' (सुरभि बेहरा) एक भावनाप्रधान पति-पत्नी और छोटे उम्र के पुत्र की कहानी है. किसी हद तक लेखिका ने कथा को जीवंत बनाने का प्रयास किया है. अंतरंगता के संदर्भ में आपसी सबंध के मध्य उत्पन्न ग़लतफ़हमी के कारण उनका दांपत्य जीवन दुख, तनाव और मतभेद का शिकार हो जाता है. दोनों साथ नहीं रहकर भी अपने पुत्र की ख़ुशी के लिए साथ रहने का नाटक करते रहे बहुत दिनों तक. फिर एक ऐसा समय भी आया जब बारिश की शीतल फुहारों ने पति-पत्नी को विवश कर दिया एक दूसरे से मिलने के लिए.

'संतो की लाड़ो' (अशोक वशिष्ठ) में एक नारी द्वारा अपनी नाबालिग पुत्री की शादी के विरुद्ध उठाया गया साहसिक क़दम सराहनीय है.

लघुकथाओं में 'सोच' (नरेंद्र कौर छाबड़ा), 'एक लंबी ख़ामोशी' (नीरा सिन्हा) अच्छी लगीं.

'आमने-सामने' के जरिए डॉ. सुरेंद्र गुप्त के प्रेरक जीवन से परिचित तो होते ही हैं, इसके अलावा रचना और रचनाकार से संबंधित कई यथार्थपरक तथ्यों से भी अवगत होते हैं. उनकी लघुकथाएं 'मां' और 'भूख' सार्थक और प्रभावशाली रचनाएं हैं.

सुशांत सुप्रिय की कविता, शरीफ़ कुरैशी की ग़ज़ल और मधुप्रसाद के दोहे दिल को छू लेते हैं.

'बाइस्कोप' (सविता बजाज) के जरिए संवाद व फ़िल्मी लेखक, नाटककार व गीतकार जलीस शरवानी के प्रेरणादायी जीवन से अवगत होने का अवसर मिलता है. इन्होंने अपने

अथक परिश्रम व संघर्ष के बल पर अपना मुकाम हासिल किया. आज इनकी सफलता के डंके चतुर्दिक बज रहे हैं. किसी ने ठीक ही कहा है,

''कांटों में खिलता रहा, और न खोयी आब,
तू भी जी ऐसे यहां, जैसे जिये गुलाब ।''

- *मुकुंद लाल*

डीपूगढ़ा, शिवमंदिर के पास, हज़ारीबाग (झारखंड)

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर अंक मेरे हाथ में है. शायद मेरा दुर्भाग्य है कि अक्सर इसका अंक मुझे देर से ही मिला करता है. पेशे से भले मैं गीतकार हूं, पर साथ-साथ लोगों की पुस्तकें संशोधित-परिमार्जित कर छापता रहता हूं. खाली समय में पढ़ना मेरा सबसे बड़ा शौक़ है. इस पर अगर साहित्यिक धरातल वाली विषय-वस्तु मिल जाये तो पढ़ने की अभिरुचि कुछ अधिक ही बढ़ जाती है. अत: मैं 'कथाबिंब' के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूं.

आज जहां साहित्य जगत की अधिकांश पत्रिकाएं थोड़ा-सा टिमटिमाकर दम तोड़ देती हैं वहां 'कथाबिंब' की यह लंबी सुदीर्घ यात्रा उसके सबल और सशक्त होने का सुदृढ़ प्रमाण है. भले कथा-कहानी इसकी मुख्य धारा है परंतु इसके साथ-साथ छपनेवाली अन्य रचनाएं — गीत, ग़ज़ल, लघुकथाएं एवं विभिन्न वृत्तांत इसे विविधता प्रदान करते हैं. 'आमने-सामने' में एक से बढ़कर एक सिद्धहस्त रचनाकारों के तथ्यात्मक आत्म आलेख, जो नि:संदेह शतप्रतिशत सत्य के धरातल पर आधारित होते हैं, हृदय को स्पर्श करते रहते हैं.

जब भी पत्रिका आती है, अरविंद जी की 'कुछ कही, कुछ अनकही' के बाद मुझे सीधे 'आमने-सामने' वाले पृष्ठ की तलाश रहती है. अंक जुलाई-सितंबर में माला वर्मा ने तो भावविभोर कर दिया. इसी अंक की कहानियां हरिप्रकाश राठी की 'महायोगी', पुष्पा सक्सेना की 'धूप-छांव' तथा डॉ. निहारिका की 'इंसान होने का दर्द' ने तो जैसे झकझोरकर रख दिया. उदयजी की ग़ज़ल तथा लक्ष्मी रूपल की लघुकथा एवं कविता — 'सरदारनी' व 'मेरी पाती नींद के नाम', स्वर्णरेखा मिश्रा की 'मुझ में चिन्मय प्राण धर दो' बड़ी असरदार एवं स्तरीय रचनाएं हैं. 'कथाबिंब' को देख कभी-कभी ऐसा लगने लगता है मानो 'कथाबिंब' एक सुंदर स्वस्थ-सघन वृक्ष है, कथाएं जिसका तना है तथा अन्य रचनाएं — डालियां, पत्ते और फल-फूल. इस उत्कृष्टता का श्रेय मैं सीधे सुदृढ़ तथा दूरदर्शितापूर्ण संपादक को देता हूं. कोई न कोई बात तो है 'कथाबिंब' में कि उत्तरोत्तर इसके चाहनेवालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है.

सच बात तो यह है कि मैं 'कथाबिंब' जैसी संस्कृतिनिष्ठ एवं साहित्यिक अभिरुचि संपन्न पत्रिका को पाकर धन्य हूं. पत्रिकाओं की भीड़ में इसकी पहचान बिलकुल निराली है. मेरी हार्दिक शुभकामनाएं सदैव इसके साथ हैं.

- *गीतकार हरिश्चंद्र*

सिद्धि गणेश, प्लॉट नं. ८५७/४-बी, सेक्टर-८,
चारकोप, कांदिवली (प.), मुंबई-४०००६७.

▶▶'कथाबिंब' का अंक १२४ प्राप्त हुआ. 'कथाबिंब' की ३५ वर्ष की यात्रा पूर्ण हुई. मन के किसी कोने में यह अभिलाषा पनप रही है कि इस पैंतीसवीं वर्षगांठ पर अब तक के प्रकाशित अंकों की विशिष्ट कहानियों पर केंद्रित सफ़रनामा इस अंक में समाहित होता तो सोने में सुहागा हो जाता. 'कथाबिंब' की कहानियां पढ़ना सुखद अनुभूति है. इस अंक की कहानियां मन मस्तिष्क पर गहरी छाप अंकित करने में सफल रही हैं. डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी की कहानी 'आदाब' की विषय-वस्तु नवीन धरातल का अहसास कराती है. इंदुमति सरकार की कहानी 'धर्म-अधर्म' ने वर्तमान में प्रचलित अंध-विश्वास को उकेरने का साहस किया है किंतु दुराचारी गुरूजी का भंडा फोड़ने की सनसनी कहानी में झलक नहीं पायी. इस अंक की लघुकथाएं प्रभावित करती हैं. सविता बजाज तो हैं ही कथाबिंब को सार्थक स्वरूप प्रदान करनेवाली रचनाकार. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में समसामयिक घटनाओं का लेखा-जोखा भविष्य के प्रभावों व संभावनाओं के साथ बख़ूबी व्यक्त हुआ है.

- *कैलाशचंद्र जायसवाल*

अनुराग भवन, पंचवटीनगर-२,
करोंद, भोपाल-४६२०३८

▶▶ 'कथाबिंब' की मैं नियमित पाठिका हूं. एक उम्दा पत्रिका हम पाठकों तक पहुंचाने हेतु साधुवाद! 'कुछ कही, कुछ अनकही' हमेशा ही सारगर्भित व विचारोत्तेजक होती है. इस बार भी फ़िल्म स्टार को मिलने वाली पैरोल पर आपने बिल्कुल सही प्रश्नचिन्ह लगाया है. मुझे लगता है हमारे देश में मीडिया व सरकार बातों /मुद्दो को सिर्फ़ अपने हिसाब से चलाते हैं. मोदी जी पर उठती निग़ाहें, गोधरा के जले रेल के डिब्बों का सच नहीं देखतीं या कश्मीरी पंडितों की पीड़ा उन्हें नहीं नज़र आती. मीडिया जिसे चाहे ग़लत या सही साबित कर देता है. सार्थक संपादकीय हेतु पुन: धन्यवाद.

- *ज्योति जैन*

१४३२/२४, नंदानगर, इंदौर-४५२०११.

कहानी

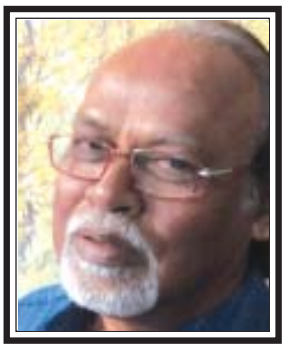

पच्चीसवें माले का फ़्लैट

✍ डॉ. अरविंद

श्रीकांत के लिए अमेरिका नया नहीं है. इससे पहले भी दो बार वह यहां आ चुका था. एक बार बहुत पहले अपनी पीएच. डी. के सिलसिले में वह यहां तीन साल रहा है. बस एक ही धुन थी कि कैसे जल्दी से जल्दी काम ख़त्म हो और स्वदेश लौटकर कोई अच्छी सी नौकरी मिल जाये. और हुआ भी ऐसा ही, डिग्री पूरी होने से पहले उसे नौकरी का ऑफ़र आ गया था. उन दिनों विदेश की पीएच. डी. काफ़ी बड़ी बात मानी जाती थी. नौकरी मिली बंबई के एक बड़े वैज्ञानिक अनुसंधान केंद्र में. नौकरी और परिवार की व्यस्तताओं में समय कहां भागता चला गया कुछ मालूम ही नहीं पड़ा. बीच में एक वैज्ञानिक संगोष्ठी के सिलसिले में भी वह अमेरिका आया था. हर बार अलग-अलग अनुभव हुए हैं. पहले इक्के-दुक्के भारतीय दिखते थे, अब हिंदुस्तानियों के अलावा भी अन्य देशों के लोगों की संख्या बहुत बढ़ गयी है. चीनी, पाकिस्तानी, फिलिपिनी... पता नहीं कितने अन्य देशों के लोग कुबेर के खजाने की खोज में रोज़ यहां आते हैं. अमेरिका भी अब तीस साल पहले वाला नहीं रह गया. आई. टी. विस्फोट के कारण इस देश को सभी देशों के लिए अपने द्वार खोलने पड़े हैं.

श्रीकांत के लड़के की नौकरी एक बड़ी आई. टी. कंपनी में लगी थी. हेड ऑफ़िस न्यूयॉर्क में टाइम्स स्क्वायर पर था. लेकिन ब्रांच ऑफ़िस जर्सी सिटी में 'पाथ' सब-वे के 'एक्सचेंज प्लेस' स्टेशन के एकदम पास. एक महीने के लिए कंपनी ने ऑफ़िस के पास ही मारबेला बिल्डिंग में पच्चीसवें माले पर रहने के लिए एक फ़्लैट दिया था. पत्नी के साथ श्रीकांत भी हिंदुस्तान से अमेरिका यह सोचकर आया था कि दोनों अमेरिका भी घूम लेंगे और आगे के लिए शेखर के रहने-खाने की सारी व्यवस्थाएं भी कर सकेंगे. पर पत्नी को यहां का मौसम रास नहीं आया. आने के दूसरे दिन से उसे बुखार आने लगा. हो सकता है रास्ते की थकान रही हो. फ़्लैट में खाना बनाने के लिए ज़रूरी बर्तन वग़ैरह मिले हुए थे. श्रीकांत ने ही तीन दिन तक रसोई संभाली.

शेखर तो दूसरे दिन से ऑफ़िस जाने लगा था. गनीमत थी कि उसे बहुत दूर नहीं जाना पड़ता था. चलकर सात-आठ मिनट में ऑफ़िस पहुंचा जा सकता था. वैसे एक और 'लाइट ट्रेन' की रेल्वे लाइन भी मारबेला के बगल से जाती थी और उसका दूसरा स्टेशन एक्सचेंज प्लेस के पास ही था. तीसरे दिन जब पत्नी की तबियत कुछ ठीक हो गयी तो टहलने के इरादे से वे दोनों नीचे उतरे. पहली दिक्कत सड़क पार करने की हुई. उसकी भी आदत छूट गयी थी. पत्नी के लिए यह पहला अनुभव था. गाड़ियां सब सड़क के दायीं ओर चलती थीं. शेखर ने ताकीद की थी कि संभल कर सड़क पार करें. कैसे सड़क पार करना है यह उसने कई बार बताया था. 'लाइट ट्रेन' भी ट्राम की तरह कभी भी आ सकती थी, यह ट्रेन बहुत धीमे चलती थी और सड़क की क्रॉसिंग पास आने पर घंटी बजाती थी. बहरहाल दो-तीन दिनों में दोनों अभ्यस्त हो गये और बगल के शॉप-राइट डिपार्टमेंटल स्टोर से रोज़मर्रा की ज़रूरत का सामान आदि लाने लग गये. सुबह नाश्ता करके दोनों ने वाटर फ्रंट पर घूमना भी शुरू कर दिया था. सारी बिल्डिंगों में क्यारियों में लगे सुंदर फूल बहुत अच्छे लगते थे. जर्सी सिटी का यह हिस्सा हडसन नदी का पश्चिमी तट था. वाटर फ्रंट से हडसन के दूसरी ओर पूरा मैनहटन दिखता था. दक्षिण की ओर एक छोटे द्वीप पर लिबर्टी की मूर्ति दिखती थी. मौसम भी ख़ुशगवार था. श्रीकांत और पत्नी नंदिता का यह रोज़ का नियम बन गया था कि दस बजे के क़रीब नीचे उतर आते और टहलते. वाटर फ्रंट से चलकर 'न्यू-पोर्ट' भी जाया जा सकता था.

ऐसे ही एक दिन घूमते-घूमते कुछ हिंदुस्तानियों से जान-पहचान हुई. मालूम पड़ा कि काफ़ी सारे भारतीय परिवार न्यू-

डॉ. अरविंद

जन्म : १७ मार्च १९४६, फतेहगढ़ (उ. प्र.);

शिक्षा : विशारद, एम. एस-सी., पी-एच. डी. (भौतिक शास्त्र) मुंबई विश्वविद्यालय.

अध्यवसाय : *सन् १९६५ से भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में नौकरी, वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद से मार्च, २००६ में सेवानिवृत्ति.*

लेखन : *पहली कहानी 'प्रतिक्षाग्रस्त' सन् १९६७ में 'सारिका' में प्रकाशित. तब से अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लगभग ३० कहानियां छपीं. एक कहानी-संग्रह 'हिंदुस्तान / पाकिस्तान' प्रकाशित. अनेक कथा-संग्रहों में कहानियां सम्मिलित. चर्चित कहानियां : हिंदुस्तान पाकिस्तान, प्रतीक्षाग्रस्त, इत्यादि, अपाहिज, सुरंग, और नत्थू मर गया, मेरे हिस्से का आसमान, मीन माने मछली, दहशतज़दा, आदमी मरा नहीं!... आदि. अनेक विज्ञान लेख प्रकाशित.*

संपादन : *त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका 'वैज्ञानिक' का संपादन (१९६८-१९८८). सन् १९७९ से पूरी तरह निजी प्रयासों से 'कथाबिंब' का अनवरत संपादन व प्रकाशन. अनेक विज्ञान लेख प्रकाशित व कुछ विद्वान पुस्तकों का संपादन.*

अनुवाद : *अंग्रेज़ी, मराठी और गुजराती से हिंदी में अनुवाद.*

विशेष : *भारत सरकार द्वारा गठित वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग के सदस्य. महाराष्ट्र सरकार द्वरा स्पेशल एक्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्ति. दूरदर्शन केंद्र के कार्यक्रमों में सहभागिता. दिसंबर २००८ में न्यूयार्क की आई टी. वी. चैनल पर 'शब्द-स्टार' कार्यक्रम के अंतर्गत साक्षात्कार व कहानी पाठ. कमला गोइन्का फाउंडेशन के पुरस्कारों के निर्णयात्मक मंडल के नियमित सदस्य. अनेक बार विदेश यात्राएं, दो वर्ष के लिए (१९८८-९०) विक्टोरिया विश्वविद्यालय (कनाडा) में पोस्ट डॉक्टरल फेलोशिप. मार्च, २००७ में जापान के ओकोयामा विश्वविद्यालय द्वारा अनुसंधान के लिए आमंत्रित. तीन बार (१९९०, २००४ व २००७) कोलंबस, ओहायो (अमेरिका) में अंतर्राष्ट्रीय मॉलीकुलर कॉन्फ्रेंस में शोध-पत्र प्रस्तुत किये.*

सम्मान : *अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित-मुंबई, इंदौर, वाराणसी, इलाहाबाद, लखनऊ, छिबरामऊ, फ़र्रुख़ाबाद आदि.*

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन व 'कथाबिंब' का संपादन. पंजीकृत संस्था 'संस्कृति संरक्षण संस्था' मुंबई के प्रबंध न्यासी.*

पोर्ट स्टेशन के पास के अपार्टमेंट्स में रहते हैं और रोज़ वहीं के एक पार्क में बैठक करते हैं. बाद में पता चला कि इस ग्रुप का नाम 'नमस्ते इंडिया' है. यहां बहुत से लोगों से जान-पहचान हो गयी. यहां आकर, कुछ देर के लिए ही सही पूरा माहौल भारतमय हो जाता था. हां, सबसे ख़ास बात यह रहती कि भारत के अलग-अलग प्रांतों से आये सभी लोग हिंदी में बातें करते. कुछ लोग तो हर साल छः महीने के लिए अपने लड़के या लड़की के पास आ जाते हैं और जैसे ही सर्दियां शुरू हो जातीं अप्रवासी पक्षियों की तरह वापस भारत लौट जाते.

वाटर फ्रंट का चक्कर लगाने के बाद वे दोनों भी अक्सर वहीं पार्क में काफ़ी देर तक बैठने लगे. जून शुरू हो गया था लेकिन गर्मी बिल्कुल नहीं थी. दोनों पार्क में बेंच पर बैठकर सुस्ता रहे थे. कुछ महिलाएं छोटे बच्चों को प्राम में घुमा रही थीं. नंदिता के साथ ही, बगल में एक प्रौढ़ महिला बैठी थी. साथ की प्राम में एक छोटा बच्चा सो रहा था. नंदिता ने महिला से पूछा कि क्या बच्चा उसका है ? महिला ने 'न' में सिर हिला दिया. ''तो फिर ?''

''मैं उसकी नैनी हूं, बच्चे के मां-बाप दोनों काम पर जाते हैं. हफ़्ते के पांच दिन मैं इसकी देखभाल करती हूं.''

''आप इंडिया से हाल ही में आयी हैं, कहां से हैं ?''

''हम लोग मुंबई से हैं, और आप?''

''मैं गुजरात के एक छोटे से गांव हूं. यहां अपने लड़के के पास रहती हूं. दिन में खाली रहती हूं तो बेबी सिटिंग का यह काम कर लेती हूं. अच्छा है कुछ पैसे हाथ आ जाते हैं.''

उस महिला ने आगे जो कुछ बताया वह थोड़ा चौंकाने वाला था. उसके लड़के का भी एक छोटा लड़का है लेकिन वह कैनाडा में उसकी लड़की यानी अपनी बुआ के पास रहता है.

काफ़ी देर हो गयी थी, वे दोनों मारबेला लौट आये. नीचे, रिसेप्शन कॉउंटर पर मौजूद मिस्टर ब्रॉउन ने ''हलो'' की और पास बुलाकर बताया कि बिल्डिंग में पानी की प्रॉब्लम है, आप फ़्लैट में जाकर थोड़ा पानी भर कर रख लें.

अमेरिका में ऐसा भी हो सकता है इसकी कतई कल्पना नहीं थी. तीस माले की बिल्डिंग में हर मंज़िल पर आठ फ़्लैट थे — चार एक तरफ़ और चार दूसरी तरफ़. इस तरह कुल २४० फ़्लैट. चार लिफ़्टें थीं. वे लोग फ़ौरन ऊपर आ गये. फ़्लैट में जितने छोटे-बड़े बर्तन थे सबमें पानी भर लिया. शायद कुछ और घरों में भी यही गतिविधि चल रही होगी. शाम होते-होते बिल्डिंग की ऊपर की टंकी का ज़मा पानी ख़त्म हो गया. न ही रिसेप्शन वालों को और न किसी और को मालूम था कि अचानक क्या हो गया. बिल्डिंग में पानी क्यों नहीं आ रहा है. हर कोई बगल वाले शॉपराइट स्टोर से मिनरल वाटर के कार्टन लाने में जुटा था. शाम को शेखर के आने पर वे लोग भी मिनरल वाटर की काफ़ी सारी बोतलें ले आये. स्थिति यह हो गयी कि स्टोर में मिनरल वाटर का स्टॉक ख़त्म हो गया था. शायद कुछ दूसरी बिल्डिंगों का भी यही हाल होगा.

वह रात जैसे-तैसे कटी. दूसरे दिन भी कोई जानकारी नहीं मिल सकी. इतना ज़रूर था कि ग्रॉउंड फ़्लोर पर बने

कॉमन नलों में पानी आ रहा था. शायद पानी की यह कोई अन्य पाइप-लाइन होगी. लोग-बाग लाइन लगाकर जो भी बर्तन मिलता या फिर मिनरल वाटर की खाली बोतलों में भर-भर कर पानी ले जा रहे थे.

सातवें माले पर एनेक्स वाले हिस्से में स्वीमिंग पूल था. इस संकट काल में पूल का इस्तेमाल लोग नहाने के लिए कर रहे थे. जबकि शॉवर लेने के बाद ही पूल में जाने का नियम था. इसी फ़्लोर पर ज़िम भी था और एक हिस्से में सारे कंप्यूटर लगे थे, जिनका कोई भी इस्तेमाल कर सकता था. श्रीकांत भी दिन में अपनी ई-मेल देखने यहीं आता था. दो-तीन दिनों तक पानी की समस्या बरकरार रही. बाद में मालूम पड़ा कि कहीं ज़मीन के नीचे का पानी का पाइप फट गया था. पहले तो इसका पता ही देर से चला फिर मरम्मत में भी काफ़ी समय लग गया.

शेखर की हिंदुस्तानी कलीग विनीता भी मारबेला में सातवें माले पर रहती थी. वह अकेली थी तो अक्सर शाम को नंदिता और वह मिलकर खाना बनाते और साथ खाते. एक दिन उसने बताया कि उसके फ़्लैट में, बिस्तर में खटमल दिखे तो उसने हाउस कीपिंग वालों से शिकायत कर दी. फ़ौरन फ़्लैट की सफ़ाई की गयी और मैनेज़मेंट की तरफ से गुडविल के नाम पर २५ डॉलर का कूपन दिया गया जिससे उसी बिल्डिंग के ग्राउंड फ्लोर पर स्थित चाइनीज़ रेस्तरां में खाना खाया जा सकता था. एक वीकएन्ड चारों ने कूपन से लंच खाया.

नयी-नयी नौकरी के कारण शेखर को केवल वीकएंड में ही समय मिल पाता कि वह श्रीकांत और नंदिता को कहीं घुमाने ले जाये. एक शनिवार की शाम टाइम्स स्क्वायर जाने का कार्यक्रम बना. टाइम्स स्क्वायर न्यू यॉर्क की फॉर्टी सेकंड स्ट्रीट पर है. दरअसल यह मैनहटन का केंद्र है. यहां काफ़ी बड़े क्षेत्र में, बिल्डिंगों पर चलते-फिरते रंग-बिरंगे, विशालकाय डिज़िटल विज्ञापन होर्डिंग्स हैं जिनको देखने दुनिया भर के पर्यटक आते हैं. बहुत भीड़ जुड़ती है. ये दिन में भी बंद नहीं होते, चौबीसों घंटे चलते रहते हैं. ऊंची-ऊंची बिल्डिंगों का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं बचा है जहां विज्ञापन डिस्प्ले न किया गया हो. कुछ सीमा तक यही हाल आस-पास की सड़कों का भी है. हर समय यहां एक कॉर्निवाल जैसा माहौल रहता है. टाइम्स स्क्वायर के पास ही रॉकेफेलर भवन है. वह भी रात में रोशनी में जगमगाता रहता है. बगल में, एक बड़े से पिट में आइस रिंक है जिसमें छोटे-बड़े जोड़े थिरकते रहते हैं. टाइम्स स्क्वायर से चलकर वे तीनों रॉकेफेलर सेंटर पहुंचे. वे लोग एक बेंच पर बैठ गये. जबसे वे दोनों अमेरिका आये हैं कई बार देखा कि कहीं भी मेट्रो में, सड़क पर, पार्क में युवक-युवती आलिंगनबद्ध होकर किस कर रहे हैं. यह बहुत ही सामान्य बात है. इसका कोई नोटिस भी नहीं लेता. लेकिन उन्होंने देखा कि रिंक की रैलिंग के पास खड़े एक युवक ने दूसरे युवक को अपने बाहुपाश में लिया हुआ है और उसका चुंबन ले रहा है. समलैंगिक संबंधों के बारे में बहुत कुछ पढ़-सुन रखा था. पर इस तरह खुले आम कभी कुछ देखा नहीं था. बड़ा अजीब लग रहा था. कुछ लिजलिजाहट महसूस हो रही थी. पर शायद अमेरिका के लिए यह भी एक सामान्य बात हो!

काफ़ी रात हो चली थी. वे लोग न्यू-पोर्ट से मेट्रो की पाथ लाइन लेकर पहले क्रिस्टोफ़र स्ट्रीट और फिर वहां से फॉर्टी थर्ड स्ट्रीट स्टेशन तक आये थे और अब उसी तरह वापस भी लौटना था. चाहे अकेले या साथ में दोनों को आने-जाने की सुविधा रहे इसलिए शेखर ने उनके इस्तेमाल के लिए मेट्रो का एक कार्ड ले लिया था. न्यूयॉर्क में ज़मीन के नीचे २०-२२ सब-वे या मेट्रो की अंडर ग्राउंड लाइनों का जाल बिछा हुआ है. एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिए, कहीं से कहीं तक के लिए मेट्रो पकड़ी जा सकती है. मेट्रो स्टेशन से प्लेटफ़ॉर्म तक जाने के लिए आपको एक बैरियर पार करना होता है जो तभी खुलता है जब आप बैरियर के पैनल पर कार्ड स्वाइप करें. एक बार के उपयोग पर दो डॉलर लगते हैं. फिर चाहे अंदर-अंदर आप कितनी मेट्रो बदलें और कितनी दूरी तय करें.

घूमने-फिरने में काफ़ी थकान हो गयी थी. न्यू-पोर्ट से मारबेला की दूरी भी कम नहीं. यह तो अच्छा हुआ कि उन्होंने पहले ही टाइम्स स्क्वायर पर पीज़ा खा लिया था. आधी रात के लगभग फ़्लैट पहुंच पाये. यह फ़्लैट शेखर को नौकरी के शुरू के एक महीने के लिए ही मिला था. पंद्रह दिन यूं ही देखते-देखते बीत गये. जर्सी सिटी में जर्नल स्क्वायर स्टेशन के आसपास काफ़ी भारतीय रहते हैं और यहां मकानों का किराया भी अधिक नहीं है. लेकिन शेखर का कहना था कि जर्सी सिटी में लाइफ़ नहीं है. शाम को सात-आठ बजे के बाद सब तरफ अंधेरा हो जाता है. बस चुपचाप आकर अपने दड़बे में बंद हो जाओ. उसने मैनहटन में लिबर्टी पार्क में स्टूडियोनुमा एक छोटा फ़्लैट देख लिया और उसकी चाबी भी ले ली थी. फ़्लैट थोड़ा बहुत फर्निश्ड था — यानी कुकिंग रेंज़, माइक्रोवेव ओवन, एक बड़ा-सा फ्रिज़, अलमारियां वग़ैरह. लेकिन खाने बनाने के बर्तन, कुछ फर्नीचर व घर गृहस्थी का अन्य सामान ख़रीदना आवश्यक था. नंदिता और शेखर ने लिस्ट बनायी और जब भी मौक़ा मिलता शाम को ख़रीदारी का प्रोग्राम बन जाता.

शेखर के ऑफ़िस चले जाने के बाद श्रीकांत और नंदिता का रोज़ वाटर फ्रंट पर घूमने का नियम-सा बन गया था. एक दिन 'नमस्ते इंडिया' ग्रुप के लोगों से बातचीत के दौरान मालूम पड़ा कि अटलांटिक सिटी यहां से बहुत दूर नहीं है. लोगों ने सुझाव दिया कि क्योंकि थोड़े दिनों बाद वे लोग इंडिया वापस जाने वाले हैं तो अच्छा होगा कि वे कभी वहां घूम आयें. यह

भी जानकारी मिली कि शॉपराइट स्टोर के पास ही सुबह आठ बजे बस मिलती है और किराया भी ज़्यादा नहीं है. वहां सब तरफ़ कैसिनो ही कैसिनो हैं. अच्छी तफ़रीह रहेगी.

अगले दिन रविवार था. शाम को ही 'पाथ' के 'ग्रोव स्ट्रीट' स्टेशन के पास के एक स्टोर से बस के टिकट ले लिये. यह सारी जानकारी 'नमस्ते इंडिया' के लोगों से मिल गयी थी. एक टिकट तीस डॉलर का था. अटलांटिक सिटी का यह रिसार्ट न्यू जर्सी स्टेट की अटलांटिक काउंटी में ही है और मारबेला से लगभग २०० किलोमीटर की दूरी पर है. यात्रा में सवा दो घंटे लगे. बस ने एक कैसिनो के पार्किंग लॉट में जाकर उतार दिया. बाद में मालूम पड़ा कि यह सीज़र कैसिनो का पार्किंग लॉट था. एक के बाद एक बहुत सारी बसें लोगों को ला रही थीं. लाइन से लोग उतर रहे थे और सुंदरियों द्वारा उनका स्वागत किया जा रहा था. सबसे मज़े की बात यह थी कि स्वागत के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को बीस डॉलर वापस दिये जा रहे थे. यानी आने जाने का बस का किराया मात्र दस डॉलर! हमें साठ डॉलर मिले. यह कुछ नहीं, केवल मार्केटिंग का एक मनोवैज्ञानिक तरीका मात्र था. पैसे आपके ही पर महसूस हो कि आपको फ़ायदा हो गया है. क्योंकि अधिकतर लोग कैसिनो में जीतने की उम्मीद में पैसे गंवाते ही हैं. घंटों स्लॉट मशीनों पर बैठे रहते हैं जिनकी वहां कोई गिनती नहीं है या फिर दूसरे तरह की गैंब्लिंग में हारते रहते हैं. उन लोगों ने पहले ही तय कर लिया था कि कैसिनो में अधिक समय नहीं बिताना है. अनुभव करने के लिए सब तरह के खेल खेलना है, भरपूर मज़ा करना है लेकिन रहना अपनी सीमा में है.

घंटे दो घंटे कैसिनो में बिताकर वे बाहर आ गये. यहां बीच के किनारे-किनारे लकड़ी का काफ़ी चौड़ा बोर्ड वाक था. जो एक कमान जैसा दो-तीन मील दूरी तक लंबा था. सीज़र के अलावा 'ट्रंप' वालों का ताज़महल, बोरगाटा, रेवेल, ट्रॉपिकाना आदि कई दूसरे कैसिनो भी थे. दर्शकों को लुभाने के लिए कहीं जादू दिखाया जा रहा था और कहीं और तमाशे चल रहे थे. एक जगह हॉउस ऑफ हॉरर था. कहीं कुछ, कहीं कुछ और. हर तरह के खाने-पीने के स्टाल्स थे. सब तरफ़ एक बड़े मेले जैसा माहौल था. बोर्ड वाक पर जहां भी थोड़ी खुली जगह होती लोग-बाग नीचे उतर कर 'बीच' पर नहाने के लिए भी आ-जा रहे थे. समुद्र से आती हुई हवा अच्छी लग रही थी. फिर भी बहुत देर तक धूप में नहीं रहा जा सकता था. वाक पर ही थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छायादार शेड बने थे जहां बैठ कर लोग सुस्ता सकते थे. पर्यटकों की हर सुविधा का इंतज़ाम था. शेखर ने बताया कि यहीं अटलांटिक सिटी में ही हर साल मिस अमेरिका पेजेंट का आयोजन किया जाता है.

उन लोगों ने लंच के नाम पर एक-एक बर्गर और एक-एक हॉट डॉग लेकर खा लिया. चाहते तो रुकने के लिए और रुका जा सकता था. तीन बजे के बाद हर आधे घंटे के बाद वापसी के लिए बस ली जा सकती थी. पर अब करने के लिए कुछ शेष नहीं था. सीज़र कैसिनो के पार्किंग लॉट में वापसी के लिए बसें लगी थीं मगर लोगों की भीड़ नहीं थी. साढ़े तीन बजे की बस लगभग आधी खाली थी. उनको आसानी से जगह मिल गयी. अधिकतर लोग शायद अभी भी कैसीनों की मशीनों को छोड़कर वापस नहीं जाना चाहते थे. कब जैक–पॉट हाथ लग जाये! हर पल जैक-पॉट की राशि बढ़ती जाती थी.

सुबह वे लोग जल्दी उठ गये थे. दिन भर की थकान थी. बस के चलते ही नींद के झोंके आने लगे. श्रीकांत और नंदिता साथ बैठे थे और शेखर एक सीट छोड़कर आगे. उसके बगल में बैठी महिला शायद फिलिपिनो थी. वे दोनों आपस में बातों में मशगूल थे. शायद अमेरिका के अपने-अपने अनुभव शेयर कर रहे होंगे. इतने कम दिनों में ही शेखर का अंग्रेज़ी का उच्चारण पूरा अमरीकी हो गया था. अच्छा है जब रोम में रहना है तो रोमवासी बनकर ही रहना चाहिए.

शाम होने से पहले ही वे मारबेला पहुंच गये. गर्मियों में यहां काफ़ी देर से सूरज डूबता है. सामान्यतया आठ-नौ बजे तक उजाला रहता है. लगभग सभी अमरीकी, छः साढ़े बजे तक रात का खाना खा लेते हैं. शाम को बहुत सारे युगल आपको पार्कों में, साइड वाक पर या ट्रैक पर जॉगिंग करते हुए दिख जायेंगे. किंतु श्रीकांत और नंदिता के रूटीन में कोई बदलाव नहीं आया था. इतनी जल्दी खाना खा लेना उन्हें बड़ा अटपटा लगता. मुश्किल तब होती जब कोई उन्हें डिनर पर बुलाता. वैसे भी अब उनके भारत लौटने के दिन पास आ रहे थे. उस शाम पहले से तय था कि रात का भोजन विनीता के फ़्लैट में खाया जायेगा. विनीता ने पहले से काफ़ी कुछ तैयारी कर ली थी. नंदिता ने सिर्फ़ रोटियां बनायीं. विनीता के पास बेलन तो था लेकिन चका नहीं था. किचन स्लैब के एक हिस्से को साफ़ करके नंदिता ने रोटियां बेलीं. अमूमन विनीता ब्रेड से काम चला लेती थी. रोटी बनाने का झंझट क्यों पाले? अक्सर तो इतना समय ही नहीं होता. उस शाम चारों ने तृप्त होकर खाना खाया. विनीता की शादी को पांच-छः महीने ही हुए थे. मियां-बीवी दोनों भारत में, पुणे में नौकरी में थे. विनीता को कंपनी ने अमेरिका भेज दिया. पति भी आने की कोशिशें कर रहा था. कितना समय लगेगा कुछ कहना मुश्किल था. विनीता ने बताया कि हर साल की तरह इस बार भी, अगले शनिवार

सातवें माले पर स्वीमिंग पूल के पास वाले गार्डन में मारबेला का वार्षिक उत्सव मनाया जायेगा. नीचे रिसेप्शन के पास नोटिस बोर्ड पर सर्कुलर लगा है. जो लोग भाग लेना चाहें उन्हें नाम देना होगा. पांच डॉलर की इंट्री फ़ी है. गेस्ट भी आ सकते हैं. सुबह से लेकर शाम तक का कार्यक्रम है. डीजे का भी इंतज़ाम है.

आइडिया बुरा नहीं था. शेखर को भी नये मकान में शिफ़्ट होना था. घर-गृहस्थी का सारा सामान ख़रीद लिया गया था. शेखर को खाना बनाना नहीं आता. जब सर पर पड़ेगी तो धीरे-धीरे सीख ही जायेगा. नंदिता ने बर्तन-मसाले सभी कुछ जमा लिये थे. वे लोग थोड़ा-थोड़ा करके हर दूसरे-तीसरे दिन नये घर जाकर सामान रख आते थे. अभी पूरा सप्ताह बीच में था अगर कुछ याद आयेगा तो इस बीच ख़रीदा जा सकता है. बीस-पच्चीस दिन कितनी तेज़ी से गुज़र गये कुछ मालूम ही नहीं पड़ा. जब आपके पास कुछ करने को नहीं हो तो एक-एक पल काटे नहीं कटता और यदि आप व्यस्त हों तो समय का कुछ पता ही नहीं चलता. जब तक नये माहौल के कुछ आदी हुए कि जाने का वक़्त आ गया. कैसे तीन सप्ताह उड़न छू हो गये कुछ पता ही नहीं चला.

अगले चार-पांच दिन करने को विशेष कुछ नहीं था. शेखर के ऑफ़िस जाने के बाद वे अक्सर 'नमस्ते इंडिया' ग्रुप वाले लोगों से मिल आते. नहीं हुआ तो न्यू पोर्ट की माल में विंडो शॉपिंग करते रहते. उनके भारत लौटने के बाद ही शेखर को नये मकान में शिफ़्ट होना था.

वार्षिक डे वाले दिन मारबेला में सुबह से ही काफ़ी चहल-पहल थी. बहुत सारी कंपनियों ने मारबेला में फ़्लैट्स ले रखे थे जिन्हें वे ट्रांजिट एकमोडेशन की तरह इस्तेमाल करते थे. इन कंपनियों में काम करने अमेरिका से बाहर से आने वाले लोग जब तक मकान न मिले यहीं रहते थे और इस तरह आपस में एक जुड़ाव महसूस करते थे. एनुअल-डे पुराने दोस्तों से दोबारा मिलने-जुलने का एक अवसर प्रदान करता था. आपस में बातचीत से दोस्तों को प्रोग्राम की ख़बर मिल जाती. स्वीमिंग पूल के चारों ओर जहां जगह मिली ग्रुप बना कर लोग बैठे थे. सारी आराम कुर्सियां जिन पर पैर फैलाकर लेटा जा सकता था, घिरी थीं. दो उम्रदराज़ लोगों को आया देखकर किसी ने एक कुर्सी खाली कर दी. विनीता और शेखर ऑफ़िस के अपने कुछ दोस्तों के साथ पहले से वहां मौजूद थे. सबसे उनका परिचय कराया गया.

खाने के बहुत सारे स्टाल लगे थे. कोल्ड ड्रिंक छोड़कर बियर, कॉफी और बाक़ी सब चीज़ों के लिए पैसे देने पड़ रहे थे. वे लोग नाश्ता करके ही नीचे आये थे. इतनी जल्दी कुछ खाने की इच्छा नहीं थी. कुछ लोग संगीत की धुन पर एक गोले में थिरक रहे थे.

ज़्यादातर लोग देसी थे. यानी हिंदुस्तानी या पाकिस्तानी. बीच-बीच में एकआध बॉलीवुड का चलताऊ हिंदी गाना भी सुनने को मिल रहा था. लोग उस पर डान्स करने लग जाते. कुछ लोग स्वीमिंग पूल का आनंद उठा रहे थे. छोटे बच्चे अपने माता या पिता के साथ ही पूल में जा सकते थे. वे पूरी तैयारी से आये थे. नहाने वालों या तैरने वालों को पहले ज़िम के पास के स्नानघरों से शॉवर लेकर आना होता था. यह पूल शेखर के पच्चीसवें माले के फ़्लैट की बालकनी से दिखायी देता था. उतने ऊपर से सड़क पर चलती गाड़ियां, लाइट ट्रेन और आदमी भी बहुत छोटे-छोटे खिलौने जैसे दिखते थे.

दिन चढ़ने के साथ भीड़ बढ़ती जा रही थी. धूप थी पर तेज़ नहीं. हवा में हल्की खुनकी थी, शायद हडसन नदी पास होने की वजह से उधर से आने वाली हवा ठंडी थी. धीरे-धीरे खाने का सब सामान ख़त्म होता जा रहा था. पहले आये कुछ लोग अब जाने लगे थे. श्रीकांत और नंदिता ने सोचा कि अब उन्हें भी फ़्लैट पर जाकर आराम करना चाहिए. चाबी शेखर के पास थी. उन्होंने देखा कि वह अपने कुछ नये दोस्तों से घिरा था. उसकी पीठ उनकी तरफ़ थी. एकबारगी वे उसे डिस्टर्ब नहीं करना चाहते थे. वे थोड़ी दूर पहुंचकर रुक गये. लेकिन दोस्तों को आभास हो गया कि संभवत: दोनों शेखर के माता पिता हैं. तभी शेखर को भी उनके आने का भान हुआ. इन नये मित्रों से उसने दोनों का परिचय कराया. थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं — ''आपको अमेरिका कैसा लगा?'' ''शायद किसी दूसरे शहर तो नहीं जा पाये होंगे?'' ''क्या-क्या देखा?'' ''स्टैच्यू ऑफ़ लिबर्टी देख पाये या नहीं?''

किसी मित्र ने बताया कि स्टैच्यू ऑफ़ लिबर्टी जाने पर आजकल पाबंदी है. सहसा किसी अन्य दोस्त ने पूछा, ''अंकल-आंटी आप बंबई से हैं?'' श्रीकांत ने हां कहा तो उसने फिर कहा कि आप पच्चीसवें माले पर ठहरे हैं? श्रीकांत ने हां में सिर हिलाया. इस दोस्त का नाम शायद आशीष था. आशीष के चेहरे के हाव-भाव में एकदम बदलाव आ गया. ''अंकल-आंटी क्या संयोग है दो साल पहले जब मैं चैन्ने से आया था तो मुझे भी पूल की ओर वाला यही पच्चीसवें माले वाला फ़्लैट एलॉट हुआ था. कंपनी में साथ काम करने वाले, बंबई से आये सुदीप से मेरी जान-पहचान हो गयी. थोड़े दिनों में वो मेरा अच्छा दोस्त बन गया. ऑफ़िस के बाद अक्सर हम दोनों साथ रहते. वह न्यू-पोर्ट में कहीं पेइंग गेस्ट था. पर अधिकतर मारबेला आ जाता था. कई बार रात में भी मेरे पास रुक जाता. इस तरह रिसेप्शन वालों से भी उसकी ख़ासी जान-पहचान हो

गयी थी. हम दोनों ज़िम भी साथ जाते. अचानक उसे स्वीमिंग सीखने की धुन सवार हो गयी. मुझे तैरना आता है. वह मेरे पीछे पड़ गया कि मैं उसे स्वीमिंग सिखाऊं. मना करने का कोई कारण नहीं था. अभी उसे तैरना सीखते हुए दो-तीन दिन भी नहीं हुए थे. शाम को ऑफ़िस में मीटिंग के कारण मुझे रुकना पड़ा. डिनर करके फ़्लैट पर लौटा. ऐसे ही बालकॅनी पर खड़ा था, देखा स्वीमिंग पूल में कोई तैर रहा. सोचा इतनी रात में कौन हो सकता है ? कुछ देर वहीं खड़ा रहा. लगा तैरने वाला बिलकुल हिल-डुल नहीं रहा है. मुझे शंका हुई कि कोई हादसा न हो गया हो. तुरंत रिसेप्शन को फ़ोन पर सूचना दी और ख़ुद भी बिना समय गंवाये पूल पर पहुंच गया. मुझे काटो तो खून नहीं. वह और कोई नहीं सुदीप था. इतने देर में बहुत सारे लोग ज़मा हो गये थे. जल्दी-जल्दी उसे पूल से बाहर निकाला गया. पर अब करने को कुछ शेष नहीं रह गया था. आगे क्या कुछ हुआ होगा आप स्वयं समझ सकते हो! मारबेला आना मेरे लिए एक नाइटमेयर है. मैं बिलकुल नहीं आना चाहता था किंतु दोस्तों के कहने पर मना भी नहीं कर सका.''

अभी आशीष पूरी तरह अपनी बात कह भी नहीं पाया था कि नंदिता को लगा कि वह कहीं बेहोश न हो जाये. ''ओ, माई गॉड, यह सब क्या है ?'' आगे उससे बोला नहीं जा रहा था. नंदिता का हाथ पकड़ कर श्रीकांत उसे आराम कुर्सी तक ले आया. किसी को कुछ समझ में नहीं आया कि अचानक यह क्या हो गया. शेखर बिना एक पल गंवाये, लपक कर मम्मी को मिनरल वाटर की बोतल से पानी पिलाने लगा. इधर श्रीकांत के मस्तिष्क में भी उथल-पुथल मची हुई थी. उसकी आंखों के सामने दो साल पहले का सारा घटनाक्रम घूम गया. शुरू में ही सुदीप नाम सुनकर उसके मन में खटका अवश्य हुआ था. सुदीप उसके बहुत ही क़रीबी दोस्त का इकलौता लड़का था. दोस्त ने लड़के का होरस्कोप किसी ज्योतिषी को दिखाया था. ज्योतिषी ने कहा भी था कि पुत्र को अगले कुछ दिनों पानी से ख़तरा है. इस बात की दोस्त ने सुदीप को फ़ोन पर चेतावनी भी दी थी.

✍ **प्रधान संपादक 'कथाबिंब',**
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो. ९८१९१६२६४८

ग़ज़लें

✍ मिस्दाक़ आज़मी

हो किसी का भी दम खम देर तक नहीं रहता ।
ज़ुल्मों जब्र का आलम देर तक नहीं रहता ।।
मेरी ख़ुशनसीबी है दुश्मनों के दिल पर भी ।
मेरी हर ख़ुशी का ग़म देर तक नहीं रहता ।।
मौत जिसकी बेमक़सद हो चुकी है हमअस्रो ।
ऐसी मौत का मातम देर तक नहीं रहता ।।
क्या निज़ाम बदलेगा देखता हूं कुर्सी पर ।
आपका वज़ीर आज़म देर तक नहीं रहता ।।
इश्क है तो फिर आख़िर आशिकों के दिल पर भी ।
क्यों जुनून का आलम देर तक नहीं रहता ।।
आप गर न होते तो मैं यही समझता हूं ।
कोई भी हसीं मौसम देर तक नहीं रहता ।।

तेरी हर तख्लीक़ का मुझको समां अच्छा लगा ।
ये ज़मीं अच्छी लगी ये आसमां अच्छा लगा ।।
दिल में उल्फत और नज़र में पुरकशिश जलवे लिये ।
जिसने भी देखा कहा हिंदोस्ता अच्छा लगा ।।
जिसकी शह पे ख़ाक सब कुछ कर गयी थीं बिजलियां ।
फिर वही अहले चमन को बाग़बां अच्छा लगा ।।
छांव में बैठे हुए भी दिल की राहत के लिए ।
तेरी ही ज़ुल्फों का हमको सायबां अच्छा लगा ।।
बेज़ुबां होते हुए वो आज हम को दोस्तों ।
जब लगा अपनी सुनाने दास्तां अच्छा लगा ।।
कब तलक रहते शजर की छांव में हम इसलिए ।
धूप जब निकली तो अपना ही मकां अच्छा लगा ।।

✍ **ग्राम-जौमा, पो. मेजवां (फूलपुर), जि. आजमगढ़-२७६३०४.**
मो. : ९४५१४३१७००, ९७९३०९८१२८

कहानी

दीवार के पार

✍ डॉ. अनिल प्रभा कुमार

फ़ैसला हो गया. कोर्ट की अभेद्य ख़ामोशी भेदने की न किसी आह, न कराह और न ही वाह में हिम्मत हुई. एक ग्लेशियर ऊपर से सरका और सबको अपने भार के तले दबाता नीचे-नीचे रसातल तक ले गया. सतह के ऊपर किसी औरत की सिसकियां उभरीं. वह सायास उस ओर नहीं देखती, कभी भी नहीं देखा. सांझापन है उस हिंदुस्तानी औरत से, मां होने का. दोनों लुटी हुई माएं. एक का बेटा साल भर के लिए सलाखों के पीछे रहेगा और दूसरी का? क्या फ़र्क पड़ता है अब? क्या फ़र्क पड़ता है किसी भी बात से? कोई नहीं लौटा सकता उसे, जो उसने खोया है या खो दिया है.

पीटर ने मेरी को बांह से पकड़कर सहारा दिया. बोले कुछ नहीं. सिर झुकाये बाहर निकल आये. आवारा कुत्तों की तरह संवाददाता अपने कैमरे लिये उनके पीछे भागे. पीटर ने संकेत से मना कर दिया. मेरी सिर उठाये चलती रही. वह अब लोक-लाज, शर्म, सही-ग़लत, इन सब बातों से ऊपर उठ चुकी है. सब कुछ अनदेखा कर आगे बढ़ती गयी. जब कुछ और खोने का डर नहीं होता तो आदमी निडर हो जाता है.

पीटर ने मेरी के घर के आगे कार रोकी. वह कुछ देर उन्हें देखती रही. बहुत कुछ घुमड़ा पर सब धुंआ-धुंआ. ठोस कुछ नहीं था जो शब्दों का रूप ले पाता. पीटर की उंगलियां स्टियरिंग थपथपाती रहीं. एक नज़र मेरी की ओर डाली.

''अच्छा, अपना ध्यान रखना.'' कहकर गाड़ी स्टार्ट कर दी.

वह दूर जाती गाड़ी को देखती रही. एक महीन-सा सूत्र जोड़े हुए था उन्हें अब तक. आज वह भी चटक गया. कोई फ़र्क नहीं पड़ता. खालीपन से और क्या घटा पाओगे. शून्य को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता. शून्य तो शून्य ही रहेगा. न छोटा शून्य न बड़ा शून्य.

वह पस्त क़दमों से अपने घर के दरवाज़े की ओर बढ़ी. चाबी लगाकर दरवाज़ा खोला. पैर क्रिस के कमरे तक ले गये. दरवाज़ा बंद था. वहीं बाहर ठिठकी खड़ी रही. उम्र भर की एक आदत थी. बाहर से लौटकर हमेशा पहले जीसस की तस्वीर के आगे खड़ी हो जाती. आंखें बंद करके सीने पर क्रॉस का निशान बनाती और फिर आगे बढ़ जाती. पता ही नहीं चला कि कैसे वह उम्र-भर की आदत धुंधला गयी और उसकी जगह वह क्रिस के बंद दरवाज़े के आगे अपने को खड़ा पाती है. मूक विमूढ़-सी. यह दरवाज़ा जैसे एक बहुत बड़ी दीवार हो, उसके और उसके बेटे के बीच. वह चाहती है इस दीवार को लांघना. क्रिस तक पहुंचना. उसे छूना पर लगता है कि इस दीवार के पार एक गहराता, काला बवंडर होगा जिसमें वह तिनके के समान उड़ जायेगी. बस चुपचाप खड़ी रहती है.

हमेशा की तरह सिर झुकाये लौट आयी. उसने अपने सीने को सहलाया. लगा एक अदृश्य खंजर जो वहां धंसा हुआ था थोड़ा और गहरे उतर गया. कुछ कतरे पीड़ा के चुहचुहाये. आकर उसी कुर्सी पर धंस गयी जहां आख़िरी बार बैठकर क्रिस से बात की थी. सूनी आंखों से देखती रही. लगा क्रिस अभी भी वहीं उसके सामने सोफ़े पर बैठा है. मेरी उसके झबरे सुनहरे बालों की ओर देखती रहती है. दो दिन में कॉलेज चला जायेगा. सोच-सोच कर मेरी के दिल में हौल सा उठता है. एक

डॉ. अनिल प्रभा कुमार

पीएच. डी (हिंदी के सामाजिक नाटकों में युगबोध विषय पर शोध).

कार्यक्षेत्र : *विद्यार्थी-जीवन में ही दिल्ली दूरदर्शन पर हिंदी 'पत्रिका' और 'नई आवाज़' कार्यक्रम किये. 'ज्ञानोदय' के नयी कलम विशेषांक में 'खाली दायरे' कहानी पर प्रथम पुरस्कार पाने पर लिखने में प्रोत्साहन मिला. कुछ रचनाएं 'आवेश', 'संचेतना', 'ज्ञानोदय' और 'धर्मयुग' में भी छपीं.*

अमरीका आकर, न्यूयॉर्क में 'वॉयस ऑफ़ अमरीका' की संवाददाता के रूप में काम किया और फिर अगले सात वर्षों तक 'विज़न्यूज़' में तकनीकी संपादक के रूप में. इस दौर में कविताएं लिखीं जो विभिन्न पत्रिकाओं में छपीं. न्यूयॉर्क के स्थानीय दूरदर्शन पर कहानियों का प्रसारण. पिछले कुछ वर्षों से कहानियां और कविताएं लिखने में रत.

वागर्थ, हंस, अन्यथा, कथादेश, पाखी, समावर्तन, लमही, परिकथा, पुष्पगंधा, हरिगंधा, शोध-दिशा, आधारशिला और वर्तमान-साहित्य आदि पत्रिकाओं के अलावा, 'अभिव्यक्ति' के कथा महोत्सव में 'फिर से' कहानी पुरस्कृत हुई.

'बहता पानी' कहानी संग्रह (२०१२), 'उजाले की कसम' कविता संग्रह (२०१३) प्रकाशित.

संप्रति : *विलियम पैटर्सन यूनिवर्सिटी, न्यू ज़र्सी में हिंदी भाषा और साहित्य का प्राध्यापन और लेखन.*

बार बच्चा घर छोड़कर कॉलेज चला गया तो फिर घर कब लौटता है? उसकी अपनी दुनिया की शुरुआत होगी. अपनी छवि, आवाज़ें, अपना होना सब साथ ले जायेगा. दिलासा देने को अपनी जगह छोड़ जायेगा एक उदास सूनापन.

क्रिस ने अपनी नीली आंखें सीधे मेरी के चेहरे पर टिका दीं.

''मॉम आपसे एक बहुत ज़रूरी बात करनी है.''

यहीं बैठकर उसने कहा था. शर्मीला, बहुत कम बोलने वाला, ज़्यादातर आंखें नीचे करके रहने वाले क्रिस के चेहरे पर एक अलग तरह की दृढ़ता मेरी ने उस दिन देखी.

''मैंने डैड को बता दिया है. आपको भी कॉलेज जाने से पहले बता देना ज़रूरी समझता हूं.'' वह सिर्फ़ सांस लेने के लिए रुका था.

''मां आपको कब से बताना चाहता था कि मैं समलिंगी हूं, होमो हूं.''

मेरी सकते में आ गयी. लगा, जैसे उसे किसी ने बिजली का ज़ोरदार झटका दिया हो. लपककर खड़ी हो गयी.

''कैसे कह सकते हो तुम? तुम्हें कैसे मालूम है?''

क्रिस यूं ही शांत बैठा रहा था जैसे उसे अपनी मां की प्रतिक्रिया का भान हो.

''मुझे कई वर्षों से मालूम है.''

मेरी को लगा उसके पांव तले की ज़मीन दरक रही है. सारी उम्र जिस विश्वास, संस्कारों की हवा में सांस लेती रही वह हवा ही अब पलट गयी. सांस लेने को छटपटाने लगी. सब डांवाडोल हो गया. लगा, धरती ने अपना गुरुत्वाकर्षण खो दिया और वह अंधड़ में घिर गयी है. उसे और क्रिस को चारों ओर से संबंधियों, मित्रों और कितने ही अनजाने लोगों ने घेर लिया है. हाथ में पत्थर उठाये उसकी ओर बढ़ती भीड़ का हुजूम और सबका नेतृत्व करते फ़ादर रिल्के. वह डर गयी. अपनी आख़िरी सांस तक की ताक़त से अपने और क्रिस को बचा लेना चाहती थी. उसने जैसे एक उन्माद में क्रिस को कंधों से पकड़कर झकझोरना शुरू कर दिया, ''यह ग़लत है, पाप है. तू ऐसा कभी नहीं कर सकता. कभी नहीं.''

क्रिस आंखें झुकाये बैठा रहा. सिर अभी भी ऊंचा था.

मेरी ने गिड़गिड़ाकर क्रिस के दोनों हाथ जकड़ लिये. ''मेरे साथ चर्च चल, अभी. कन्फ़ैशन कर ले अपने गुनाह का. फ़ादर रिल्के ज़रूर तेरे लिए प्रार्थनाएं करके तुझे बदल देंगे. तू सामान्य हो जायेगा.''

क्रिस की आंखें भर आयीं. शांत था वह. भरी हुई आंखों से मां को देखता रहा. पता नहीं कितना कुछ कह रही थीं वे आंखें. मेरी की हर चीज़ पर उस वक़्त धुंध ही धुंध थी, कुछ न पढ़ पायी.

वह धीरे से उठकर घर से बाहर जाने लगा. मेरी पीछे भागी.

''पीटर क्या कहता है?''

''डैड को कोई आपत्ति नहीं.'' उसने पीछे मुड़कर कहा.

मेरी दहशत से सुन्न हो गयी. इस मोर्चे पर भी वह अकेली थी.

अगले दिन पीटर का फ़ोन आया — ''क्या कहा तुमने अपने बेटे को?''

''क्यों, क्या उसने मेरी कोई शिकायत की?''

''नहीं, सिर्फ़ फ़ोन पर मुझे टैक्सट मैसेज़ भेजा है. मां ने मुझे अस्वीकार कर दिया.''

मेरी ने फ़ोन रख दिया. बस तभी यह खंजर धंस गया था. मेरे बेटे ने बस मुझे इतना ही जाना कि मैंने उसे अस्वीकार

कर दिया? उसे लगा, उसकी ममता ने ज़िंदगी भर रेत पर घरौंदा बनाया था. एक ही तेज़ लहर सब बहा कर ले गयी और वह ढहे हुए घर की सपाट भुरभुरी ज़मीन को देख रही है, बस!

अगले दिन क्रिस कॉलेज जा रहा था. पहला दिन था उसके नये जीवन का. मेरी ने सामान्य होने का मुखौटा पहन लिया. उसे छोड़ने गयी. पीटर भी पहुंच गये. क्रिस उत्साहित लगा अपने नये वातावरण, नये कमरे में. मुस्तैदी से सब सामान टिकाते हुए उसने अपने वायलिन के लिए एक ख़ास जगह बनायी, खिड़की के पास.

पीटर बहुत सहज और उत्साहित थे. पूछा, ''क्रिस, तुम यह कमरा किसके साथ साझा कर रहे हो''

''पता नहीं. लॉटरी निकलती है, उसी के हिसाब से साथी चुने जाते हैं.''

एक सांवला सा लड़का दो और लड़कों के साथ कमरे में दनदनाता हुआ घुसा.

''हॉय, आ' यम एरिन, एआरयूएन'' ज़ाहिर था कि उसने अपने नाम का अमरीकीकरण करके बताया था.

''क्रिस'', क्रिस ने संकोच के साथ हाथ बढ़ाया.

''यह वायलिन खिड़की के पास से हटाओ. यह मेरी जगह है.''

सबने पलट कर उस सावले लड़के को देखा. क्रिस ने वायलिन उठाकर दूसरे कोने में रख दिया.

''बुरी लॉटरी'', पीटर मेरी के कान में फुसफुसाये.

मेरी फ़ोन करती, बेटे का हाल पूछती. औपचारिकता की बर्फ़ में ठिठुरी बातें होतीं.

''कैसा लगता है नया जीवन?''

''ठीक है. कुछ नये क्लबों से जुड़ रहा हूं. कुछ नये दोस्त बनाये हैं.''

''हूं.''

''हॉस्टल का खाना कैसा है? मेरी को प्रश्न सोचना पड़ता.''

''ठीक है.''

फिर संवाद खो जाता. दोनों जने फ़ोन कान पर लगाये रखते. चुप्पी, चुप्पी से बात करती. जो बात दोनों के बीच अदृश्य दीवार बन कर खड़ी हो गयी थी वही बात यह चुप्पी बहुत तीव्रता से बोल देती.

''रूम-मेट कैसा है?'' मेरी को जैसे एकदम याद आ जाता.

क्रिस कुछ पल रुका. ''दबंग है, बाहुबली. मैं कमरा बदलने की सोच रहा हूं.''

''जैसा ठीक समझो.'' बात समाप्त हो जाती.

एक झाग के बुलबुले ने मां-बेटे के बीच एक दैत्याकार गुब्बारे का रूप ले लिया. दोनों एक दूसरे को आवाज़ से टटोलते पर छू न पाते. मेरी को लगता जैसे उसकी ममता पर कोई गंदी, घिनौनी सी चीज़ आकर लिपट गयी है. उसकी प्रार्थनाएं बढ़ गयीं. सीने के ऊपर एक भारी बोझ, एक अपराध-बोध. मेरी परवरिश में क्या कुछ कमी रह गयी? वह जीसस से माफ़ी मांगती. फ़ादर रिल्के के शब्द कानों में गूंजते — ''समलैंगिकता पाप है, यह अप्राकृतिक है. ऐसे लोगों के लिए हमारे धर्म में कोई स्थान नहीं.''

वह यह सुनती आयी है. बस यही जानती है और मानती भी है. अब उसका अपना बेटा? लज्जा, शर्म. कैसे वह सिर ऊंचा करके रहेगी समाज में? चर्च निकाल देगा उस को. उसका धर्म ही छिन जायेगा उससे तो बाक़ी क्या बचेगा? सोचकर वह कई कई मौतें मरती है.

मेरी मिलने भी नहीं गयी बेटे से. क्रिस भी घर नहीं आया. फ़ोन करता था कभी-कभी. उसे क्रिस की आवाज़ परेशान लगती.

''सब ठीक है न?'' वह अपनी आवाज़ को सामान्य करके पूछती.

''हां ठीक है. बस, वह रूममेट...'' वह बात पूरी नहीं करता.

''क्या करता है?''

''कुछ नहीं...'' क्रिस की आवाज़ में भर्राहट थी.

मेरी को लगा बहुत दिन हो गये क्रिस को घर आये.

''आई मिस यू हनी.'' बस इतना ही कह पायी.

''आई मिस यू टू मॉम. लव यू.''

वह छत की ओर ताकती है. क्या सामान्य है और क्या नहीं? वह दिमाग़ के डिब्बे में बंद हज़ारों प्रश्नों के ढेर में से इस एक प्रश्न का उत्तर ढूंढती है. क्रिस ने कहा था, ''मां, मैं ऐसा ही हूं. मुझे तुम्हारे ईश्वर ने ऐसा ही बनाया है. मेरी इच्छाएं, आकर्षण, मेरी चाह सब प्राकृतिक है. मैंने कुछ नहीं किया.''

बेटे के चेहरे को घूरती मेरी रही थी. लगा, सच कह रहा है. पर चर्च? उसका धर्म? वह खंगालती है उन सब बातों को जिन बातों की रस्सी ने रगड़-रगड़ कर उसकी सोच पर अदृश्य लिपि लिख दी है. वह कैसे मिटाये नियति के इस लेख को. समलैंगिक लड़के की मां बनकर, सबसे पहले सूली चढ़ने की हिम्मत उसमें नहीं है. जानती है, क्रिस एक अंधेरे कुंए में उतरने जा रहा है. वह किसी भी तरह से रोकना चाहती है इस

होनी को.

फ़ोन की चीख़ती आवाज़ से वह घबरा कर उठ बैठी. धुंधलके में उस दिन फ़ोन करनेवाले का नाम भी नहीं पढ़ पायी. पोर्ट-अॅथोरिटी पुलिस का फ़ोन था. उन्हें शहर के सबसे बड़े पुल पर क्रिस का बटुआ और मोबाइल फ़ोन मिला है. क्रिस का कुछ पता नहीं.

मेरी की आंखों के आगे अंधेरा सा छा गया. अंधेरा, चारों ओर घुप्प अंधेरा. वह जल्दी से घर के बाहर की तरफ़ भागी. पांव जवाब दे गये. उसे लगा उसके पैरों के नीचे का ठोस फ़र्श दलदल में बदल गया है. दलदल के स्याह, गहरे भंवर में वह धंसने लगी. घबराकर दीवार को पकड़ने की कोशिश की. लगा, ज़मीन उसे लील रही है.

पीटर ख़बर मिलते ही मेरी के पास चले आये थे. वह बुत बने टेलीविज़न के पर्दे को घूरते रहे. मेरी से कोई संबंध नहीं है अब उनका इसके सिवाय कि वह उनके बेटे की मां है, थी. मेरी सूजी हुई आंखों से देख रही है, क्रिस का ड्रायविंग लायसेंस, उसका कॉलेज का आई. डी. कार्ड.

एक रिपोर्टर पर्दे पर आया. ''पता चला है कि आत्महत्या करने से पहले इस छात्र ने फ़ेसबुक पर संदेश भी छोड़ा था, — पुल पर से कूदने जा रहा हूं.''

पीड़ा से मेरी बिलबिला गयी. जलते अंगारों पर लोट-लोट गयी वह. मुझसे तो बात करता. मां को इस क़ाबिल भी नहीं समझा? जो बातें बेटे के मुंह से नहीं सुन पायी वह सब बातें उसने अख़बारों में पढ़ीं और टेलीविज़न पर देखीं. मौत ने अब उसकी ज़िंदगी को चौराहे पर बेपर्दा खड़ा कर दिया.

क्रिस के रूममेट ने अपने कमरे में चोरी से वैबकॉम लगाया था. क्रिस के अपने प्रेमी के साथ अंतरंग क्षणों को दूसरे मित्रों के साथ बैठकर दीवार के पार, दूसरे कमरे से देखता था. पता नहीं कैसा क्रूर आनंद आ रहा था उसे कि इंटरनेट पर सार्वजनिक करके, क्रिस को ज़लील करने की आख़िरी हद भी पार कर दी. उसकी निजता की सरेआम नीलामी! पता नहीं क्या-क्या घुमड़ा होगा क्रिस के मन में. शायद सभी ओर से अपने को अस्वीकृत पाया होगा. आत्महत्या ने ही उसे स्वीकार करने का आश्वासन दिया होगा. उसकी मां उसे जीने का आश्वासन क्यों नहीं दे पायी? मेरी का मन करता अपना सिर दीवार पर पटक दे.

अख़बार और टेलीविज़न वालों को एक और नया मसाला मिल गया. शहर में चर्चा थी उसके बेटे की आत्महत्या की. नये-नये मुद्दे उठ रहे थे. क्रिस का सांवला रूममेट, क्रिस से भी ज़्यादा सूचनाओं में छाया हुआ था. उसकी घबराहट-भरी तस्वीरें और उस पर चर्चा हर जगह. कुछ कहते, शैतानी की थी उसने. अप्रवासी था. अमरीकी क़ानून की गंभीरता को समझा ही नहीं. शायद उसने घर के वातावरण से यही सीखा था कि समलैंगिक कोई अजूबा होते हैं, उपहास के पात्र. बात यहां तक पहुंचेगी, उस लड़के की सोचने की सीमा से भी बाहर.

निजता का उल्लंघन, समलैंगिकों के प्रति घृणापूर्ण अपराध, पक्षपातपूर्ण धमकाना, क़ानून का पता नहीं किन-किन शृंखलाओं में वह जकड़ा गया. समलैंगिक अधिकारों की पैरवी करने वालों ने कड़ी से कड़ी सजा की मांग की.

मेरी सुनवाई के दौरान कोर्ट जाती रही. सब कुछ तमाशा. दो युवा लड़कों की त्रासदी. दो ज़िंदगियां. एक तबाह हो चुकी थी और दूसरी तबाही से बचने के लिए संघर्ष कर रही थी.

आज फ़ैसला हो गया कोर्ट का. उसका अपना फ़ैसला अभी बाक़ी था. उसकी भीतरी लड़ाई, सवाल-जवाब, सबकी सुई एक ही दर्द पर अटक जाती. क्यों वह अपने बेटे को यह विश्वास नहीं दिला पायी कि एक मां ने कभी अपने बेटे को अस्वीकार नहीं किया. शायद तब क्रिस उसके पास आता. उसकी गोद में सिर रख कर रोता. मेरी आंखें गड़ाये अपनी खाली गोद की ओर देखती रही. पता नहीं कब तक?

मेरी जानती है कि कोर्ट ने उसे कोई सज़ा नहीं दी. फिर क्यों लगता है कि उसे मौत की सज़ा हुई है, ज़िंदा रहते हुए. वह पीड़ा से फ़फक पड़ी. बिलखती रही, ख़ाली गोद को ताकती रही. हाथ हवा में कुछ सहलाते रहे. चीख़ पड़ी उसे लौटाने को, जो अब कभी भी लौट नहीं सकता था. निढाल होकर पता नहीं कब तक बैठी रही.

अचानक उठी. जाकर लैटर-पैड और पेन उठाया. काग़ज़ पर लिखा —

''प्रिय फ़ादर रिल्के,

जिस धर्म में मेरे बेटे के लिए स्वीकृति नहीं, आज से मैं उसको ही अस्वीकार करती हूं. मैं अब कभी चर्च नहीं आ पाऊंगी— मेरी''

चिट्ठी लिखकर वह घर के बाहर लगे डाक के बक्से में डाल आयी. कल डाकिया ले जायेगा.

सधे, मज़बूत क़दमों से वह घर में दाख़िल हुई. क्रिस के कमरे के बाहर आकर खड़ी हो गयी. रुकी, गहरी सांस ली. अरसे से बंद पड़े कमरे के दरवाज़े को ज़ोर से धक्का दिया. एक सीलन भरा हवा का झोंका बाहर दुबक गया.

119 Osage Road, Wayne,
NJ 07470, USA,
Phone : 9736281327
Email : aksk414@hotmail.com

कहानी

उसका भोजन

✍ अमरीक सिंह 'दीप'

नोटिस बोर्ड पर चस्पा फ़ैक्ट्री ऑर्डर को देखकर वे क्षुब्ध ही नहीं बेहद क्षुब्ध हैं — 'यह कहां का न्याय है, मैं सन उन्नीस सौ साठ का भर्ती हूं और यह सन उन्नीस सौ बहत्तर का भर्ती नया लौंडा प्रमोशन पाकर मुझसे सीनियर हो गया?'' नोटिस बोर्ड के गिर्द जुटे हमदर्दी भरे चेहरे उनके दर्द से बिलबिलाते हृदय की पीड़ा को बूझते हैं, पर चुप हैं. प्यादे को वजीर बना देना उनके बायें हाथ का खेल है.

पंडित जी की क्षुब्धता आक्रोश का रूप धारण करती चली गयी — 'सरकार ने इन सरकारी पंडितों को सिर चढ़ा रखा है. तभी तो ससुरे अब आग मूत रहे हैं. अपनी अलग पार्टी बना ली है और सन नब्बे तक सत्ता हथियाने का दावा कर रहे हैं. आरक्षण....आरक्षण...आरक्षण... इस आरक्षण के कारण एक दिन इस देश में महासंग्राम न हो जाये तो मेरा नाम बदल देना.'

मुंह में पान की गिलौरी भरे सोबरन सिंह गर्दन ऊंची कर, चुभलाये जा रहे पान के कारण निचला होंठ ऊपर की ओर उठा कर बोला — 'दीनानाथ भये निर्मोही, कौन सुने विपतिया राम.'

एनोडाइज़िंग के तेज़ाब के फ़ौलादी टैंकों पर काम करने वाला पुकई पाल, जो तेज़ाब से कपड़े ख़राब हो जाने के भय से हमेशा बनियाइन और अंडरवियर पर रबर का एप्रेन एवं पांव में रबर के लांग शू पहने रहता है, ने रबड़ के दस्ताने उतार चायवाले के कनस्तर से एक ब्रेड पकौड़ा निकाला उसे पंडित जी को आधा तोड़ कर देते हुए कहा — 'पंडितजी, बाबा कबीर दास कह गये हैं कि रूखी-सूखी खाय के ठंडा पानी पीय, देख पराई चूपड़ी काहे ललचाये जीभ.'

पंडितजी ने आंखें तरेर ब्रेड पकौड़ा लेने से इंकार कर दिया. वे और सुलग गये. बलवती इच्छा बलबलायी.... दें घसीट के एक कनटाप इस गड़रिये के बच्चे को. पर मन मसोस कर रह गये. इनसे भिड़ना बर्र के छत्ते को छेड़ना है.

मध्यावकाश होने को है. साढ़े चार घंटे की हाड़तोड़ मेहनत के कारण हर उदर में भूख गदर काट रही है. आक्रोश से परशुराम हो रहे पंडितजी की परशुरामी झेलने की ताब अब किसी में भी बची नहीं रह गयी. लंच का हूटर बजते ही सब अपने-अपने खाने के डिब्बों की ओर लपके.

चहुंओर से ख़ुद को नितांत अकेला पाकर आक्रोश से अंगार हुए पंडित जटा शंकर बुझे मन से वातानुकूलित हाल में अपनी काम वाली मशीन पर लौट आये. उन्होंने अशर्फी लाल और अपनी मशीन के मध्य स्थापित चार फुट ऊंचे पैनल बॉक्स पर रखे अपने खानेवाले डिब्बे व सुबह से ही मांज धोकर रखे पानी से भरे पीतल के लोटे को उठाया और पूजा घर के समीप फ़र्श पर बोरा बिछा कर खाना खाने के लिए बैठ गये.

मुंह में पहला कौर डालते ही खाने के जायके ने उनके क्षुब्ध मन को अपनी ओर मोड़ लिया... लगता है आज खाना बड़की बहू ने बनाया है. स्वभाव की थोड़ी सख़्त ज़रूर है पर खाना लाजवाब बनाती है. कुम्हड़ा-करेला तक इस विधि से बनाती है कि उंगलियां चाटता रह जाता है आदमी. तीन बहुएं हैं उनकी. तीनों बारी-बारी से खाना बनाती हैं. पिछले कुछ दिनों से संझली बहू खाना बना रही थी. ये संझली खाना क्या बनाती है बेगार टालती है ससुरी. खाना एकदम बोगस... गाय गोर

अमरीक सिंह 'दीप'

५ अगस्त १९४२, कानपुर (उ. प्र.)

लेखन : *कहां जायेगा सिद्धार्थ, कालाहांडी, चांदनी हूं मैं, सिर फोड़ती चिड़िया, काली बिल्ली, एक कोई और, वनपाखी (सात कहानी संग्रह प्रकाशित), आज़ादी की फ़सल (लघुकथा संग्रह), कड़े पानी का शहर, झाड़े रहो कलक्टर गंज (शहर-आख्यान).*

रेत में डूबी नदिया (उपन्यास), नो मैन्स लैंड, बर्फ़ का दानव, शाने पंजाब, ऋतुनागर (कहानी संग्रह) पंजाबी से हिंदी में अनूदित.

विशेष : *'बेस्ट वर्कर' कहानी पर रांची दूरदर्शन द्वारा टेलीफ़िल्म निर्मित, 'तीर्थाटन' कहानी फ़िल्म निर्माण हेतु अनुबंधित, बीस वर्ष से सतत हर वर्ष होनेवाले राष्ट्रस्तर के कथाकार सम्मेलन 'संगमन' के संस्थापक सदस्य.*

आधा दर्जन कहानियां पंजाबी भाषा में और आधा दर्जन कहानियां उर्दू में अनूदित व प्रकाशित.

पुरस्कार : *सर्व भाषा कथा प्रतियोगिता में 'बेस्ट वर्कर' कहानी प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत.*

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन.*

के आगे डालने के क़ाबिल भी नहीं. कौर मुंह में डालते ही मुंह जकड़ के रह जाता है. बमुश्किल हलक से नीचे ढकेलना पड़ता है. महारानी जी को सिनेमा, सहेलियों और सिंगार-पटार से फ़ुर्सत मिले तब न.... ये नरेश भी मौग है सार. मेहरिया के नाड़े से बंधा रहता है हरदम. बुजरी का क्या बख़त आ गया है... हमारे ज़माने में तो दिन में पंडिताइन को देख लेना गूलर का फूल देख लेने जइसन था. पर आजकल.... मर्द-मेहरारु दिन में ही सबके सामने कमरे का किवाड़ बंद कर रासलीला शुरू कर देते हैं. ई टी. भी. ने ससुर सारी नसल बिगाड़ कर रख दी है आदमी की....

बड़की बहू के हाथ का बना स्वादिष्ट भोजन उदरस्थ कर पंडित जटाशंकर ने लोटा भर पानी पीकर लंबी डकार ली... 'जय हो सब दुःख हरनी, सबका पेट भरनी मां अन्नपूर्णा की. मां यूं ही अन्नजल देती रह हरदम.' उदर ज्वाला शामित होते ही आक्रोश के अंगारों पर भी राख़ ज़मने लगी. बड़की बहू को अशीषते हुए वे फ़र्श पर बिछे बोरे पर मुड़वाड़ी पर पालीथिन बैग में जूट भर कर बनाया तकिया रखकर लेट गये.

मस्तिष्क में कुछ देर तक विचारों की उठापटक उन्हें बेचैन बनाये रही, पर भोजन का नशा सारे नशों से जबरजंग होता है. इस नशे के सामने उनके विचारों की एक नहीं चली. भोजन के नशे में उन्हें नींद में डुबो कर ही दम लिया.

क़रीब आधे घंटे बाद प्रमोशन की बधाइयां स्वीकार करते हुए अशर्फी लाल जब अपनी मशीन पर वापिस लौटा और मशीन की बग़ल में बने पैनल बॉक्स पर रखा अपना टिफ़िन कैरियर उठा कर मशीन के बग़ल में रखी बेंच पर खाना खाने बैठा तो खाने का डिब्बा खोलते ही वह चिंहुक उठा....'अरे बाप रे! यह तो पंडित जी का खाने का डिब्बा है.'

उसने तत्काल टिफ़िन बॉक्स को बंद किया और पंडित जी के पहुड़ने के स्थान की ओर लपका.

पंडित जी नींद के नशे में गहरे तक डूबे हुए हैं. उनके होंठों के बायें कोर से लार रेंग कर उनकी खिचड़ी दाढ़ी के खूटों को सींच रही है. नींद में डूबा उनका चेहरा बेहद निरीह और दयनीय लग रहा है.

अशर्फी लाल कुछ देर तक उनके नींद में डूबे चेहरे को खड़ा देखता रहा. फिर उनके सिर के क़रीब जाकर उसने हौले से उन्हें पुकारा — 'पंडित जी...'

नींद के स्वप्न रथ पर सवार पंडित जी शायद किसी दूसरे ही लोक में विचर रहे हैं. अशर्फी लाल की आवाज़ उन तक पहुंची ही नहीं. हार के अशर्फी को उन्हें झिंझोड़ कर जगाना पड़ा.

वे अकबका कर उठ बैठे — 'काऽऽ का है?.... कौन....कौन है बे ससुर?'

'पंडित जी, मैं... मैं हूं अशर्फी लाल. भूल से आप पैनल बॉक्स पर रखा मेरा खाने का डिब्बा उठा लाये हैं... ये रहा आपका टिफ़िन.'

'तुम्हारा टिफ़िन!... मेरा टिफ़िन...!!' कच्ची नींद से जग जाने के कारण कुछ देर तक तो जटा शंकर कुछ बूझ ही नहीं पाये. उनकी चेतना पर तारी नींद की खुमारी की धुंध धीरे-धीरे जब छटी तब कहीं जाकर उन्हें वस्तुस्थिति समझ में आयी. उनका दिल धक्क से रह गया. हे राम, यह क्या हो गया? यह क्या कर डाला मैंने? इसी के साथ उन्हें यूं लगा, उनकी शिखा की गांठ खुल गयी है और वह बारूदी पलीते में बदल गयी है. किसी ने इस पलीते में आग लगा दी है. अब किसी भी पल उनकी खोपड़ी बम की तरह फट जायेगी.

बमुश्किल उनके होंठ हरकत में आये — 'तुम्हारा टिफ़िन.... वह तो...'

दरअसल छः माह पूर्व उनकी सरकारी फ़ैक्ट्री ने अपनी उम्र के पचास वर्ष पूरे किये थे. गोल्डन जुबली के उत्सव के उपलक्ष में समस्त कर्मचारियों को उपहार स्वरूप दो डिब्बे वाले स्टैनलेस स्टील के टिफ़िन कैरियर वितरित किये गये थे. डिज़ाइन एवं आकार-प्रकार समान होने के कारण इधर ख़ूब गफ़लत हो रही थी. अपने खाने का डिब्बा समझकर जैसे ही कोई कर्मचारी खाना खाने बैठता, खाने के रंग रूप और स्वाद से ही उसे पता चलता — अरे! यह तो बटुक भय्या का टिफ़िन है. कर्मचारी इसे 'दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम' मानकर हंस कर स्वीकार कर लेता.... आख़िर यह अनुभाग उनका दूसरा घर ही तो है. परिवार वाले घर में तो आदमी शाम को ड्यूटी से लौटने के बाद कुछ देर बीवी-बच्चों के साथ बिताता है और फिर खाना खाकर सो जाता है. सुबह उठ कर फिर ड्यूटी चला आता है. यहां इस घर में दिनभर अनुभाग के सहकर्मियों के साथ ही रहना होता है. सुख-दुख, हारी-बीमारी या घटना-दुर्घटना हो यहां सब संग-साथ रहते हैं.

टिफ़िन बदल जाने वाली इस समस्या का समाधान कुछ कर्मचारियों ने अपने ढंग से निकाल लिया. कुछ रंग-बिरंगे झोले में टिफ़िन कैरियर रख कर लाने लगे. कुछ ने बर्तनवाली दुकानों पर जाकर अपना नाम उत्कीर्ण करवा लिया. पर कुछ लोग अब भी बिना नाम और झोले वाला टिफ़िन कैरियर ही ला रहे हैं. इनमें से वे लोग अधिक हैं जो साइकिल के डंडे में लगे क्लैंप में खाने वाला डिब्बा टांग कर लाते हैं. जटाशंकर भी इसी श्रेणी के व्यक्ति हैं.

कुछ देर तक जटाशंकर अवसन्नावस्था में बुत बने बैठे रहे. फिर वे एकाएक उठे और लपक कर उन्होंने अशर्फी लाल के गोड़ चाप लिये — 'अशर्फी, मोर भाई, मोर बचवा... गफ़लत में हम तोहर खाना खा लिये हैं. मोर लाज अब तोहरे हाथ है रे बचवा. यह बात किसी से कहना नहीं... नाहीं तो हम काहूं ठौर के न रहेंगे. इस जग हंसाई से हम जी नहीं पायेंगे. अब हमार जीना-मरना तोहरे हाथ है.'

अशर्फी से जुबान सी लेने का वचन ले लेने के पश्चात ही जटाशंकर ने उसके पांव छोड़े. वचन ले लेने के बाद भी उनके हृदय की व्याकुलता कम नहीं हुई. फिर से वे बिस्तर पर लेट तो गये पर उन्हें यूं लग रहा है जैसे वे बिस्तर पर नहीं अंगारों पर लेटे हुए हैं. उनकी आत्मा उन्हें धिक्कार रही है... यह तूने क्या किया? पहले एक दलित अशर्फी लाल बाल्मीकि, एक मेहतर के घर का बना खाना खा लिया, फिर उस अधम शूद्र के पांव पकड़ लिये... थू है तुझ पर, तेरे ब्राह्मण होने के नाम पर. तू यह कैसे भूल गया कि तू बीस बिस्वे का उच्च कुल कान्यकुब्ज ब्राह्मण है? हर जाति वाले तेरे पांव पूजते हैं, आदर सम्मान से तुझे सिर आंखों पर बिठाते हैं. अपने से कम बिस्वे वाले ब्राह्मण से आज तक तुमने अपनी किसी संतान का रिश्ता नहीं किया. उच्च कुल और गोत्र का होकर यह कैसा निकृष्ट काम कर डाला तूने ? परलोक में बैठे पुरखे क्या सोच रहे होंगे तेरे बारे में? कितना अधम, नीच और पतित निकला हमारा यह वंशज... जिसने पेट की ख़ातिर अपने वंश और कुल गौरव को गंदे गटर में डाल दिया. आक् थू... आक् थू... कुल कंलकी पातकी है रे तू...

पंडित जटाशंकर बिलबिला कर बिस्तर से उठ बैठे और उठ कर मंदिर में स्थापित भगवान की मूर्तियों के सम्मुख सिर नवा कर बैठ गये. वे आंखें मूंदे सिर झुकाये तब तक वहां बैठे आत्मप्रलाप करते रहे जब तक लंच ख़त्म होने का हूटर नहीं बज गया और चार्ज़मैन जाटव ने अपनी कुर्सी से उठ कर सबको जगाना नहीं शुरू कर दिया.

वातानुकूलित हाल उर्फ़ ए. सी. रूम यह मुख्य अनुभाग की पश्चिमी दीवार से जुड़ा हुआ कक्ष मुख्य अनुभाग का ही अनुषांग है. इस पूरे हाल में पच्चीस-छब्बीस कर्मचारी काम करते हैं. लंच में गर्मी से राहत पाने के लिए मुख्य अनुभाग के भी कई कर्मचारी अपने टाट-बोरों वाले बिस्तर लेकर यहां आ जाते हैं और जहां समायी हो वहां बिस्तर बिछा कर सो जाते हैं. कुछ लोग फड़ ज़मा कर ताश का खेल ट्वन्टी नाइन भी खेलते हैं, कुछ लोग दर्शक के बतौर खेल देखने का लुत्फ़ भी लेते हैं. ऐसे में दो लोगों के बीच हुई बात और कौल करार पोशीदा रह सकता है भला!

मुख्य अनुभाग में शिकारी लाल टी वेंडर जैसे ही दोपहर तीन बजे के लगभग अपनी साइकिल के हैंडिल के एक ओर चाय का थर्मस और दूसरी ओर ब्रेड पकौड़े से भरा कनस्तर लटकाये प्रकट हुआ अनुभाग की सारी मशीनों के लाल बटन धीरे-धीरे बंद हो गये. मशीनों का शोर बंद होते ही मशीनों की हर पंक्ति के प्रारंभ में लगे बड़े-बड़े हल्लवी एग्जास्ट फ़ैन का शोर मुखर हो उठा.

चाय वाले के चौगिर्द लोग जुड़ने लगे. चाय के प्यालों से उठती गरमागरम भाप चेमगोइयों में बदलने लगी. और देखते ही देखते इन चेमगोइयों के केंद्र में पंडित जटाशंकर आ गये.

'भाइयों, कल अशर्फी लाल के लौंडे का जन्मदिन रहा.

पंडित जी ने सोचा होगा, टिफ़िन भर कर तर माल लाया होगा अशर्फी... आंख मूंद चांप गये पंडित जी.' अपने रबर के एप्रन की जेब से पैसे निकाल चाय और ब्रेड पकोड़े के पैसे चुकता करते हुए कहा पुकई पाल ने.

'अबे झांप तड़ी के, ऐसा कैसे हो सकता है?.... हर वर्कर के घर के खाने का टेस्ट जुदा-जुदा होता है और रोटियों का साइज़ भी अलग.' यह लिस्टर ड्राइवर खेदू लाल है. छः माह पहले ही लिस्टर ड्राइवर का टेस्ट पास कर लेबर से लिस्टर ड्राइवर बना है. इसलिए लिस्टर पर माल लाद कर सड़क पर जब चलता है तो ख़ुद को किसी शहनशाह से कम नहीं समझता.

'पर श्रीमान, खीर का भी भला कोई साइज़ होता है?' क्रेन ड्राइवर लफोदी राम भला कहां ऐसे मौक़े पर चूकने वाला है. हर वर्ष फ़ैक्ट्री-इस्टेट की रामलीला में नारद की भूमिका अभिनीत करते-करते इसका चरित्र ही नारदवाला हो गया है. हर किसी के फटे में पांव अड़ाना, हर बात में लुत्ती लगाना, इसी में उसे सुख मिलता है, आनंद आता है.

'अरे खीर नहीं भाईजान, कल अशर्फिया की बीवी ने कलिया पकाया होगा... बिल्ली की नाईं आंख मूंद चांप गये पंडित जी.' चोरी छुपे हर किसी की मशीन और ठीये पर जाकर पान और पान मसाले का पाउच बेचने वाले बशीर मियां ने एक और पुड़िया छोड़ दी.

देर तक अपनी खिंचाई सहन नहीं कर पाये पंडित जटाशंकर. बिलबिला कर अपने खोल से बाहर निकल आये — 'वही मसल है, तेली का तेल जले, मशालची की छाती फटे. जिसका खाना खाया वह चुप है, तुम लोगों की बिना मतलब फटी जा रही है... अरे जाहिलों, ग़लती से हमने अशर्फी लाल भय्या के घर का अपनी भौजी के हाथ का बना खाना खा ही लिया तो कौन सा आसमान टूट गया? जब शबरी के जूठे बेर भगवान राम जी खा सकते हैं तो क्या हम भगवान से ऊपर हैं?'

सच तो यह है कि भोजन की इस भयंकर भूल वाली घटना ने पंडित जटाशंकर के अस्तित्व की चूलें हिला कर रख दी हैं. वे अपने आप पर इतने लज्जित हैं कि अपने आप में ही कहीं छुप जाना चाहते हैं. वे सोच रहे हैं, उनसे यह भूल हुई कैसे? हमेशा से वे अपना टिफ़िन पैनल बॉक्स पर अपनी मशीन वाली साइट पर रखते हैं. उसके बग़ल में ढक कर रखा पानी भरा लोटा. फिर आज टिफ़िन उठाते वक़्त उनसे भूल कैसे हो गयी?... एक ही कारण समझ में आया उन्हें, नोटिस बोर्ड पर अशर्फी लाल के प्रमोशन का फ़ैक्ट्री ऑर्डर देख कर उनका बौखला जाना. शास्त्रों में सच ही लिखा है, क्रोध आदमी का सबसे बड़ा शत्रु है. क्रोध से बुद्धि का विनाश होता है. ... उनका तो चाय वाले के पास आने का मन कत्तई नहीं था. यह तो अशर्फी लाल इसरार कर ले आया. वे भी ताज़ा-ताज़ा हुए कौल-करार के लिहाज़ से बंधे चले आये. ऐसा नहीं है कि शबरी के जूठे बेर वाली उक्ति उनके ब्राह्मण दर्पित संस्कारी हृदय को मान्य है. इसे तो उन्होंने यहां वक़्ती तौर पर ढाल की तरह इस्तेमाल किया है. सच तो यह है कि लंच समाप्त होते ही वे दौड़े हुए नल पर गये थे और हलक में चारों उंगलियां डाल कर उलटी करने की जी तोड़ कोशिश की थी. इस प्रयास में उनकी आंखों से आंसू भी निकल आये थे. पर घंटे भर पहले उदर में उतर चुका भोजन आंतों के न जाने किस गार में जा उतरा था कि उलटी के रूप में उसने बाहर आने से साफ़ इंकार कर दिया था.

बात अब खुल गयी है. अशर्फी लाल पर अब किसी कौल–करार की बंदिश नहीं रह गयी है. पंडित जी की बात सुन उसने अपने सिले होंठ खोल दिये — 'पंडित जी, बाक़ी सब तो ठीक है पर ये भय्या-भौजी वाला मामला थोड़ा टेढ़ा है. अब आप हमसे रिश्तेदारी गांठ कर हमारे आरक्षण के कोटे में सेंधमारी करना चाहते हैं.'

पंडित जटाशंकर के समूचे चोले में आग लग गयी. ... छिपकली की जात और शहतीरों से आलिंगन. सरकार के सिर चढ़ कर आग मूतने लगे हैं ये लोग. पिछला ज़माना होता तो इस अशर्फिया से रिश्तेदारी तो क्या पास भी न फटकने देता कुत्ते की तरह दुरदुरा कर खदेड़ देता. हमारे पुरखे ही सही थे, जो इनके गले में हांडी और चूतड़ पीछे झाड़ू बंधवा कर गुज़रने देते थे रास्तों से इन्हें. ... मन ही मन ढेर सारी गंदी गालियां घटाओं की तरह भीतर घुमड़ीं पर लबों पर आकर बरसी इसलिए नहीं कि अगर हरिजन ऐक्ट लग गया तो नौकरी तो हाथ से जायेगी ही थाना-पुलिस, कोर्ट कचहरी भुगतते-भुगतते घर के बर्तन-भांडे तक बिक जायेंगे.

उन्हें उदास देख कर उनके जिले-जवार के सोबरन सिंह ने उन्हें समझाने की चेष्टा की— 'आन का सेनूर देख आपन लिलार फोड़बा का?'

टी टाइम समाप्त होने के बाद जटाशंकर अनुभाग में रुके नहीं. न ही अपनी मशीन पर ही गये. अपने सेक्शन के प्रवेश द्वार की तरफ़ आनेवाली सड़क के दूसरी ओर बने एक और अनुभाग के दूसरी ओर स्थापित झील की ओर निकल गये. इस झील का संबंध सीधा हरिद्वार से आकर इस शहर से गुज़रने वाली गंगा कैनाल से है. स्टीम अनुभाग, ढलाई

घर और रोलिंग मिल जैसे कई कार्यवाले सेक्शनों की जल आपूर्ति इसी झील से होती है. झील के एक कोने पर पंप हाउस स्थापित है. जो झील का पानी इन अनुभागों तक पहुंचाता है. इसी झील के किनारे झील से जुड़े अनुभाग के कुछ कर्मचारियों ने पांच-छ: लकड़ी के खोखेनुमा 'हट' बना रखे हैं. ये हट दूसरे शहरों से आयी नयी मशीनों के खोले गये पैकिंग बॉक्स के तख़्तों से बनाये गये हैं. दोपहर खाना खाने व सोने के लिए. काम के वक़्त भी गंजेड़ी इनमें छुप गांजे की तलब मिटाते हैं. झील के चारों ओर घने छायादार वृक्ष हैं, जिनकी हरियाली आंखों को सुख एवं सुकून देती है और झील के जल को स्पर्श कर बहने वाली हवा दिल-दिमाग़ और देह को ठंडक पहुंचाती है.

पंडित जटाशंकर अपने संतप्त हृदय और सुलगते हुए मस्तिष्क के साथ एक खाली पड़े हट में आकर लेट गये. लेट तो गये पर चैन किसी करवट नहीं आ रहा. रह-रह कर बस एक ही बात बर्र की तरह दिमाग़ में चक्कर काटे जा रही है... इस निखद्ध चाकरी के चलते आज वे जिस कुंभी पाक में जा गिरे हैं कैसे निकल पायेंगे वे इससे? कैसे हो पायेगा उनकी इस भूल का परिमार्जन?

झील के जल का स्पर्श कर हट के अंदर तक चला आया ठंडी हवा का झोंका उनके चेहरे को सहला गया. इस झील ने गांव की याद ताज़ा कर दी. ... गांव में जब तक रहे पूरा गांव 'पां लागी पंडित जी' कहकर क़दमों में बिछा रहता था. पर पाय लागी से पेट तो नहीं भरता. संयुक्त परिवार में ताऊजाद और चचाजाद भाइयों के साथ-साथ जब अपने भी भाइयों की तादाद बढ़ी और खेती व जजमानी की ज़मीन इतनी छोटी पड़ गयी कि ढंग से रोटी मिलना दुश्वार हो गया तो गांव के सिवान को शीश नवाकर वे शहर चले आये थे. तीन वर्ष तक एक प्राइवेट कारख़ाने में लेबर की नौकरी की. बाद में बड़ी मुश्किल से इंपलॉयमेंट एक्सचेंज से कार्ड निकलवा कर इस सख़्त नौकरी तक पहुंचे. लेबर पदनाम होने के कारण चलती हुई बड़ी-बड़ी हैवी मशीनों की अंगार–सी जलती आधा इंच चौड़ी लोहे की बावरी को सरिये से मशीन से खींचने का काम मिला. शुरू में अनाड़ीपन में कई बार हाथ पांव जला बैठे. एक बार तो मशीन से निकले इस अग्नि अजगर ने उन्हें अपनी कुंडली में ही कस लिया होता. यह तो कहो बग़ल वाली मशीन के पीछे बावरी खींच रहे साथी लेबर ने देख लिया और मशीनमैन से कह कर तत्काल मशीन बंद करवायी, नहीं तो हफ़्ते दस दिन के लिए अस्पताल पहुंच गये होते. ... पांच वर्ष बाद मशीनमैन की ट्रेनिंग का फ़ैक्ट्री ऑर्डर निकला. फ़ौरन भर दिया. छ: महीने की ट्रेनिंग के बाद मशीन के पीछे से मशीन के आगे मशीन मैन बन कर खड़े हुए तब कहीं जाकर सुख की सांस आयी.

शाम को ड्यूटी समाप्त होने का हूटर जब हो गया तो हूटर होने के दस मिनिट बाद, पूरा अनुभाग जब कर्मचारियों से खाली हो गया तब वे टिकिट बोर्ड से अपना टिकिट उतार अनुभाग से बाहर निकले. पता नहीं क्यों एक अनजाना सा भय उनके अंदर भर गया है. उन्हें लगने लगा है कि उनसे अनजाने ही कोई भीषण पाप हो गया है. वे किसी को मुंह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहे. इसी के साथ उन्हें अपने अंदर कुछ बुझता-बुझता महसूस हो रहा है. ख़ुद को लाख समझाने की कोशिश के बावजूद यह बुझापन ख़त्म नहीं हो रहा, यह पाप बोध मिट नहीं रहा, ख़ुद से डर लगना कम नहीं हो रहा. क्या हो रहा है उन्हें? बूझ नहीं पा रहे.

घर पहुंच कर उन्होंने साइकिल पिछले वाले आंगन में खड़ी की और घर में किसी को कुछ बताये बिना शिवमंदिर की ओर निकल आये.

चार खंभों पर पड़ी लिंटर वाली छत और छत पर ईंट-सीमेंट से निर्मित कलश वाले गुंबद वाला चारों ओर से खुला मंदिर है यह. वे कुछ देर तक मंदिर के चबूतरे पर बैठे रहे लेकिन मंदिर में जल रहे बल्ब की पीली रोशनी जब उन्हें अपनी आंखों में चुभती महसूस हुई तो मंदिर के बग़ल में खड़े पीपल के वृक्ष के तने के गिर्द बने सीमेंटेड गोल चबूतरे पर जाकर लेट गये. अशांत, उद्विग्न, आकुल चित्त लिये. आज अनुभाग में दोपहर टी-टाइम में हुए अपमान की आग जंगल की आग की तरह उनके पूरे हृदय प्रांतर में फैल गयी है. ... आग लगे ऐसी आज़ादी को, जिसमें शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पी रहे हैं. ग़जब तो यह है कि इस घाट पर बकरी पहले पानी पी रही है और शेर बाद में. कैसा उल्टी निज़ाम है यह? इससे उत्तम तो अंग्रेज़ों का राज था. उनके राज में ऐसी धांधली तो नहीं थी.

लेटे-लेटे जटाशंकर को एक बार फिर उबकाई महसूस हुई. वे चबूतरे से उठकर मंदिर से कुछ दूर बनी नाली पर जाकर बैठ गये. पेट से उबक कर कुछ कंठनली तक तो आया पर गले से बाहर नहीं निकला. वे बड़ी देर तक नाली पर उकड़ू बैठे रहे पर हमेशा की तरह व्यर्थ ही रहा यह बैठना. दरअसल उबकाई का यह सिलसिला दोपहर बाद से ही शुरू हो गया था. वे झील वाले हट से निकल कर कई बार झील के किनारे उबकाई करने बैठे थे. पर हर बार होता यही था कि पेट से कुछ उबक कर कंठनली तक आता था लेकिन लाख यत्नों के पश्चात

भी बाहर निकल कर उलटी में नहीं बदलता था. बार-बार की इस मशक्कत से उनके उदर में ऐंठन-सी होने लगी थी, पेट दुखने लगा था. ऐंठन और दर्द से निजात पाने के लिए वे संडास में गये थे. लेकिन वहां भी वही हाल. पीछे से हवा तो खारिज़ होती थी पर विष्ठा बन चुका अशर्फी लाल के घर का भोजन आंतों के भीतर से टस से मस नहीं होता था. लगता था जैसे आंतों से ही चिपक गया हो.

नाली से उठकर पंडित जटाशंकर फिर पीपल वाले चबूतरे पर आ बैठे और टकटकी लगा कर शिवमंदिर के मध्य स्थापित शिवलिंग की ओर देखने लगे. शिवलिंग से क़रीब एक-डेढ़ फुट की ऊंचाई पर लोहे का छीका लटका हुआ है. छीके में जल से भरा मिट्टी का छोटा मटका रखा हुआ है. जिसकी पेंदी में एक छोटा–सा छेद कर उसमें कपड़े की बत्ती डाली गयी है. जिससे बूंद-बूंद जल शिवलिंग पर टपक रहा है. जटाशंकर को लगा, यह छोटा-सा मटका उनका कलेजा है. जिससे बूंद-बूंद रक्त शिवलिंग पर टपक रहा है, लेकिन शिवलिंग वैसे ही स्थिर है. न वह तीसरा नेत्र खोल रहा है, न मंदिर में गड़ा त्रिशूल उठाकर तांडव नृत्य कर रहा है.

खीझ उठे वे और इसी खीझ में उठ कर बाज़ार की ओर चल दिये. बाज़ार पहुंच कर भाटिया मेडीकल स्टोर से उन्होंने एक मिल्क आफ़ मेगनेशिया की सौ मिलीलीटर की शीशी ख़रीदी और घर वापिस लौट आये.

जब उनका बी. ग्रेड मशीन मैन में प्रमोशन हुआ था तो प्रमोशन के कुछ माह बाद ही फ़ैक्ट्री की आवासीय कॉलोनी में यह डबल रूम वाला क्वार्टर एलॉट हुआ था. क्वार्टर के दो कमरों के पीछे रसोई घर, लैट्रिन-बाथरूम और ख़ूब खुला आंगन है. आंगन के एक कोने में अस्थायी दीवारें उठा कर उन पर एस्बेस्टस शीट की छत डाल एक तीसरा छोटा कमरा बना लिया गया है. तीनों बेटों की सपरिवार समाई उनमें हो जाती है. जटाशंकर पहले बाहर वाले बरामदे में सोते थे, लेकिन एक बार शहर में इतनी भीषण सर्दी पड़ी कि नलों का पानी तक जम गया. रात को रजाई के साथ कंबल ओढ़ने पर भी सर्दी उनकी हड्डियों में उतर गयी. तीन दिन तक ज्वरग्रस्त होकर बिस्तरशायी रहे. ज्वरमुक्त होने के बाद पहला इरादा क्वार्टर के सामने की खाली ज़मीन पर अपने लिए एक मड़य्या डाल लेने का किया.

बाज़ार से लौट कर अपनी इस मड़य्या में आकर जटाशंकर ने पहला काम यह किया कि गिलासभर पानी में मिल्क आफ मेगनेशिया के दो चम्मच घोल कर पी गये. पीने के बाद वे तख़्त पर बिछे बिस्तर पर लेट दवा के असर की प्रतीक्षा करने लगे.

अवैध रूप से निर्मित मड़य्या में अस्थायी रूप से बिजली का तार खींच बल्ब तो लटका दिया गया है पर पंखे की सुविधा संभव नहीं है. पंखे के अभाव में तीखी उमस और गर्मी भरी हुई है मड़य्या में. लेकिन दिल के दाह के सम्मुख यह गर्मी ओछी पड़ रही है. दोहरी गर्मी को झेलते हुए बेचैनी से करवटें बदलते हुए वे चुपचाप लेटे रहे.

रात के लगभग साढ़े आठ बजे उनका पोता गुड्डू उन्हें खाना खाने के लिए बुलाने आया. जुलाब की ख़ुराक लिये होने के कारण उसे मना कर दिया — 'जी कछु नीक नाहीं बा... खाये का मन नाहीं है.'

पोते के लौट जाने के बाद न कोई उनके मन का हाल पूछने आया ना ही खाने के लिए पूछने. उम्र के इस मुकाम पर आकर उन्हें यह इलहाम हो चुका है कि सारे संबंध स्वार्थ के हैं. उनके तीनों बेटे प्राइवेट नौकरियों में हैं. उनके वेतन से उनके बीवी-बच्चों का ही ख़र्च पूरा नहीं पड़ता. घर के राशन-पानी, घी-दूध, मकान व बिजली के भाड़े और घर की अन्य छोटी-बड़ी ज़रूरतों का सारा भार उन्हें ही वहन करना पड़ता है. फिर भी बेटे-बहुओं की गिद्ध दृष्टि उनकी जेब पर लगी रहती है. कभी-कभी तो जेब में पैसे न रहने के कारण चुनही तंबाकू तक के लिए तरस जाते हैं. पांच बरस पहले तक स्थिति ऐसी नहीं थी. तब उनकी घरेतिन सावित्री जीवित थी. घर का सारा ख़र्च उसके हाथ में था. घर की ज़रूरतों की आपूर्ति के साथ-साथ उनकी इच्छाओं की आपूर्ति का भी वह पूरा ख़्याल रखती थी. उसके परलोक सिधारते ही अनाथ होकर रह गये हैं वे. किसी को उनके खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और हारी-बीमारी की कोई फ़िक्र ही नहीं. कोल्हू के बैल हों वे जैसे. बाप होने के नाते ज़िंदगी भर कमा कर खिलाना उन्हीं का कर्त्तव्य है. बाक़ी किसी और का कोई कर्तव्य नहीं है. बेटे तो यही चाहते हैं कि नौकरी रहते वे चल बसें और उनमें से किसी एक को मृतक के आश्रित के रूप में सरकारी नौकरी हासिल हो जाये. उनकी नौकरी के अब छः-सात साल ही बचे हैं. अपने बुढ़ापे को लेकर इधर वे बुरी तरह से चिंतित रहने लगे हैं. अभी कमा–धमा रहे हैं तो दो जून पकी-पकायी मिल रही है. सेवानिवृत्ति के बाद क्या होगा?

सख़्त उलझन है. रात नीम के गाछ से उतर कर उनकी मड़य्या की खिड़की के निकट आ खड़ी हुई है. जुलाई माह के बारिश वाले दिन हैं. पुनर्वसु नक्षत्र चल रहा है. इस बार अभी तक बारिश की एक बूंद तक कहीं नहीं गिरी. दिन में सूरज आग उगलता है. उसके दाह से रात में भी धरती की

लघुकथा

सज़ा

✍ श्रीमती बकुला पारेख

''विदेश में बच्चों को शारीरिक सज़ा नहीं दे सकते हैं, चाहे घर ही क्यों न हो.'' श्रुति ने अपनी सहेली प्रज्ञा से कहा. वह विदेश में दो साल रहकर लौटी थी.

''होगा भई वहां का क़ानून, यह तो हमारा देश है, बच्चे धमा चौकड़ी मचाते हैं तो एक-दो लगाना भी पड़ता है.'' प्रज्ञा बोली.

तभी अंदर से ''छम्म'' की आवाज़ आयी. ''मम्मी, मुन्ना ने गुलदान तोड़ दिया.'' रिया ज़ोर से चिल्लायी. ''अभी दीपावली पर ही ख़रीदा था...'' बड़बड़ाते हुए प्रज्ञा अंदर गयी. मुन्ना को ज़ोर से दो झापड़ जड़ दिये. मुन्ना रोते हुए बाहर चला गया.

शाम को खाना बनाते समय मनपसंद सीरियल का समय होते ही वह झट से दौड़ी. और हड़बड़ी में हाथ से इंपोर्टेड क्रॉकरी का बाउल गिर पड़ा. ठिठक कर वह खड़ी हुई, सहेली की बात याद आयी. स्वयं को थप्पड़ लगाने के लिए हाथ उठाया, गाल पर लिया, लेकिन उतनी ज़ोर से नहीं लगा पायी जितनी ज़ोर से मुन्ना को लगाया था.

अब उसने भी स्वयं के अनुभव द्वारा विदेशी क़ानून को अपना लिया.

१८, जूनियर एम. आई. जी.,
जय बजरंग नगर, इंदौर (म. प्र.)
मो. : ९८२६९५२६०२

छाती धधकती रहती है. रात में यह धधक तीखी उमस में बदल जाती है, जो किसी करवट चैन नहीं लेने देती. दिनभर वातानुकूलित वातावरण में रहने के कारण जटाशंकर के लिए गर्मियों में मड़य्या में रात काटनी मुश्किल हो जाती है. लड़के-बच्चों के कारण सब सहना पड़ता है.

बेचैनी और उलझन जब हद से ज़्यादा बढ़ गयी तो जटाशंकर ने उठकर मड़य्या के आले में रखी घड़ी देखी. रात के साढ़े नौ बज गये. जुलाब की ख़ुराक को लिये दो घंटे हो गये फिर भी पेट में कोई हलचल नहीं है. मल बनकर उदर में एकत्र अशर्फी लाल के घर का भोजन अंगद का पांव हो गया है. टस से मस नहीं हो रहा.

आजकल हर वस्तु नकली मिलने लगी है. दवाइयां ही नहीं नकली दूध, घी, मसाले, दालें यहां तक की फूल-पत्तियां तक आने लगी हैं. और तो और नकली औरत तक बाज़ार में उतार दी है विदेशी कंपनियों ने. हवा भरो, काम चलाओ. हवा निकाल कर धो-पोंछ कर फिर से तहा कर रख दो. विज्ञान जो न करे सो कम....

खीझ कर जटाशंकर ने मिल्क ऑफ़ मेगनेशिया की एक और ख़ुराक पानी भरे गिलास में डाल कर पी ली.

घंटे भर बाद उनकी यह खीझ इतनी बढ़ गयी कि ग़ुस्से में आकर उन्होंने बिना पानी के पूरी शीशी पी डाली.

रात के ग्यारह बजे पंडित जटाशंकर के पेट में ज़बरदस्त ढंग से घटाएं घुमड़ने लगीं. घर के सारे दरवाज़े बंद हो चुके हैं. बमुश्किल मड़य्या से निकल कर वे क्वार्टर के दरवाज़े तक आये और दस्तक दी. लेकिन कूलर के शोर में उनकी दस्तक दम तोड़ गयी. पेट पर दवाब इतना अधिक है कि प्रतीक्षा करना संभव नहीं है. वे पानी भरा लोटा लेकर एच-टाइप के क्वार्टरों के सामूहिक शौचालय की ओर तेज़ क़दमों से लपके.

एक बार. दो बार. पांचवी बार में वे पस्त हो गये. उनके उदर से अशर्फी लाल के घर का भोजन विष्ठा के रूप में शौचालय के हवाले हो चुका है. उनके संस्कारी हृदय और संतप्त आत्मा को शांति मिल चुकी है. लेकिन अब उनके सन्मुख एक नयी मुसीबत आ खड़ी हुई है. ... पेट तो साफ़ हो गया है पर अब पानी से भी पतले दस्त शुरू हो गये हैं.

छठवीं बार उनके शरीर में सामूहिक शौचालय तक जाने की हिम्मत नहीं बची. वे अपने क्वार्टर के पिछवाड़े बनी नाली पर जा बैठे. फिर यह सिलसिला हर पंद्रह मिनिट बाद अनवरत हो गया.

सुबह तक उनका शरीर पस्त पड़ गया और वे उठने के भी क़ाबिल नहीं रहे.

प्लैट नं. १०१, गोल्डी अपार्टमेंट,
११९/३७३-बी, दर्शन पुरवा,
कानपुर-२०८०१२.
मो.: ८७६५३७९७१८

डॉ. दिनेश त्रिपाठी 'शम्स' की ग़ज़लें

नज़र खुद से मिलाने में पसीने छूट जाते हैं,
खुदी को आजमाने में पसीने छूट जाते हैं.

हमारी मुस्कराहट से सभी को रश्क होता है,
मगर यूं मुस्कुराने में पसीने छूट जाते हैं.

मुहब्बत आपने कर ली ये अच्छी बात है लेकिन,
मुहब्बत को निभाने में पसीने छूट जाते हैं.

हुनर को बेच लेने का हुनर आता नहीं सबको,
मुनासिब दाम पाने में पसीने छूट जाते हैं.

फ़सल नफ़रत की पैदा कर रहे हैं अब सियासतदां,
अमन के गुल उगाने में पसीने छूट जाते हैं.

पुरानी बात है जब आंच सच से दूर रहती थी,
अभी सच को बचाने में पसीने छूट जाते हैं.

ये जो उम्मीद की लौ है इसे बुझने न दें यारो,
अंधेरे को मिटाने में पसीने छूट जाते हैं.

x x x

दिल वहीं छोड़कर चले आये,
रूठकर हां मगर चले आये.

हमको बाज़ार मुंह चिढ़ाता था,
जेब खाली थी, घर चले आये.

लोग झंडों के साथ आये हैं,
और हम ले के सर चले आये.

ख़्वाब आंखों में आये मुट्ठी भर,
साथ में कितने डर चले आये.

अपनी मंज़िल तो ये नहीं लगती,
हम ये आख़िर किधर चले आये.

हम बुलाते रहे उन्हें लेकिन,
कुछ अगर कुछ मगर चले आये.

ज़िंदगी की कठिन परीक्षा में,
'शम्स' पा के सिफ़र चले आये.

पूछ मत मुझसे कि क्या कैसा हुआ,
जो हुआ जैसा हुआ अच्छा हुआ.

मैं भरोसा ले गया बाज़ार में,
मुझको हर व्यापार में घाटा हुआ.

जाने कब लौटेगा अपनी राह पर,
आदमी है देवता भटका हुआ.

भूल जाता हूं मैं अपने गम सभी,
देखता हूं जब तुझे हंसता हुआ.

मानता हूं जीत मैं पाया नहीं,
मत समझ लेकिन मुझे हारा हुआ.

जो अलमबर्दार आज़ादी का है,
ख़ुद वही बंधन में है जकड़ा हुआ.

प्यार का सूरज न जाने कब उगे,
नफ़रतों का हर तरफ़ कुहरा हुआ.

x x x

एक झूठी मुस्कुराहट को ख़ुशी कहते रहे,
सिर्फ़ जीने भर को हम क्यों ज़िंदगी कहते रहे.

लोग प्यासे कल भी थे हैं आज भी प्यासे बहुत,
फिर भी सब सहरा को जाने क्यों नदी कहते रहे.

हम तो अपने आपको ही ढूंढ़ते थे दर-ब-दर,
लोग जाने क्या समझ आवारगी कहते रहे.

अब हमारे लब खुले तो आप यूं बेचैन हैं,
जबकि सदियों चुप थे हम बस आप ही कहते रहे.

रहनुमाओं में तिज़ारत का हुनर क्या ख़ूब है,
तीरगी दे करके हमको रोशनी कहते रहे.

जवाहर नवोदय विद्यालय,
ग्राम व पोस्ट-घुघुलपुर,
जि.- बलरामपुर (उ. प्र.)-२७१२०१
E-mail : yogishams@yahoo.com

कहानी

धिनाधिन... धिन... धिनाधिन...

✍ अलका सिन्हा

हल्की बरसात के बाद मौसम सुहावना हो गया था. रास्ते में बिछे सुनहले पत्तों से आती चर्र-मर्र की आवाज़ अस्फुट-सी कुछ कह रही थी जो समझ न आ पाने के बावजूद बड़ी भली लग रही थी. शांति पथ के दोनों ओर सजी रंगीन फूलों की कतारें और बीच-बीच में रंगोली-सी बनाते हुए घुमावदार गलियारे... कॉलेज जाने का यह रास्ता मुझे हमेशा ही लुभाता रहा है, मैं इसी कॉलेज में पढ़ी और अब यहीं पढ़ा भी रही हूं. ऊंची-नीची पहाड़ियों पर चढ़ते हुए महसूस होता जैसे इन पहाड़ियों की गोद में समायी यह गर्ल्स कॉलेज की बिल्डिंग नहीं, बल्कि कोई रूप गर्विता नायिका हो जो पहाड़ियों की ओट में नज़ाकत के साथ खड़ी किसी का इंतज़ार कर रही हो. उसे मैंने पहली बार यहीं देखा था, ठीक इसी जगह. दलाल के चंगुल से छुड़ायी गयी कुछ और लड़कियों के साथ वह भी यहां लायी गयी थी. वह नहीं जानती थी कि वह किस भयंकर जीवन का हिस्सा बनने से बचा ली गयी थी. वह नहीं जानती थी कि उसकी ज़िंदगी मौत से बदतर हो सकती थी. वह ख़ुशकिस्मत थी कि उनके चंगुल से छुड़ा ली गयी थी. वह ख़ुशकिस्मत थी कि वह ख़ुशकिस्मती या बदकिस्मती का मतलब नहीं जानती थी. मैंने उसकी तरफ़ ग़ौर से देखा — सांवला रंग, छोटी-छोटी आंखें, चपटी-फूली नाक, मोटे-काले होंठ और घुंघराले बाल. इतनी जायदाद के साथ सोलह-सत्रह साल की वह आदिवासी लड़की, दिल्ली जैसे महानगर में अपनी जन्नत बसाने की हसरत लिये चली आयी थी. उसके भीतर से एक ज़िद्दी आत्मविश्वास झांक रहा था जिसने मुझे बेतरह आकर्षित किया और मैंने उसे अपने पास बुला लिया. अपनी प्रधानाचार्या के द्वारा चलाये जा रहे एनजीओ के शर्तनामे पर हस्ताक्षर कर मैंने उसे अपने साथ रखने की इज़ाज़त ले ली.

रूपंती, उसने अपना नाम बताया जो मुझे उसके काफ़ी अनुकूल लगा. घर के काम समेटती वह मेरे साथ ही कॉलेज आ जाती जहां एनजीओ द्वारा चलाये जा रहे स्कूल में वह भी और लड़कियों के साथ पढ़ाई करती. खाली वक़्त में वह अपनी उम्र की लड़कियों के साथ खेलती, तो कभी हरी घास पर बैठी, यूकलिप्टस के ऊंचे पेड़ों को अपनी छोटी-छोटी आंखों में भरती. लड़कियों के झुंड में वह अलग से पहचानी जाती और मेरी निग़ाहों के दायरे में क़ैद हो जाती. जब मैं उसे कुछ बताती तब उसकी आंखें हैरत से भर जातीं जैसे मैं किसी और ही दुनिया के बारे में बता रही हूं. यह दुनिया उसके लिए सचमुच ही दूसरी दुनिया थी, वरना जंगलों का उन्मुक्त स्वभाव उसकी जीवन शैली का हिस्सा था. वह बड़ी ज़िम्मेदारी से स्कूल में सिखाये पाठ याद करती, साथ ही मुझे अपनी भाषा के गीत सुनाती. कभी-कभी वह मुझे आदिवासी नृत्य भी दिखाती. मैंने महसूस किया कि अपनी सादगी के साथ वह सचमुच सुंदर थी. हैरानी से खुली उसकी आंखें, उसकी सुंदरता को और बढ़ा देतीं.

मैंने पाया था कि रूपंती के भीतर जानने-समझने की लालसा थी. वह मेरी बातों को बड़े ध्यान से सुनती और निरंतर अपनी सहमति जताती रहती. मगर जब तक उसे कोई बात समझ नहीं आती, वह अपनी गरदन नहीं हिलाती. पूछे जाने पर भी वह ख़ामोश देखती रहती. मैं दोबारा किसी और तरह से अपनी बात को समझाती. समझ आ जाने पर उसके चेहरे की खोयी हुई रंगत वापस लौट आती. वह ख़ुद इतना नहीं बोलती, जितनी उसकी आंखें बोलतीं. उसकी सहमति-असहमति,

अलका सिन्हा

हिंदी कविता और कहानियों के अलावा समीक्षात्मक निबंध लेखन और अनुवाद कर्म में भी महती उपलब्धि के साथ अलका सिन्हा का नाम एक उत्कृष्ट कार्यक्रम प्रस्तोता और उद्घोषिका के रूप में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन में समादृत है. अपने बहुचर्चित कविता-संग्रहों 'काल की कोख़ से', 'मैं ही तो हूं ये', 'तेरी रोशनाई होना चाहती हूं' और कहानी-संग्रह 'सुरक्षित पंखों की उड़ान' तथा 'मुझसे कैसा नेह' से हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित श्रीमती सिन्हा को हिंदी अकादमी, दिल्ली सरकार तथा देश की जानी-मानी साहित्यिक संस्था 'परंपरा' सहित अनेक प्रमुख संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है. इनके कृतित्व पर निरंतर शोध कार्य संपन्न हो रहे हैं. संसदीय हिंदी परिषद द्वारा संसद के केंद्रीय कक्ष में राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान प्राप्त इस रचनाकार ने देश-विदेश में अपने गरिमामय रचना पाठ और कुशल मंच-संचालन से अकूत लोकप्रियता अर्जित की है. तेरह वर्षों तक गणतंत्र-दिवस परेड का आंखों देखा हाल सुनाने का गौरव हासिल करने वाली यह लेखिका आवाज़ की दुनिया की भी सशक्त हस्ताक्षर हैं.

हैरानी, जिज्ञासा सब उसकी आंखों से जाहिर हो जाती. कहने को उसे अपनी भाषा के अलावा किसी दूसरी भाषा का ज्ञान नहीं था. मगर वह समझती हर भाषा थी. उसकी आंखों में सैकड़ों सवाल तैरते और वह हर सवाल का जवाब तलाशती. मेरी भरसक कोशिश होती कि मैं उसकी हर जिज्ञासा शांत कर सकूं और उसे नयी जानकारियों से समृद्ध कर सकूं.

वह जल्दी ही शहर की बोली बोलने लगी थी. मैं डरती थी कि कहीं वह अपना गंवईपन छोड़कर शहर वाली न बन जाये. मगर मैंने महसूस किया था कि शहरी आकर्षण के बावजूद उसका अपने गांव-घर से अटूट संबंध था. अपने ग्रामीण जीवन से सीखी कई तरह की अनोखी जानकारी देकर वह भी मुझे अचंभित कर देती.

'मौसम बदलने वाला है, जाड़ा और पड़ेगा...'

उसकी बात पर मैं हंस पड़ती, 'तुझे मौसम विभाग वालों का फ़ोन आया था?'

वह अपनी बात अजीब तर्कों के साथ सिद्ध करती. कई बार वह किसी पक्षी को दिखाकर आने वाले वक़्त की जानकारी इस तरह बताती जैसे वह उन पक्षियों की बोली समझती हो और उन पक्षियों ने उसके कान में यह जानकारी दी हो कि जल्दी ही यहां तूफ़ान आने वाला है. चूहे की उछल-कूद देखकर, भूकंप के बारे में की गयी उसकी उद्घोषणा मेरे लिए अविश्वसनीय सत्य थी.

उसकी दुनिया मेरे लिए भी विस्मय का विषय है. उसे मेरे साथ रहते तीन साल बीत चुके हैं और अब वह एक समझदार, परिपक्व लड़की बन चुकी है. मेरे अकेलेपन को एकांत में बदलने वाली इस लड़की की मेरे जीवन में बहुत अहमियत है. उसकी ख़ामोशी मेरे एकांत की लय को टूटने नहीं देती, तो उसकी चपल आंखें निरंतर संवाद की प्रतीक्षा में दिखायी पड़ती हैं. उसका होना ऐसा है जैसे वह है भी, मगर उसके होने की कोई आहट भी नहीं. उसने बड़ी होशियारी के साथ मेरी ज़रूरतें समझ ली थीं और वह मेरी समय सारिणी के मुताबिक़ क़दमताल करती मिलती. घर के काम निपटाकर, वह मेरे कॉलेज जाने के समय पर तैयार मिलती. मेरे एकांगी जीवन में वह मेरी सहयोगी भी थी और साथी भी. मेरा उससे रिश्ता इतना घनिष्ठ हो चुका था कि वह कभी मुझे किसी बच्ची-सी मालूम पड़ती, तो कभी ज़िम्मेदारियों से भरी मां जैसी लगती. मैं उसके लिए बहुत कुछ तो नहीं कर पायी मगर हां, ज़िंदगी को लेकर उसके ख़ूबसूरत भ्रमों को बचाये रखने की कोशिश लगातार करती रही हूं. उसकी सादगी और निश्छलता देखकर मुझे अक्सर यह भय लगता कि अगर उसे हकीकत की कठोरता से रू-ब-रू होना पड़ा तो ज़िंदगी में कुछ भी नहीं बचेगा -- न ये नदियां, न पहाड़, न झर-झर बहते झरने, न हरियाली घाटियां. तब धरती बांझ हो जायेगी और पर्वत संन्यासी.

एक रोज़ उसने मुझे अपनी बोली में कुछ गुनगुनाते हुए एक ख़ास तरह का नृत्य दिखाया.

धिनाधिन...धिन... धिनाधिन...धिन... की आवाज़ के साथ, कभी वह अपने सिर को गोल-गोल घुमाती तो कभी हाथ-पैरों को.

मैं इस नृत्य को देख कर हंसने लगी.

धिनाधिन...धिन... धिनाधिन...धिन... इसके सिवा मेरी समझ में कुछ नहीं आया.

उसने बताया कि यह ऐसी तितलियों का गीत है जो किसी के मरने की प्रतीक्षा में इस ख़ास प्रकार के स्वर में गुनगुनाती हैं. उसने बताया कि इस प्रजाति की तितलियां शिकार कर अपना भोजन नहीं जुटातीं बल्कि अपनी विशेष प्रकार की भनभनाहट के साथ नृत्य करते हुए आसन्न मृत्यु का जश्न मनाती हैं, इसलिए इनकी मौजूदगी मृत्यु का संकेत

मानी जाती है.

उसकी इस जानकारी से मैं अचंभित रह गयी मगर उसे कोई अचंभा नहीं था, न ही कोई शिकायत थी. फिर भी, मेरे चेहरे पर छायी मायूसी को देखते हुए उसने दूसरा गीत सुनाया. उसका महीन स्वर इस बार कुछ उल्लास लिये हुआ था मगर मैं बहुत सामान्य नहीं रह पायी. उसने मेरा हाथ पकड़कर मुझे खड़ा कर दिया और मेरी कमर में हाथ डाल कर अपने पैर आगे-पीछे करते हुए आदिवासी ढंग से नृत्य करने लगी. उसने बताया, वहां की लड़कियां सामूहिक स्वर में इस तरह का गीत गाते हुए जंगल के देवता से सबके हित की कामना करती हैं.

एक बार उसने आटे की छोटी-छोटी गोलियां बनाकर, चाशनी में उबालकर मुझे खिलायीं.

उसका स्वाद बहुत भाया नहीं तो ऐसा ख़राब भी नहीं लगा.

'अच्छा है.' प्रतिक्रिया को उत्सुक, उसकी आंखों को देखकर मैं हंस दी.

वह ऐसे ख़ुश हो गयी जैसे उसका जंगल शहर से जीत गया हो.

फिर तो वह अक्सर ही मुझे अपने पारंपरिक भोजन का स्वाद चखाने लगी. मुझे पता ही नहीं चला कि कब और कैसे महानगर के इस आधुनिक फ़्लैट में एक आदिवासी जंगल हावी होने लगा. कई बार तो मैं भी उसके अभिवादन का उत्तर 'जोहार' कहकर देती. जब मैं उसे 'आसो जुआ' कहकर बुलाती या 'बसो जुआ' कहकर बैठने को कहती तो वह बेतरह ख़ुश हो जाती. उसकी बोली, उसके गीत, खेल-ही-खेल में मेरी दिनचर्या में हिस्सेदारी करने लगे थे. कभी-कभी मैं सोचती कि उसके साथ उसके गांव चलूं मगर फिर यह सोच कर डर जाती कि कहीं वहां जाकर, उसकी जंगल की दुनिया में वापस लौट जाने की इच्छा जाग उठी तो मेरा काम कैसे चलेगा. सच है, स्वार्थ हम शहरी लोगों के ख़ून में आ बसा है.

आज के ख़ुशनुमा मौसम में बीती कई बातें यादों में घुमड़ने लगी थीं और मानसिक दुनिया में मैं बहुत लंबी सैर कर आयी थी वरना पिछले कुछ रोज से तो बिस्तर से हिलने-डुलने का भी मन नहीं कर रहा था. दरअसल कुछ समय से माहवारी बहुत अनियमित हो गयी है. कभी दो-तीन महीने आती ही नहीं तो कभी अतिरेक हो जाती है. अपने स्वभाव का भी इन दिनों कोई ठिकाना नहीं रहता. वो तो रूपंती है तो संभाल लेती है. डाक्टर कहती है, आजकल चालीस की उम्र में भी मीनोपॉज हो जाता है. ये दिन भावात्मक अतिरेक के भी होते हैं, शायद इसी क्रम में मैं पिछली बातें दोहराने लगी थी.

आज तबियत कुछ बेहतर मालूम पड़ी तो घर से निकलने को मन कुलबुलाने लगा. सोचा, कॉलेज चलती हूं, कोई क्लास लूं या न लूं, कम से कम रूटीन तो बदलेगा. मगर जैसे ही घर से बाहर निकलने लगी कि लड़खड़ा गयी. रूपंती ने झट बढ़कर सहारा दिया और संभालकर मुझे घर वापस ले आयी. मेरे सिर में तेल ठोंकते हुए वह अचानक ही पूछ बैठी — ''दीदी,मेरे गांव चलोगी? वहां ऐसी कई जड़ी-बूटियां हैं जिनका रस पीने से ख़ून बहना भी रुक जायेगा और कमज़ोरी भी दूर हो जायेगी...''

रूपंती की बात सुनकर मैं थोड़ा असहज हो गयी. इसे कैसे पता, मुझे क्या परेशानी है? हो सकता है, इसने डॉक्टर के साथ मेरी बातचीत सुनी हो और अंदाज़ा लगाया हो. ख़ैर, जो भी हो, मैं इस तरह की बातों में हिस्सेदारी करने की आदी नहीं थी. मुझे अभी भी ध्यान है, जब मैं पहली बार इस तरह के परिवर्तन से गुज़री थी तो एकांत में बैठकर ख़ुद को लड़की होने पर कितना कोसा था. कितने ही अवसरों पर इस अवस्था के कारण मेरी प्रतिभाएं बाधित हुई थीं. मां ने बहुतेरा समझाया कि स्त्री होने के लिए यह ज़रूरी है, यह स्त्री को पूर्णता प्रदान करता है, इसके बाद ही वंश आगे बढ़ता है. मगर मैं महीनों अपनी लाचारी पर रोती रही. मैं पूछना चाहती थी कि पुरुष की पूर्णता के लिए ऐसी सज़ा से गुज़रना ज़रूरी क्यों नहीं होता जबकि वंश तो उनके नाम का चलता है, और भी बहुत से प्रश्न मन में उठते मगर मैं इसी असहजता के कारण कभी पूछ नहीं पायी. आज रूपंती का इस तरह खुले तौर पर कुछ कहना मुझे चौंका गया. मुझे तो यह भी अंदाज़ा नहीं था कि रूपंती इन बातों के बारे में जानती भी है.

''तुम्हें महीना... होता है? मुझे तो आज तक पता ही नहीं चला...'' थोड़ा हकलाते हुए मैं पूछ बैठी. दरअसल उसने आज तक मुझसे ऐसा कोई सामान भी नहीं मंगवाया जबकि उसकी हर ज़रूरत का सामान मैं ही ख़रीद कर लाती थी.

मेरे संशय पर वह विजय गर्व से मुस्करा रही थी. उसने मुझे बड़ी ही खुफिया जानकारी देते हुए बताया कि यहां लाने से पहले एजेंट ने सभी लड़कियों को कुछ ऐसी जड़ी-बूटियां खिलायी थीं जिनसे उनका मासिक धर्म होना रुक गया.

''मतलब?'' मैं हैरानी से चीख़ पड़ी, ''तुमने क्यों कराया ऐसा?''

उसने बताया कि एजेंट ने नौकरी पर लगाने की यह शर्त रखी थी. उसके मुताबिक़ ऐसा करवाने से इन लड़कियों को कई तरह की परेशानियों से बचाया जा सकेगा.

मैं सकते में आ गयी. यह क्या कह रही है? कैसी परेशानियों से बचाया जा सकेगा? मतलब अब इस शरीर को नोचो-खसोटो, कोई चिन्ह नहीं रहेगा...?

शहर देखने और शहर में जाकर पैसा कमाने का सपना देखने वाली बेचारी भोली-भाली लड़कियां, कहां जानती हैं कि इन्होंने कितना बड़ा सौदा किया है. मैं उसे बताना चाहती थी कि स्त्री की पूर्णता इसके बिना नहीं है और इस मुसीबत से बचकर न केवल वह मातृत्व सुख से वंचित रह जायेगी बल्कि उसकी वंश-बेल का विकास रुक जायेगा. ऐसी कई बातें जिनके प्रति मेरी मां ने मुझे सजग किया था, वे सब मेरी ज़ुबान पर थीं. अब तक शायद मेरे लिए औरत होना व्यक्ति होने से अधिक महत्वपूर्ण नहीं था मगर रूपंती से उसका यह अधिकार छीने जाने की साज़िश ने अचानक ही इसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना दिया.

अगले ही दिन मैं उसे अपनी गाइनेकोलॉजिस्ट के पास ले गयी. कई तरह की जांच के आधार पर दी गयी डॉक्टर की रिपोर्ट मेरी आशंका से परे नहीं थी. मन बड़ा आहत हुआ. संबंधों को लेकर मेरी व्यक्तिगत धारणा बहुत संवेदनशील रही है जिसकी वजह से मैंने ख़ुद को विवाह और परिवार के बंधन से दूर रखा था मगर रूपंती के आने के बाद मेरी धारणाएं बहुत हद तक बदली थीं. रूपंती के साथ हुए इस छल को मैं बरदाश्त नहीं कर पा रही थी. मैंने डॉक्टर से देर तक इस संबंध में बात की. डॉक्टर ने मुझे कुछ उम्मीद बंधायी और मैं उसके कहे मुताबिक़ उसका नियमित उपचार कराने लगी.

वक़्त बीतता रहा मगर हुआ कुछ नहीं, बस मेरा इंतज़ार मेरे सब्र का इम्तहान लेता रहा. फिर मैंने डॉक्टर बदल लिया. कई डॉक्टर बदल लिये. रूपंती मेरे कहे अनुसार सब करती रही. जहां-जहां मैं उसे ले जाती रही, वह जाती रही. जो दवाइयां मैं उसे देती रही, वह खाती रही मगर नतीज़ा सिफर ही रहा. इधर रूपंती के स्वभाव में अचानक ही ठहराव-सा आ गया था. अब वह काम करते हुए गुनगुनाती नहीं थी, मुझसे जिज्ञासा भरे सवाल नहीं पूछती. वह चुप-चुप रहती. कई बार वह एकांत में दीवार की तरफ़ टकटकी लगाये शून्य में देखती रहती. उसकी यह ख़ामोशी मुझे तोड़ने लगी.

मैंने हिसाब लगाया कि उसे अपना घर छोड़े लगभग पांच साल पूरे होने वाले थे और इन पांच सालों में वह कम से कम दस साल बड़ी हो गयी थी. भरी जवानी में ही वह अधेड़-सी दिखने लगी थी.

'तुम्हारे गांव चलें?'

मैंने सोचा, कम से कम घर जाकर, अपने लोगों से मिलकर ख़ुश तो हो जायेगी.

गांव जाने की बात से सचमुच उसके चेहरे पर चंपई रंग उतर आया मगर उसके पास उसके गांव का पूरा पता नहीं था.

'मोरा नदी पार करने के बाद बेलतुला में एक बड़ा-सा स्कूल है...' वह अपने गांव के बारे में बताने लगी. इंटरनेट की सहायता से हम हाथीगोड़ नाम के उस गांव का पता लगा पाये जो असम के गुड़ियाझार जंगल पार करने के बाद स्थित है.

हमने बेलतुला की टिकट बुक करा ली थी. इसके बाद गुड़ियाझार का घना जंगल था, जहां से यातायात का संपर्क नहीं था. रेल के डिब्बे में चढ़ते हुए उसके चेहरे पर बचपन की पारदर्शी तरलता उतर आयी थी. वह खिड़की से सटकर बैठी थी. बाहर के दृश्य उसके चेहरे पर उतरते जा रहे थे. हरे पेड़ों की छाया, उस पर आ-जा रही थी. उजड्ड हवा साधिकार उसके बालों से ढिठाई कर रही थी. अपनी आंखों के रास्ते वह हरे मैदानों में उतरती जा रही थी, धूलदार पगडंडियों पर दौड़ती जा रही थी. समय और स्थान की दूरियां, रेल की समानांतर पटरियों-सी साथ-साथ दौड़ी जा रही थीं. लगभग दो दिन का सफर, रूपंती के बीते बरसों की कथा बांच रहा था. कभी वह छूटे हुए गांव की याद करती तो कभी शहर की कहानी गांव को सुनाने लगती. ख़ुली क़िताब-सा उसका चेहरा मेरी आंखों के सामने था और मैं जैसे कोई लंबा उपन्यास पढ़ रही थी. जब हमारी ट्रेन मोरा नदी के पुल से गुज़रने लगी तो रूपंती के भीतर जैसे बाढ़-सी उमड़ आयी. उसकी आंखें झर-झर बरस रही थीं. आज मैं भी उसके साथ वैसे ही उपस्थित थी जैसे मैं थी भी और मेरे होने की कोई आहट भी नहीं थी. वह निर्बाध अपने एकांत को जी रही थी, अपनी निजता में ख़ुद से बात कर रही थी, ख़ुद को सुन रही थी.

बेलतुला उतरकर हमें थोड़ा पूछना पड़ा. आगे की यात्रा हमें पैदल करनी थी. जंगल का इलाक़ा शुरू हो चुका था और वहां गाड़ियों की आवाजाही नहीं थी. रूपंती रास्तों को पहचानते हुए हामी भरती जा रही थी.

'वो देखो, टेमरस...' उसने उछलकर पेड़ से लटकता अधपका अमरूद तोड़ लिया. उसे पता था कि अधपका अमरूद मुझे कितना पसंद है. पेड़ से तोड़े ताज़ा अमरूद का खिच्चा-खिच्चा स्वाद मन को तरोताज़ा कर गया. अब वह बच्चों-सी चहक रही थी. उसने अपना इलाक़ा पहचान लिया था. वह मुझे पेड़ों पर चहकती चिड़ियों से मिलवाने लगी, 'मैना पाखुर... चौटाई पाखुर... पारुआ पाखुर...'

वह उन्हें भी मेरे बारे में बता रही थी. ऐसे पंछी मैंने

लघुकथा

छवि

✍ सैली बलजीत

शहर के चारों तरफ़ बड़े-बड़े बैरीकेड लगा दिये गये थे. शहर जैसे गति विहीन हो गया था. कोई भी वाहन अब शहर में दाख़िल नहीं हो सकता था. पुलिसकर्मी स्थिति पर नियंत्रण रखे हुए थे.

लगा था. शहर में अघोषित क़र्फ़्यू लागू हो गया है.

शहर में दुकानों के अतिक्रमणों को हटाने हेतु यह कार्यवाही हो रही थी. पुलिस की टुकड़ियां... जे. सी. बी. मशीनों सहित शहर की दुकानों की तरफ़ एक लश्कर की तरह बढ़ने लगीं तो आने-जाने वाले लोगों को भारी मुसीबतों का भी सामना करना पड़ा था.

वह अपने स्कूटर से शहर की तरफ़ आया तो देखा काठ के पुल पर बड़ा-सा बैरियर लगाकर, शहर को आने वाली सड़क को बंद कर दिया गय था.

"रुको तो... तुमें बोल रहा हूं बाऊ..." एक पुलिसकर्मी ने उसे रुकने को कहा था.

"मुझे कहा?" उसने अनदेखी करते हुए कहा था.

"तुमे ही कह रहा हूं रुक तो..." इस बार पुलिसकर्मी थोड़ा नर्मी से बोला था.

वह एकाएक स्कूटर को रोकते हुए बोला था, "कहिए..."

इस बीच उसके जेहन में पुलिस की वर्दी की दहशत का डर एकबारगी उभर आया था. वह लगभग भयभीत हो उठा था. भीतर से... उसके मन में ख़याल आने लगे थे... क्यों रोका है उसे... स्कूटर के क़ाग़ज .... ड्राइविंग लाइसेंस... स्कूटर की इंश्योरेंस... किसी भी बात पर कोई भी चक्कर पड़ सकता है...

पुलिस वाला बोला था, "कहां जाना है... शहर की तरफ़ जा रहे थे?"

"नहीं जी... मैंने तो ढाकी रोड की तरफ़ जाना है..." वह लगभग दबे से स्वर में बोला था.

"शहर की तरफ़ निकल चल... बस-अड्डे तक जाना है मैंने."

"आओ... बैठ जाओ... पर... वहां तो रास्ता बंद है..."

"चल निकल ले अब.... चुपचाप... एक तरफ़ से..." वह पुलिसकर्मी इतना कहते ही, उसके पीछे वाली सीट पर बैठ गया था.

उसकी सांस में सांस आयी थी.

काठ के पुल पर लगे बैरियर की एक तरफ़ से उसने स्कूटर निकाला तो वहां तैनात पुलिसकर्मी खिसियानी हंसी हंस दिया था. उसके दिमाग़ पर उसकी छवि अब खौफ़जदा नहीं रही थी, उसके लिए.

१२८८, लेन-४, श्रीरामशरणम् कॉलोनी, डलहौज़ी रोड, पठानकोट (पंजाब)-१४५००१. मो. ९८७८०७८५७०

दिल्ली में भी देखे थे मगर कभी उनसे इस तरह बात नहीं की थी. मैं हैरान थी कि क्या सचमुच ये एक-दूसरे की ज़ुबान समझते थे!

'मिनौती, तिल्लोतमो, गुंजरो' गांव के मुहाने पर पहुंचते-पहुंचते वह सच में अपने आपे में नहीं रह गयी थी और अपनी सहेलियों के नाम पुकारने लगी थी.

विह्वलता में वह अपनी स्थानीय बोली में कुछ बोलने लगी थी. शायद वह अपने बचपन की कोई घटना बयान कर रही थी जो इन सहेलियों से जुड़ी थी. मैं हैरान थी कि इतने समय में जो बोली उसने एक बार भी नहीं बोली थी, वह आज बरसों बाद भी उसके कंठ से झरने की तरह झर रही थी और जो कोयल की तान की तरह मीठी लग रही थी. वह कुछ-कुछ बोलती जा रही थी, बिना इसका अहसास किये कि मैं इसे समझ भी पा रही हूं या नहीं. दरअसल वह तो आत्मालाप कर रही थी, जंगल-झाड़ से उनका हाल-समाचार पूछ रही थी, इतने बरसों बाद वहां की धूल-मिट्टी को गले लगा रही थी. उसकी हालत देख कर मैं भीतर-भीतर एक तरह की तुष्टि का अहसास कर रही थी कि मैं किसी की खोयी हुई ख़ुशी का माध्यम बनी थी.

आख़िर नदी, कुआं, जंगल, मैदान पार कर हम एक ईंटघर के सामने खड़े थे. रूपंती की आंखें झर-झर बरस रही थीं. घर के भीतर से मंझोले कद का एक अधेड़ बाहर आया, रूपंती 'बा' कहकर जिससे लिपट गयी थी. वह हमें भीतर ले गया. रूपंती अपनी मां से गले लगकर देर तक रोती रही. मेरी उपस्थिति गौण हो चुकी थी. वे अपनी बोली में बोल रहे थे जो मेरी समझ से परे थी. पहली बार लगा कि मैंने तो घाटे का

सौदा किया. उसे तो अपनी बोली सिखा दी मगर उसकी बोली तो सीखी ही नहीं.

हाथीगोड़ बहुत सुंदर गांव था. वह ऐसा पिछड़ा इलाक़ा भी नहीं था, इनके गांव को लेकर जैसी भ्रांति हम शहर वालों ने पाली हुई है. बल्कि सच कहूं तो ये लोग इतने ग़रीब भी नहीं थे कि हमारे घरों में साफ़-सफ़ाई, खाना बनाने का काम करते. यानी ये लोग सचमुच बस शहर को देखने के लोभ से ही गांव छोड़ कर आते हैं. मुझे पश्चाताप हुआ, जिनसे हम नौकरों की तरह व्यवहार करते हैं, उनकी स्थिति हमारी स्थिति से कोई कमतर भी नहीं थी. रूपंती ने अपने गांव के सभी लोगों से मेरा परिचय कराया, अपने जंगल, बागान घुमाये और ख़ूब शौक़ से ताज़ा मछली खिलायी. सभी कुछ आनंददायक था, इतना कि मेरा वहां से लौट आने को मन ही नहीं कर रहा था. उसने मुझे अपने गांव के ओझा, बाबा से भी मिलवाया और मेरी तकलीफ़ की चर्चा की. कह नहीं सकती कि यह उन जंगली बूटियों का कमाल था या उन आदिवासियों के प्यार का, कि दो दिन के भीतर ही मेरे कमर दर्द में आराम महसूस होने लगा था. मुझे उम्मीद बंधी कि रूपंती की भी रुकी हुई माहवारी ज़रूर शुरू हो जायेगी और वह मातृत्व के सुख को पा सकेगी. रूपंती मेरे बारे में तो मुझे सब जानकारी देती जाती थी मगर अपनी बेहतरी के बारे में कुछ नहीं बता रही थी. मुश्किल यह थी कि वह गांव वालों से अपनी बोली में बात करती थी जो मेरे समझ का हिस्सा नहीं थी. फिर भी, बात कुछ सकारात्मक नहीं मालूम पड़ रही थी, क्योंकि कुछ भी सकारात्मक होता तो वह मुझे झट बताती. उसका कुछ न बताना ही मेरी शंकाओं का जवाब था.

पता ही नहीं चला कैसे दो से तीन और तीन से चार दिन बीत गये. लौटने की इच्छा न होते हुए भी मेरे भीतर लौट चलने का दबाव तेज़ हो रहा था.

'क्या इरादा है, अब विदा दो मुझे.'

आख़िर मैंने चलने की बात उठायी, मगर उसे साथ चलने को कहने की हिम्मत फिर भी नहीं जुटा पायी. वैसे भी, अब वहां कुछ अधेड़ उम्र वासियों के सिवा बचे ही कितने लोग थे? ज़्यादातर लड़के-लड़कियां शहर भेजे जा चुके हैं. पानी भरने जाती लड़कियों की टोलियां तो कब की गुम हो चुकी थीं. जंगली पेड़ों की टहनियों पर झूलती, रंग-बिरंगे रिबन बांधे गीत गाती लड़कियों की आवाज़ें तो कब की सन्नाटे में बदल चुकी थीं.

चलते वक़्त मन बड़ा भारी हो गया. रूपंती का साथ अब मेरी ज़रूरत का हिस्सा बन चुका था. अकेले यात्रा का ख़्याल भी मन को व्यथित कर रहा था. मगर उससे भी ज़्यादा, इस बात का मलाल था कि रूपंती की समस्या का कोई ठोस उपचार यहां भी नहीं मिल पाया. फिर भी, इतनी तसल्ली तो थी ही कि वह अपने गांव वापस आ गयी थी, अपने लोगों के बीच वापस आ गयी थी.

स्टेशन पर गाड़ी आ लगी थी, रूपंती ने मेरा सामान गाड़ी पर चढ़ा दिया. उसने खिड़की की तरफ़ से मेरा हाथ पकड़ रखा था कि गार्ड ने हरी झंडी हिलाकर सिगनल दे दिया. गाड़ी धीरे-धीरे स्टेशन छोड़ने लगी और छूटने लगा रूपंती का हाथ. गांव का रंग-रूप किसी रंगीन चित्र-सा स्थिर हो गया था. बहती नदी ठहर गयी थी, पेड़ों पर झूलती हवा थम गयी थी, जंगल-झाड़, पेड़-पहाड़, सब सदमा खाये खड़े थे.

अचानक मैंने देखा, गांव के ऊपर ख़ूबसूरत तितलियों का झुंड मंडरा रहा है, धिन-धिन की अनुगूंज लिये कोई भनभनाहट सुनायी पड़ रही थी. मेरा कलेजा धक् से रह गया, क्या ये वही तितलियां हैं जिनका ज़िक्र रूपंती ने किया था... धिनाधिन...धिन... धिनाधिन...

रूपंती का सिर घुमाकर-घुमाकर नृत्य करना, मेरी चेतना में सजीव होने लगा. मुझे लगा, रूपंती अपने हाथ-पैरों को लहराते हुए मुझसे पूछ रही है... पूरा गांव उजड़ गया, पूरी प्रजाति ख़त्म होने की कगार पर है, ऐसे में जो जश्न का गीत गाये, वह कौन हो सकती है?

धिनाधिन...धिन... धिनाधिन...

उस रोज़ तो मैं रूपंती का गीत नहीं समझ पायी थी मगर आज उसकी बोली ख़ूब अच्छी तरह समझ रही हूं.

'शहर में ले गये पकड़ के जिन, औरत हुई पर चढ़े न दिन, धिनाधिन...धिन...धिनाधिन...'

मैं देख रही थी कि रूपंती की सहेलियां — मिनौती, तिल्लोतमा, गुंजरो भी उसके साथ आ मिली हैं.

मैंने पाया, जंगल बांझ हो गये थे, पेड़ संन्यासी हो गये थे.

आदिवासी जाति की समाप्ति की व्यथा इन तितलियों के स्वर में मुखरित होती जा रही थी.

धिनाधिन...धिन... धिनाधिन...

धिनाधिन...धिन... धिनाधिन...

गाड़ी ने रफ़्तार पकड़ ली थी.

३७१, गुरु अपार्टमेंट्स,
प्लॉट नं.-२, सेक्टर-६, द्वारका,
नयी दिल्ली-११००७५.
मो. : ९८६८४२४४७७
ई-मेल : alkasays@gmail.com

कहानी

वीज़ा

✍ डॉ. इला प्रसाद

'देखिए, हम कुछ नहीं कर सकते. आपके काग़ज़ात पूरे नहीं हैं, आपका वीज़ा नहीं हो सकता.' भारतीय वाणिज्य दूतावास की खिड़की पर बैठी महिला ने फिर से वही रटा-रटाया वाक्य दुहराया और अगले नंबर के लिए घंटी बजा दी. खिड़की के ठीक ऊपर लगा बोर्ड लाल रंगों में अगला नंबर दिखाने लगा. शुभेंदु के पीछे खड़े लोग अकुलाने लगे कि वह हटे तो उनकी बारी आये.

पिछले दो दिनों से, सुबह-शाम इस खिड़की पर हाज़िरी लगाते-लगाते शुभेंदु बौखला चुका था. मां की मौत पर क़ायदे से रो भी नहीं पा रहा. हर क्षण यह अहसास कि कलकत्ते में, गरियाहाट वाले घर में, मां की लाश पड़ी है, उसके द्वारा मुखाग्नि दिये जाने की प्रतीक्षा में और यहां वीज़ा कार्यालय के नख़रे!

'मैडम, आप समझती क्यों नहीं, मैं पिछले बीस साल से अमेरिका का नागरिक हूं. मुझे याद भी नहीं कि भारत का मेरा पुराना पासपोर्ट कहां है. आप बीस साल बाद भारत का पुराना पासपोर्ट मांग रहे हैं मुझसे, कहां से लाऊं मैं?'

'देखिए सर, ये नियम दिल्ली से आते हैं. हमें इनका अनुपालन करना है. हम आपको उसके बिना भारत का वीज़ा नहीं दे सकते.' खिड़की पर बैठी स्त्री की आवाज़ अब भी शांत थी.

'आप जानती हैं, मुझे भारत क्यों जाना है? मेरी मां की मृत्यु हो गयी है.'

'मैं कुछ नहीं कर सकती.'

'आप बतायेंगी, कौन कर सकता है?'

'आप कौन्सल ज़नरल या असिस्टेंट कौन्सल ज़नरल से मिल लीजिए.'

बौखलाया हुआ शुभेंदु खिड़की से हट गया.

पहला काम तो यह कि घर पर फ़ोन मिलाया. राखी को सूचना दी, वह खाना खाने आज भी नहीं आयेगा. वीज़ा हुआ नहीं अब तक.

'अरे उन्हें बताओ, हमारा कल शाम का टिकट बुक है. एक बार एक्स्टेंड कर चुके, छः सौ डॉलर बरबाद हो चुके....'

'कोई कुछ सुने तब तो!'

'तब? क्या होगा, कैसे जायेंगे? राखी की चिंताकुल आवाज़.

'कौन्सल ज़नरल से मिलकर देखता हूं.'

'हां, मिलो. बोलो कि जाना ज़रूरी है और हां, कहीं मैकडोनाल्ड है आस-पास तो जाकर कुछ खा भी लो.'

'देखता हूं.' उसने फ़ोन काट दिया.

वह कौन्सल ज़नरल की तलाश में निकला. कार्यालय बड़ा है. अभी-अभी नयी इमारत में ऑफ़िस स्थानांतरित हुआ है इसलिए थोड़ी पूछताछ करनी पड़ी. पता चला कौन्सल ज़नरल तो खाना खाने चले गये. असिस्टेंट ज़नरल खुराना भी निकलने ही वाले हैं.

डॉ. इला प्रसाद

जन्म : रांची (झारखंड),

शिक्षा : पी एच डी. (भौतिकी), काशी हिंदू वि. वि.

प्रकाशन : *छात्र जीवन से लेखन की शुरुआत. आरंभ में कॉलेज पत्रिका एवं आकाशवाणी तक सीमित. साहित्य की कई विधाओं तथा कविता, कहानी, आलेख, संस्मरण आदि में एक साथ सक्रिय.*

विवाहोपरांत अमेरिका आने के बाद लेखन में गति आयी. अब तक भारत सहित देश /विदेश की लगभग सभी प्रमुख पत्रिकाओं/वेब पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. कहानी संग्रह 'तुम इतना क्यों रोयीं रूपाली' प्रकाशित.

कुछ रचनाओं का हिंदी से इतर भाषाओं (तमिल,ओडिया) में अनुवाद भी. कुछ रचनाएं डेनमार्क के रेडियो 'सबरंग' पर सुनी जा सकती हैं. 'प्रवासिनी के बोल', 'प्रवासी आवाज़', 'शब्द दुर्ग पर दस्तक', 'हाशिये उलांघती स्त्री', 'देशांतर' आदि कई संकलनों में रचनाएं संकलित.

अमेरिका की पत्रिका 'हिंदी जगत' के संपादक मंडल में. कनाडा की पत्रिका 'हिंदी चेतना' के कामिल बुल्के विशेषांक में संपादन सहयोग. भारत की पत्रिका 'शोध-दिशा' के अमेरिकी प्रवासी कथाकार अंक का संपादन.

'धूप का टुकड़ा' (कविता संग्रह) तथा 'इस कहानी का अंत नहीं' (कहानी संग्रह) एवं 'उस स्त्री का नाम' (कहानी संग्रह) प्रकाशित. एक उपन्यास 'रोशनी आधी–अधूरी सी' प्रकाशनाधीन.

व्यवसाय : *अध्यापन (भौतिकी).*

संप्रति : *अमेरिका के ह्यूस्टन शहर में निवास.*

शुभेंदु भागा. असिस्टेंट ज़नरल को उसने कॉरीडोर में पकड़ा.

'सर, प्लीज़!'

'क्या है?'

'सर, मैं शुभेंदु सरकार.' मेरा मां का डेथ हो गया कोलकाता में.'

'तो मैं क्या करूं?' बात काट कर बोले मिस्टर खुराना.

शुभेंदु की इच्छा हुई उसका कॉलर पकड़ ले — बदतमीज़! लेकिन उसने अपने को संयत किया — 'सर हमको वीज़ा चाहिए, कोलकाता जाना है. हमको ही मुखाग्नि देना है सर. हम बीस साल से अमेरिकन सिटिज़न हैं, हमारा इंडिया का पुराना पासपोर्ट मांग रहे हैं ये लोग.'

'वो ज़मा किये बिना वीज़ा नहीं मिलेगा. हवाई यात्रा का टिकट भी दिखाना होगा.'

'हमारा टिकट कल शाम का है सर. कल ही जाना था लेकिन कल भी वीज़ा नहीं मिला तो आज उसको एक्स्टेंड किया, कल शाम के लिए.' शुभेंदु ने चार ई-टिकट खुराना के सामने कर दिये.

'ठीक है, लेकिन इंडिया का पासपोर्ट सबमिट किये बिना तो वीज़ा नहीं हो सकता.'

'सर, मेरी सहायता कीजिए, कोई रास्ता बताइए.' शुभेंदु ने यथासंभव अपने मनोभावों पर नियंत्रण रखा.

'देखो, मेरा समय ख़राब मत करो,' कहता हुआ खुराना निकल गया.

एक बार फिर उसकी इच्छा हुई कि खींच कर एक झापड़ दे साले को. उसका कॉलर पकड़ कर उस पर चढ़ बैठे. साले, कमीने! तेरी मां मरी होती, तो तुझे समझ में आता. मैं क्या झूठ बोल रहा हूं!

खुराना जा चुका था. वह उसके ऑफ़िस के बाहर प्रतीक्षालय की कुर्सी पर जाकर बैठ गया. कुछ देर यूं ही बैठा रहा. क्या करे! यह लौट कर आयेगा तो कोई बेहतर व्यवहार तो करेगा नहीं. इससे तो उम्मीद करना बेकार है. खाना खाने जाने की इच्छा ही न हुई. कोई रास्ता तलाशना होगा. वह निरुदेश्य सा इधर-उधर घूमता रहा. कौन्सल ज़नरल के ऑफ़िस से असिस्टेंट ज़नरल के ऑफ़िस के बीच कॉरीडोर में दीवारों पर पेंटिंग थीं. भारतीय चित्रकला के नायाब नमूने. वह एक-एक को रुक कर देखने लगा, गोया उन्हें देखने के लिए ही यहां आया हो. कंधे पर लटके बैग से पानी की बोतल निकाल कर पानी पिया. फिर हाथ की फ़ाइल को उसने वापस बैग में ठूंस दिया. खाली बोतल को कूड़े के टब के हवाले किया और फिर से कौन्सल जेनेरल के ऑफ़िस की दिशा में चल दिया. ऑफ़िस के बाहर एक बुलेटिन बोर्ड था. शुभेंदु उसे पढ़ने लगा. 'अरे वाह!' उसके दिमाग़ में बिजली कौंधी, 'कल बुधवार है.' उसकी नज़रें तेज़ी से सूचना पर फिसलने लगीं — कौन्सल ज़नरल ने प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को सुनने के लिए बुधवार का दिन निश्चित किया है — सुबह ग्यारह से बारह बजे दिन. हर सप्ताह.'

वह मिलेगा इनसे, कल.

वह घर वापस आ गया. राखी उसे देख कर एक क्षण को चौंकी. प्रश्नाकुल निग़ाहों से ताका और अपने आप समझ गयी कि वीज़ा आज भी नहीं हुआ. क्या बतलायेगी आज रात अपनी ननद गोपा को? कल तीसरा दिन है. कब तक रखेंगे मां को बेटे से मुखाग्नि के इंतज़ार में. रखना उचित है क्या! गोपा ने ब्याह किया होता तो जमाई बाबू भी मुखाग्नि दे सकते थे लेकिन उसको तो अपनी नौकरी करनी है बस! मां कब तक साथ रहतीं!

'कल हो जायेगा वीज़ा.' शुभेंदु ने राखी को तसल्ली दी.

'अच्छा.'

फिर शुभेंदु ने पूरे दिन का हाल और कौन्सल ज़नरल से मिलने की योजना बतलायी.

'तुम पता क्यों नहीं करते कि आख़िर क्यों इनको पुराना पासपोर्ट चाहिए.'

'पूछा था, कहते हैं जन्मतिथि का प्रमाण चाहिए.'

'अमेरिका के पासपोर्ट में लिखा तो है.'

'अरे! पागल हैं सब!'

'आज वाशिंगटन से मीरा का फ़ोन आया था. बोल रही थी कि पूरे अमेरिका में सारे दूतावास ऐसे ही हैं और सब जगह ऐसे ही परेशान करते हैं. पिछले साल उसके ससुर की मौत हुई थी. उनके पास उनका भारत का पुराना पासपोर्ट था, उन्होंने ज़मा किया लेकिन वे लोग उनसे अमेरिकन पासपोर्ट के साथ नेचुरलाइज़ेशन सर्टिफिकेट मांग रहे थे. वो नहीं था, खो गया है. उन्होंने हार कर उसके लिए आवेदन किया लेकिन उसके मिलने में भी दो-तीन दिन लगते हैं तो अंत में उस रसीद की कॉपी दिखायी कि आवेदन किया है, तब इमर्जेंसी वीज़ा दिया. तुम भी दस साल के वीज़ा के बदले इमरर्जेंसी वीज़ा मांग कर देखो.'

'और जो फ़ीस भरी है वो इनकी जेब में जायेगी!'

'क्या करोगे, समझ लो, पानी में गयी. तुम्हारा वीज़ा ही तो चाहिए न. मेरा, राखाल और सुमित का भारत का वीज़ा समाप्त नहीं हुआ है. मीरा लोगों की भी ख़ूब फ़ीस बरबाद हुई. टिकट एक्स्टेंड हुआ, हमारे जैसा ही.'

'इन लोगों ने तमाशा समझ रखा है. दूतावास के बाहर धरना दो तो कहेंगे हमारी इमेज़ खराब मत करो और काम करने का वक़्त आयेगा तो कहेंगे – मैं क्या करूं? साला खुराना....' शुभेंदु का ग़ुस्सा अभी तक गया नहीं था.

पिछले एक सप्ताह से वह यूं भी बेहद उद्विग्न चल रहा था. जब से कंपनी में सीनियर मैनेज़र के रूप में पदोन्नति हुई थी, काम इतना बढ़ गया था कि घर आने के बाद भी ऑफ़िस के काम में ही उलझा रहता. रात बारह बजे से पहले कभी बिस्तर नसीब नहीं होता और सुबह आठ बजते ही घर छोड़ देना पड़ता. गोपा लगातार उसे मां के बारे में बतलाती रही थी. मां की तबियत उम्र के हिसाब से इतनी भी बुरी नहीं थी कि वह ऐसी किसी आकस्मिक विपत्ति की आशंका पालता. गोपा का फ़ोन रात में आया — 'अभी, ग्यारह बजे दिन में मां चल बसीं.' तब रात का डेढ़ बजे का समय था उसके लिए. सोते से बौखला कर उठ बैठा. राखी को उठाया. राखाल और सुमित सोते ही रहे.

'कब आ रहे हो?' रोते-रोते बहन ने सवाल किया. जाना तो उसे था ही. अपनी मां का अकेला पुत्र वह, मां को मुखाग्नि नहीं देगा तो कौन देगा!

'अभी टिकट बुक कर लेता हूं. कल सुबह वीज़ा ले लूंगा. फिर फ़ोन करता हूं.' उसने संक्षिप्त उत्तर देकर फ़ोन काट दिया था. नींद उड़ चुकी थी. मां से जुड़ी सारी स्मृतियां एक-एक कर सिर उठा रही थीं. अंधेरे में ही यंत्रचालित सा, आधी नींद में उठकर चलता हुआ वह अपने ऑफ़िस रूम में गया, टेबल पर पड़ा लैपटॉप उठाया और लिविंग रूम में सोफ़े पर जा बैठा. कंप्यूटर पर यात्रा का समय देखता और तुलना करता रहा कि किस एयरलाइन से सबसे जल्दी पहुंच सकता है और फिर पूरे परिवार के लिए जब तक टिकट बुक हुआ, सुबह के चार बजने जा रहे थे.

राखी को यात्रा की व्यवस्था करने को कह कर वह सुबह-सुबह भारतीय दूतावास के वीज़ा कार्यालय में अपने ज़रूरी काग़ज़ातों के साथ लाइन में जा लगा था. ऑफ़िस में ईमेल से सूचना भेज दी थी और अपने बॉस का ईमेल उसने लाइन में खड़े-खड़े अपने फ़ोन पर पढ़ा था. उसकी छुट्टी की स्वीकृति के साथ संवेदना संदेश भी. उसे अच्छा लगा था कि ये औपचारिकताएं निभाने में अमेरिकन कभी पीछे नहीं रहते. और अपना खुराना — मुझे ख़ेद है! बोलना तो दूर, 'तुम्हारी मां मर गयी तो मैं क्या करूं!'

वह रात गये देर तक बिस्तर में भी जागता रहा. गोपा से बात की, कह दिया एक दिन और रुक जाये. मन ही मन योजनाएं बनाता रहा कि एक बार वीज़ा मिल जाये और भारत से लौटे तो खुराना के विरुद्ध हस्ताक्षर अभियान चलायेगा. धरना देंगे दूतावास के बाहर, जैसे गुजराती समाज ने किया था. तभी से कौन्सल ज़नरल चोपड़ा ने यह बुधवार वाली मीटिंग शुरू की है. अपनी छवि सुधारने के लिए. साले.... उसके मन में एक भद्दी सी गाली उभरी जिसे उसने दबा लिया.

राखी ने यात्रा की सारी तैयारियां कर ली थीं. शहर में सारे मित्रों परिचितों को सूचित कर दिया था कि उनके घर पर निग़ाह रखें, वे तक़रीबन महीने भर बाहर रहेंगे. आज भी सुबह से ही मित्रों के फ़ोन आने शुरू हो गये. वीज़ा मिला? आज निकल रहे हो? अच्छा, शुभेंदु कौन्सलेट गया है.... उसे कहो अपने बॉस से एक चिट्ठी ले ले कि वह सचमुच जा रहा है, सचमुच उसकी मां की मृत्यु हुई है. किसी अख़बार में सूचना छपी हो तो कंप्यूटर से प्रिंट ऑउट ले लो. दिखाने के लिए हर कोई अपने अनुभव से उन्हें सलाह दे रहा था.

— 'मुझे तो वीज़ा अंत तक नहीं मिला. मेरा भी एक्स्पायर हो गया था. मेरी सास की डेथ हुई थी. नीलेश तो चला गया, वह अभी तक भारत का नागरिक है, लेकिन मुझे दस दिनों तक दौड़ाते रहे. अंत में नीलेश ने कह दिया कि आने की ज़रूरत नहीं है. सारे क्रियाकर्म हो गये और वह वापस आ रहा है.' - सैन्फ्रासिस्को से अरुंधती ने बताया.

— 'मेरे पिता तो बड़ी हस्ती हैं, तुम जानती हो. उनकी मृत्यु की ख़बर तो अख़बारों में छपी थी. कंप्यूटर से अख़बार का प्रिंट ऑउट निकाल लिया था. लेकर गये थे लेकिन तब भी सप्ताह भर बाद इमर्जेंसी वीज़ा देकर भेजा. जब तक पहुंची तब तक सब कुछ हो चुका था. लगा, जैसे शकल दिखाने के लिए गयी. हमारा भी नेचुरलाइजेशन सर्टिफ़िकेट खो गया है. इतना कौन रखता है यार!' अटलांटा से शकुन बोली.

— 'यह सब हेडली-कांड' के बाद शुरू हुआ है. पहले इतनी परेशानी नहीं होती थी. आंख मूंद कर नियम चला रहे हैं. मेरा एक महीने पहले अमेरिका का पासपोर्ट रिन्यू हो कर आया था तब भी नेचुरलाइजेशन सर्टिफ़िकेट मांगा और वीजा रोक दिया.' ओकलाहामा से सुनीता ने बतलाया.

दिवाकर तो उस घटना के साल बीतने के बाद भी बौखलाया हुआ था — 'साला खुराना, मेरे को तो बोलता था — क्या प्रूफ है कि तुमको जाना है? एयर टिकट दिखाओ. मैं बोला, एयर टिकट बुक कर लूं, तुम वीज़ा न दो तो डेढ़ हज़ार डॉलर तेरा बाप भरेगा? इतना ग़ुस्सा आया.'

'हमारे तो छह सौ डॉलर बरबाद हो चुके. टिकट एक्सटेंड किया है. अगर इमर्जेन्सी वीज़ा देते हैं तो दस साल के वीज़ा का जो आवेदन दिया उसकी फ़ीस भी बरबाद ही होनी है.' राखी की कातर आवाज़ फ़ोन पर गूंजी.

'विश यू लक!'

'थैंक यू.'

राखी ने फ़ोन रख दिया. वह सबकी कहानी सुनते-सुनते घबरा गयी थी. कोई तो शुभ-शुभ बोले! शुभेंदु भी तीन दिन से दौड़ रहा है. न ठीक से खा रहा है, न सो रहा है. मां की मौत का दुख अलग! उसने सोचा अब किसी से बात ही न करेगी. शुभेंदु दूतावास जा चुका है. दिन के ग्यारह बज रहे हैं. वह खाना बनायेगी और फ़ोन तब तक नहीं उठायेगी जब तक शुभेंदु का फ़ोन न हो.

शुभेंदु दूतावास में कौन्सल ज़नरल चोपड़ा के ऑफ़िस में बैठा था. चोपड़ा के सामने. उसे अधिक इंतज़ार नहीं करना पड़ा था. चोपड़ा से मिलने के लिए वह पहले नंबर पर था और उसके बाद कुल दो लोग ही थे. इस नयी व्यवस्था की जानकारी शायद अभी लोगों को हुई नहीं है, वह सोच रहा था. कमरा बड़ा था. कमरे में कुछ और लोग थे. कैमरे के साथ, उसकी पीठ के पीछे. एक व्यक्ति चोपड़ा से कुछ दूर हट कर बैठा. क़लम और काग़ज़ के साथ.

अच्छे से सूट में सजा-धजा, औसत लंबाई, अधेड़, सामने से आधा गंजा, औसत नाक-नक्श, शुभेंदु उसका ग़ौर से निरीक्षण कर रहा था, समझने की कोशिश में कि यह आदमी भी उसका काम करेगा या नहीं. अपनी ओर उसे देखते पाकर चोपड़ा मुसकराया. अपनी कुर्सी से उठकर उसने टेबल के दूसरी ओर बैठे शुभेंदु से हाथ मिलाया — 'गुड मॉर्निंग.'

'गुड मॉर्निंग.'

'तुम कौन हो?'

'मैं शुभेंदु सरकार.'

इस बार उसने उसे घूर कर देखा. शुभेंदु की समझ में आया — यह जानना चाहता है कि उसने जो इतनी हिम्मत की है उसके दफ़्तर में आकर शिकायत करने की तो उसकी पीठ पर कौन लोग हैं, उसकी हस्ती क्या है आख़िर! लेकिन वह तो शुभेंदु सरकार ही था, जन्म से भारत का और अब अमेरिका का नागरिक. उसकी हस्ती तो इतनी ही है, झूठ क्यों बोले.

'क्यों आये हो?' इस बार बिल्कुल रूखा स्वर.

शुभेंदु ने अपनी समस्या बतलायी.

'मुझे ख़ेद है कि तुम्हारी मां का निधन हो गया. मेरी संवेदनाएं तुम्हारे साथ हैं.' लिखने वाले ने नोट किया.

'तुम ऐसा करो, इमर्जेन्सी वीज़ा ले लो. छह महीने का होता है, तुम्हारा काम हो जायेगा.'

पिछले तीन दिनों से वीज़ा के क़ाग़जात देखने वाली प्राइवेट एजेन्सी और दूतावास के बीच दौड़ते- दौड़ते, मित्रों की कहानी सुनते–सुनते शुभेंदु के ज्ञान चक्षु खुल चुके थे. वह इमर्जेन्सी वीज़ा के आवेदन पत्र के साथ ही चोपड़ा के दफ़्तर में हाज़िर हुआ था. प्राईवेट एजेन्सी द्वारा 'अग्रसारित' की मुहर उसके काग़ज़ों पर थी.

लघुकथा

मुर्गियां

✍ डॉ. सुरेंद्र गुप्त

वह अपने सगे-संबंधियों के साथ सुबह से ही रोटी-रोज़ी की तलाश में निकल गया था. दहशत भरे इस माहौल में उसने अपने बच्चों को यह कह रखा था कि उसके पीछे से कोई भी आये, दरवाज़ा नहीं खोलना, पर उसके जाते ही कुछ लोग घर के बाहर आये तथा दरवाज़ा खटखटाया.

दरवाज़े को खटखटा देख भीतर से लड़की बोली — ''कौन?''

बाहर खड़े लोगों में से एक बोला — ''मोहम्मद रियाज़ का यही घर है?''

''हां यही है. पर आप कौन हैं?''

''मैं हूं फ़ज़ल अहमद, मैं मोहम्मद रियाज़ के साथ ही काम पर जाता हूं, मुझे आपकी अम्मी से ज़रूरी बात करनी है, ज़रा दरवाज़ा तो खोलो.''

''अब्बा घर पर नही है.''

''वह घर पर नहीं हैं, यह तो हमें भी पता है. मोहम्मद रियाज़ हमारे साथ ही काम पर जाता है. जब वह काम पर जा रहा था तो घाटी में एक जगह पत्थर से ठोकर खाकर गिर पड़ा. हमने उसे अस्पताल में भर्ती करवाया है.''

यह सुनकर सभी भाई-बहिनों तथा उनकी अम्मी की आंखों में खौफ़ के दर्दनाक बादल उतर आये. परंतु उन्हें इस बात का विश्वास नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने दरवाज़ा नहीं खोला. जब दरवाज़ा नहीं खुला तो बाहर खड़े लोग इस बार ज़ोर से चिल्लाये — ''दरवाज़ा खोलते हो या नहीं?''

इतना सुनते ही घर के सभी सदस्य दुश्चिंताओं से घिर गये और तरह-तरह की आशंकाएं उनके भीतर जन्म लेने लगीं. वे सोच रहे थे कि हो न हो आज आतंकवादियों ने उनके घर को निशाना बना लिया है. यह सोचते ही सभी कांपने लगे थे. भागने का कोई रास्ता भी नहीं था.

अड़ोस-पड़ोस में भी यह बात आग की तरह फैल गयी कि आज मोहम्मद रियाज़ के घर के बाहर आतंकवादी खड़े हैं. परंतु किसी ने भी बाहर निकलने की हिम्मत नहीं जुटायी. बाहर निकलने का मतलब होता — 'मौत'.

जब दरवाज़ा नहीं खुला तो उन्होंने दरवाज़ा तोड़ना शुरू कर दिया. घर के भीतर मौत-सा एक सन्नाटा छाया हुआ था. दरवाज़े को तोड़ने के लिए उस पर ज़ोर-ज़ोर से प्रहार किये जा रहे थे. ज़ोर-ज़ोर से पड़ रही चोटों से दरवाज़े के भीतर से सन्नाटे को दहलाती हुई मां तथा बेटियों की हृदय-विदारक चीख़ें निकल रही थीं. जैसे ही दरवाज़ा टूट कर एक भारी क्रंदन के साथ नीचे गिरा तो भीतर बैठी मुर्गियां, जो पालतू थीं, एक झटके से फड़फड़ा कर बाहर निकल गयीं. उधर आतंकवादी अंदर घुस गये. जैसे ही मुर्गियां बाहर निकलीं उनके पीछे गली के कुत्ते लग गये. काफ़ी देर तक मुर्गियां उन रक्तिम पंजों से बचने के लिए इधर-उधर फड़फड़ाती हुई भागती रहीं. अंततः उनमें से एक को कुत्तों ने दबोच लिया. उधर ख़ूनी दरिंदे मोहम्मद रियाज़ की जवान बेटी को उठा कर बाहर निकल रहे थे.

✍ आर.एन-७, महेश नगर, अंबाला छावनी-१३३००१. मो. : ९४१६२५०२७९.

चोपड़ा ने उसके क़ाग़जों पर हस्ताक्षर कर दिये. कैमरे चमके. चोपड़ा ने मुस्करा कर फिर उससे हाथ मिलाया. 'हैव अ सेफ जर्नी.'

'थैंक यू.'

कैमरे फिर चमके. लिखने वाले की क़लम ने क़ाग़ज पर कुछ अक्षर और उकेरे.

वह कमरे से बाहर हो गया. मुड़ कर देखा. उसकी समझ में आया कि पूरी वीडियो रिकॉर्डिंग चल रही थी. कल के अख़बार में यह खबर होगी. उसकी पीठ और चोपड़ा का चेहरा होगा.... भाड़ में जाये!

उसे शाम चार बजे वीज़ा मिल गया था. भूखा- प्यासा और थका हुआ वह परिवार के साथ अपनी फ़्लाइट पकड़ने के लिए एयर पोर्ट भागा था.

शाम सात बजे विमान में चढ़ने के बाद उसने गोपा को फ़ोन किया — 'हम बोर्ड कर गये हैं.'

'लाश से दुर्गंध उठने लगी थी. हमने मां का संस्कार कर दिया. बाक़ी तो तुम आ ही रहे हो.'

शुभेंदु अपनी कोने की सीट पर बैठा, आधे चेहरे को रूमाल से ढंके, विमान की खिड़की की तरफ़ मुंह किये, फूट-फूट कर रो रहा था!

550 Normandy St,
Apt 1521,
Houston , TX 77015-3436
ई-मेल : ila_prasad1@yahoo.com

JMD

JAI MATA DI

Real Estate
Property consultant

Rakesh Sharma

9930400500/ 9870248488

BUY/SELL/LEASE

RESIDENTAL/COMMERCIAL/INDUSTRIAL LAND

CHEMBUR/GHATKOPAR/WADALA/POWAI/THANE/NAVI MUMBAI

Shop No. 2, Runwal Grand,
Nr. Dhanlaxmi Bank, 15th Road,
Chembur(E),
Mumbai-400071.

Email : infojaimatadi@gmail.com
www.jaimatadirealestate.com

कहानी

....और जल गया उसका सर्वस्व

✍ उषा राजे सक्सेना

कैसे समय गुज़र जाता है! कपड़े बदलते हुए सचिन सोच रहा था. अभी पांच वर्ष पूर्व ही तो वह शोबना से पहली बार गुलिस्तां इंडियन रेस्तरां में मिला था.

शोबना 'बॉलिवुड सिंगर' थी. हर शनिवार को वह रेस्तरां के मुख्य भोजन कक्ष में हिंदी सिनेमा के गाने गिटार पर बजा कर गाते हुए मेहमानों का मनोरंजन करती थी. शोबना एक ऐसी गायिका थी जिसे हिंदी नहीं आती थी पर हिंदी गाने वह जिस प्रवीणता से गाती थी उससे लगता ही नहीं था कि वह हिंदी भाषी नहीं है. उसके गीतों में जहां एक ओर गीता दत्त का चुलबुलापन और उमंग थी तो दूसरी ओर उसकी ग़ज़लों में नूरजहां की संजीदगी, दर्द और कशिश थी. शोबना के चाहनेवालों की सूची में हर तरह के लोग शामिल थे — उसमें मालिकों, ग्राहकों के अतिरिक्त वेटर और रसोई घर में सारे दिन बर्तन-भांडे साफ़ कर, सब्ज़ी काटता वह स्वयं भी था.

उन दिनों सचिन और उसका साथी गोपाल दोनों ही उन तमाम इल्लीगल इमिग्रैंट में से थे जो लंदन के रेस्तराओं में काम करते हुए गुमनाम ज़िंदगी जी रहे थे. दोनों हर वक़्त डरे-डरे, सहमे, दब-छुप कर रेस्तरां के निचले तल्ले में बने रसोई-घर में रहते थे. गोपाल खाना पकाता था. सब उसे ख़ानसामा कहते थे और वह प्याज़-लहसुन और सब्ज़ी वग़ैरह काटने के साथ बर्तन भांडे धोने का काम करता, एक अदना नौकर था. उसकी कोई पहचान नहीं थी. फिर भी वह संतुष्ट था कि कम से कम उसे रहने और खाने–पीने की सुविधा तो मिली हुई थी. पहले की तरह अब वह सड़कों पर लावारिस ज़िंदगी तो नहीं बिता रहा था. अपने अंदर पलते डर के कारण, वह चाहता था कि लोग उसे जितना कम जानें उसके लिए उतना ही अच्छा है.

सचिन के दिलो-दिमाग़ में ग़ैर क़ानूनी होने का आतंक हर वक़्त छाया रहता था. सबसे ज़्यादा डर उसे लंदन की पुलिस का लगा रहता था कि कहीं वह पकड़ा गया तो बस जेल में बंद दम तोड़ता नज़र आयेगा. इसलिए वह हमेशा ख़ामोशी की चादर ओढ़े रहता. कभी कोई बात करता तो बस 'हां, ना' में जवाब देता. मल्होत्रा साब ने वैसे भी कान उमेठ और थप्पड़ मारकर उसे ख़ास हिदायत दे रखी थी कि अगर उसने ज़रा भी चीं-चपड़ की तो वे उसे सीधे थाने का रास्ता दिखा देंगे. गोपाल की और बात थी. वह खाना पकाने में माहिर था. मल्होत्रा उसे किसी क़ीमत पर खोना नहीं चाहता था. वैसे भी उसने गोपाल से कह रखा था कि अगर वह ठीक से काम करेगा तो वह उसकी शादी किसी स्थानीय लड़की से करा कर उसे लीगल करा देगा. पर उस जैसे नौकर टाइप लौंडे तो कीड़े–मकोड़ों की तरह सारे लंदन में बजबजाते फिरते रहते हैं. एक गया और दूसरा आया.

ऊपर फ़्लोर पर काम करने वाले वेटर जब ऑर्डर देने निचले तल्ले में आते तो अक्सर शोबना के रूप और गाने की प्रशंसा ख़ानसामा गोपाल से करते, 'यार यह जो नवी आइटम आयी है न एकदम कटरीना कैफ़ है. तुझे पता है उसे हिंदी नहीं आती है, पर हिंदी फ़िल्मी गाने एकदम टच्च गाती है.' 'हैं! क्या बोला?' गोपाल चकित हो कहता, 'वही तो.... साली, आधी इंडियन है. मां गोरी और बाप गुज्जू. ख़ूबसूरत तो ऐसी कि जो देखे वह घायल!' तो दूसरा कहता, 'साली, खाने पर

उषा राजे सक्सेना

२२ नवंबर १९४३ (गोरखपुर, उ. प्र.), स्नातकोत्तर- अंग्रेज़ी साहित्य- गोरखपुर वि.वि. - ई.एस.एल- लंदन.

लेखन : *प्रतिष्ठित कथाकार उषा राजे सक्सेना दशकों से, कहानियों के साथ-साथ कविताओं, ग़ज़लों, निबंधों एवं समकालीन रपटों के लिए भी चर्चित हैं. उषा जी की रचनाओं का मूल स्त्रोत ब्रिटेन भूमि पर बसे भारतीयों की विडंबनाओं और उनकी बदलती मानसिकताओं की अभिव्यक्ति है.*

यू. के. की प्रसिद्ध हिंदी पत्रिका 'पुरवाई' की सह-संपादिका, 'यू.के. हिंदी समिति' की उपाध्यक्ष, 'साउथ लंदन विमेंस गिल्ड ऑफ़ हिंदी राइटर्स' की संस्थापक-संरक्षक. उषा राजे सक्सेना यू. के. में होनेवाले लगभग सभी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक कार्यक्रमों की धुरी रही हैं.

आपकी कविताएं ओसाका वि.वि. (जापान) के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं. पुस्तक 'मिट्टी की सुगंध' एवं 'वाकिंग पार्टनर' पर कुरुक्षेत्र और महर्षि दयानंद वि.वि. (रोहतक) के छात्रों ने एम. फ़िल किया. कहानी 'वह रात' मेरठ के 'चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय' और कहानी संग्रह 'वह रात और अन्य कहानियां' महर्षि दयानंद वि.वि. (रोहतक) के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है. कई कहानियों का अनुवाद पंजाबी, गुजराती, तमिल और अंग्रेज़ी में.

प्रसिद्ध गायिका मिथिलेश तिवारी ने आपकी ग़ज़लों को धुन में बांध कर, 'कोई संदेसा न आया' के नाम से सी. डी. को दिल्ली की 'अक्षरम' संस्था के कार्यक्रम में लॉन्च किया.

सम्मान एवं पुरस्कार : *कहानी 'विरासत' युवा लेखन पुरस्कार-१९६२, 'नॉट सो साइलेंट'- १९९५ (यू. के.)*

'विदेशों में हिंदी साहित्य-सेवा, प्रचार प्रसार सम्मान' उत्तर-प्रदेश, हिंदी-संस्थान- लखनऊ-२००४, बाबू गुलाब राय-पुरस्कार, ताज-महोत्सव (आगरा), 'डॉ. हरिवंश राय बच्चन पुरस्कार'- भारतीय उच्चायोग (लंदन). चेतना साहित्य परिषद सम्मान (लखनऊ).

प्रकाशित कृतियां : *१.'इंद्रधनुष की तलाश में' (कविता संग्रह, रस वर्षा सम्मान- बनारस), २.'विश्वास की रजत सीपियां' (कविता संग्रह), ३.'क्या फिर वही होगा' (कविता संग्रह), ४. 'प्रवास में' (कहानी संग्रह) ५.'वाकिंग पार्टनर' (कहानी संग्रह- पद्मानंद साहित्य सम्मान-कथा यू.के.), ६.'वह रात' और अन्य कहानियां (कहानी संग्रह), ७.'ब्रिटेन में हिंदी'- (प्रवासी सम्मान, म. प्र.), ८.मिट्टी की सुगंध- कहानी संग्रह, संपादन. ९.'देशांतर' काव्य संग्रह- संपादन.*

कहानी 'क्लिक' की टेली-फ़िल्म, मुंबई दूरदर्शन, इंडियन क्लैसिकल श्रंखला में सम्मिलित.

संप्रति : *अवकाश प्राप्त शिक्षक, स्वतंत्र-लेखन.*

रुकती ही नहीं 'टेक-अवे' ले जाती है वर्ना तू भी देख लेता.'

सचिन ने भी सुना पर चुप रहा. शोबना के गानों ने तो वैसे भी उसके दिलो दिमाग़ पर कब्ज़ा कर रखा था. सारी बातें सुनता हुआ भी वह हमेशा की तरह चुप, अपने काम में लगा रहा. वेटर लोग उसे अपनी बातचीत में शामिल नहीं करते. रोज़ शाम को आठ बजे के बाद शोबना के गाये गानों की स्वर लहरी सरकते हुए निचले तल्ले तक आती थी. उस समय वह सब कुछ भूल कर तन्मयता से गानों की धुन पर सलाद, आलू, प्याज़, टमाटर और हरी मिर्च काटते हुए शोबना के गाये गीत सुन बचपन की सुरम्य गलियों के चक्कर लगाने लगता.

वे बहुत कठिन और अंधकारमय दिन थे. मल्होत्रा साब ने सख़्ती से कह रखा था कि वह काम ख़तम कर रात को ख़ानसामा गोपाल के साथ दिखावे के लिए रेस्तरां के मुख्य द्वार से बाहर निकल कर थोड़ी देर इधर-उधर टहल-घूम कर, चुपचाप रेस्तरां के निचले तल्ले के पिछले दरवाज़े से अंदर आकर सो जाया करे. वह भी जानता था कि ज़रा सी भी लापरवाही पुलिस को सुराग दे सकती थी. पुलिस-रेड के तमाम क़िस्से वह ग्राहकों द्वारा छोड़े गये अख़बारों में पढ़ा करता था.

रोज़ रात काम ख़त्म करके सबकी नज़रों से बचते हुए दोनों अंधेरे में छुपते-छुपाते अंदर आकर उस बीहड़ अकेलेपन से जूझते जो उनके अवैध होने के कारण उन्हें निगलता जा रहा था. चुपचाप एक धीमी सी बत्ती जलाकर हल्की आवाज़ में वीडियो लगा कर कोई हिंदी फ़िल्म देखते या सनराइज़ रेडियो पर गीत-ग़ज़ल सुनते. जब नींद आती तो सब्ज़ी और गोश्त काटने वाली टेबल पर अख़बार बिछा, उदास अपनी क़िस्मत और अकेलेपन को कोसते थक कर सो जाते.

गोपाल चुप्पी तोड़ने लिए अक्सर कहता, 'यार इस कुत्ती ज़िंदगी और अकेलेपन को ढोने में अगर यह फ़िल्मों का

अमृत और गानों का सोम रस हमें न मिलता तो हम लोग अपने देश और परिजनों को याद करते-करते गले में फांसी लगा कर जाने कब के अल्ला मियां के प्यारे हो चुके होते.'

रसोईघर के उस अकेलेपन में गोपाल उसे अच्छा ख़ासा नौटंकी लगता था, वह हंस पड़ता. प्यार से उसके गाल नोचते हुए कहता — 'हां यार, तू ठीक कहता है. भला हो इस मल्होत्रा का जो उसने हमें यह पुराना वीडियो रिकॉर्डर और टेलीविज़न दे दिया है. ये फ़िल्में ही तो हैं जो हमें ज़िंदा रखती हैं. वर्ना यह सन्नाटा, यह अकेलापन तो हमें कब का निगल चुका होता.'

'हां यार ! जन्माष्टमी के दिन जब अपन मंदिर गये थे न, वहां भगवान की मूरत के दर्शन में भी वह सकून नहीं मिला था जो 'जय श्री कृष्ण' सीरियल देख कर मिलता है.' और गोपाल उसे हंसाने के लिए बेलन पकड़, कृष्ण की मुद्रा में खड़ा हो जाता. पर तब तक वह भावुक हो चुका होता, 'यार! बॉलिवुड के ये गीत हमारे जीवन में शायद वही मायने रखते हैं जो गिरमिटियों के जीवन में राम चरित मानस और हनुमान चालीसा रखते थे. फ़िल्में और फ़िल्मी गाने हमारे दिलों में रस की फुहारें बरसाती देश को हमारे दिल में बसाये रखती हैं.'

कहते-कहते सचिन को अम्मा याद आ जाती जो उसे गिरमिटिया मज़दूरों की कथा-व्यथा सुनाते हुए उसे विदेश जाने से रोकती रही थीं. अम्मा ने रोते-रोते, सिसकियों के बीच उसे कई बार बताया था कि उसके कई पुरखे अंग्रेज़ों के ज़माने में भुखमरी और ग़रीबी के कारण पानी के जहाज से डेढ़-पौने दो सौ वर्ष पूर्व फीजी और मॉरीशस गये और फिर कभी नहीं लौटे. अम्मा के कहे का क्या कोई असर पड़ा उस पर? इधर अम्मा की तेरहवीं हुई और उधर वह विज़िटर वीज़ा लेकर क़िस्मत आजमाने लंदन पहुंच गया. कई बार उसे ख़ुद पर ग़ुस्सा भी बहुत आता था, पर वह कर भी क्या सकता था. अम्मा के साथ सारे मोह-बंधन ख़त्म हो गये. जो कुछ घर में था, बेच-बाच कर आ गया विज़िटर वीज़ा पर लंदन. अब तो वह फ़रार हो, ऐसे मकड़ जाल में फंस चुका था जिसमें से निकलना असंभव था.

क्या मिला यहां आकर उसे ग़रीबी! बिछड़न! सूनापन! डर! घबराहट! दुनिया में कुछ भी नहीं बदला, वह सोचता. आज भी वही, सब कुछ वैसा ही है बस स्वरूप बदला है. ग़रीबी, भुखमरी और शोषण जो पहले था अब भी है. पहले गोरे-अंग्रेज़ शोषण करते थे और अब अपने ही देसी बिज़नेसमैन, फ़ैक्ट्री, गोदामों और रेस्तरां में अपने ही लाचार देशवासियों का दोहन करते हुए उन्हें गुमनाम अंधेरी दुनिया में रहने को मज़बूर कर देते हैं. सचिन को इंगलैंड आये पांच वर्ष हो चुके थे पर अभी भी वह अवैध का अवैध ही रहा. मल्होत्रा भी कम घाघ नहीं था उसने भी वही किया जो सबने किया था. पुलिस और क़ानून से डरा उसने उन्हें गुलिस्तां के रसोईघर में क़ैद कर रखा था. यूं वह हर दिन हनुमान जी के आगे अगरबत्ती जला कर ईश्वर का शुक्र मनाता कि इस क़ैद में कम से कम पेट भर ज़ायकेदार खाना और जाड़े की कड़कड़ाती सर्दियों में सोने को गर्म रजाई तो मिली हुई है.

वह उन दिनों को भूल जाना चाहता है जब वह नया-नया आया था. पर यादें हैं कि किसी वफ़ादार कुत्ते की तरह वक़्त-बेवक़्त सूंघती हुई आ लपकती हैं. क्या-क्या दुःख नहीं देखे उसने, हवाई जहाज में मिले उस धूर्त मित्तल ने किस चालाकी से उसके ढाई सौ पौंड डकार लिये. बहला-फुसला कर मित्तल उसे अपने घर ले आया, दिलासा दिया कि उसे नौकरी दिलवा देगा. नौकरी तो दिलवायी नहीं उसने उल्टा रोज़ सुबह सात बजे घर से निकाल बाहर कर देता कि जा नौकरी खोज. दिन भर ठोकरें खा, शाम को सात बजे जब वह घर आता तो मित्तल की बीवी भुनभुनाती-तन्नाती बेक्ड-बीन्स और ब्रेड के टुकड़े उसके आगे रख देती. उधर मित्तल बोर्डिंग और लॉजिंग के नाम पर छाती पर खड़े होकर बीस पौंड हर हफ़्ते निकलवा लेता. जब उसका पैसा ख़तम हो गया तो उसने उसकी अटैची सड़क पर रख दी. कितना रोया और गिड़गिड़ाया था वह पर उसका दिल नहीं पसीजा. धमकाते हुए बोला, 'चले आते हैं साले मुंह उठाये यहां. न हुनर न तमीज़, न कोई डिग्री. जैसे लंदन में ख़ैरात बंटता हो. भाग यहां से, वर्ना पुलिस को इनफ़ॉर्म कर दूंगा कि तेरे इरादे ठीक नहीं हैं.'

वह भौचक्का, उन्हें देखता रहा. जब तक उसके पास पौंड थे किस प्यार से बातें करता था मित्तल. आज जब उसके पैसे ख़तम हो गये तो कैसे गरजते सुनामी से तेवर दिखा रहा था जैसे वह उसकी मज़बूरी जानता ही नहीं है. अब वह करे तो क्या करे? कहां जाये? वापस भारत जाने के सारे रास्ते बंद हो चुके थे. जेब में सिर्फ़ दस पौंड के चिल्लर! महीनों वह सीले हुए बिस्कुट खाते 'होमलेस' और ड्रग एडिक्टों के साथ कभी वाटरलू तो कभी चेरिंग क्रॉस स्टेशन के नीचे बनी पुलिया के नीचे अख़बार और गत्ते बिछा कर सर्दी, गर्मी और बरसात में सोया.

उस एक रात जब उसकी फटी जेब में एक भी पैसा नहीं था उसकी अंतड़ियां भूख से कुड़कुड़ कर रही थीं. वह रोटी के टुकड़ों के लिए किंग्स क्रॉस की गलियों में गुलिस्तां रेस्तरां के

पीछे बने कमर्शियल कूड़े के बिन में खाने-पीने की चीज़ें टटोल रहा था कि तभी रसोई का कचरा फेंकने आये गोपाल की नज़र उस पर पड़ी. गोपाल को देख कर, डर से उसका चेहरा पीला पड़ गया था जैसे उसने भूत देख लिया हो. पकड़ा गया! बस अब उसे जेल हो जायेगी! गोपाल ख़ुद ऐसे दिन गुज़ार चुका था. भोला-सा देसी चेहरा देख उसे दया आ गयी. इधर-उधर देखते हुए गोपाल फुसफुसाया. 'अरे! ओ छोकरे यहां क्या कर रहा है? घर से भागा हुआ कोई बिगड़ैल है क्या?' जाने क्या था गोपाल के चेहरे पर कि वह सच उगल गया. मिमियाता हुआ हाथ जोड़ कर बोला, 'मेरे भाई मुझ पर दया कर. मैं भागा हुआ नहीं हूं, विज़िटर वीज़ा पर आया था, एक आदमी ने धूर्तता से मेरा सारा पैसा निकलवा लिया और मुझे सड़क पर डाल गया.'

गोपाल को उस पर दया आ गयी. वह रसोईघर में अकेला रहता–रहता तंग आ गया था. उसे अपना चचेरा भाई बताते हुए मल्होत्रा के पास लाया और उसी रात, उसके साफ़-सुथरे, भोले चेहरे को देख, मल्होत्रा ने उसे दस पौंड हफ़्ते पर बर्तन-भांडे धोने के लिए रख लिया. दस में से पांच पौंड मल्होत्रा किराए के काट लेता था. वह तो उसकी बस क़िस्मत अच्छी थी जो जल्दी ही उसकी मुलाक़ात शोबना से हो गयी और वह मल्होत्रा के चंगुल से बाहर निकल आया.

उस दिन एक वेटर को खाना परोसते वक़्त खांसी आ गयी. ग्राहक ग़ुस्से वाला था उसने मैनेजर, रनवीर मल्होत्रा की वो ऐसी-तैसी की कि वे भागे-भागे रसोई में आये, सामने उन्हें सचिन दिखा, बोले 'चल, मुंडे वेटर के कपड़े पा, होर मेरे साथ ऊप्पर चलकर खाना सर्व कर'. उसने कभी खाने की सर्विस नहीं की थी. वह मिमियाया, 'पर साब मैंने तो आज तक कभी खाना सर्व नहीं किया है. मैं कैसे....' मल्होत्रा ग़ुस्से से बोला — 'ओए! डरता क्यूं है साले. मैं साथ हूं न. उठा ट्रे, होर चल. चेहरे पर ख़ुशी ला और मुस्करा.' वह डरता हुआ चेहरे पर बनावटी मुस्कराहट चिपकाये ऊपर खाना सर्व करने गया था. उस ग़ुस्सैल ग्राहक को अपने फ़िज़ूल ग़ुस्से पर ग्लानि हुई या उसे उसकी सर्विस पसंद आ गयी, उसे आज भी नहीं पता है. चलते-चलते उसने उसके हाथ पर पांच पौंड की टिप रख दी. बस उस दिन के बाद जब कभी कोई इमरजेंसी होती तो वह लाल कोट और 'बो' लगा कर ऊपरी तल्ले में कभी वेटर तो कभी बार-मैन का काम करता. बार में ड्रिंक बनाते हुए जब उसने पहली बार शोबना को हाथ में माइक लिये सिंथेसाइज़र से निकली धुन पर गीत गाते देखा तो उसका दिल ज़ोरों से धड़क उठा था.

ऐसे में एक दिन उसे लगा कि शोबना को शायद हल्का सा ज़ुकाम है. उसकी आंखें शबनमी और नाक सुर्ख़ हो रहे थे. सचिन के मन में जाने क्या आया कि गर्म पानी में ब्रांडी डाल कर शोबना को पकड़ा आया. उस रात जब सारे वर्कर खाने बैठे तो उसने शोबना के आगे गर्म पानी का जग रखते हुए कहा — 'मुझे लगा कि शायद आपको सर्दी लग गयी है इसलिए ठंडे पानी के बजाय आपके लिए गुनगुना पानी का जग लाया हूं.' शोबना ने 'थैंक्स' कहते हुए उसे अपनी बग़ल वाली कुर्सी पर हाथ पकड़ कर बैठा लिया.

रेस्तरां के बंद होने का समय हो रहा था. सारे वेटर जा चुके थे. सचिन किचन का काम जल्दी-जल्दी समेट, कोट पहन रेस्तरां के बाहर थोड़ा घूम-फिर कर पिछले दरवाज़े से अंदर जाने के लिए मुड़ने ही वाला था कि शोबना उसके बग़ल में धीरे से आकर ख़डी हो गयी. वह चौंका, पर फिर संभल गया. वह शोभना की ख़ुशबू पहचानता था. 'मैं.... शोबना, अपना नाम तो बता मेरे शुभचिंतक.' शोबना ने हल्की हंसी के साथ कहा था.

'सचिन, जी मुझे सचिन कहते हैं.'

'मैं यहीं पास की पांचवीं गली टायरलेन में रहती हूं. तू मुझे घर तक छोड़ देगा सचिन', उसने अपने हाथ में पकड़ा खाने का बैग सचिन को पकड़ाते हुए बिना लाग लपेट के कहा. 'जी, ज़रूर, मैं आपका फ़ैन हूं जी. हर शनिवार को आपकी आवाज़ का इंतज़ार रहता है.' 'सच! तो फिर आज से मैं तेरी फ़ैन... मेरे यार!' रात के अंधेरे में, बिजली की हल्की रोशनी में वह शोबना के चेहरे पर आये उस कृतज्ञ प्रेम प्रस्ताव को पढ़ गया जो शायद दिन की रोशनी में वह कभी न पढ़ पाता. गोपाल ने भी उसकी बाहों में चुटकी काटते हुए इशारा किया, 'जा, उसे घर पहुंचा आ.'

....और फिर वह उसके साथ चल पड़ा. शोबना सारे रास्ते खिल-खिल करती उससे लेटेस्ट इंडियन फ़िल्मों की बातें करती रही. बीच-बीच में गानों की कुछ रोमांटिक पंक्तियां भी गुनगुना जाती. उसे याद है किस तरह उस दिन उसके बदन में ठंडी और गर्म फुरहरियां उठ और गिर रही थीं. थोड़ी देर में शोबना का घर आ गया. दोनों देर तक बाहर खड़े, पेड़ के नीचे बारिश की झिर-झिर से बेख़बर बतियाते रहे. बातें थीं कि ख़तम होने को नहीं आ रही थीं. चलते-चलते शोबना बोली — 'तो फिर कल मिलते हैं, सचिन. डेढ़ बजे, 'लंदन आई' के नीचे टेम्स नदी के किनारे. देख! हम दोनों की रुचियां कितनी मिलती हुई हैं. तुझसे बात करके अभी मेरा दिल नहीं भरा है.' कहते हुए शोबना ने उसे हल्का–सा

आलिंगन दिया. वह नर्वस, बुत खड़ा रहा. शोबना उसकी हालत देख कर मुस्करायी, उसका हाथ पकड़ कर बोली — 'देख सचिन! तूने मेरे मन को छू लिया है. मैं तुझसे दोस्ती करना चाहती हूं. अपने दु:ख दर्द तुझसे शेयर करना चाहती हूं और तेरे दु:ख-दर्द से वाक़िफ़ होना चाहती हूं.'

'सच! शोबना जी, पर मल्होत्रा साब को यह सब ठीक नहीं लगेगा. कहीं किसी ने देख लिया तो?' 'मतलब?', 'आप नहीं समझेंगी!', ' देख! सचिन, तू स्मार्ट है. एक अच्छा बारमैन और वेटर है. अपने को पहचान. तू मल्होत्रा से इतना मत डर. वेटर की नौकरी तुझे बहुतेरी मिलेंगी. और फिर ज़िंदगी भर तू वेटर थोड़े ही बना रहेगा. बोल आयेगा न.' 'म...मैं....' कुछ कहता हुआ वह चुप हो गया फिर बोला —'हां....आ... आऊंगा, शोबना जी.'

जब वह वापस आया तो शोबना के प्रेम प्रस्ताव के कारण कुछ घबराया हुआ था. गोपाल के पूछने पर वह कुछ नर्वस–सा हकलाकर बोला, 'शोबना ने कल मिलने को 'लंदन आई' के नीचे बुलाया है.' गोपाल कुछ देर गहराई से सोचता रहा फिर बोला — 'देख! तू घबरा मत, सचिन. तू कल शोबना से मिलने जायेगा.' आगे उसने उसे गले से लगाते हुए पीठ थपथपा कर कहा — 'देख, मुझे समझ आ रहा है कि तेरी क़िस्मत बदल रही है. शोबना तेरी लेडी-लक है. वेटर के कपड़ों और पैंट-टाई जैसे आम कपड़ों से इंसान की पर्सनैलिटी में बड़ा फ़र्क आ जाता है. कल तू मेरा धूप का चश्मा और हुड वाला कोट पैंट-शर्ट के ऊपर पहन कर जायेगा फिर कोई माई का लाल तुझे नहीं पहचान पायेगा.'

और फिर तो ड्यूटी के बाद जब भी दोनों को समय मिलता, दोनों कहीं न कहीं मिल बैठते. शोबना चटर-पटर ख़ूब बातें करती. वह ख़ुद्दार और ईमानदार थी. तीन चार हफ़्ते बाद जब सचिन को पूरी तरह लगने लगा कि शोबना दिल की पूरी गहराई से उसे पसंद करती है तो उसने उसे बताया कि वह अवैध नागरिक है, इसलिए डरा-डरा और दब-छुप कर रहता है. वह नहीं चाहता है कि वह पकड़ा जाये, जेल जाये और फिर बेइज़्ज़त हो कर वापस देश पहुंच जाये, जहां अब उसका कोई नहीं है. यहां न तो उसके पास कोई रुपया-पैसा है न ही वह ज़्यादा पढ़ा लिखा है कि अपना केस लड़ सके. शोबना ने उसे तसल्ली देते हुए कहा कि वह कोई अकेला अवैध नागरिक नहीं है. इंग्लैंड में ढेरों हर जाति, रंग और नस्ल के अवैध नागरिक भरे पड़े हैं. सब कभी न कभी, किसी न किसी बहाने लीगल हो जाते हैं. वैसे भी यहां लीगलाइज़ होने के बहुतेरे तरीक़े हैं. फिर मैं तेरे साथ हूं न. मैं तो यहीं जन्मी और बड़ी हुई हूं. और उस रोज़ शाम को शोबना उसे अपने परिवार से परिचित कराने के लिए घर ले गयी.

शोबना का परिवार एक छोटे से ख़स्ताहाल फ़्लैट में उसके ममा, पापा, एक पैर से विकलांग छोटा भाई और शोबना की तीन महीने की नन्हीं बच्ची के साथ रहता था. यह बच्ची

कविता

नियति

✍ अशोक वशिष्ठ

लोकतंत्र की बहती गंगा में,
अंतराल के साथ
आ मिले हैं बहते नाले, बरसाती नदियां,
जिनकी ग़ंदगी के साथ चले आये हैं अनेक जंतु,
जिनमें शामिल हैं मगरमच्छ, घड़ियाल,
बहुत से मेंढक, बिच्छू और नाग,
टर्रा रहे हैं मेंढक, ताक में बैठे हैं मगरमच्छ,
चिंघाड़ रहे हैं घड़ियाल,
डंक उठाये बैठे हैं बिच्छू,
फन फैलाये विचर रहे हैं नाग,
सिर पर रखे प्रजातंत्र की टोपियां.
चिंतित हैं मछलियां,
अपनी प्रजाति की रक्षा के लिए,
उन्हें दिखाये जा रहे हैं सब्ज़बाग
ख़ुशहाली और अमन-चैन के,
मगर जानती हैं मछलियां
ये हैं सब रस्म अदायगी की बातें,
मौक़ा मिलते ही
अपने-अपने आकार के अनुरूप
सब लीलने लग जायेंगे उन्हें,
ले लेंगे उनकी क़ुर्बानी
लोकतंत्र के नाम पर
यही है उनकी नियति.

सी-६०८, सागर रेसीडेंसी,
सेक्टर-२७, नेरुल (पूर्व),
नवी मुंबई-४००७०६.
मो. ९८६९३३७६१८

शोबना का परिवार एक छोटे से ख़स्ताहाल फ़्लैट में उसके ममा, पापा, एक पैर से विकलांग छोटा भाई और शोबना की तीन महीने की नन्हीं बच्ची के साथ रहता था. यह बच्ची

शोबना के साथ हुए एक बलात्कार की उपज थी. शोबना को मज़बूरन उसे जन्म देना पड़ा. शोबना को बच्ची से घृणा थी. वह उसे उस नृशंस घटना की याद दिला देती थी जिसे वह भुलाना चाहती थी. उसे बच्ची को देख कर अपने आप से घिन आने लगती थी. काफ़ी दिनों वह डिप्रेशन में रही. अभी भी उसका इलाज चल रहा था. इसलिए बच्ची को शोबना की मां फिलिप्पा पाल रही थी. बच्ची उसी के कमरे में सोती थी.

जिस समय शोबना, सचिन को लेकर घर आयी, शोबना का पिता जिगनेश और भाई आंद्रे काम पर जाने के लिए तैयार खड़े बस सचिन और शोबना से मिलने के लिए रुके हुए थे. जिगनेश टेस्को सुपर मार्केट में सेक्यूरिटी गार्ड और विकलांग आंद्रे सेक्यूरिटी टी.वी. पर वाचमैन लगा हुआ था. इन दिनों उनकी रात की ड्यूटी थी. वे सचिन से बड़ी गर्मजोशी से गले मिले और कहा कि उसकी दोस्ती ने शोबना को नयी ज़िंदगी दी है. अब वह ख़ुश रहती है. हर शाम, घर में उसकी ही चर्चा होती है. शोबना ने उसके बारे में सबको इतना कुछ बता दिया है कि वह उनके लिए अपरिचित नहीं है. उन्होंने सचिन को अगले रविवार को फिर घर आने को कहा जब वे साथ बैठ कर खाना खायेंगे और ढेरों गपशप करते हुए तबला, हारमोनियम और गिटार पर ढेरों गीत गायेंगे....

उनके जाने के बाद फिलिप्पा ने सचिन और शोबना के लिए टेबल पर चाय रखते हुए कहा, 'तुम लोग चाय पियो तब तक मैं रसोई समेट, बेबी का दूध बनाकर लाती हूं.' नन्हीं बेबी वहीं छोटे से पालने में सो रही थी. 'ओह! कितनी प्यारी बेबी है. इसका रंग तो बिल्कुल तुम्हारी तरह सुनहरा और आंखें शरबती हैं. मैं इसे गोद में लेना चाहता हूं शोबना.' 'तो उठा लो.' शोबना ने अनिच्छा से कहा, 'जगाना तो होगा ही, मां दूध लाने गयी है. वर्ना सोती रहेगी.' गोद में उठाते ही बच्ची जग गयी और टुकर-टुकर सचिन को देखने लगी. सचिन को बच्ची पर बहुत प्यार आया वह उसे लेकर कुर्सी पर बैठ गया. फिर जब फिलिप्पा दूध की बोतल लेकर आयी तो वह बोला — 'मेरा जी इसे गोद से उतारने को नहीं कर रहा है. लाइए इसे आज मैं दूध पिलाने की कोशिश करता हूं.' बच्ची भूखी थी. बोतल मुंह से लगाते ही गटर–गटर दूध पीने लगी. 'इसका नाम क्या है?' 'कोई नाम नहीं है इस लावारिस का.' शोबना ने उदास और रूखे स्वर में कहा. 'क्यूं? बच्चों के जन्म में उनका कोई दोष नहीं होता है शोबना. वे तो भगवान का वरदान होते हैं. तो फिर आज से इस प्यारी सी गुड़िया को हम जिया कहेंगे. इसने मेरा जी जो मोह लिया है.'

उस शाम फिलिप्पा ने अनुभव किया कि पूरे एक वर्ष बाद शोबना के चेहरे पर एक सहज चमक आयी है जो उस हादसे के बाद से उसके चेहरे से ग़ायब हो गयी थी. फिलिप्पा गहन दृष्टि वाली मां थी उसने सचिन से कहा, 'बाहर मूसलाधार बारिश हो रही है. रात भी काफ़ी गुज़र चुकी है. आज तू यहीं रुक जा. आंद्रे का सोफ़ा-बेड ख़ाली है.' सचिन के रुक जाने से उस रात शोबना और उसके परिवार को ऐसी ख़ुशी मिली कि उन्होंने शोबना को पूरी तरह आश्वस्त करने के लिए जल्दी ही एक वकील द्वारा होम ऑफ़िस में सचिन का केस लगवा दिया. शोबना का केस चूंकि सच्चा था और वकील शोबना के विषम जीवन-संघर्ष से पूरी तरह परिचित था. उसने केस इस तरह कोर्ट में रखा कि शोबना को जल्दी ही सचिन से विवाह की इज़ाज़त मिल गयी और सचिन जिगनेश मनचंदा के परिवार का स्थायी सदस्य बन गया.

फिलिप्पा के इस छोटे से दो कमरे के फ़्लैट में अधिक जगह नहीं थी. जब दिन की ड्यूटी होती तो रात में आंद्रे सोफ़ा-बेड पर सोता था. बच्ची शुरू से फिलिप्पा और जिगनेश के कमरे में पालने में सोती थी. शोबना के छोटे से कमरे के सिंगल बेड पर अब सचिन भी सोता था. शोबना के बलात्कार पीड़िता और सिंगल मां होने के कारण सदर्क कॉउंसिल ने उसे फ़्लैट देने का आश्वासन दिया हुआ था. शोबना ने अर्ज़ी लगा रखी थी पर कॉउंसिल की आर्थिक विपन्नता के कारण अब तक उसकी बारी नहीं आयी थी. जिया एक वर्ष की होने जा रही थी. पालना उसके लिए छोटा पड़ने लग गया. नन्हीं जिया को उस छोटे से पालने में सोता देख जब स्वास्थ्य विभाग की नर्स ने शिक़ायत की तो कॉउंसिल को मजबूरन लाइन तोड़, शोबना और सचिन को लिन कोर्ट नाम की एक पुरानी खस्ताहाल बिल्डिंग में फ़्लैट देना पड़ा. लिन कोर्ट में पूर्वी यूरोप और थर्ड वर्ल्ड से आये इमिग्रैंट और अभावग्रस्त लोगों को रिहाइश दी जाती थी.

शादी के बाद सचिन को भी वैध नागरिक का स्टेटस मिल गया और वह एक सरकारी फ़र्म में सेक्यूरिटी गार्ड लग गया. शोबना ख़ुशमिजाज़ थी उसकी सब पड़ोसियों से दोस्ती थी. जब शोबना रेस्ट्रां जाती तो उसकी पड़ोसन सिंथिया हर शनिवार को दो-तीन घंटे जिया और सिया की बेबी सिटिंग कर देती बदले में वह उनकी शॉपिंग वगैरह कर देती.

सचिन जिया से बहुत प्यार करता था. जब जिया ने उसे पहली बार 'डैडी' कह कर पुकारा तो वह उसे गोदी में लेकर बहुत देर तक बंदर की तरह उछलता, नाचता रहा था. उसने मोबाइल फ़ोन में जिया की आवाज़ भर ली और जब कभी

काम पर उसकी याद आती तो बड़े प्यार से उसे बार-बार सुनता. इसी बीच जिया की छोटी बहन सिया भी आ गयी थी.

उस दिन सुबह शोबना ने कब बिस्तर छोड़ा, सचिन को पता नहीं चल पाया. आम तौर पर सचिन और शोबना साथ ही उठते हैं. दोनों साथ ही बच्चों के कमरे में जाकर उन्हें जगाते हैं. फिर उनके नित्यकर्म शुरू होते हैं, जैसे बच्चों के नख़रे उठाना, उन्हें स्कूल के लिए तैयार करना, नाश्ता कराना वग़ैरह....वग़ैरह. सचिन अभी बालों पर हाथ फिरा कर आंखें मल ही रहा था कि गेंद सी उछलती पांच वर्ष की जिया हाथ में बर्थ-डे कार्ड लिये धप से आकर उसकी गोद में बैठ गयी. कार्ड को उसके चेहरे के पास लाते हुए बोली, 'हैपी बर्थ-डे डैडी, देखो मैंने ख़ुद तुम्हारे लिए बर्थ-डे कार्ड बनाया है.' कार्ड पर दो सींक जैसी लंबी टांगों पर एक अनगढ़ अंडा टिका था जिसमें दो मेंढक जैसी आंखें और गाजर जैसी लंबी नाक बनी हुई थीं. 'और मैंने भी...' कहते हुए छोटी बेटी, तीन वर्ष की सिया भी अपना कार्ड दिखाने लगी. 'ये आप हैं डैडी.' दो लकीरों पर रखा आलू जैसा टेढ़ा मेढा एक गोला जिसमें आंखों के लिए दो बुंदकियां यहां-वहां लगी हुई थीं. ख़ुद की ऐसी विचित्र तस्वीर देख कर सचिन की हंसी छूट पड़ी, बच्चे भी खिलखिलाते हुए उसके पेट पर बैठ कर गुदगुदी मचाने लगे. तभी शोबना चाय की ट्रे लेकर अंदर दाख़िल हुई, भौंहें नचाते हुए हंस कर बोली, 'हैपी बर्थ-डे डार्लिंग. देखा, बच्चों ने तुम्हारी कैसी सुंदर तस्वीर बनायी है....' शोबना जब हंसती है तो बहुत ख़ूबसूरत लगती है. ख़ासकर तब जब वह सचिन की खिंचाई करती है. सचिन और उसका परिवार देर तक हंसता और खिलखिलाता रहा. इन सबके बीच सचिन मन ही मन भगवान को धन्यवाद देता रहा कि ईश्वर ने कठिन से कठिन समय में भी उसे और उसके परिवार को असीम ख़ुशी के क्षण दिये हैं.

शोबना कहती रही — 'सचिन आज तुम्हारा जन्मदिन, तुम आज आराम करो.' पर सचिन नहीं माना. बच्चों और शोबना के साथ बिताया एक-एक क्षण उसे अमूल्य लगता है. वह दोनों शोर मचाते बच्चों को कंधे पर बैठा कर बाथरूम ले गया. उनके हाथ मुंह धुलवाकर रसोईघर में नाश्ता करने के लिए बैठाया फिर अपने चारों के लिए टोस्टर में टोस्ट लगा कर, कॉर्नफ़्लेक्स कटोरों में डालने लगा था कि तभी शोबना भी तैयार हो कर आ गयी. वह धुली-धुली, ताज़ी और खिली-खिली गुलाब जैसी दिख रही थी.

बच्चों को स्कूल ले जाते वक़्त चलते-चलते दरवाज़े पर रुक कर शोबना उसे आलिंगन देते हुए बोली, 'सचिन, आज तेरा जन्मदिन है. कल रात, ड्यूटी करके तू साढ़े तीन बजे आया. तेरी नींद अभी पूरी नहीं हुई है. अभी तो तू जाकर सो जा. साढ़े तीन बजे जब हम वापस आते हैं तो साथ मिल कर खाना बनायेंगे, खायेंगे और फिर तेरा बर्थ-डे मनायेंगे. और देख, जिया, सिया कैसी एक्साइटेड हो रही हैं.' फिर जिया, सिया का बैग कंधे पर ठीक से टांगते हुए उसके होठों पर चुंबन देते हुए बोली, 'सिंथिया कल तेरे लिए बर्थ-डे केक बना कर लायी थी. शाम को केक काटने के बाद ही काम पर जाना वर्ना सिया और जिया बहुत शोर मचायेंगी... प्लीज़, बर्तन सिंक में छोड़ देना. मैं शाम को आकर निपटा दूंगी.' शोबना रोज़ जिया को स्कूल छोड़कर, सिया की नर्सरी क्लास में टीचर की दो घंटे सहायता करती है फिर एक बजे अंजना साराभाई को बॉलिवुड गाने सिखाती है. साढ़े तीन बजे बच्चों को स्कूल से लेते हुए घर आती है. शोबना रोज़ उससे मिन्नतें करती है कि शाम का खाना वह बनायेगी पर सचिन को बच्चों और शोबना की पसंद का खाना बनाने में जो मज़ा मिलता वह उसे किसी और चीज़ में नहीं आता है. वह अपना सारा प्यार खाना बनाने में उड़ेल देता.

उस दिन भी शोबना के जाने के बाद सचिन ने थोड़ा आराम करने के बाद मशीन में से कपड़े निकाल कर बाल्कनी पर फैलाये फिर शाम का खाना बनाया. टेबल सजायी, उसे पता था बच्चों की ख़ुशी के लिए शोबना नन्हें नन्हें फ़ेयरी केक, जेली-बीन्स और फूल लेकर आयेगी. उसने मोमबत्तियों के साथ एक गुलदस्ता मेज़ पर रखा. साथ में वाइन ग्लास और रेड वाइन की बोतल खोल कर रख दी ताकि वाइन कमरे के तापमान पर आ जाये. बच्चों के ख़ुशी के लिए जन्मदिन की टोपियां, दो तीन गुब्बारे और सीटियां भी मेज़ की दराज़ से निकाल कर टेबल पर सजा दीं. दो-तीन घंटे बाद उसे अपनी ड्यूटी पर जाना होगा. उसने अपना सेक्यूरिटी गार्ड का यूनिफॉर्म निकाल कर बिस्तर पर रखा ही था कि जिया और सिया केक लिये हैपी बर्थ-डे गाते, शोर मचाती हुई घर में घुसी....

'लेट्स कट द केक, लेट्स कट द केक,' कहते हुए जिया और सिया शोर मचाते हुए बर्थ-डे वाली टोपी सिर पर लगा कर सीटी बजाते हुए गुब्बारे लेकर इधर-उधर दौड़ने और सोफ़े पर कूद-फांद करने लगीं. शोबना उन्हें शांत करने की कोशिश करने लगी पर सचिन ख़ुद उनके साथ बच्चा बनकर पकड़-छू खेलने लगा. 'ओ माई गॉड! जिया, सिया अगर तुम लोग इसी तरह धमा-चौकड़ी करते रहे तो कोई न कोई चीज़ आज ज़रूर टूटेगी.' शोबना की तेज़ आवाज़ सुनकर तीनों ख़ामोश हो गये. 'देखो मेरी बात सुनो, हम पहले खाना खायेंगे

फिर केक काटेंगे और फिर गिटार पर वह प्यारा सा गीत '...ज़िंदगी एक सफ़र है सुहाना, कल क्या हो किसने जाना...' गाते हुए डैडी को काम पर जाने के लिए विदा करेंगे, बाद में 'रेड राइडिंग हुड' की कहानी सुनते हुए सो जायेंगे और सुबह डैडी के वापस आने का इंतज़ार करेंगे...ठीक. 'यप्प' कहते हुए सब उस छोटी-सी मेज़ के इर्द-गिर्द आकर अपनी–अपनी कुर्सियों पर बैठ गये. समय भाग रहा था. इतनी देर में पांच बज गये. सात बजे सचिन को काम पर जाने को निकल जाना था.

छेड़-छाड़, शोर-शराबे और शरारतों के बीच खाना हुआ, जिया, सिया और सचिन ने मिलकर बर्थ-डे केक की बत्तियों पर फूंक मारी और केक काटा. हंसते-खिलखिलाते गीत गाते परिवार को प्यार से बाई-बाई करता हुआ सचिन लिफ़्ट में जाने के लिए मुड़ा ही था कि जिया उसका मोबाइल फ़ोन दिखाते हुए बोली — 'डैडी! आप अपना फ़ोन लेना तो भूल ही गये.'

'ओह! नटखट लड़की तूने इसे मेरी जेब से कब निकाल लिया.' उसने जिया को गोद में उठा कर माथे पर एक चुंबन जड़ा, इतने में सिया भी टैडी बीयर पकड़े हुए उसकी गोद में चढ़ने के लिए मचलने लगी.

शोबना ने सिया को गोद में उठाते हुए सचिन को भरपूर आलिंगन देकर कहा — 'वन्स अगेन हैपी बर्थ-डे डार्लिंग, सी यू सून. टेक केयर' और विदा का चुंबन देते हुए लिफ़्ट का दरवाज़ा बंद कर दिया. 'डैडी लुक्स स्मार्ट इन हिज़ ब्लू यूनिफ़ॉर्म. डसन्ट ही?' उसने जिया और सिया से कहा. 'डैडी इज़ द बेस्ट. ही इज़ द बेस्ट इन द होल वर्ल्ड.' दोनों बच्चों ने एक साथ कहा. शोबना जिया और सिया को सीने से लगाये सचिन के प्यार में सराबोर बच्चों के कपड़े बदल कर लोरियां गाकर सुलाने का प्रयास कर ही रही थी कि उसे ख़ुद भी गहरी नींद आ गयी.

उधर सचिन ने ऑफ़िस आकर अपना टाइम कार्ड पंच कर सी. सी. टी. वी. का स्क्रीन ऑन कर पूरे ऑफ़िस का निरीक्षण किया कि सारी खिड़कियां और दरवाज़े बंद हैं. कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं! पता नहीं क्यों आज उसे ऐसा लग रहा था कि कहीं कुछ ठीक नहीं है. ख़ुद को आश्वस्त करने के लिए उसने एक बार फिर स्क्रीन पर आंखें गड़ाकर देखा. बाहर निकल कर भी चारों ओर देखा — कहीं कुछ भी संदेहपूर्ण नहीं, साथ वाले सेक्यूरिटी गार्ड से फ़ोन पर पूछा वहां भी सब ठीक था.

यह मन आज इतना अस्थिर क्यों हो रहा है. थोड़ी देर वह मोबाइल फ़ोन ऑन कर शोबना और बच्चों की तस्वीरें देखता, उनकी रिकॉर्डेड आवाज़ें सुनता रहा. रात के साढ़े ग्यारह बज रहे थे जिया और सिया की खिलखिलाहट का ट्यून उसके फ़ोन पर बज उठा, फोन शोबना का था. डर और घबराहट से थरथराती आवाज़ में वह बोली — 'सचिन लगता हमारी इमारत में आग लग गयी है, मैं धुआं सूंघ रही हूं. बिजली भी चली गयी है.'

'ओह! माई गॉड, शोबना दरवाज़ा कस कर बंद कर लो ताकि धुआं अंदर न पहुंचे. मैं नाइन नाइन नाइन को फ़ोन लगाता हूं. और हां मोबाइल फ़ोन हर वक़्त साथ रखना.' सचिन ने कांपते हाथों से नाइन नाइन नाइन पंच किया. इमरजेंसी ऑपरेटर ने सचिन को आश्वस्त करते हुए बताया कि उन तक लिन-कोर्ट में आग लगने की ख़बर आ चुकी है. पांच फ़ायर ब्रिगेड लक्ष्य पर पहुंचने के लिए चल चुके हैं तीन और निकलने वाले हैं.

सचिन ने अपने साथ वाले ऑफ़िस के सेक्यूरिटी गार्ड और ऑफ़िस के आपात्कालीन विभाग को फ़ोन करके बताया कि जिस इमारत में वह रहता है उसमें आग लग गयी है और उसकी पत्नी और बच्चे आग की लपटों में घिरे हुए हैं वह घर जा रहा है.

उसने लपक कर टैक्सी पकड़ी और ड्राइवर से बोला — 'प्लीज़...प्लीज़ ज़रा तेज़ गाड़ी चलाओ. मेरा घर आग की चपेट में आ गया है.' वह जैसे ख़ुद से बात कर रहा हो 'अभी बस चार घंटे पूर्व ही तो मैं शोबना और बच्चों के माथे पर चुंबन दे कर शुभ-रात्रि कहते हुए ड्यूटी पर आया था और अभी–अभी मेरी शोबना ने फ़ोन पर बताया कि हमारी इमारत में आग लग गयी है. ओह! मेरा परिवार सातवीं मंज़िल पर है, आग छठी मंज़िल पर लगी है. माई गॉड! छठी मज़िल पर ही तो वे तमाम ख़ाली फ़्लैट हैं जो खस्ताहाल हैं जिनकी वायरिंग वग़ैरह उखड़ी पड़ी है जिनमें रहना ग़ैर-क़ानूनी है. पर कॉउंसिल आंखें मूंदे हुए है. बिल्डिंग में न तो आग बुझाने वाले यंत्र लगे हैं न ही पानी छिड़कने वाले फौहारे. तमाम ग़रीब माइग्रैंट परिवार कीड़े-मकोड़ों की तरह यहां बसे हुए हैं. प्लीज़, मुझे जल्दी से जल्दी घटना स्थल पर पहुंचना है ताकि मैं अपने परिवार को बचा सकूं. ओह गॉड! शोबना बता रही थी कि बिजली चली गयी है तो फिर लिफ़्ट कैसे चलेगी... फिर उन्हें बचाया कैसे जायेगा....' अभी सचिन यह प्रलाप कर ही रहा था कि शोबना का फ़ोन फिर आया, 'सचिन, मुझे ख़तरे का आभास हो रहा है. प्लीज़ हमें बचा लो. धुआं फर्श के सुराखों और दरवाज़ों के नीचे से और तेज़ी

लघुकथा

मेरा प्यार यही है !

✍ ज्ञानदेव मुकेश

बल्लू साहब अपने नौकर को हमेशा खरी-खोटी सुनाया करते थे. कभी मूड अच्छा भी होता तो नौकर से ऐसे बात करते मानो तैश में ही हों. मसलन, 'क्या रे रमुआ, चर्बी ज़्यादा चढ़ी है क्या? कह तो तेरा टेटुआ ही दबा दूं? पानी भरकर लायेगा या कि तेरी टांग तोड़ दूं? खाना ऐसा बनेगा रे? तेरी अम्मा क्या ऐसा ही जला खाना बनाती है? नासपीटे! हरामखोर!'

हैरानी की बात यह कि रमुआ पर इन जली-भुनी बातों का कोई विपरीत असर नहीं होता. बल्कि वह मंद-मंद मुसकुराने ही लगता और दिया हुआ हर काम कहीं ज़्यादा मुस्तैदी से करके ला देता. जैसे इन जहर-बुझी बातों से उसमें उल्टे ऊर्जा आ जाती हो.

समय बीतता रहा. एक दिन बल्लू साहब को अपने व्यवहार पर बड़ी खीज हुई. उन्हें लगा, उनका नौकर सब कुछ सहकर उन्हें माफ़ कर देता है, मगर ऊपरवाला उन्हें नहीं बख्शेगा. लिहाज़ा, उन्होंने इस खौफ़ से अपनी आदत बदल डाली. वे रमुआ से प्रेम की डली घोलकर बात करने लगे. शुरू में तो उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि उनके इस बदलाव का रमुआ पर क्या असर पड़ा है. पर उन्होंने जल्दी ही यह महसूस किया कि रमुआ अब कुछ बुझा-बुझा सा रहने लगा है. एक-दो दिन और बीतते रमुआ ऐसा दुखी रहने लगा मानो उस पर कोई विपदा आ टूटी हो. बल्लू साहब कुछ समझ नहीं पाये. उन्होंने रमुआ से बड़े सलीके से पूछा, ''रामू बेटा, क्या हुआ? तेरी अम्मा बीमार पड़ गयी है क्या?''

इतना सुनना था कि रमुआ बिसुर-बिसुर कर रोने लगा. उसने रोते-रोते पूछा, ''साहब, आप मुझसे खफ़ा हो का? मुझे काम से निकाले वाले हो का?''

बल्लू साहब ने हैरत से पूछा, ''तू ऐसा क्यों पूछ रहा है?''

रमुआ ने खुलासा किया, ''साहब, आप गाली देवे हैं तो वही प्यार लागे है, और अच्छे से बात कर रहे हो तो हमें बोहुत डर लाग रहा है. म्हारे से कोई ग़लती हुई है का?''

सच्चाई समझकर बल्लू साहब एकदम सकते में आ गये. उन्होंने ऊपर खुदा की तरफ़ हाथ उठाया और कहा, ''ऐ खुदा, माफ़ करना. मुझे इसकी ही प्यारी भाषा में बात करने दो.''

फिर उन्होंने रमुआ से कहा, ''रे साला, मुंह क्या देखता है? खाना क्या तेरी अम्मा निकाल कर देगी?''

इतना सुनना था कि रमुआ खिलखिला उठा और साहब के लिए खाना निकालने दौड़ पड़ा.

श्री आई एन मल्लिक का मकान, स्टेट बैंक के पास, शिवाजी कॉलोनी, पूर्णिया-८५४३०१ (बिहार). मो. ९४७०२००४९१

से अंदर आने लगा है. जिया और सिया खांस रही हैं.'

'मेरी जान! उपाय सोचो, उपाय! फ़ायर स्केप... ओह गॉड! उसकी तो सीढ़ियां टूटी हुई हैं. और वह दूसरे किनारे पर है.' वह जल्दी से बोला — 'तुम फ़ौरन बच्चों को लेकर बाथरूम में चली जाओ और बच्चों को नाक, मुंह और आंख पर रखने को फ़्लैनेल भिगो कर देना और सुनो बाथटब पानी से भर लेना. तौलिए गीले कर के सुराखों को ढंक देना. बच्चों को गीले तौलिए और चादरों में लपेट दो. धीरज रखो मेरी जान. मैं फ़ायर-ब्रिगेड और पुलिस से बात कर चुका हूं. प्लीज़... प्लीज़... वे तुम तक जल्दी ही पहुंच रहे हैं.' और वह पागलों की तरह टैक्सी से उतर कर लाल और नीली पट्टियों को तोड़ते हुआ आग लगी इमारत की ओर फ़ायर ब्रिगेडों, पुलिस कारों और ऐंबुलेंसों के बीच चिल्लाता हुआ भागा, 'बचाओ! बचाओ! मेरी पत्नी और बच्चे ७१ नंबर के फ़्लैट के बाथरूम में आग और धुएं में घिर गये हैं.' उसने एक फायर मैन को झकझोरते हुए कहा, 'प्लीज़...प्लीज़ मेरी पत्नी और बच्चों को बचाओ.'

'वे बेडरूम से बाथरूम में कैसे पहुंच गये. अभागे! हम तो बार-बार लाउडस्पीकर से घोषणा कर रहे हैं कि आप लोग जहां हैं वहीं रहें. बेडरूम से अधिकतर लोगों को निकाला जा चुका है. अब दक्षिणी हवा चल रही है. बाथरूम की तरफ़ से लोगों को बचाना मुश्किल है पर हम कोशिश करते हैं.'

'ओह! ओह!' कहते हुए सचिन ख़ुद को संभाले शोबना से लगातार बातें करता, उसे धीरज बंधाता रहा, 'जान! हिम्मत रखो, फ़ायर ब्रिगेड के जवान सीढ़ियां लगा रहे हैं. दमकल पानी की तेज़ बौछारों से इमारत की दीवारों को भिगोता जा रहा है. आग पर नियंत्रण हो रहा है. फ़ायर ब्रिगेड के जवान तुम सबको बचा लेंगे.' पर ख़तरे की गहरी गंध, घबराहट और भय के कारण शोबना की आवाज़ सिसकियों में रुंध रही थी, बच्चों की खांसियों और रोने-चिल्लाने की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी. शोबना हिम्मत न हारते हुए भी हिम्मत हार रही थी. धुआं उसके और बच्चों के फेफड़ों में घुस रहा था. सिया बेहोश हो चुकी थी. शोबना बुरी तरह खांस रही थी और फिर सचिन का संपर्क उससे टूट गया था. सचिन 'हैलो, हैलो' करता रहा पर शोबना का फ़ोन 'डैड' हो चुका था.

तभी हवा के बहाव में बदलाव आया, आग की लपटें सित्कारियां भरती तेज़ी से सातवीं मंज़िल की दीवारों और खिड़कियों की ओर बढ़ती एक झटके में आग की लाल-पीली लपलपाती जिह्वा सातवीं मंज़िल को तेज़ी से निगल गयी. सचिन पागलों की तरह चिल्ला रहा था, 'उधर-उधर उस खिड़की के अंदर मेरी शोबना और मेरे बच्चे हैं. उन्हें बचा लो.... प्लीज़.' फ़ायर ब्रिगेड के नौजवानों की तमाम कोशिशों के बावजूद नवीं मंजिल के बाथरूम से स्ट्रेचर पर युगों में बीते एक घंटे बाद शोबना और बच्चों की देह कंबल में लिपटी बाहर आयी. शोबना का बांया हाथ स्ट्रेचर में से बाहर लटक रहा था जिसमें वह चांदी का ब्रेसलेट अभी भी पड़ा हुआ था जो उसने उसे पिछले जन्मदिन पर उसे दिया था. शोबना की सुनहरी देह काली और चितकबरी हो रही था. सचिन चीख़ा यह मेरी पत्नी है और उसके पास जाने की कोशिश की, पर सदमे से बेहोश हो, वह वहीं ढेर हो गया. शोबना के साथ उसका सर्वस्व जल गया.

जब सचिन को होश आया तो नर्स ने बड़ी हमदर्दी और अफ़सोस के साथ उसे बताया कि वे उसकी पत्नी और छोटी बच्ची को नहीं बचा सके किंतु तौलिए की कई परतों में लिपटी उसकी बड़ी बेटी पानी के टब में गिर जाने के कारण शायद ज़िंदा है किंतु अभी वह भयंकर मानसिक आघात और तेज़ तापमान के कारण सदमे में है. उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति चिंताजनक है. उसे इंटेन्सिव केयर में रखा गया है. नर्स सचिन को आई. सी. यू. में ले गयी. जिया बिस्तर पर निर्जीव पड़ी थी उसका सुनहरा रंग धुएं के कारण काला हो रहा था जिस पर नर्स ने मरहम लगा दिया था.

अब तक शोबना के पिता जिगनेश और मां फिलिप्पा भी आ गये थे. क़ानूनी कार्यवाही के लिए जब सचिन से कहा गया कि वह आकर अपनी पत्नी और अपनी बच्ची के शवों की शिनाख़्त कर उन्हें क्रिया-कर्म के लिए ले जाये तो वह टूट गया और फूट–फूट कर रोने लगा. जिगनेश ने उसकी हालत देख कर कहा, धीरज रखो सचिन मैं शोबना और सिया के देह की शिनाख़्त कर शव गृह में रखवा देता हूं.

एक हफ़्ते बाद शव-दाह की तिथि मिली. सचिन अभी भयंकर सदमे में था. उसे रोज़ सेडिटिव का इंजेक्शन दिया जा रहा था. शव-दाह तो होना ही था. किसी तरह यह कार्य शोबना के माता पिता ने ख़ुद को संभालते हुए सादगी से कर दिया.

अवसाद और नैराश्य से पीड़ित होकर सचिन अपने आपको संभाल नहीं पा रहा था और एक रात उसने नींद की ढेरों गोलियां खा लीं, वह तो फिलिप्पा कुछ सामान लेने के लिए कमरे में गयी तो वैलियम की ख़ाली बोतल देख कर शंकित हो उठी और ऐंबुलेंस को फ़ोन कर दिया. अस्पताल ने सचिन को बचा लिया पर उसका शोक, उसका दर्द और अपनी प्रिया और बेटी को खोने का दु:ख कम न हुआ. समाज सेविका उसकी कॉउंसिलिंग करती रहीं.

अस्पताल के इंटेन्सिव केयर में जिया आश्चर्यजनक रूप से स्वास्थ्य लाभ कर रही थी. सचिन को जब पता चला कि जिया बच गयी है, ज़िंदा है और बार-बार उसे पुकार रही है तो उसमें न जाने कहां से ऐसी जीवन शक्ति आयी कि वह दौड़ा-दौड़ा जिया के पास पहुंच गया और उसे सीने लगा कर रो पड़ा, 'मेरी बच्ची, मैंने तुम्हारी ममी और बहन को खो दिया. मैं तुम्हारा अपराधी हूं. पर तुम...तुम बेटी जिया, मेरी शोबना की निशानी, मेरे पास हो, मेरी जान. मैं तुम्हें नहीं खोऊंगा. तुम सदा मेरे पास रहोगी. जिया उससे चिपटती हुई बोली, 'सॉरी डैडी मैं ममी और सिया को नहीं बचा पायी. मुझे टब में लिटा, ममा सिया को गोद में उठाये, अंतिम समय तक खिड़की से तुम्हें पुकारती रही...डैडी तुम हमें बचाने क्यों नहीं आये. हम तुम्हें बार-बार पुकार रहे थे.' कहते-कहते जिया फिर बेहोश हो गयी. 'ओह! जिया मेरी जान, मेरी बच्ची, ममा और सिया कहीं नहीं गयी हैं वे हमारे हृदय में जीवित हैं. हम उनकी याद में रोज़ दिये जलायेंगे.....'

54. Hill Road, Mitcham,
Surrey,CR4 2HQ. UK
E-mail : usharajesaxena@gmail.com
दूरभाष: ००४४२०८६४०८३२८
मोबाइल: ००४४७८७१५८२३९९

कहानी

दो पाटन के बीच में...

✍ कृष्ण बिहारी

वासना की संतान है प्रेम
बड़ा होता है सामाजिक निग़रानियों के बीच बेइज़्ज़त होने के लिए
और क्षरण होता है उसका अपने जन्म के साथ
प्रेम में होता नहीं त्याग
होती है मौकापरस्त लूट, अपरिहार्य हिंसा
और असामयिक मृत्यु.

(मेरी ही कविता से)

मैं हर साल की तरह अपने वार्षिक अवकाश में उससे मिलने गया था....

उसे देखकर अफ़सोस हुआ. आंखों पर यक़ीन नहीं हुआ. दस महीने पहले भी मैंने उसे देखा था मगर इस बार लगा कि उसे न देखता, उससे न मिलता तो अच्छा होता. कम से कम वह मेरी स्मृति में ठीक-ठाक बसा तो रहता. किसी को पिछली बार जैसा देखा होता है वह तब तक उसी तरह यादों में बसा रहता है जब तक उसे दोबारा न देखो. बरसों-बरस एक ही छवि बनी रहती है. उस छवि के टूटने पर तकलीफ़ होती है. इस बार जो उसे देखा तो तकलीफ़ ही हुई. साफ़ हो गया कि उसकी हैसियत ख़त्म हो चुकी है. उसकी सत्ता मिट गयी है और अब उसका वजूद भी मिटनेवाला है. पिछले पैंतालीस साल से उसकी ज़िंदगी की क़िताब का एक-एक पृष्ठ मेरी यादों में है. प्रदेश में चुनाव होने वाले हैं और उसकी कोई भूमिका नहीं दिखती. जबकि पिछले कई चुनाव जो मेरी स्मृतियों में हैं उनमें उसकी और उसके परिवार की उस कांस्टिट्यूएंसी में भूमिका थी. चाहे दलाल की ही रही हो. मेरी विचारधारा उससे कभी नहीं मिली मगर उससे मेरी मित्रता थी. एक ही मोहल्ले में रहते हुए दसवीं तक हम साथ पढ़े थे. बाद में अलग-अलग कॉलेजों में पढ़ते हुए भी हम मित्र बने रहे. जे. पी. आंदोलन के समय और उसके बाद भी वह उसी कांग्रेस पार्टी से जुड़ा रहा जिसे देश ने लगभग तड़ीपार कर दिया था. मैंने कई बार उससे कहा था कि पार्टी छोड़ दे और निर्दलीय चुनाव एक बार तो लड़े फिर उसके लिए राजनीति का रास्ता आसान हो जायेगा. लेकिन वह कहता था कि यह उसकी निष्ठा का प्रश्न है. जबकि सच यह था कि उसकी निष्ठा पार्टी से अधिक ठाकुर लॉबी के साथ थी. वे दिन उसकी बदसूरत बदहाली के दिन थे.

मगर ढाई साल बाद ही कांग्रेस पार्टी चमत्कारिक रूप से फिर सत्ता में आ गयी और उसका क़द दिखने लगा था. उसका दिल्ली आना-जाना बढ़ गया था. दिल्ली में वह कभी यू. पी. भवन में टिकता तो कभी किसी मंत्री के आउट हॉउस में. जब लौटता तो झूठ-सही मिलाकर लंबी-लंबी ऐसी छोड़ता कि लपेटना भूल जाता. झोंकता, कि मैडम की किचेन कैबिनेट से जितना वह वाकिफ है उतना किस साले को मालूम है? उसकी कुछ बातें सच भी होती थीं मसलन, वह कहता था, ''इंदिरा गांधी के चारों तरफ़ ऐसे चमचों का घेरा है कि उसे तोड़ पाना उसके बूते से बाहर है....''

वह ठाकुर लॉबी से जुड़ा था. जिस देश में जाति और धर्म की राजनीति इक्कीसवीं सदी में भी सुअर की तरह सड़े पानी में नाक डुबोये है वह बीसवीं सदी में भी सिर से पांव तक धंसी हुई थी. विधानसभा के होने वाले हर चुनाव में उसे

कृष्ण बिहारी

२९ अगस्त १९५४, हिंदी साहित्य में एम.ए.

प्रकाशन : *'दो औरतें', 'पूरी हक़ीकत पूरा फ़साना', 'नातूर', 'एक सिरे से दूसरे सिरे तक', 'इंतज़ार, 'ब-बाय', 'स्वेत स्याम रतनार', 'दो औरतें और तीन कहानियां', 'काठ होते हुए लोग' (सभी कहानी संग्रह), 'दोजख़', 'रेखा ऊर्फ़ नौलखिया', 'पारदर्शियां' (उपन्यास).*

अन्य : *एक दर्जन से अधिक नाटकों का लेखन और निर्देशन. 'सागर के इस पार से, उस पार से' आत्म-कथा. संयुक्त अरब इमरैट से हिंदी की पहली पत्रिका 'निकट' का सात वर्षों से संपादन.*

टिकट मिलने की उम्मीद रहती थी लेकिन कभी कोई पाठक काट देता था तो कभी कोई अग्निहोत्री. हर बार शहर की बड़ी मछलियां बाजी मार लेतीं और वह कहता कि इस बार टिकट नहीं मिला तो कोई बात नहीं, अगली बार सबका पत्ता कटवाकर टिकट हथिया लेगा. छोटे-मोटे ही नहीं कभी-कभी तो बड़े-बड़े काम भी वह ठाकुर लॉबी से करा लेता था. जैसे, किसी का ट्रांसफर बाहर से अपने जिले में करा लेना तो कभी जिले से बाहर हो गये ट्रांसफर को रुकवा लेना. हालांकि, ऐसे सभी काम वह अपने बहुत क़रीबी लोगों के ही करवाता था. अपने छोटे भाई के कई ट्रांसफर तो उसने होने के पहले रुकवा लिये थे और दो बार उसे दूसरे प्रदेश से वापस बुलवा लिया था. ऐसा करा लेने की वजह ही थी कि घर में उसका क़द बढ़ता गया और उसकी बेहद घटिया और बेजा हरकत को भी घर के लोगों ने नजरअंदाज़ कर रखा था. सबने आंखों पर पट्टी बांध रखी थी और साथ ही कानों में तेल भी डाल लिया था....

जब वह दिल्ली में न होकर जिले में होता तो उसकी दिनचर्या में सुबह नौ बजे बिस्तर छोड़ने के बाद बारह बजे तक पूजा-पाठ शामिल होता. पूजा से उठता तो प्रमुख मंदिरों को लांघता रहता. कभी हनुमान मंदिर तो कभी शनि मंदिर. घर के पास का शिव मंदिर तो ख़ैर शामिल था ही. इसके अलावा वह घर भी उसके लिए मंदिर ही था जिसमें उसकी प्रेमिका बलजिंदर रहती थी. दिन हो या रात वह धड़ल्ले से उसके घर चला जाता. किसी की औकात नहीं थी कि कोई उसे रोक पाता. उसकी बीवी भी छाती पर पत्थर रखकर वह सब कुछ सुनती जिसे उसके घर वालों ने न देखने और न सुनने की क़सम खा रखी थी. शायद उसने अपने दिल पर पत्थर रख लिया था. किसी ने उसका साथ नहीं दिया. न सास-ससुर ने न देवर-देवरानियों ने. जिसका पति ही साथ न दे उसका साथ कौन देता? अपनी बीवी की हर इच्छा को वह रौंद रहा था, क्या उसकी बीवी उन वक़्तों में माटी हुई यही सोचती थी कि एक दिन ऐसा आयेगा, मैं रौदूंगी तोहि. आज के हालात तो यही कह रहे हैं. अब जब उसका राजनीतिक क़द हास्यास्पद हो चुका है तो सब उस पर चढ़ बैठे हैं. कहीं वह विधायक हो गया होता या किसी लाभ के पद पर होता तो क्या उसकी स्थिति ऐसी हुई होती? क्योंकि जब-जब वह लाभ के पद पर रहा तब तो उसके घर के सभी लोग उसकी प्रशस्ति में कसीदे काढ़ते दिखे थे. लेकिन अब उसकी हालत और हालात बदल चुके थे, लगभग पस्त होते हुए उसने मुझसे कहा, ''मुझमें निर्णय लेने की क्षमता नहीं है मैं मर जाऊंगा. मुझे बचा लो... उसका क्या होगा... चालीस साल से वह मेरा साथ दे रही है... और मैंने उसे क्या दिया... वह कहती है कि अब रखैल बनकर नहीं रहेगी... मैंने उसे मिस्ट्रेस बनाकर छोड़ दिया है... समाज में उसका मज़ाक बना रखा है... सच तो यही है न...'' वह बराबर बलजिंदर के बारे में ही बोलता रहा. मैं उसे चुप कराता लेकिन वह फिर शुरू हो जाता, ''उसका क्या होगा? उसके बूढ़े मां-बाप का क्या होगा? कुत्ते कहां रहेंगे? कैसे रहेंगे?'' जिस तरह वह बोल रहा था और बोलते हुए कांप रहा था उससे साफ़ लगा कि उसका मानसिक संतुलन बिगड़ चुका है और वह अपराध-बोध से गुज़र रहा है क्योंकि जैसा वह कह रहा था, बात वैसी तो कतई नहीं थी. बलज़िंदर... उसकी प्रेमिका... और बीता वक़्त... सब मुझमें घूम गया... हालांकि मैं उससे पूछना चाहता था कि जिसको अट्ठाइस साल से घर में अपने जीते-जी बेवा बनाकर रखे हुए हो, उसके बारे में क्या सोचते हो? मगर उसकी हालत देखकर ख़ामोश रह गया और दिल-दिमाग़ बलजिंदर की ओर घूम गया...

□

बलजिंदर.... सेंट्रल स्कूल में पी. जी. टी. थी. अपने सरकारी क्वार्टर (वह क्वार्टर भी उसी ने अपने प्रभाव से बलजिंदर को आवंटित कराया था) में वह ट्यूशन भी करती थी. एक माह पहले तक लगभग पैंतीस हज़ार रुपये उसका वेतन था. ट्यूशन अलग से — लगभग पचपन-साठ हज़ार रुपये महीने की आमदनी. उसने अगर कई ट्रांसफर स्वीकारे

होते तो प्रमोशन पाकर अब से बहुत पहले कहीं प्रिंसिपल होती. पिछले पंद्रह सालों में दो बार उसका ट्रांसफर हुआ भी. एक बार नॉर्थ ईस्ट के किसी प्रदेश के स्कूल में और दूसरी बार दूर पूर्वांचल में. दोनों बार प्रमोशन के साथ हुआ और वह गयी भी लेकिन फिर साल भर में वापस भी आ गयी. उसने प्रमोशन अस्वीकारा था. बलजिंदर को वापस लाने में भी उसी का हाथ था. एक क़द्दावर नेता के हाथ में वह मंत्रालय था और नेता मध्यप्रदेश के ठाकुर थे. उनसे जुगाड़ लगाकर अपनी प्रेमिका के घरवालों का दुख बयान करके दोनों बार अपने शहर में वापस क्या बुला लिया, उसका तो क़द ही बहुत ऊंचा हो गया. वह अपने उरूज़ पर था...

मगर छह महीने पहले बलजिंदर का फिर ट्रांसफर हुआ तो वह छुट्टी लेकर घर बैठ गयी. दो-तीन महीनों तक उसने उम्मीद का रास्ता देखा कि शायद इस बार भी उसका ट्रांसफर वह रुकवा देगा या आस-पास कहीं बुलवा लेगा लेकिन इस बार वैसा कुछ हो पाने की संभावना ही नहीं थी. वह ढाई-तीन साल से बिस्तर पर था. पांव टूटा तो रॉड पड़ी. जब तक वह निकली तब तक दूसरा पांव टूट गया. वह बिस्तर से उठ पाता कि फिर बिस्तर पर पड़ गया. बलजिंदर को जब आभास हो गया कि अब वह कुछ नहीं करवा पायेगा तो उसने स्वैच्छिक रिटायरमेंट ले लिया.

पच्चीस साल की नौकरी थी. फ़ाइनल सेटलमेंट में उसे बहुत अच्छी रक़म मिलने वाली थी. पेंशन भी उसे बीस हज़ार रुपये महीने से कम नहीं मिलेगी. बलजिंदर के बाप को भी लगभग चौदह हज़ार रुपये के क़रीब पेंशन मिल रही थी. मात्र तीन प्राणी और हर महीने घर में आने वाला इतना पैसा... कितनी भी महंगाई बढ़ गयी हो... दाल, भले ही पचहत्तर रुपये किलो बिक रही हो मगर इतनी रक़म कम तो नहीं थी रोटी-दाल के लिए. प्राणी तो घर के सदस्यों में दो और थे. बलजिंदर की दो छोटी बहनें मगर बरसों पहले शादी के बाद वे अपने घरों को चली गयी थीं और वे भी बहुत अच्छी नौकरियों में थीं. हां, घर में एक कुत्ता ज़रूर रहता था. कभी देसी तो कभी किसी ख़ास नस्ल का. इन दिनों दो थे. एक देसी और एक डाबरमैन. देसी शांत स्वभाव का था और दिन भर खुला रहता था. जब मन होता तब घर के बरामदे में आकर लेट जाता. दूसरा डाबरमैन था जो अपने स्वभावानुसार न केवल हिंसक दिखता था बल्कि था भी. कुत्ते रखने का तर्क था कि बूढ़े मां-बाप की सुरक्षा के लिए इनसे बढ़कर कुछ नहीं हो सकता. तो, देसी-विदेशी कुत्तों पर भी कुछ रक़म ख़र्च होती थी मगर यह सब सीमा से बाहर नहीं था कि वह पागल हुआ माथा नोचे कि बलजिंदर के घरवाले और उसके कुत्ते अब कहां रहेंगे?

बलजिंदर को हालात की कोई चिंता कभी रही हो ऐसा कभी लगा नहीं. वह तो अपनी मोहब्बत को अमर और अमिट बनाने के लिए दुनिया से बेगानी हो गयी. वह रुसवा हुई और ख़ूब हुई. उसी बलजिंदर और उसके परिवार के उस भविष्य को लेकर वह पागल हुआ दिखा था जो कहीं से भी कमज़ोर नहीं थी. अगर वह कमज़ोर होती तो क्या बीसवीं सदी में ऐसी मोहब्बत को सीने से चिपकाये रखती जो इक्कीसवीं सदी तक चली. वह बंदरिया की तरह अपना मरा हुआ बच्चा छाती से लगाये घूम रही थी... आवारा... बलजिंदर को वह अपनी दुनिया माने बैठा था. स्वैच्छिक रिटायरमेंट लेने के बाद उसको सरकारी क्वार्टर खाली करना था जो सेंट्रल स्कूल ने रक्षा-विभाग से लोन पर लिया था. बलजिंदर इतनी समर्थ थी कि वह कहीं भी किराये के मकान में मां-बाप और अपने कुत्तों के साथ रह सकती थी. उसके लिए असमर्थ हुआ वह हास्यास्पद स्थिति को प्राप्त हो चुका था. उसने बलजिंदर की मदद कई बार की थी. बलजिंदर भी करती थी. हर महीने वह उसे छह-सात हज़ार रुपये दिलाया करती थी कि उसकी दिल्ली यात्राएं होती रहें... मोटर साइकिल पर शहर में कांग्रेसी नेताओं से मिलता रहे और पान पराग की पुड़िया गटकता रहे. मौक़े-बेमौक़े सिगरेट फूंके और उसकी नेतागिरी चलती रहे और नेतागिरी के खोल में बलजिंदर उसे इस तरह पाये रहे कि दोनों के जघन्य कृत्य ढंके रहें. शराब वह पीता था मगर अपने पैसे की नहीं. शाम होते ही कोई न कोई मुर्गा फांस लेता. छोटा-मोटा कोई काम किसी का कराकर पंद्रह-बीस दिन की शाम का जुगाड़ वह कर लेता था. कभी-कभी एकाध अद्धा कुर्ते की जेब में डाल लेता. उस रात वह और बलजिंदर, दोनों पीते...

मैं उसके पास से हटना चाह रहा था, ''चलता हूं... फिर आऊंगा....'' लेकिन वह भी उठ खड़ा हुआ, ''मैं भी चलता हूं तुम्हारे साथ...'' हिलता-डुलता हुआ वह मेरे पीछे हो लिया. उसने अपनी मोटर साइकिल निकालनी चाही तभी उसके छोटे भाई ने टोका, ''कहां चले?''

''राज भाई को घर छोड़ने...'' उसने हकलाते हुए कहा. अपने छोटे भाई से भी आंख मिलाने की ताब उसमें नहीं बची थी.

''भाई साहब चले जायेंगे... भाई साहब को मैं कार से भिजवा दूंगा... तुम तो घर में ही रहो... बाहर नहीं जाना.. कौन है वह तुम्हारी जिसके चक्कर में कबूतर की तरह फड़फड़ा रहे हो... घर में रहो... समझे कुछ...?'' छोटे भाई के स्वर में

तीखा व्यंग्य था. उसका छोटा भाई फिर मुझसे मुखातिब हुआ, ''भाई साहब, कौन आदमी है जो चार जगह मुंह नहीं मारता... सूंघ-सांघकर छोड़ देता है... एक ये हज़रत हैं कि ... गले में हड्डी लटकाये घूम रहे हैं... बड़े भाई न होते तो यहीं पटक-पटककर इतना मारता कि मोहब्बत का भूत इनकी... में घुस जाता....''

उसने पूरी दयनीयता से अपने छोटे को देखा. उसकी कातर आंखों में पानी उतर आया, ''आ रहा हूं अभी... देखो न राजेश्वर.... ये लोग मुझे घर से निकलने भी नहीं दे रहे ...'' उसकी आवाज़ कांप रही थी. वह हिल रहा था. उसका सिर भी हिल रहा था. मुझे लगा कि वह शायद पार्किन्संस बीमारी का भी शिकार हो गया है. मैं उसके समर्थन में कुछ कह पाने की हालत में नहीं था और वह था कि मेरे साथ घर से बाहर निकलने का एक मौक़ा पाने के बाद उसे खोने को हरगिज़ तैयार नहीं था. वह अपनी मोटर साइकिल घर की चौहद्दी के बाहर ले आया. छोटा भाई वहीं खड़ा था, ''भाई साहब को छोड़कर सीधे घर आओ... रास्ता मत भूलना... समझे? नहीं तो वहीं पहुंचकर तुमको और उसको, दोनों को सही करूंगा...'' फिर उसने मुझसे कहा, ''भाई साहब... जहन्नुम भी साला रहने लायक होता होगा... पूरी दुनिया में थू-थू हो रही है.... बहनचोद ज़िंदगी माठा हो गयी है....'' यह वही भाई था जो दशकों तक उसी के सहारे न केवल अपना रुतबा बनाये रहा बल्कि न जाने कितनी शामें बड़े भाई के फांसे मुर्गे के घर में चिकेन-मटन के साथ दारू भी गटकी थी. उसके तीन ट्रांसफर जिस बड़े भाई ने कभी रुकवाये थे, उसी भाई की फ़जीहत वह पूरी हिकारत के साथ कर रहा था...

''हां, घर ही आऊंगा...'' कहते हुए उसने मोटर साइकिल स्टार्ट की. मैं पीछे बैठा ज़रूर मगर डर लगने लगा. उसकी गरदन विचित्र तरह से हिल रही थी. मैंने गौर किया कि पिछले दस महीनों में ही उसके बाल भी बहुत गिर गये हैं. मुझे इस बात का भी डर लगा कि कहीं वह शराब की फरमाइश न कर बैठे. कमज़ोर तो वह हो ही चुका था. शरीर से भी और मन से भी. कमज़ोर न हुआ होता तो क्या उसका छोटा भाई उसे धमकाते हुए आदेशात्मक हो सका होता. यही भाई कल तक हर किसी से उसके बारे में कहता था कि नेताजी दिल्ली गये हैं... नेताजी मंदिर गये हैं... नेताजी अपनी कोठरी में हैं... नेताजी यहीं तो थे... तो नेताजी... नेताजी थे. उसके छोटे भाई से छोटे, दो भाई और थे और वे दोनों भी वहीं थे मगर लगा कि उनको भी उसके होने न होने से कोई मतलब नहीं है.

मैं तो उसकी इस स्थिति को जाने बिना हर साल की तरह उससे मिलने गया था. वह मुझे बिस्तर पर दिखा था. लुटा हुआ, पिटा हुआ. नष्ट और ख़त्म हुआ-सा लेटा हुआ. बिस्तर तो उसने तीन साल पहले पकड़ा पर पिछले साल वह खड़ा हो गया था. उसकी फीजियोथेरेपी चल रही थी. मोटर साइकिल दुर्घटना में उसकी टांग टूट गयी थी और टांग में छड़ पड़ी हुई थी, उस दुर्घटना ने उसे बिस्तर पर पटक दिया था. रॉड पड़ने और निकलने के दौरान उसे बाहरी जगत के अपने वृत्त से इस तरह घर के भीतर फेंक दिया जैसे कोई उपग्रह धरती की गुरुत्वाकर्षण सीमा के बाहर धकेल दिया जाता है. आकाश की जगह पाताल में सिमटकर वह मोहताज हो गया था. जब वह अपने घर से मोटर साइकिल पर आगे बढ़ आया तब मैंने उससे कहा, ''आत्मबल बनाये रहो, सब ठीक हो जायेगा... मुझे यहीं छोड़ दो... घर जाओ... मैं यहां से पैदल चला जाऊंगा...''

''अब कुछ ठीक नहीं होगा... सब बरबाद हो जायेगा...'' उसने सड़क के किनारे मोटर साइकिल रोकी और कहा, ''दो साल हो गये मैं घर के अंदर क़ैद होकर रह गया हूं. दिल्ली गये तो जैसे एक ज़माना बीत गया... राजनीति में आपका दिखना बंद हुआ नहीं कि आपकी मौत हो गयी... मेरी मौत हो चुकी है....'' उसने आगे कहा, ''ये बताओ कि मेरे घर पर कोई कलंक तो नहीं लग जायेगा...'' वह बोलते हुए कांप रहा था....

''तुम्हारी परेशानी का कारण क्या है... कुछ बताओगे...''

''राज भाई... बीवी और बलजिंदर दोनों ने ज़िंदगी हराम कर रखी है... मेरी ज़िंदगी का एक-एक पल नरक हो गया है... उफ्फ.... आत्महत्या के अलावा अब और कोई रास्ता नहीं है....'' उसने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़कर दबाना शुरू किया. साथ ही अज़ीब तरह से सिर को हिलाने भी लगा. उसकी इस हरकत से मुझे डर-सा लगा कि कहीं वहीं पर उसे कुछ हो न जाये....

''बलजिंदर को क्या प्राब्लेम है? जैसे इतनी ज़िंदगी गुज़ार दी वैसे बाक़ी क्यों नहीं गुज़ारती?''

''वह हिंसक और बदतमीज़ होती जा रही है.... मैंने भी तो उसे ऐसे ही बनाये रखा... मेरा सिर फट रहा है... राज भाई, बहुत दर्द हो रहा है सिर में.... मैं अब नहीं बचूंगा... मर जाऊंगा... मुझे बचा लो राज भाई.... मेरे घर पर कोई कलंक न लगने पाये... राज भाई, कोई कलंक मत लगने देना... मेरे परिवार का इस क़स्बे में बड़ा नाम है...''

मैंने उसके बुझे हुए चेहरे को देखा. उन कलंकों के बारे

में सोचा जो उस क़स्बे ने समय-समय पर लगाये थे. तो पहले वह क़स्बा...

□

हां, तो, एक क़स्बा था जिसे छावनी कहते थे. अब भी छावनी ही कहते हैं, क़स्बे का रकबा पचास वर्ग किलोमीटर होगा. लोग बताते हैं कि अंग्रेजी राज में यहां सिपाही रहते थे. क़स्बा अपनी अलग हैसियत और पहचान की वजह से पूरे जिले में जाना जाता है. इस क़स्बे की ख़ास पहचान रक्षा-विभाग के तीन कारख़ानों के कारण हैं. इनमें युद्धक-सामग्री बनती है. हफ़्ते में कई दिन चांदमारी होती है. दिन भर प्रूफ रेंज में गोलों की टेस्टिंग होती है. मतलब यह कि धायं-धायं और खट-खट होता ही रहता है. विस्फोट की ध्वनि से कान के पर्दे और घरों के खिड़की-दरवाज़े भन्नाये रहते हैं. इन कारख़ानों में आठ हज़ार की संख्या में मज़दूर काम करते थे. इन्हीं मज़दूरों के नेता थे ठाकुर निरंजन सिंह. इस कथा के नायक अभिराम सिंह के पिता. मृदुभाषी निरंजन सिंह नेता थे तो नेता की तरह ही रहते भी थे. दरवाज़े पर पीपल का पेड़, चबूतरा. शाम को वहां बैठक लगती. कारख़ाने में तरह-तरह की बदमाशियां होतीं. कोई मज़दूर चोरी करते पकड़ा जाता तो कोई अफ़सर से मारपीट के मामले में फंसता — सबके मामले निरंजन सिंह निपटाते. एक तरह से नेतागिरी का जलवा हर शाम वहां जमता और देर रात तक गम्मज मचा ही रहता. एपिसोड पर एपिसोड जुड़ते. निरंजन सिंह रामलीला कमेटी के भी सर्वेसर्वा थे तो इस वजह से भी लोग जुटा करते. रात दस-ग्यारह बजे लोगबाग धीरे-धीरे ख़िसकते तब कहीं निरंजन सिंह घर में दाख़िल होते. ठकुराइन भी ठसके से रहतीं. हमेशा बनी-ठनी. उन्होंने भी ठाकुर निरंजन सिंह को निराश नहीं किया. पांच संतानें दीं. एक बेटी और फिर अभिराम सिंह.... संग्राम सिंह... सब ठीक था सिवाय बेटी के. बेटी जूही जन्मांध थी... पहली संतान... स्थायी अंधेरा लेकर पैदा हुई थी. लोग दबी दबान से कहते कि नेतागिरी में किये गये अपराधों का फल है जूही... खैर, लोगों का क्या? जूही के बाद जब अभिराम सिंह पैदा हुए तो फिर उसके अंधेपन का अखरना कुछ कम हुआ...

ठाकुर निरंजन सिंह के छोटे भाई थे सुरंजन सिंह... इंटरपास थे और वॉलीबाल के खिलाड़ी के रूप में बहुत तेज़ गति से उभर रहे थे. हाइपर थे. हमेशा अपनी झक में रहते. लंबे तगड़े थे ही. खेल की वजह से शरीर भी गठा हुआ था. एक अलग ही रुआब में रहते निरंजन सिंह के घर में उनकी हैसियत मालिक की थी. अभिराम सिंह की भविष्य में होने वाली दुर्गति का एक सिरा उसके चाचा सुरंजन सिंह के अतीत से भी जुड़ता था इसलिए सुरंजन सिंह को जानना भी बहुत ज़रूरी है ताकि नायक की व्यथा-कथा को सही ढंग से जाना जा सके....

खेल की दुनिया में सुरंजन सिंह का नाम चमकता जा रहा था. प्रदेश स्तर पर टीम में चुन भी लिये गये थे कि अचानक सब कुछ बिगड़ गया. सुरंजन सिंह को खांसी आने लगी. नतीज़ा टी. बी. के रूप में सामने आया और बीसवीं सदी के सातवें दशक में यह मान लिया गया कि सुरंजन सिंह राजरोगी हो गये और अब भगवान ही उनका मालिक है. यह उस परिवार पर दूसरी तोहमत थी. लोग कहते रंगबाज बहुत थे न... और रामलीला का चंदा खाने वाले परिवार को और क्या होगा? मगर सचमुच, सुरंजन सिंह के मालिक भगवान ही हो गये...

शहर के सबसे बड़े अस्पताल के टी. बी. वार्ड में भर्ती हुए. इलाज चला. निरंजन सिंह ने अपने छोटे भाई सुरंजन सिंह के इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी. लंदन से दवाएं आतीं. सुरंजन सिंह के स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक ढंग से सुधार होने का कारण कुछ और भी था. अस्पताल में उनकी देख-रेख करने वाली केरल की एक नर्स भी थी एंजेला. सुंदर, सुशील, मृदुभाषी और कर्तव्य निष्ठ एंजेला की स्नेहपूर्ण तीमारदारी ने सुरंजन सिंह का न केवल दिल जीता बल्कि वह उनके दिल में घर कर गयी. ... सुरंजन सिंह को डेढ़ साल लगे ठीक होने में. वह टी. बी. से तो मुक्त हुए किंतु उन्हें दूसरा ही रोग लग गया. ... प्रेमरोग... वह घर तो आये मगर अपने को एंजेला के पास छोड़कर...

अपने दिल की बात उन्होंने सबसे पहले भाभी को बतायी. सूर्यवंशी ठाकुर घराने में भूचाल आ गया. आना ही था. उस ज़माने में ठाकुर परिवार में क्रिस्तान लड़की को बहू के रूप में स्वीकारना कहां संभव था मगर सुरंजन सिंह ने एलान कर दिया कि जब ज़िंदगी उन्हें धोखा देने पर उतारू हो गयी थी तब उसी ने सच्चा साथ दिया. वे उसे नहीं भुला सकते और उसे धोखा भी नहीं दे सकते. उन्होंने उससे शादी का वादा किया है...

सुरंजन सिंह घर के मालिक थे मगर इस मामले में उनका मालिकाना हक़ काम नहीं आया. ज़िद काम आयी और उन्हें सबसे रिश्ते तोड़ने पड़े. कचहरी में शादी हुई. ठाकुर घराने पर एक कलंक और लगा. घर से अलग उन्होंने अपना घर बसाया. एक कपड़ा मिल में नौकरी शुरू की मगर क़िस्मत को कुछ और दिखाना था. ज़माने के सामने तो सुरंजन सिंह ने

अपने प्यार का डंका बजा भी लिया और जश्न भी मना लिया लेकिन ऊपर वाले की अदालत में प्यार की अर्जी शायद मंजूर नहीं हुई. अभी दो-ढाई साल भी नहीं बीते थे कि एंजेला को भी टी. बी. हो गयी. जिस बीमारी से वह सुरंजन सिंह को मौत के मुंह से खींच लायी थी उसी से ख़ुद को नहीं बचा सकी. छूत का रोग उसे किससे लगा कौन जाने? सुरंजन सिंह ने हर संभव कोशिश की. उसके इलाज में उन्होंने अपनी ज़िंदगी होम कर दी मगर एंजेला टी. बी. की चौखट पार नहीं कर सकी. तीन साल तक जूझने के बाद उसने हार मान ली और एक रात तीन हिचकियों में उसके प्राण छूट गये. एक प्रेमकहानी का दुखद अंत हुआ. सुरंजन सिंह टूट गये थे. बिखर गये थे. अकेले थे. मगर इस बीच निरंजन सिंह के घर में जयराम सिंह और प्रियराम सिंह आ गये थे. जूही, अभिराम सिंह और संग्राम सिंह तो पहले से ही थे. इन सबकी ख़बर सुरंजन सिंह को थी. घर के प्रति उनका लगाव भी कम नहीं हुआ था मगर उनके मन में था कि जब घर ने ही उन्हें दुत्कार दिया तो वे किसलिए उस घर में जायें. उन्होंने अब अपने को कपड़ा मिल में झोंक दिया. व्यक्तित्व में चुंबक और हनक तो थी ही. उन्होंने उसमें परिश्रम को और जोड़ दिया. उनका क़द मिल में उठता गया और एक दिन उन्हें फ़ोरमैन की कुर्सी मिल गयी. उनका उठना-बैठना एक अलग ही तबके से जुड़ रहा था. वक़्त मेहरबान था. जिस चीज़ को हाथ लगा दें वही सोना हो जाये. उन्हीं दिनों एक ठाकुर साहब उनके दरवाज़े पर अपनी बेटी का रिश्ता लेकर आये जिसे सुरंजन सिंह ने सहजता से टालते हुए कहा कि अब जो कुछ होगा वह भैया-भाभी की मर्जी से होगा. ठाकुर साहब ने निरंजन सिंह के घर का रास्ता पकड़ा. निरंजन सिंह और ठकुराइन ने भी कहा कि अब तो वह क्रिस्तान भी नहीं रही. सुरंजन को माफ़ करना ही उचित है. दो-चार दौर की मुलाकातों ने टूटे संबंधों को जोड़ दिया. बरसों बाद दोनों भाई जो मिले तो जितनी मलिनता थी वह आंसुओं में धुल गयी और सुरंजन सिंह की घर वापसी हुई...

□

जिन सुरंजन सिंह ने कभी प्रेम-विवाह किया था उन्हीं ने भैया-भाभी के तय करने पर बिना लड़की देखे विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार किया. तिलक के जश्न को क़स्बे ने भी देखा... पनकी और जालौन के आतिशबाजों ने माहौल में उजाला और देर तक जमा रहने वाला धुआं छोड़ दिया था. विवाह के बाद सुरंजन सिंह एक बार फिर से बस गये. नयी ठाकुराइन ने सुरंजन सिंह को एक के बाद एक तीन बेटियां दीं — गायत्री, सावित्री और अजस्त्री. ज़िंदगी अपने ढंग से चल रही थी मगर सुरंजन सिंह में ठकुरई का बलबला था. कोई बाई–इलेक्शन था और उन्होंने निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से परचा भर दिया. सुरंजन सिंह को लोग जानते थे यह अलग बात थी मगर वोट तो कई अन्य कारणों से मिलते हैं और वे कारण उनके साथ नहीं थे तो जो होना था वही हुआ और सुरंजन सिंह की ज़मानत जब्त हो गयी. मगर इस चुनाव में घर में एक नेता का जन्म हो गया. अभिराम सिंह बारह-तेरह वर्ष के थे. मोहल्ले में वानर सेना बनाकर उन्होंने अपने चाचा का धुआंधार प्रचार किया था. उनका चुनाव-प्रचार क़स्बे तक ही सीमित था. यह उनकी नेतागिरी के ज़िंदाबाद-मुर्दाबाद का वक़्त था. पहले घर के लोगों ने उन्हें नेताजी के नाम से बुलाना शुरू किया. यद्यपि यह एक चुहल भर थी मगर फिर धीरे-धीरे क़स्बे के लोगों ने भी उनको नेताजी के नाम से पुकारना शुरू कर दिया. हालांकि... नेता होने की वह कोई उम्र नहीं थी. कोई इसे संजीदगी से कहता भी नहीं था. मगर अभिराम सिंह को अपने नाम के साथ नेताजी सुनना अच्छा लगने लगा था. समय आगे बढ़ता रहा. बरस-दर-बरस खिसकते रहे और उन्होंने मन ही मन यह ठान लिया कि चाचा विधायक नहीं बन पाये तो क्या वे ज़रूर बनकर दिखायेंगे और विधायक ही नहीं एक दिन लोकसभा में बैठेंगे. लालबत्ती वाली गाड़ी में चलेंगे. ये साले कलेक्टर-सलेक्टर उनके आगे-पीछे घूमेंगे और वे किसी को घास नहीं डालेंगे.

नाबालिग नेताजी की पोशाक में अभी कुरता-पायजामा शामिल नहीं हुआ था. लेकिन फिर ज़्यादा दिन भी नहीं गुज़रे कि पहले अलीगढ़ी और फिर बहुत बाद में संजय गांधी स्टाइल कुरता पायजामा उनका पहनावा ही हो गया. तब तक नेताजी बालिग हो गये थे लेकिन जब उन्होंने अलीगढ़ी पहनना शुरू ही किया था उन्हीं दिनों मोहल्ले में बलजिंदर का परिवार भी आ बसा. उस मोहल्ले में अब तक कोई सिख परिवार नहीं था. जिस सरकारी क्वार्टर में बलजिंदर का परिवार रहने लगा उसमें कोई बंगाली परिवार बरसों से रहता आ रहा था और सभी लोग यही जानते थे कि वह उसी के नाम अलाट रहा होगा. वह तो जब खाली करके जाने लगा तो पता चला कि क्वार्टर उसके नाम नहीं बल्कि किसी सरदारजी के नाम अलाट है. उन्होंने किराये पर दिया था और ख़ुद शहर की प्रमुख पंजाबी कॉलोनी में संयुक्त परिवार में रहते थे. परिवार काफ़ी बड़ा था. कई भाई थे. सबकी शादियां हो चुकी थीं. सबके बच्चे-कच्चे थे. घर-घर न होकर धर्मशाला हो गया था. सब कुछ अस्त-व्यस्त. हरदम किच्चाइन मची रहती. प्रेम-भाव, बैर-भाव में बदल गया था. मकान छोटा पड़

रहा था और दिल भी छोटे हुए जा रहे थे. तो, तब सरदारजी के लिए अपने बीवी-बच्चों को लेकर भाइयों के साथ वहां रह पाना मुश्किल हो गया तो क़िरायेदार से मकान खाली कराकर रहने आ गये. उनकी तीन बेटियां थीं. बलजिंदर, सुखमिंदर और हरजिंदर. तीनों शहर के प्रतिष्ठित कॉन्वेंट स्कूल झइयमपुर में पढ़ती थीं. शायद छावनी में रहने वाली ये पहली तीन लड़कियां थीं जो बस से शहर पढ़ने जाती थीं और फर्राटे से अंग्रेज़ी बोलती थीं. आकर्षक यूनीफॉर्म पहनकर जब वे सुबह छह बजे अपने बाप सरदार नरेंद्र सिंह के साथ स्कूल के लिए बस पकड़ने निकलतीं तो एक बार सबकी नज़रों में आ जातीं. चौराहे पर बस आती थी और चौराहा उनके घर से लगभग एक किलोमीटर दूर था...

अभिराम सिंह का बिगड़ा वर्तमान उन्हीं दिनों की उपज है. ... किशोरावस्था थी... इंगलिश मीडियम के स्कूल में पढ़ने वाली और नखरीले अंदाज़ में नाक से कॉन्वेंटी हिंदी बोलने वाली बलजिंदर को छिप-छिपकर देखने का सिलसिला शुरू हुआ. बलजिंदर के घर से चौराहे के बीच एक शिव मंदिर था. मंदिर तिराहे पर था और वहां एक चाय की गुमटी थी. एक गुमटी पान-बीड़ी-सिगरेट की भी थी. तीसरी गुमटी साइकिल मरम्मत की थी. अभिराम सिंह ने सुबह-सुबह मंदिर जाना शुरू किया और लड़कियों पर बहुत मौजू है कि मैं तुझसे मिलने आयी मंदिर जाने के बहाने... वह अभिराम सिंह पर चस्पा हो गया. जैसे ही सरदार नरेंद्र सिंह अपनी तीनों बेटियों के साथ तिराहे पर पहुंचते वैसे ही, 'नमस्ते-अंकल' के साथ वह उनके साथ हो लेता और चौराहे तक फालतू बातों के साथ सरदार जी के दिल में उतरने की कोशिश करता. सरदार जी भी जान गये थे कि लड़का ट्रेड यूनियन के प्रेसीडेंट का है, मगर वे तीन लड़कियों के बाप होकर भी नहीं जान पाये कि लड़के की नीयत क्या है? क्या बेटियों के बाप इतने मूर्ख होते हैं या जानबूझकर बुद्धू दिखते हैं? जबकि लड़के की नीयत को मोहल्ले के सभी लोग भांप गये थे बल्कि अच्छी तरह जान गये थे. दबी ज़ुबान से दोनों के नाम जुड़ गये थे लेकिन ठकुराने से कौन बैर मोल ले?

मंदिर से चौराहे तक अपनी चाहत का पीछा अभिराम सिंह को बलजिंदर के घर में ही नहीं बल्कि उसके क़रीब ले गया...

□

मोहब्बत की यह रासलीला चलती रही. अभिराम सिंह ने बलजिंदर के घर में क़स्बे के मेंटेनेंस विभाग की ओर से कई काम करवा दिये. मसलन, सरकारी नल को कटवा कर नीचे करा दिया जिससे पानी चौबीसो घंटे मिलने लगा. बाथरूम में सीमेंट की एक टंकी बनवा दी. आंगन में ईटों पर जहां सीमेंट की टिपकारी थी उस पर पलस्तर करा दिया और वहीं स्टोर रूम की तरह एक अनधिकृत कोठरी भी बनवा दी. यह सब अभिराम सिंह ने अपने पिता के रुतबे का इस्तेमाल करते हुए किया था. सरदारजी के घर में वह यहीं से प्रभावशाली होता गया. बरस दर बरस बीतते गये. क़स्बे की राजनीति से निकलकर वह शहर के कांग्रेसी नेताओं के बीच उठने–बैठने लगा. उसकी बातें बड़ी होती गयीं. अब वह विधायकों और सांसदों के घरों में सप्ताहांत को लगने वाले दरबार की शोभा बढ़ाने लगा. कभी-कभी किसी विधायक और सांसद के सम्मान का आयोजन भी क़स्बे और अपने स्कूल में कराने लगा. उसका प्रभाव दिन ब दिन बढ़ रहा था. इसी प्रभाव का एक चमत्कारिक नतीज़ा यह भी हुआ कि अभिराम सिंह ने कांग्रेस के तत्कालीन प्रतापी ठाकुर नेता के जरिए अपने चाचा सुरंजन सिंह को नगर में ब्रिटिश कोलाबरेशन से नये खुले कारख़ाने में सहायक प्रबंधक के पद पर नियुक्त करा दिया. कांग्रेस में ही नहीं बल्कि दूसरे दलों के प्रमुख ठाकुरों को उसने साथ कर लिया था. बलजिंदर ने अंग्रेज़ी साहित्य में मास्टर्स डिग्री ली. बी. एड. किया मगर अपने राजनीतिक प्रभाव से अभिराम सिंह ने सेंट्रल स्कूल में उसकी नौकरी ही नहीं लगवायी बल्कि क़स्बे में ही जो दो केंद्रीय विद्यालय थे उनमें से ही एक में नियुक्ति भी करा ली. अपने छोटे भाई को भी रक्षा संस्थान में सीधे अराजपत्रित अधिकारी के पद पर नियुक्त करा लिया. वह नेता हो गया था. घर में उसका सिक्का जम गया था, उन्हीं दिनों एक राजनीतिक परिवार से उसकी शादी के लिए रिश्ता आया जिसे उसके पिता ने स्वीकार कर लिया. उनकी स्वीकारोक्ति अभिराम सिंह के लिए जब भारी पड़ गयी तब एक दिन उसने अपने चाचा सुरंजन सिंह से कहा, ''मैं यह शादी नहीं करूंगा... बलजिंदर से करूंगा... मैं उससे प्यार करता हूं...'' सुरंजन सिंह के सामने इतिहास अपने उसी विद्रूप रूप में खड़ा था जब उन्होंने अपनी भौजी से कहा था कि वह एंजेला से शादी करेंगे. सुरंजन सिंह जैसा आदमी जो ज़िंदगी भर अपनी ठकुरई के बलबले को जीता आया था, अपने भतीजे के सामने ख़ामोश था. मगर उन्हें कुछ तो बोलना था. तो, सुरंजन सिंह ने कहा, ''मैं तुम्हारी मोहब्बत की कद्र करता हूं... लेकिन.... तुम भइया और भौजी को जानते हो... उन्होंने मुझे भी घर से बाहर कर दिया था... तुम भी बेघर हो जाओगे... यह मामला आसान नहीं है....''

''यह शादी मैं नहीं करूंगा... अगर आप लोगों ने जबरदस्ती की तो अंजाम ठीक नहीं होगा...''

सुनो, भइया भौजी की बात मान लो... तुम्हें प्रेम करने से किसने रोका है. आगे सब ठीक हो जायेगा... इतने बड़े घर से रिश्ता आया है... तुम्हारा राजनैतिक भविष्य इसी में है कि यह शादी करो... एक बार राजनैतिक गलियारे में क़ायदे से पहुंच जाओ फिर जो मन आये करना... कौन बोलेगा...'' सुरंजन सिंह की बात में कोई रहस्य था या कि अभिराम सिंह ने मन ही मन सोचा कि चाचा की बात ठीक है मनमानी तो चल ही रही है और आगे भी चलती रहेगी. उसने घर वालों की बात मान ली और बलजिंदर को भी मना लिया कि शादी करने से होता क्या है. रिश्ता तो मेरा तुम्हारे साथ है और मरते दम तक रहेगा...

अभिराम सिंह ने राजनैतिक परिवार की लड़की से शादी कर ली...

□

बलजिंदर से उसके रिश्ते यथावत बने रहे. हां, पत्नी से उसका कोई रिश्ता नहीं बना. वह कभी घर के अंदर नहीं गया. बाहर ही नहाता, कोठरी में उसका खाना आ जाता. कपड़े आ जाते वहीं दरबार लगाता और वहीं से अपनी नेतागिरी के चक्कर में बाहर हो जाता. परदा इतना कड़ा था कि पत्नी घर की चौखट तक आकर बाहर झांक भी नहीं पाती. सास-ससुर के होते वह और भी पराधीन थी. पति का दबदबा ऐसा कि इस पीड़ा को पीने के अलावा दूसरा चारा नहीं था. वह भीतर ही भीतर सुलगती लकड़ी की तरह एक ज्वालामुखी लिये फुंक रही थी. अभिराम सिंह और बलजिंदर के रिश्ते का पता तो उसे चल गया लेकिन उसके हिस्से ख़ून का घूंट ही आया और उसे चुपचाप पीना था. अभिराम सिंह की ज़िंदगी स्वच्छंद नेता की तरह आगे बढ़ रही थी. लोगों के छोटे मोटे काम करा देना, शाम की शराब का जुगाड़ कर लेना, महीने में एक दो बार दिल्ली की दौड़ और फिर आगामी चुनाव में टिकिट पाने के ख़्वाब. लोग नेताजी-नेताजी करने लगे थे और वह हवाओं में उड़ने लगा. गुज़रते वक़्त के साथ उसके छोटे भाइयों में से दो की शादी हुई. उनके बच्चे भी हुए. सबसे छोटा भाई रक्षा प्रतिष्ठान में ठेकेदारी करने लगा. पैसा बरसने लगा. दरवाज़े पर दो चौपहिया वाहन और तीन-तीन मोटरसाइकिलें खड़ी हुईं मगर अभिराम सिंह की पत्नी की कोख सूनी ही रही. निरंजन सिंह देखते, ठकुराइन देखतीं. सुरंजन सिंह देखते मगर चुप चुप. यह भीष्म पितामह वाली स्थिति थी या गांधारी वाली कुछ पता नहीं चलता था कि सभी भीतर भीतर घुल रहे हैं या फिर निर्विकार भाव से वर्तमान के आगामी भविष्य से अपरिचित हैं...

वही दिन थे कि श्रीमती गांधी की हत्या हो गयी. न जाने कितने निरपराध सिख मार डाले गये. उस कठिन घड़ी में अभिराम सिंह ने बलजिंदर के परिवार को बचा लिया और तब तक होने वाले उपकारों में यह सबसे बड़ा था जो अभिराम ने किया था, लेकिन यही वह घड़ी थी जब राजीव गांधी ने दून स्कूल की संस्कृति को कांग्रेस में प्रमुख जगह दे दी. इंदिरा गांधी के विश्वासपात्र नेता ढक्कन हो गये और अभिराम सिंह की स्थिति दिनोंदिन अपने शिखर से नीचे लुढ़कने लगी. देश और प्रदेश की राजनीति से वह शहर की राजनीति में सिमटता गया. उसे लगने लगा था कि अब चिरागों में वह रोशनी नहीं रही. दायरा सिमटने लगा. शाम की शराब के लाले पड़ने लगे. परिवार में आमदनी तो थी मगर उसके पास अपनी आमदनी नहीं थी. दोपहरी के सूरज का ढलना दिखने लगा था कि एक शाम निरंजन सिंह को दिल का दौरा पड़ा. जब तक उन्हें कार में लिटाकर अस्पताल के लिए गाड़ी चलती उनके प्राण निकल गये. ठकुराइन को इस हादसे से लकवा मार गया और छह महीने बीतते न बीतते वह भी दुनिया से उठ गयीं. उनके मरते ही अभिराम सिंह की पत्नी को घर की चौखटी क़ैद से मुक्ति मिल गयी. वह बाहर लॉन में कुर्सी डालकर बैठने लगी और पानी पी-पीकर बलजिंदर को कोसने लगी. घर भी पास-पास थे. बलजिंदर जब भी स्कूल या कहीं भी आते-जाते दीखती, नयी ठकुराइन ख़ूब ऊंची आवाज़ में पूरी भदेस हो जाती. वह अभिराम सिंह को भी जली-कटी सुनाती कोई मना करता तो उसी पर चढ़ बैठती. जब अपना पाला कमज़ोर हो तो प्रतिवाद की स्थिति को नदारद होना ही था. धीरे-धीरे वह हावी होती गयी. मोहल्ला देखता और दबी ज़ुबान से कहता कि कलंकों की संख्या में एक और जुड़ा. मरदानगी नपुंसक हो गयी. अभिराम सिंह ने बलजिंदर के घर जाना छोड़ दिया. मिलना-जुलना शहर के दूर-दराज स्थानों पर होने लगा. ठकुराइन का रात-दिन गरियाना और ज़िंदगी का अपनी रफ़्तार से घिसटना जारी रहा कि तभी एक बरसाती शाम को मोटर साइकिल फिसलने से गिर पड़े. अभिराम सिंह का पांव टूट गया. ऑपरेशन हुआ, रॉड पड़ी, महीनों बिस्तर पर. रॉड निकली तो भी कई महीने छड़ी के सहारे रहे. घर में रहते-रहते घुट गया वह कि एक दिन फिर पांव फिसला और दूसरा पांव भी टूट गया. फिर वही प्रक्रिया, वही ज़िंदगी.

उसके साथ हुई दुर्घटना को सुनने के बाद मैं उससे मिलने गया था. पहले मेरे और उसके घरों के बीच कोई दूरी नहीं थी लेकिन पिता के रिटायर होने के बाद वह सरकारी

मकान छोड़ना पड़ा और भाई को उसके पद के हिसाब से जो क्वार्टर मिला वह लगभग दो किलोमीटर दूर था. जबकि उसके भाई को वही मकान मिल गया जिसमें रहते हुए उसके पिता रिटायर हुए थे. वही पीपल का पेड़, वहीं बड़ा सा लॉन मगर मकान के सामने सन्नाटा पसरा था. वह अपनी कोठरी में उसी बिस्तर पर लेटा था जो पिछले तीन साल से उसे न छोड़ने की क़सम खाये था. स्वास्थ्य चौपट था और मानसिक शून्यता ने उसे अपनी गिरफ़्त में जकड़ लिया था. उसकी निराशा का अंत नहीं दिख रहा था. उसे समझा-बुझा और सांत्वना देकर मैं इस शुभकामना के साथ लौटा था कि अगले साल जब उससे मिलूंगा तो वह पूर्ण स्वस्थ होकर अपनी राजनैतिक दुनिया में सक्रिय हो चुका होगा.

मगर....अगले साल... यानी कि इस साल जब उसे देखा तो बाक़ी तो कुछ भी नहीं बचा था. वह चलने-फिरने के लायक तो था मगर उसकी चाल में कंपन था. मुझे देखते ही उसकी आंखों में एक पल के लिए कौंध उठी, ''कब आये?''

''कल.... तुम्हारा हाल तो..''

''देख तो रहे हो... जीवन नरक हो गया. ... कहीं जा नहीं पाता.. कोई मिलने नहीं आता... चाचा को हैप्टाइटिस हो गया है... जूही दीदी बिस्तर पर तीन महीने से हैं... संग्राम का फिर ट्रांसफर हो गया है तिरचनापल्ली... अब ट्रांसफर भी नहीं रुक रहा... उसके जाने के बाद यह सरकारी मकान छोड़ना पड़ेगा... बासठ साल से इस मकान में हम लोग रह रहे हैं.... जो मकान हम लोगों ने नाले के पास बनाया था वहां तीन-तीन दिन बिजली नहीं रहती. इनवर्टर क्या ख़ाक चलेगा... सामने ही हिजड़ों के घर हैं... कोई वहां जाना नहीं चाहता... और बलजिंदर ने वी. आर. एस. ले लिया. ... उसको भी मकान खाली करना है. ... यह क्वार्टर लोन पर था... कैसे होगी उसकी शिफ़्टिंग... कौन उसकी मदद करेगा... उसके बूढ़े मां-बाप और दो कुत्ते कहां रहेंगे. ... मेरा सिर फट रहा है. ... राज भाई... मुझे चुनाव में पार्टी टिकट देगी न?'' मैं कुछ कहता तब तक उसका छोटा भाई भी कोठरी में आ गया. पांव छुये और बोला, ''भाई साहब, ये टिकट मांग रहे होंगे... उसके मकान की शिफ़्टिंग करा रहे होंगे. जरा पूछिए इनसे कि ... वह क्या लगती है इनकी?''

''चालीस साल से वह मेरा साथ निभा रही है... उसका ख़याल भी तो रखना है.'' वह मरी-मरी आवाज़ में बोला.

''और ये कौन हैं जो अट्ठाइस साल से तुम्हारे नाम का सिंदूर ढो रही हैं... इनका ख़याल कौन रखेगा?''

''इनका भी रखेंगे...''

''क्या बोले? देख रहे हैं भाई साहब इस आदमी को... अरे बोलो... इनका ख़याल रखेंगे... बोल रहे हैं कि इनका भी... चार क़दम चल नहीं सकते और ख़याल रखेंगे इनका भी... इनको पार्टी टिकट देगी... अपना हाल नहीं देखते.. भाई साहब, इस आदमी ने सबको पकाकर रख दिया है...''

''सब ठीक हो जायेगा...'' कहते हुए मैं उठ पड़ा. माहौल कतई ऐसा नहीं था कि वहां कुछ और देर रुकता. मेरे

लघुकथा

हवलदार

✍ रघुराज सिंह 'कर्मयोगी'

चोर सड़क पर चल रही महिला की चैन तोड़ कर भाग रहा था. महिला 'चोर-चोर' कह कर चिल्लाने लगी. सामने चाय की थड़ी पर उसे पुलिस के दो सिपाही चाय की चुस्कियां लेते दिखायी पड़े तो तसल्ली हुई. वह उनके पास पहुंची. हाथ जोड़ कर बोली –

''हवलदारजी, मेरे गले की चैन तोड़ कर सामने चोर भाग रहा है. उसे शीघ्र पकड़िए न.''

सिपाहियों ने महिला को एक नज़र ऊपर से नीचे देखा और उनमें से एक तपाक से बोला –

''आप सोने के जेवर पहनती ही क्यों हो? बाज़ार में नकली भी तो मिलते हैं. जिनके लिए न चोर का भय न गुम जाने का अफ़सोस.''

''सिपाही जी, उसे दौड़ कर पकड़िए. अन्यथा भाग जायेगा. मैं पति को क्या मुंह दिखाऊंगी?''

''मगर हम तो यहां चाय पीने के लिए बैठे हैं. यहां हमारा थाना थोड़े न लगता है. यहां जो थाना लगता है उसमें रपट लिखाइए. वहां की पुलिस ही चोर को पकड़कर आपके जेवर दिलवा देगी.''

महिला ने सिपाही का डायलॉग सुना तो माथा पकड़कर बैठ गयी और रोती रही.

कर्मयोगी सदन, तीसरा एवेन्यू,
१०५९/८, आदर्श कॉलोनी, डडवाड़ा.
कोटा जं.-३२४००२.
मो. : ८००३८५१४५८

साथ ही वह भी उठ पड़ा और तभी संग्राम सिंह ने उसे चेतावनी दी कि भाई साहब को छोड़कर सीधे घर आना. घर से कुछ दूर पहुंचते ही मैंने उससे मोटर साइकिल रुकवायी, हिम्मत ही नहीं हो रही थी कि मैं उसकी मोटर साइकिल पर बैठा रह सकूं. हम सड़क के किनारे खड़े बात कर रहे थे. वह घर जाने की स्थिति में नहीं था और जैसा संग्राम सिंह ने कहा था उस आधार पर मैं उसे अधिक देर तक रोक नहीं सकता था, ''अब तुम घर जाओ... मैं तुमसे कल मिलने आऊंगा...'' बड़ी मुश्किल से उसने मोटर साइकिल घुमायी.

मैंने घर का रास्ता पकड़ा. .. दिमाग़ में झनझनाहट थी... मैं अपने घर की ओर जा रहा था और उधर गुरुद्वारे से लौटती बलजिंदर थी, ''अरे... भैया तुम...अ...? कब आये? अभिराम से मिले?''

''हां, मिला... कल आया मैं... उसकी हालत तो बहुत ख़राब है... उसे हॉस्पिटल में एडमिट क्यों नहीं कराते तुम लोग...''

''क्यों... क्या हुआ है उसे... ठीक तो है...''

''ठीक है? उसे प्रॉपर ट्रीटमेंट चाहिए...''

''उसे कुछ नहीं हुआ... और जानते हो... वह बहुत झूठ बोलने लगा है... उसकी हर बात झूठ है. उसे घर से कहीं बाहर ले चलो न कल शाम को... कहीं डिनर लेते हैं... वहीं बात करेंगे. ... आजकल तो वह मुझसे मिलता भी नहीं...''

''मैं उसे कहीं भी नहीं ले जा सकता.... वह कहीं जाने के लायक भी नहीं... उसकी सही जगह अस्पताल है जहां उचित देखभाल हो... मुझे बहुत देर हो चुकी है फिर मिलूंगा...''

''भैया... वह मुझे धोखा दे रहा है... अपनी बीवी के कमरे में सोने लगा है... मैं सती हूं... उसके घर की ओर देख भर दूंगी तो सब भस्म हो जायेगा. चालीस साल इसका इंतज़ार किया है. अब और नहीं... मुझे मेरा हक़ चाहिए...''

''हक़ तो तब मिलेगा जब वह जीयेगा... मुझे तो नहीं लगता कि इस हाल में उसकी ज़िंदगी की गाड़ी चलेगी..''

''वह नाटक कर रहा है... घर आना भैया...''

''हां... कोशिश करूंगा कि जाने से पहले आऊं...'' वह अपने घर की ओर चल दी और मैं सोचते हुए अपने घर की ओर बढ़ा कि इसी लड़की के लिए वह हर पल चिंता में है. इसी लड़की के लिए उसने अट्ठाइस साल अपनी पत्नी की ओर नहीं देखा. इसी लड़की के लिए उसने ज़िंदगी भर का रोग लगाया. इसी के मां-बाप और कुत्तों के रहने की चिंता में मरा जा रहा है और यही लड़की कह रही है कि उसके घर की ओर देख देगी तो सब भस्म हो जायेगा...''

अगले दिन अभी सुबह के दस भी नहीं बजे थे कि अभिराम सिंह मेरे घर आ गया बहुत परेशान था वह, ''तुम्हारी कोठरी में सो जाऊं... रात भर नहीं सोया... जॉनीवाकर लाये हो... एक पेग दोगे मुझे. मुद्दत हुई शराब का रंग देखे...''

मुझे उसकी हालत पर तरस आया मगर यह भी कोई वक़्त हुआ पीने का....

''इतने सबेरे पियोगे?''

''हां... सोना चाहता हूं... नींद चाहिए मुझे...''

''बात क्या है?''

''बीवी ने आज अपने भाई को बुला लिया है... हर महीने बुलवाती है... बराबर धमकी दे रही है कि मुझे और बलजिंदर को जान से मरवा देगी... राज भाई... वह अपने भाइयों की मदद से बलजिंदर को मरवा देगी... और शायद मुझे भी... प्लीज़... जरा-सी शराब दो न... मैं एक अच्छी नींद सोना चाहता हूं....''

मुझे डर लगा फिर भी मैंने अभिराम को दो पेग दिये और उसके साथ बैठा रहा. पीने के बाद भी उसे नींद नहीं आयी. बार-बार शराब को देखते हुए अमिताभ बच्चन का संवाद बोलता रहा, ''आज इतनी भी मयस्सर नहीं मयख़ाने में... जितनी कभी हम छोड़ दिया करते थे पैमाने में... जानते हो राज भाई.. औरत इंसान की ज़िंदगी को मौत भी देती है और जीवन भी... मेरा मुकद्दर देखो... मैंने जिससे प्यार किया वही मुझे मौत दे रही है... जिससे शादी की उसके साथ तो ग़लत किया मैंने, लेकिन बलजिंदर के साथ क्या ग़लत किया... वह भी धमकी देती है... दुरदुरा रही है मुझे छुतहे कुत्ते की तरह... राज भाई.. कहां रहेगी वह... अब तो सरकारी क्वार्टर खाली करने में एक हफ़्ते से भी कम समय बचा है... दिमाग़ काम नहीं कर रहा मेरा...''

''तुम सो जाओ थोड़ी देर...''

''जब से एक्सीडेंट हुआ और मैं घर में क़ैद हुआ तबसे नींद कभी नहीं आयी... मुझे बचा लो राज भाई... ले चलो एक आदमी के पास... वह बचा लेगा मुझे...''

''कौन है वो...?''

''एक तांत्रिक है... मुझे भरोसा है कि उसके पास पहुंच गया तो बच जाऊंगा... प्लीज़ ... मुझे अभी ले चलो... उसने मुझे पहले भी मुसीबत से निकाला है...''

''मुझे ऐसे लोगों पर रत्ती भर यक़ीन नहीं है... तुमको सही इलाज़ की ज़रूरत है...''

''कौन करायेगा मेरा इलाज़... मेरे पास तो ज़हर खाने

का भी पैसा नहीं है... राज भाई... क्या मैं किसी काम का नहीं रहा....?''

''पागलपन की बातें मत करो. सब ठीक हो जायेगा...''

''प्लीज़... मुझे उस तांत्रिक के पास अभी ले चलो...''

''कहां रहता है वह...?''

''बादशाह कॉलोनी... प्लीज़ ले चलो मुझे... अभी...''

एक घंटे बाद मैं उसे लेकर उसके बताये पते पर था. तांत्रिक ने उसे देखा. पहचाना भी और कहा, ''महाविनाश का योग है... यह साल बीतना असंभव है...''

''महाराज... कुछ उपाय करें...'' अभिराम कांप रहा था, ''बाबा.... राजनीति में मेरा क्या होगा?''

''उपाय... उपाय है... मौत के बदले ज़िंदगी नहीं है... मैं उपाय तो कर दूंगा मगर उसमें यदि विघ्न पड़ा तो मृत्यु अवश्यंभावी है... ख़र्चा आयेगा... मुझे कुछ नहीं चाहिए... राजनीति में तुम्हारा सब कुछ ख़त्म हो गया.... तुम्हारे राजनैतिक भविष्य का परिणाम है... शून्य... हां, ज़िंदगी बचाने के उपाय में लगभग दस-बारह हज़ार का ख़र्चा है...''

''मेरे पास तो आज कुछ भी नहीं है... राज भाई... तुम दोगे... मैं वापस कर दूंगा...''

''बाबाजी... आप उपाय बतायें...'' मैंने कहा.

''एक चांदी की बोतल चाहिए और आधा किलो शहद... आप आज या कल दे दें और चौबीस घंटे बाद उसे ले जायें... लेकिन ध्यान रहे... बोतल खुलनी नहीं चाहिए... अगर बोतल में एक भी चींटी चली गयी तो मृत्यु निश्चित है... बोतल को वहां रखना होगा जहां उठते-बैठते इनकी आंखों के सामने हो...''

''राज भाई....ला दोगे चांदी की बोतल और शहद... मैं एक-एक पैसा लौटा दूंगा...'' अभिराम के स्वर याचना की दयनीयता को पार कर गये.

''हां, ला दूंगा... और आज ही... बाबाजी, कहां मिलेगी बोतल...?''

''सौगात टाकीज़ के पास... या फिर टाटा की मिल के सामने चौराहे पर एक दूकान है... ध्यान रहे.. बोतल में छेद नहीं होना चाहिए...''

''मैं देखकर लूंगा....'' तांत्रिक के पास से हटने के बाद उसके बताये उपाय का सामान ख़रीदकर हम फिर उसके पास गये.

''अब तो सब ठीक हो जायेगा न...'' अभिराम ने पूछा. मौत का डर उसके चेहरे पर ठहर गया था.

''उपाय... उपाय... है... यमराज का बंधन काटने का हथियार नहीं... मैं भगवान भी नहीं हूं... बस जो बता रहा हूं... उसका पालन करें.... और हां... आपका पैर फिर टूटने का योग है. ... चप्पल न पहनें... हमेशा जूता पहनें. ... कल आकर यह सामान ले जायें और अपने सामने इसे रखें...''

दूसरे दिन रात आठ बजे मैंने जब वह बोतल उसे दी तो यह समस्या पैदा हुई कि इसे रखा कहां जाये. उसने बलजिंदर को भी बता दिया था कि बाबा ने यह उपाय बताया है और राज भाई ने सारे पैसे ख़र्च किये हैं. अब सब ठीक हो जायेगा. वह मेरे घर चली आयी कि बोतल को उसके पास रखा जाये. अगर बोतल अभिराम सिंह के घर में रही तो मियां-बीवी के संबंध ठीक हो जायेंगे और उसके बिगड़ जायेंगे. संग्राम सिंह ने फ़ैसलाकुन अंदाज़ में कहा कि बोतल भौजी के कमरे में रखी जायेगी क्योंकि रात में अभिराम सिंह को उसी कमरे में बंद किया जाता है. अगर ड्राइंग रूम में रखी गयी तो कोई भी उसे उठा ले जायेगा.''

स्थिति बड़ी हास्यास्पद हो गयी और बोतल को अभिराम सिंह की पत्नी के कमरे में रखवाया गया. मुझे दो-तीन दिन के लिए कहीं जाना था. वापस आने के बाद मैं उसकी हालत देखने पहुंचा तो वहां का दृश्य ही बड़ा तकलीफ़देह था. उसकी बीवी के हाथ में बोतल थी और वह उसे खोलकर पूरा शहद नाली में उड़ेलने की क़सम खा रही थी. वहीं एक मोबाइल फ़ोन भी था जिसके अस्थि-पंजर बिखरे पड़े थे. मैंने अभिराम सिंह की बीवी के बारे में सुना ज़रूर था लेकिन देखा उसे पहली बार, ''मार दूंगी जान से... क्या समझता है ये अपने को... जब देखो तब बात करता रहता है उस रंडी से मोबाइल पर... बुला, उसे देखूं कि उसकी... में कौन सा लाल लगा है... चालीस साल से... रही है और मन नहीं भरा... अब जरा खोले अपना लहंगा... दिखाये अपनी अम्मां की... और भाई साहब... आप तो इस बीच में पड़िए मत... इनकी तो जान लूंगी मैं...'' वह अभिराम सिंह से गुंथी पड़ी थी. बोतल का ढक्कन खुल गया था.

''राज भाई... देखो न... मेरा मोबाइल भी तोड़ दिया इन्होंने...''

बदले की यह पराकाष्ठा थी. उल्टे पांव अपने घर लौट आया और, तय किया कि अब इस मामले में पड़ने की कोई ज़रूरत नहीं है. यह मामला दो पाटन के बीच फंसकर जान गंवाने का है.

P. Box-52088,
Abu Dhabi, UAE
Mob.: 4561090
Email : krishnabihari@yahoo.com

लघुकथाएं

चिंता किस बात की

✍ सैली बलजीत

वे गांधी चौक से गुज़रे तो उनका ध्यान ज़मीन पर पड़े गले-सड़े आमों पर पड़ा, जिन्हें रेहड़ी वालों ने कचरा समझ फेंक दिया था.

''उठाले... देखता क्या है... बड़े दिनों से आम को तरस गये थे.'' एक जना बोला था.

''तू यहीं खड़ा रह... मैं लाता हूं उठा कर...'' दूसरा जना चिहुंका था.

वह तुरंत रेहड़ी के नीचे पड़े गले-सड़े आमों को ज़मीन से बीनने लगा था. लगभग आठ-दस आम उसने फटे-से पॉलिथीन के लिफ़ाफ़े में डाल लिये थे. दोनों भीतर तक प्रसन्न हो उठे थे.

पहले वाला आदमी बोला था, ''कहीं छांवदार दरख़्त के नीचे जाकर खाते हैं...''

''चल फिर... धूप ने तो आज क़हर बरसा रखा है...'' दूसरे वाला सूरज को कोसते हुए बोला था.

वे दोनों डलहौज़ी रोड वाले लीचियों के बाग के पास घने सफ़ेदों की छांव तले बैठकर आम चूसते हुए चटखारे लेने लगे थे.

''लगता है... मरेंगे... हैजे से.. इन्हें कोई खाता है...? हम ही उठा लाये हैं.'' एक जना बोला था.

''नहीं मरता... पहले भी तो यहीं से उठाकर खाते रहे हैं... बोल, मर तो नहीं गये हम... ज़िंदा हैं ना?'' दूसरे ने कहा था.

''डर लगता है!''

''तू क्यों चिंता करता है... चिंता से मरना था तो क्यों उठा लाया वहां से .. आम के बिना मर चला था तू...?''

''बस मन कर आया था... मरने की बात कब्बी सोची नहीं... आज... जाने क्यों लग रहा है... हैजे से मरे ही मरे...''

''कुछ नहीं होता कमबख़्त... सर्दी....गरमी... बरसात... धूप... सब्बी झेलते हैं ना?... बोल मरे तो नहीं ना..? कमबख़्त ग़रीब आदमी तो जन्मता ही मौत के साथ है... मर गये तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ेगा... बोल...?''

''चल दे मुझे एक और... कुछ नहीं होगा... हैजे की ऐसी की तैसी.''

वे दोनों वहीं पसर गये थे. छांव में... मन का रांझा राजी कर लिया था. शाम को उठे तो शरीर चुस्त हो गया था. उन्हें कुछ भी नहीं हुआ था. वे दोनों हाथ में भीख़ मांगने वाले कटोरे थामे हुए, शनि मंदिर की तरफ़ चल दिये थे. उनके चेहरों पर चिंता की लकीरें ग़ायब थीं.

- १२८८, लेन-४, श्रीरामशरणम् कॉलोनी, डलहौज़ी रोड, पठानकोट (पंजाब)-१४५००१.
मो. ९८७८०७८५७०

साइकिल

✍ डॉ. वी. गोविंद शेनॉय

हड़ताल ने बंद की सी स्थिति पैदा की थी. डॉक्टर सरजू 'नर्सिंग होम' से पैदल ही घर चल दिये, अपराह्न. रास्ते में एक औरत उनकी ओर दौड़ती आती दिखी. वे रुके. औरत ने कहा — बच्चा बीमार है, सख़्त बुखार है. वैद्यराज ने काढ़ा बनाकर देने की परची लिख दी है. दूकान बंद है जड़ी-बूटियों की. आप आकर देख लें. कृपा होगी. हमारा मकान पास ही है. डॉक्टर सरजू उसके यहां गये. ढाई-तीन साल का बच्चा. बुखार सख़्त. डॉक्टरी बैग संयोग से साथ था. बुखार की गोलियां दीं. आंगन में साइकिल दिखी. उस पर नर्सिंग होम चल दिये दवाइयां लाने. हड़तालियों के जुलूस में फंस गये. साइकिल की शामत आ ही गयी. थोड़ी बहुत डॉक्टर की भी. डॉक्टर नर्सिंग होम से दवाइयां ले पैदल लौटे मरीज के यहां. साइकिल उन्होंने नर्सिंग होम में ही छोड़ी. बच्चे की स्थिति सुधरती जा रही थी. डॉक्टर ने कहा — बच्चे को आप कल नर्सिंग होम ले आइए, चिंता की कोई बात नहीं. वे अपने घर चलने को हुए. देखा, बच्चे का पिता आ रहा है. हड़ताल की विजय पर गर्वोल्लास में मस्त था. डॉक्टर को देख हैरान! मुंह से निकल पड़ा. आप जुलूस में फंसे थे, आपकी साइकिल का क्या हुआ? डॉक्टर ने कहा साइकिल आपकी है. नर्सिंग होम में रखी हुई है. कल ले जाइएगा.

'सौभाग्य', ओल्लुक्करा, त्रिचुरा (केरल)-६८०६५५.

कहानी

बेज़ुबान

✍ गजेंद्र रावत

रात बहुत हो चुकी थी, ऊपर से अंधेरे और ठंड की ज़बरदस्त जुगलबंदी ने यहां की सभी गतिविधियों को पूरी तरह ठप्प कर दिया था. लोहा-मार्किट में जहां दिन में ज़माने भर की चिल्लपों, मोल-भाव और तरह-तरह की उठा-पटक चल रही थी अब वहां की एक-एक चीज़ अंधेरे, ठंड और ख़ामोशी में डूबी हुई थी. बस कहीं दूर-दराज़ छुटपुट रोशनी का धुंधला अक़्स दिखायी दे जाता. इंसान तो दूर, मार्किट के आवारा कुत्ते तक इस कड़ाके की ठंड में कूं-कूं कर रहे थे और यहां-वहां दुबकने की माफ़िक जगह ढूंढ़ रहे थे.

सभी दुकानदार दुकानें बढ़ाकर कभी के जा चुके थे. पूरी लोहा-मंडी में बस सी. लाल एंड सन्स का शटर खुला था और दुकान के आगे भीतर से खींचकर लाये बिजली के तार पर लटके लट्टू की रोशनी फैली हुई थी. रोशनी के सीमित फैलाव के नीचे सरिये चढ़ाये जा रहे थे. इसी रोशनी और अंधेरे के घालमेल में तीन मज़दूर यंत्रों जैसे ख़ामोश काम पर लगे थे. वे दोनों तरफ़ से सरिये उठाते और रोशनी के नीचे खड़ी गाड़ी पर लाद देते. वहां ठहरी ख़ामोशी में लोहे के सरिये टकराने की आवाज़ें थीं. भारी-भरकम सरिया उठाने के लंबे अभ्यास ने उन मज़दूरों को लोहे-सा बना दिया था. आज भी दिन भर लोहा ढोते-ढोते उनमें ज़रा भी दम-खम नहीं बचा था, मगर न जाने किन मज़बूरियों के चलते वे रात में इस काम को करने के लिए राज़ी हो गये थे.

इन थका-तोड़ देने वाली गतिविधियों से थोड़ा हटकर पुराने शहतूत के सूखे खरंड से पीठ टिकाकर विष्णु बैठा था. उसने कंबल ओढ़ रखा था मगर उसके हाथ बाहर की हवा में लगातार चल रहे थे. वो बीड़ी जलाता, कुछ देर तक धुआं उड़ाता रहता. एक बीड़ी बुझती तो वो उसी पल दूसरी सुलगा लेता. .... उसकी हरकतों से ऐसा लग रहा था मानो वो किसी भीषण बेचैनी से जूझ रहा हो. उसका काला रंग अंधेरे में इतना घुल गया कि वहां बीड़ी के सुलगते अंगारे और उठते हुए सफ़ेद धुएं के सिवाय कुछ भी नहीं दिख रहा था. सूखे कटे तने के दूसरी ओर बैल बंधा था जिसकी दो आंखें घुप्प अंधेरे में चमक रही थीं. दुकान के भीतर बाप के चले जाने के बाद दुकानदार का लड़का मौक़े का फ़ायदा उठाते हुए दारू के पैग पर पैग चढ़ाये जा रहा था. थोड़ी देर पहले विष्णु ने ही उसके लिए दारू, सोडा और नमकीन का जुगाड़ किया था. उन्हीं बचे हुए पैसों से वो रात के लिए दो बीड़ी के बंडल ले आया था.

तीनों मज़दूरों को धीरे-धीरे काम करते देख कर विष्णु बेचैन हो उठा और बीड़ी का कश खींचकर धुआं छोड़ते हुए बड़बड़ाया, ''अरे! अभी तो आधे से ज़्यादा चढ़ने बाक़ी हैं.'' फिर गले को खंखारते हुए पूरे ज़ोर से पीछे अंधेरे में थूक दिया और बैल की तरफ़ गरदन घुमाते हुए फुसफुसाया, ''ये एक-दो घंटे ही हैं आराम के!.... फिर नहीं रुकना सारी रात!... बस कुछ दिनों की बात है...''

बैल ने न जाने क्यूं गरदन हिला दी. उसके गले में लटकी घंटी अब टन-टन बजने लगी.

''तेरा बड़ा सहारा है....'' बीड़ी खींचते हुए विष्णु सामने आदमियों को काम करते देखता रहा और फुसफुसाया, ''अगर तू न होता तो मैं भी ऐसे ही सरिये ढो रहा होता... और ढोये भी हैं मैंने सालों-साल....''

उसने एक लंबा कश खींचा और नीचे मिट्टी में बीड़ी का आख़िरी सिरा मसल दिया. खांसते हुए सिर दाहिने घुमाकर बैल की तरफ़ देखा — बैल उसी तरह जुगाली किये जा रहा था.

''कुछ बोलेगा भी या मुंह ही चलाता रहेगा?''

विष्णु कुछ देर चुप रहा — ख़ामोशी तनी रही.

... इंदू अगर पीछे न पड़ी होती तो मैं इतनी ठंड में, बर्फ़ीली हवाओं में रात-रात सड़कों पर यूं न फिरता. ... पर उसकी ज़िद्द भी ज़ायज है और कुछ हो न हो सिर पे छत तो चाहिए ही चाहिए. ... सारी छत टपकती है कहां जायेगी बेचारी अगर सर्दियों में पानी बरस गया! ... ख़ैर जब एक साथ इकट्ठे बीस हज़ार रुपये भेजूंगा तो हैरान रह जायेगी. ... उसे भी तो पता चले मैं भी कमा सकता हूं. .... विष्णु सोचता रहा... और फिर मैं भी यहां क्यों खट रहा हूं. ... उन्हीं के लिए तो! मुझ अकेले का क्या, खाया खाया नहीं खाया, नहीं खाया!

सरिये गाड़ी पर चढ़ाकर मज़दूर कंधे पर पड़े अंगोछे से अपने-अपने कपड़े झाड़कर वहीं नीचे ज़मीन पर बैठ गये. उन्होंने भी बीड़ियां सुलगा लीं. एक दो कश खींचकर वहीं से प्रीतम ने आवाज़ लगायी, ''हो गया काका! ले जाओ...''

''अरे प्रीतम! सुन, पीछे लालटेन ज़रूर बांध देना.''

''काका लाल कपड़ा बांध देता हूं... वो भी चलता है.'' प्रीतम बैठे-बैठे बोला.

''नहीं, नहीं ऐसा मत करियो बेटा! लाल कपड़ा क्या दिखायी देगा इस घुप्प अंधेरे में. तू बाक़ी के काम छोड़कर पहले लालटेन बांध दे. .... ज़रूरी है अपनी और दूसरे की हिफ़ाजत.'' विष्णु सामने रोशनी में बैठे मज़दूरों की पंक्ति को देखता रहा.

प्रीतम दुकान के भीतर से लालटेन जलाकर लाया और बैलगाड़ी के पिछले हिस्से पर बांधने लगा.

वहां से उठने का विष्णु का बिल्कुल भी मन नहीं कर रहा था. खड़े होने के बजाय उसने एक और बीड़ी सुलगा ली और लंबा-सा कश भीतर खींचकर धुआं छोड़ते हुए सोचने लगा. ... क्या मुसीबत है! ... मन नहीं है फिर भी जाना है और जगना है सारी रात....

वे तीनों मज़दूर और दुकानदार का लड़का जा चुके थे. बाहर लटका बल्ब बुझ चुका था. दुकान के बंद शटर के आगे अंधेरा क़ाबिज हो चुका था.

दो रोटियां, अचार, पानी की पुरानी बोतल और बंडल-माचिस जैसी ज़रूरी चीज़ों के साथ विष्णु बैल-गाड़ी पर बैठ

गजेंद्र रावत

विज्ञान स्नातक.

'बारिश, ठंड और वह' कहानी संग्रह प्रकाशित.
साहित्यिक पत्रिकाओं में कहानियों का निरंतर प्रकाशन.

गया. चारों ओर से कंबल लपेटकर डोरी खींचते हुए वो बोला — ''चल भई राजा!''

बैलगाड़ी बंद दुकानों के बीच की ऊबड़-खाबड़ सड़क पर डग-मग गति से चलने लगी.

''बस यही है, डेढ़-दो किलोमीटर ख़राब सड़क! आगे तो आंख बंद करके चलना है. .... थोड़ी-सी परेशानी बस.'' विष्णु गाड़ी के हिचकोले झेलता हुआ फुसफुसा रहा था. उसने कमर सरियों से टिका दी फिर कान पर लगी भरी सिगरेट को हाथ लगाकर जांचा जो प्रीतम ने निकलते वक़्त उसे दी थी, यह कहते हुए कि पूरी रात काटनी है लगा लेना बीच में कहीं.

लोहा मंडी के रास्ते में घुप्प अंधेरा और सन्नाटा फैला हुआ था. बस बैलगाड़ी के पहियों की चर्र-चर्र स्पष्ट गूंज रही थी. .... सड़क के गड्ढों में उतरने-चढ़ने पर बैल की घंटी और चर्र-चर्र की ध्वनि एक सुरीला-सा तारतम्य बना रहे थे.

कुछ ही देर में बैलगाड़ी बड़ी सड़क तक पहुंच गयी. सड़क पर अधिक ट्रैफिक नहीं था. बस कभी कोई तेज़ गाड़ी गुज़र जाती. सड़क आगे जाकर फ़्लाई ओवर से जुड़ रही थी. विशाल फ़्लाई ओवर पर लगी ऊंची-ऊंची फ़्लड-लाइट से पूरा इलाक़ा जगमगा रहा था.

... अब पुल पार करना पड़ेगा बेटा! पहले टाइम ही तो लगता था .... फाटक बंद भी रहता था, लेकिन सड़क तो प्लेन ही हुआ करती थी. ... अब चढ़ो, पहाड़ पर. ये तो मोटर-गाड़ी वालों के लिए है, सर्र से निकल गये. ... यहां तो जान लगानी पड़ती है, घाव हो जाते हैं कंधों पर! बोझ तो देखो कितना है. तौबा! वो सोचता रहा.

फ़्लाई-ओवर पर बैल के पांव धीमे पड़ गये और उसी अनुपात में बैलगाड़ी आहिस्ता हो गयी. आदतन विष्णु ने संटी खींचकर हवा में लहरा दी लेकिन फिर ख़्याल आया तो नियंत्रण करते हुए बैल की पीठ पर पड़ने से पहले ही रोकते हुए बड़बड़ाया, ''ओ .... हो क्या कर रहा हूं मैं! .... मेरा राजा! इसमें भी तो मेरी जैसी जान है! .... दर्द, थकान ये सब तो होती होगी? ... ये इंजन से थोड़े ही चलता है.'' संटी पीछे की तरफ़, सरियों के बीच घुसेड़ दी ताकि हाथ बार-बार

न जाये.

बैल धीरे-धीरे ऊंचाई चढ़ रहा था. विष्णु उसकी कमर पर उठी हड्डियों को देखकर सोचने लगा. ... बहुत कमज़ोर हो गया है राजा. ... क्या करूं? ज़रा आराम नहीं है, पिछली तीन रातें सड़क पर ही गुज़री हैं ... ये चौथी है....

विष्णु जब गांव से आया आया ही था तभी से लोहा मंडी में लोडिंग का काम करने लगा था. वो अभी भी भूला नहीं था, शायद कभी भूले भी नहीं कि दिनभर की ढुलाई से शाम ढलने तक कैसे कंधे और कमर टूट जाते थे. कैसे रात-रात वो अपने ही पांव दबाता और घंटों बैठे-बैठे रोता रहता. कितना कठिन था वो वक़्त. एक बार तो वो भाग कर गांव चला गया था, महीने भर यहां-वहां की ख़ाक छानी फिर लौट आया लोहा मंडी और आंख मूंदकर काम पर लग गया था. यदि राजा न होता तो लगा होता अभी भी उसी मज़दूरी में या निबट गया होता ज़िंदगी से. राजा के प्रति कृतज्ञता जताते हुए विष्णु गाड़ी से उतर गया और कंबल ओढ़े पैदल साथ-साथ चलने लगा. ... और कुछ नहीं तो पचपन-साठ तो मेरा भी वज़न होगा ही. ... और ये खड़ी ऊंचाई...

फ़्लाई-ओवर पर तेज़ रोशनी थी. विष्णु ने गाड़ी के पीछे पहुंच कर सामान पर नज़र डाली, लालटेन को हिलाकर देखा और फिर आगे समानांतर आकर चलते-चलते बोला — ''चल राजा आधा पुल तो लगभग पार हो ही गया है आगे तो उतराई ही रह जायेगी. ... बस थोड़ी और! .... मुझे पता है तू तीन रातों से सड़क पर ही है. ... एक हफ़्ते और लग के कर ले... फिर तुझे छुट्टी दूंगा, ख़ूब आराम करना, डट के खाना-पीना. .... अभी तो मज़बूरी ठहरी!'' वो इतनी रात गये सुनसान सड़क पर राजा से बतियाता चल रहा था. पुल पर ऊंचाई का समतल हिस्सा आ गया था. कभी बग़ल से तेज़ गाड़ी गुज़र जाती और ठंडी हवा का झोंका उसको भीतर तक ठिठुरा देता तो वो शरीर पर झूलते कंबल को और अधिक कस लेता.

... सभी रजाइयों में दुबके होंगे. .... ऊंचे आकाश की ओर तकते हुए उसने सोचा फिर गाड़ी पर पंजे टेककर उछला और कंबल समेटते हुए गाड़ी में बैठ गया. थोड़ी ही देर में ठंड महसूस करते हुए उसने लटकी टांगों को ऊपर समेट लिया और आलती-पालती मार ली. कुर्ते की जेब से बीड़ी का बंडल निकाल कर बीड़ी सुलगा ली. एक लंबा कश खींचा और बड़े इत्मीनान से धुआं छोड़ दिया. इतनी ठंड में बीड़ी बड़ी राहत थी. वो सिर नीचे कर बीड़ी का कश खींचता और सिर उठाकर धुएं को खुले आकाश में उड़ा देता. उसने कई बार इस प्रक्रिया को दोहराया. यहां पुल के बीचों-बीच ऊंचाई पर हवा की सरसराहट बढ़ गयी थी. उसने बीड़ी का बचा हुआ टुकड़ा फेंक दिया. एक अंगारा हवा के साथ पीछे की तरफ़ चला गया. उसने दोनों हाथों और सिर के ऊपर से कंबल ले लिया. अब बस उसके मुंह, नाक और आंखें बाहर की ठंडी हवा के संपर्क में थीं.

... इस कड़ी ठंड में एक सिगरेट से क्या होगा? अपने कान में लगी भरी हुई सिगरेट को निकालकर वो सोचने लगा. ... अगर अभी पी लो तो पूरी रात कैसे कटेगी. इन बर्फ़ीली हवाओं का मुक़ाबला कैसे हो पायेगा? उसने सिगरेट फिर से कान पर लगा ली. ... पुल उतर कर लगाता हूं, यहां तो हवा भी बहुत है. ... आधी सिगरेट तो हवा से ही ख़त्म हो जायेगी. ... नीचे किसी आड़ में देखता हूं. पीछे देखकर उसने नोट किया, लालटेन की लौ फड़फड़ा रही थी.

पुल की ढलान में गाड़ी तेज़ रफ़्तार से दौड़ने लगी. पहियों की गति के साथ-साथ बैल की गति भी तेज़ होती जा रही थी. इस तेज़ रफ़्तार के दौरान विष्णु सांसें थामे राजा के तेज़ क़दमों को देखता रहा. काफ़ी देर बाद समतल पर पहुंच कर ही विष्णु ने राहत की सांस ली. राजा की गति सामान्य हो चुकी थी. ... और तीन एक किलोमीटर चलकर जहां सड़क कुछ अधिक चौड़ी हो रही थी, उसने बैलगाड़ी को पटरी के सहारे रोक दिया. ... और थैले समेत नीचे उतर गया. पुल के मुक़ाबले फुटपाथ पर ठंडी हवा थोड़ी बहुत कम तो हुई थी पर अभी भी हड्डियों तक पहुंचने की तीव्रता बनी हुई थी. वो दो सटे हुए सफ़ेदे के पेड़ों की जड़ में पंजों के बल बैठ गया. पेड़ की आड़ में उसने क़ाग़ज पर लिपटी रोटियां खोल लीं और अचार की फाड़ लेकर निवाला-निवाला खाने लगा. सूखा-सूखा सटकने में हो रही मुश्किल को वह पानी का घूंट भर कर नीचे हलक में उतार दे रहा था.

खाना ख़त्म कर उसने कान पर लगी सिगरेट सुलगा ली. पहले दो-तीन कश ज़ोरदार खींचकर उसने सिर पेड़ के तने से टिका लिया और थोड़ा रुककर धुएं को छोड़ दिया और फिर हवा में गहरी लंबी सांस ली. वो बड़ी ही तसल्ली से धीरे-धीरे सिगरेट पीता रहा यहां तक कि आख़िरी सिरा उसने उंगलियों के बीच ही मसल दिया. उसका माथा घूमने लगा और आंखों के गोले भारी हो गये.

क़रीब आधे घंटे के अंतराल के बाद विष्णु गाड़ी में चढ़ गया. मुंह से टक-टक की ध्वनि निकालकर डोरी को इशारा भर हिलाया कि राजा सीधी दिशा में चलने लगा. उसने टांगें फैला लीं और कंबल से ढक लीं. बीड़ी सुलगा ली. पीछे गाड़ी

पर बंधी लालटेन फिर फड़फड़ाने लगी. उसने कंबल के भीतर ही पांव, टखनों और घुटनों के जोड़ खींचकर चटका दिये. उसने सरियों की गोलाइयों से पीठ सटाकर सभी अंगों को एक बार ढीला छोड़ दिया और धीरे-धीरे कश खींचता रहा. वह बाहर से शांत लेकिन भीतर मन में बहुत उद्विग्न था. ... ऐसे कैसे चलेगा?... राजा को भी आराम नहीं है. ... वो बेचारा भी चलता जा रहा है बिना खाये पिये! ... किसी से क्या कहना, रुपये जुड़ जायें तो ख़ुद ही चला जाऊंगा गांव भी. ... दंग रह जायेगी मुझे देखकर! ... सपने में भी नहीं सोचा होगा उसने कि मैं ऐसे पहुंच जाऊंगा. ... वो सोचता रहा.

आकाश से झरता पाला और सड़क पर टिमटिमाती छोटी-छोटी रोशनियों के बीच अदभुत संघर्ष ज़ारी था. ऊपर से ठंडी हवा कहर बरपा किये हुए थी. विष्णु आसमान की ओर देखता हुआ सोचने लगा. ... कौन कहेगा. सूरज भी यहीं से निकलता होगा. ... कितनी अंधेरी है यह रात! सोचने भर से उसे झुरझुरी उठी, उसने कंबल को फिर एक बार कस लिया. आते-जाते वाहन उसे ढांढ़स दे रहे थे, उनकी गति और चमकती रोशनियां जीवन के चलायमान होने का आभास दे रही थीं.

गाड़ी के चलते-चलते उसने एक झपकी ली पर मारक सर्दी की ठिठुरन ने जल्दी ही आंखें खोल दीं. जब तक सहज हुआ दुबका बैठा रहा पर जब ठंड असहनीय हो गयी तो उसने नहर के किनारे पेड़ों के झुरमुट के पास गाड़ी रोक दी फिर ऊपर पेड़ों तक पहुंच कर नीचे गिरी सूखी टहनियां और पत्ते बटोर ले आया. फुटपाथ से भीतर की तरफ़ मिट्टी के टीले की आड़ में उसने आग जला ली. देर तक हथेलियां सेंकता रहा फिर एक अंगारे से बीड़ी सुलगा ली. अब वो सापेक्ष रूप से तसल्ली महसूस कर रहा था.

आग बुझ रही थी. जली हुई लकड़ियों के आख़िरी सिरे धुआं देने लगे थे. विष्णु ने उठकर कंबल का निचला हिस्सा झाड़ा और अच्छी तरह लपेटते हुए बैलगाड़ी तक पहुंच गया. उसने खड़ी बैलगाड़ी के आगे पीछे चक्कर लगाया और राजा की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोला, ''बस दो दिन का और....''

रात भर गाड़ी चलती रही. बीच-बीच में विष्णु ने दो तीन लंबी-लंबी झपकियां ले लीं पर राजा के क़दम न रुके. सुबह सूरज की पहली किरण के साथ ही विष्णु अपनी मंज़िल तक पहुंच गया.

सरिये उतारने के बाद वापसी में सूरज आकाश पर चढ़ा हुआ था. धूप तेज़ होने पर भी मन को सुहा रही थी. रात की ठंड से अकड़े अंगों को ख़ासा सेंक मिल रहा था. वो खाली गाड़ी को दौड़ाता ले जा रहा था ताकि जल्दी से जल्दी लोहा मंडी पहुंचा जा सके. बीच रास्ते में उसे राजा की चाल में लचक-सी लगी, उसने चलती गाड़ी से झुककर देखा कि राजा के अगले खुर से नाल खुलकर बाहर की ओर निकल आयी थी. उसने राजा को धीमा कर भागीरथ की तरफ़ से जाने का मन बना लिया.

अपने ठिये पर भागीरथ एक मरियल घोड़े की नाल ठोक रहा था, विष्णु को देखते ही बोला — ''बहुत दिनों में आना हुआ...?''

''अरे क्या बतायें, न रात चैन है न दिन में आराम. अभी भी जमुना-पार माल डालकर ही आ रहा हूं.'' ज़मीन पर पड़े एक बड़े पत्थर को ठोंकते हुए बोल रहा था.

''अरे काम तो हमेशा लगा ही रहता है पर वक़्त तो निकालना ही पड़ता है अपनों के लिए.'' भागीरथ घोड़े के खुर पर हथौड़ी से ठोंकते हुए बोल रहा था.

''अरे भई, गांव के घर की मरम्मत करनी है. घरवाली बहुत दिनों से पीछे पड़ी थी, कह रही थी अब तो छत टपकने लगी है. ... बस उसी ख़ातिर जोड़-तोड़ में लगा हूं. ... कुछ उधार, कुछ वैसे. कम से कम पंद्रह-बीस तो भेजने ही पड़ेंगे, इससे कम तो क्या ही चलेगा.'' यह कहता हुआ विष्णु उठ खड़ा हुआ और गाड़ी से राजा को खोलकर अलग कर दिया. वहीं किनारे पर राजा को बांध कर फिर उसी पत्थर पर आ बैठा.

''ये सब तो हो ही जायेगा, थोड़ा सुस्ता ले, बीड़ी ही लगा ले! सुबह से कंबख़्त बीड़ी ही नसीब नहीं हुई.'' भागीरथ अभी भी उस मरियल घोड़े की टांगों पर झुका हुआ था.

''बीड़ी तो मैंने भी नहीं पी सबेरे से, ... मगर रात तो हद ही हो गयी, मुंह में अभी भी जलन हो रही है...'' विष्णु ने उंगलियों में फंसा कर दो बीड़ियां सुलगा लीं और हवा में हथेली हिलाते हुए एक भागीरथ को पकड़ा दी. भागीरथ घोड़े को छोड़कर वहीं विष्णु के सामने बैठ कर बीड़ी पीने लगा. दो-तीन कश खींचकर बोला — ''तुझे भी लगवानी है?'' विष्णु ने हां में सिर हिला दिया.

बीड़ी ख़त्म कर क़मर पर हाथ रखते हुए भागीरथ उठ खड़ा हुआ और घोड़े की तरफ़ जाते हुए बोला, ''तू भी बैठ ले नीचे तब तक.''

विष्णु ने बीड़ी नीचे मिट्टी में रगड़ दी. राजा को गाड़ी से खोलकर लाया फिर डोरी खींचते हुए होठों को टेढ़ाकर टक-टक की ध्वनि निकालने लगा. बस थोड़े ही प्रयास से राजा ज़मीन पर बैठ गया.

(शेष पृष्ठ ६९ पर देखें...)

कहानी

पीढ़ियां पार्क में

✍ पुन्नी सिंह

शहर की अच्छी कॉलोनियों में से यह कॉलोनी एक है. यहां सड़कें चौड़ी और लगभग अतिक्रमण रहित हैं, जबकि ज़मीनों की क़ीमतें यहां भी आसमान छू रही हैं. इस कॉलोनी की विशेष बात यह भी है कि मकानों की हर दो लाइनों के बीच एक बड़ा पार्क अवश्य है. और सभी पार्कों की देखरेख भी ठीक तरह से होती है. वहां पर कटाई, छटाई और सिंचाई की समुचित व्यवस्था है. इसीलिए इन पार्कों में सुबह-शाम ख़ासी चहल-पहल रहती है. लेकिन सुबह की चहल-पहल का एक ख़ास कारण भी है. जैसा कि हर जगह देखा गया है कि आजकल आदमी अपने स्वास्थ्य के प्रति कुछ ज़्यादा ही जागृत हुआ है और स्वास्थ्य लाभ अर्जन हेतु वह योग-क्रियाओं का भरपूर लाभ उठाने लगा है. यही कारण है कि घरों से लेकर पार्कों तक में सुबह के समय लोग यही क्रियाएं करते दिखाई देते हैं. इसी वजह से सुबह के वक़्त यहां के पार्कों में ख़ासी चहल-पहल रहती है.

लेकिन इन पार्कों में शाम का नज़ारा कुछ और ही होता है.

मुख्यरूप से गर्मी के दिनों में शाम के समय यहां स्त्री-पुरुष, बाल-युवा, सभी आयु वर्ग के लोग बड़ी तादाद में जुटते हैं. तब ज़िंदगी मानो नये-नये रूपों में प्रगट होती है और जैसा कि स्वाभाविक है, युवा वर्ग कुछ ज़्यादा ही खुलकर खेलने के इरादे से आता है. वहां दिल देने-लेने का कारोबार कुछ ज़्यादा ही फूलता-फलता है. यह घरों या गलियों की अपेक्षा यहां पार्क में कुछ ज़्यादा 'स्पेस' पा जाता है. क्योंकि यहां तक पहुंचते ही समाज की मान-मर्यादाओं के बंधन, अगर टूटते नहीं है तो ढीले तो पड़ ही जाते हैं. ... यहां ढेर सारे बच्चे अपने पापा-मम्मी की उंगली पकड़े थोड़े डरे सहमे से आते हैं, लेकिन यहां पार्क में आते ही परम स्वतंत्र हो जाते हैं. यहां तक कि पापा-मम्मी की बहुत ज़्यादा परवाह भी नहीं करते हैं. कोई-कोई तो अपनी सामर्थ्य से ज़्यादा उछलते-कूदते हैं, दौड़ते-भागते हैं. और अगर कोई दौड़ते-उछलते हुए गिर जाये तो कोई फिक्र नहीं, इधर-उधर बहुत सारे 'अंकल'- 'आंटी' मौजूद हैं. कोई भी लपक कर उठा लेगा और शाबाशी देगा. ... फिर से दौड़ने को कहेगा. ... यहां के पार्कों में बुज़ुर्गों की भी तादाद कम नहीं होती है. वे कुछ तो घूमते-टहलते ख़ुद ही पार्क तक चले आते हैं और यहां की रबिश पर घूमते-टहलते रहते हैं. जब थक जाते हैं तब किसी खाली बेंच को टोहते है और मौक़ा देखकर उस पर जा बैठते हैं. उसी बेंच पर अगर कोई पहले से बैठा हो और अगर वह उनकी ही वय का हो तो फिर बातों के लुक्काड़े उड़ने में देर नहीं लगती है. लेकिन जिन बुज़ुर्गों को उनके नाती-पोते लेकर आते हैं और किसी भी बेंच पर बिठा कर चलते बनते हैं, उनको भारी कोफ़्त होती है, पार्क का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है और समय कसमसाहट के साथ बीतता है.

उस दिन शाम होने के कुछ पहले ही कनक पार्क में ऐसे ही सब कुछ चल रहा था. वहां पर भी सभी उम्र के लोग अपनी–अपनी तरह से पार्क का आनंद उठा रहे थे. वह आषाढ़ का महीना था और एक सप्ताह पहले ही पहली बारिश हुई थी. वातावरण ख़ासा उमस रहा था. ऐसे में पार्क की शाम का क्या कहना? और उसी गहमागहमी के बीच पार्क में सेठ बद्रीप्रसाद प्रगट हुए थे. वे अपने पोते के कंधे पर हाथ रखे बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे और उन्हें देखते ही कोई समझ सकता

पुन्नी सिंह

१ अगस्त १९३९, मिलावली गांव (जि. मैनपुरी.)

प्रारंभिक एवं निम्नमाध्यमिक शिक्षा गांव में, उच्च माध्यमिक से स्नातक तक की शिक्षा शिकोहाबाद में स्नातकोत्तर शिक्षा आगरा एवं ग्वालियर में. सन् १९७० से तत्कालीन मध्यप्रदेश के शहर राजनांदगांव के उसी महाविद्यालय में प्राध्यापन कार्य आरंभ किया, जहां महाकवि मुक्तिबोध भी अपने जीवन के अंतिम दिनों में प्राध्यापक थे और उस समय वहां डॉ. पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी प्राध्यापक थे.

लेखन : *पहली कहानी (पंचायत) संभवत: १९६५ में आगरा में लिखी थी. लेकिन उन दिनों इप्टा से जुड़ जाने के कारण नाट्य लेखन की ओर रुचि कुछ ज़्यादा थी. लगभग उसी समय १९६३-६४ में एक बड़ा नाटक - रेज़ांगला' लिखा जो १९६२ के चीनी हमले की कुछ घटनाओं पर केंद्रित था. उसके अलावा कुछ एकांकी भी लिखे.*

नियमित रूप से कहानी लिखने का काम आठवें दशक में. संभवत: १९७४-७५ में छपी 'जंगल का कोढ़' कहानी के साथ. जिसके छपते ही कहानी जगत में प्रारंभिक तौर पर पहचान बनी थी.

उसी समय एक उपन्यास लिखा था — 'तिलचट्टे', लेकिन उपन्यासकार के तौर पर पहचान १९९४ के बाद बनी जब 'पाथर घाटी का शोर' नाम का दूसरा उपन्यास छपा.

प्रकाशित कृतियां : *'रेज़ांगला', 'धनिया' (नाटक); 'काफिर तोता', 'जंगल का कोढ़', 'मोर्चा', 'जुम्मन मियां की घोड़ी', 'नाग फांस', 'जुगलबंदी', 'कयामत का दिन', 'गोलियों की भाषा', 'काना कौआ' (कहानी संग्रह); 'तिलचट्टे', 'पाथर घाटी का शोर', 'सहराना, 'तोर रूप ग़ज़ब', त्रिया तीन जन्म', 'वह', 'जो घाटी ने कहा', 'मंडली' (उपन्यास).*

पुरस्कार : *म. प्र. साहित्य अकादमी का गजानन माधव मुक्ति बोध पुरस्कार, साहित्य सम्मेलन का भवभूति अलंकरण.*

विशेष : *'वसुधा' के दलित साहित्य विशेषांक का संपादन. अनेक कहानियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद, कुछ का नाट्य रूपांतरण और कुछ का फ़िल्मांकन.*

संप्रति : *म. प्र. शासन के उच्च शिक्षा विभाग के प्राध्यापक पद से सेवा निवृत्त एवं पूर्णकालिक लेखन.*

था कि अब उनके हाथ-पैर ठीक से शायद उठते नहीं है और शायद आंखों की रोशनी भी कम हो चली है. राकेश अपने दादा का ध्यान रखता हुआ थोड़ा धीरे-धीरे चल रहा था और हर किसी से नज़र चुराता पार्क की रबिश पर बायें हाथ की ओर मुड़ गया था.

तभी एकाएक सेठ बद्रीप्रसाद थोड़ा चौंके और फ़ौरन लड़के के कंधे से हाथ खींचकर बोले — ''नहीं राकेश, उधर नहीं, पीछे की ओर लौटो! उधर पार्क के दक्षिणी-पश्चिमी कोने की ओर चलना है. वहां ढेर सारी बेंचें खाली पड़ी मिलती हैं.''

लड़का अपने दादा की बातें सुनकर चिढ़ गया था. वह जानता है कि उधर की बेंचों पर एक ख़ास वर्ग के बूढ़े हमेशा जमे मिलते हैं. कुछ बूढ़े धनपति, रिटायर्ड उच्च वर्गीय अधिकारी और विशिष्ट वर्ग के कुछ दंभी लोग. वे उसके दादा जैसे मंझोले व्यापारियों को कोई भाव नहीं देते हैं. दादाजी उनकी बड़ाई करते नहीं थकते हैं और वे इनकी खिल्ली उड़ाते नहीं थकते हैं. और फिर भी ये उनके बीच में बैठने को गौरव की बात मानते हैं. ... लेकिन राकेश का मामला कुछ और भी है, उधर लक्ष्मीगंज की अनुराधा से उसकी नयी-नयी दोस्ती हुई है. वह भी अपने दादाजी को पार्क में छोड़ने इसी समय आती है. उसका दादा नगरसेठ है और उसकी नज़र भी कमज़ोर नहीं है. अस्सी साल की उम्र है और आज भी उड़ती चिड़िया के पर गिन सकते हैं. इसलिए राकेश न तो कभी भूल कर भी लक्ष्मीगंज की ओर जाता है और न यहां पार्क में दक्षिणी-पश्चिमी कोने की ओर झांकता है. हां, रोज़ अनुराधा ही पार्क के दूसरी ओर आ जाती है.

अबकी बार उसने अपने दादाजी का हाथ पकड़ कर खींचा और रबिश पर आगे की ओर चलते-चलते बोला — ''आओ, जिधर आप जाना चाहते हो उधर कोई बेंच ख़ाली नहीं है. इधर मंदिर के पीछे कई बेंचें खाली होंगी. चाहो तो एक पूरी बेंच पर पैर फैला कर बैठ सकते हो. ... और दादाजी, एक बात और है, वहां बैठ कर मंदिर के अंदर बज रहा भक्ति-संगीत आप आराम से सुन सकते हो.... ''

अब राकेश ने देखा कि उसके दादाजी रबिश पर चलते समय जो थोड़े कुंद हुए थे, वे अब फिर से ख़ुश नज़र आने लगे हैं. इसलिए दादाजी का मूड भांप कर फिर बोला — ''दादाजी मेरे ट्यूशन के क्लास का वक़्त हो रहा है. एक घंटे से थोड़ा ज़्यादा समय लगेगा. आप आराम से यहां बैठो. थोड़ा इधर-उधर घूमना चाहो तो घूम भी सकते हो. लेकिन घूमना

सावधानी से, कहीं गिर नहीं जाना. घरवाले हमें डांटेंगे. .... देख रहे हो, मंदिर में कैसे धीमे-धीमे भक्तिरस में डूबे स्वर झंकार रहे हैं.''

और वह जल्दी से चला गया. वह चला गया तो सेठ सोचने लगे, छोकरा वैसे फ़रेबी नहीं है और वैसे अगर सोचा जाये तो सभी छोकरे फ़रेबी कहे जा सकते हैं. हम सब बड़ों के संस्कार ही कुछ ऐसे हैं कि सब कुछ हम अपनी तरह सोचते हैं. लेकिन ये कतई नहीं सोच पाते कि हम बैलगाड़ी के युग की पैदाइश हैं और ये छोकरे लोग... नहीं, कोई बराबरी नही है इनके और हमारे युगों में. ... अब इधर-उधर झुंडों में घूमते युवा छोकरे उन्हें अच्छे लगने लगे थे. उनकी अठखेलियां उनका मन लुभा रही थीं. छोटे बच्चों की उछल-कूद और ज़्यादा भली लगने लगी. और उस सबके साथ इधर-उधर झुंडों में बैठी महिलाएं भी उतनी ज़्यादा अखर नहीं रही थीं.

अब मंदिर से आती भक्तिसंगीत की मीठी-मीठी ध्वनि और लोबान की दबी-दबी सी महक सुख देने लगी थी. उन्हें लगा कि वे भले ही सत्तर साल से ऊपर के वृद्ध हैं लेकिन उनके भाव और भावनाएं आज भी सजीव हैं. कौन कहता है कि वे पार्क के वातावरण में फिट नहीं होते हैं. वे सर्वथा उस वातावरण के योग्य हैं. .... अब उनका मन उछाल मारने लगा. पहले तो सोचा कि अब उठ खड़े हों और पार्क की हरित बाउंडरी लांघ कर रबिश पर चल पड़ें और एक पूरा चक्कर लगा कर फिर यहां पर आकर बैठ जायें. लेकिन तभी थोड़ी कमज़ोरी अनुभव हुई और वे मन मार कर ज्यों के त्यों बैठे रहे. ... लेकिन आख़िरकार वे उठ ही खड़े हुए और फिर धीरे-धीरे चल कर रबिश तक आ गये. फिर वहीं थोड़ी देर खड़े-खड़े सोचते रहे कि आगे को बढ़ा जाये या लौट कर अपनी पहलेवाली बेंच पर जाकर बैठा जाये? अंततोगत्वा उन्होंने पीछे जाना उचित नहीं समझा. वे धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ चले. वे चलने में डगमगा रहे थे और बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे. वे डर रहे थे कि पैर उल्टा-सीधा न पड़ जाये और वे उस दिन जैसे गिर न जायें. ... उन्हें थोड़ी देर ज़रूर लगी लेकिन वे पार्क के दक्षिणी-पश्चिमी कोने तक आख़िर जा पहुंचे.

अब वे वहीं ग्रीन बॉउंडरी से लग कर अंदर की ओर देखते रहे.

वहां की बेंचों पर सचमुच ऊंची हस्तीवाले लोग बैठे थे. कुछ लोगों ने उनकी ओर देख भी लिया था लेकिन किसी ने उनका कोई नोटिस नहीं लिया था. बल्कि वे आपस में खुसर-पुसर ज़रूर कर रहे थे. सेठ बद्रीप्रसाद को उन सबका व्यवहार देख कर थोड़ा ग़ुस्सा भी आया. एक बार तो उनका मन भी हुआ कि वे बाउंडरी लांघ कर अंदर चले जायें और जिस किसी बेंच पर थोड़ी जगह दिखाई दे वहां ठस कर बैठ जायें और अगर कोई ऐतराज़ करे तो उसको दस खरी-खोटी सुनायें.

लेकिन वे न तो पार्क के अंदर जा सके और न किसी को खरी-खोटी सुना सके. बल्कि वे उल्टे पैर मंदिर की ओर लौट चले.

लौट कर जब वे मंदिर के पीछेवाली जगह आये तब तक वहां भी उनकी बेंच पर कब्ज़ा हो चुका था.

उनकी बेंच पर अब तीन लोग बैठे थे. उनमें से एक पंद्रह साल का लड़का भी था. वह उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और बोला — ''आओ बाबा, बैठो! हमें तो पढ़ने जाना है.''

इतना कहकर वह लड़का बेंच से उठकर चला गया और सेठ खड़े-खड़े उसे जाते देखते रहे. वे देखते रहे और सोचते रहे. वे समझ नहीं पा रहे थे कि कहां तो वे उन्हीं की बिरादरी के बड़े-बड़े लोग और कहां यह निहायत ग़रीब छोटा लड़का. समझ दौलत से नहीं आती है. बड़े होने से भी नहीं. उनका मन खीझ से बजबजा उठा था, लेकिन उस लड़के का व्यवहार याद करने पर खीझ जाती रही थी. फिर उनका मन बेंच पर बैठने को नहीं हुआ. वे पीछे को मुड़े और थोड़ा आगे जाकर मुलायम गीली घास पर जाकर बैठ गये.

वहीं आस-पास कुछ औरतों के झुंड थे और उनके बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे. तभी एक बच्चे द्वारा फेंकी गयी गेंद उनकी नाक पर आकर लगी. वे एकाएक चौंक गये. उन्होंने गेंद हाथ में ले ली और नाक को सहलाने लगे. गेंदवाला लड़का थोड़ी दूरी पर खड़ा था. वह थोड़ी देर वैसा ही खड़ा रहा फिर उनके पास तक आया. उन्होंने अपनी नाक पर उंगली रख कर कहा — ''यह देखो, तुमने मेरी नाक तोड़ दी न? अब बताओ कैसे ठीक होगी?''

लड़का पहले से डरा-डरा सा था अब उसकी आंखें छलछला आयीं. फिर उन्होंने उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा और मुस्कुराकर धीरे से कहा — ''तुम मेरे साथ बॉल खेलोगे?''

अब लड़के का चेहरा खिल गया. वह हाथ फैला कर गेंद मांगने लगा. लेकिन उन्होंने नकारात्मक सर हिलाया और कहा — ''नहीं-नहीं, ऐसे तुम को गेंद नहीं दी जायेगी? पहले पीछे हटकर खड़े हो, ... और पीछे.... थोड़ा और!''

अब लड़का पूरे तौर पर मगन था और उनके द्वारा फेंकी गयी गेंद गपकने के लिए पूरी मुस्तैदी के साथ खड़ा था. उसके

पीछे कुछ लड़के और आकर खड़े हो गये थे ताकि बाबा के द्वारा उछाली गयी गेंद वह छोकरा न गपक पाये तो वे पकड़ लें. तभी सेठ ने गेंद उछाल दी और उसी लड़के ने बहुत आसानी से पकड़ ली. सभी लड़के हंसने लगे. इधर बिना हंसे सेठ भी नहीं रह सके. वे अकेले बैठे-बैठे हंस रहे थे और उनके पास से गुज़रते लोग हक्के-बक्के से उन्हें निहार रहे थे.

जब सेठ बद्री प्रसाद की हंसी रुकी तभी उनकी दृष्टि पार्क में थोड़ी दूर पर हो रही कुछ हलचल पर जा टिकी. वहां कुछ लोग इकट्ठे हो रहे थे और आपस में कुछ कहा-सुनी हो रही थी. अब तक दिन ढले का धुंधलका पार्क में कम से कम उनके लिए अवश्य घना हो चला था. उन को रतौंधी का रोग पहले से है लेकिन अब बुढ़ापे के साथ मिलकर और घातक हो गया था. ऐसे मौक़े पर तो वह प्राणघातक हो जाता था. .... वे बार-बार उधर को ही देख रहे थे और कुछ समझ में नहीं आता तो झल्ला उठते थे.

तभी एक आदमी बड़बड़ाता हुआ उधर से आया. सेठ ने उसे रोक कर पूछा — ''क्या बात है भैया, उधर पार्क में?''

''अरे, कुछ मत पूछो बाबा, सुनोगे तो पैरों तले की ज़मीन ख़िसक जायेगी?''

वह कह कर आगे बढ़ जाना चाहता था, लेकिन सेठ ने उसे हाथ पकड़ कर रोक लिया — ''कोई बात तो होगी आख़िर भैया! बताओ तो क्या बात है?''

''बाबा, तुम कुछ मत पूछो, तुम्हारी पीढ़ी के लोग सुन-देख कर पागल हो जायेंगे. आत्महत्या कर लेंगे बाबा!''

इतना कहकर वह आदमी आगे बढ़ गया. सेठ अपनी धुंधली नज़र से फिर घटना स्थल की ओर देखते रहे. अब उन्हें अपने पोते राकेश को लेकर पता नहीं क्यों चिंता होने लगी. उसकी क्लास तो कब की छूट गयी होगी. फिर वह लौट कर क्यों नहीं आया?

थोड़ी देर और हुई तब तक राकेश तो नहीं आया, लेकिन उनके मुहल्ले का नाई उलफ़त आ गया. वह वहां से गुज़र रहा था और सेठ को देख कर रुक गया था. वह भी लगभग सेठ की उम्र का था और अस्थमा का शिकार था. इसलिए उनकी बग़ल में बैठते-बैठते उसने आगे की ओर बलगम थूक दिया. और लोगों की निग़ाह उस पर न जाये इसलिए घास नोंच कर उस पर डाल दी. यह करते उसे इधर-उधर जाते-आते अनेक लोगों ने देखा था. कुछ लोग बुद-बदाये थे और कुछ बुरा-सा मुंह बनाकर रह गये थे. सेठ देख कर थोड़ा बड़बड़ाये और बुदबुदाये थे. लेकिन उन्होंने कहा कुछ नहीं.

फिर कुछ देर के बाद उन्होंने उलफ़त को देखा और उससे अपने पोते राकेश के बारे पूछा — ''उलफ़त तू कहां से आया है? उधर हमारा राकेश तो नहीं देखा? ट्यूशन पढ़ने गया था. पांच सौ आठ नंबर में उसके सर रहते हैं, उन्हीं के पास जाता है. .... अब तक तो आ जाना चाहिए उसे.''

उनकी बातें सुन कर उलफ़त नाई गहरा मुस्कुराया. सोचने लगा कि सेठ पक्का फ़रेबी है. झूठ का बंज करता है. जो काम दुकान पर बैठ कर थोक में किया है और ज़िंदगी भर किया है वह अब बुढ़ापे में छूट भी कैसे सकता है. मुंह के ठीक सामने घटना घटी है. लड़का-लड़की को अश्लील हरकतें करते बहुत सारे लोगों ने देखा है, पुलिस आयी है और दोनों को पकड़ कर थाने ले गयी है और बेचारे सेठ को अब तक पोते का कोई समाचार ही नहीं मिला. ... कितना भोला है सेठ बेचारा लड़के का ट्यूशन से आने का इंतज़ार कर रहा है.

नाई सेठ के कान तक अपना मुंह ले गया और धीरे से पूछा — ''सेठजी, आज आप के पोते ने तो ख़ूब बड़ा हाथ मारा है और तुम यहां उसका ट्यूशन से लौटने का इंतज़ार कर रहे हो? हम से छिपाकर क्या फ़ायदा होगा सेठजी! अब तक तो शायद पूरा शहर जान गया होगा!''

अब की बार वे उलफ़त की ओर थोड़े मुड़ गये. उन्होंने उसके दोनों हाथ अपने कांपते हाथों में ले लिये और उन्हें हल्के से दबा कर बोले — ''नहीं, तेरी कसम उलफ़त, हमें कुछ पता नहीं है. तुझे पता हो तो बता, ऐसी कौन-सी बात हुई है?

उलफ़त ने एक बार फिर ग़ौर से उन्हें देखा और थोड़े जमाऊ शब्दों में कहा — ''सेठजी, समाचार थोड़ा ऊंचा है. आप के पोते राकेश ने बहुत उंचा हाथ मारा है. सेठ चांदमल के घर में सेंध लगा दी है. हां, कुछ समझे?''

''नहीं रे, हम कुछ नहीं समझे.'' सेठ बहुत उलझे-उलझे से लग रहे थे. वे थोड़ी देर तक नाई के हाथों को सहलाते रहे और डरे–डरे-से उसे निहारते रहे. नाई ने अनुकूल अवसर देखा और अपना मुंह उनके कान के पास तक ले गया. फिर धीरे से बोला — ''सेठ जी बात मामूली नहीं है. अगर आपकी जेब में सौ रुपये का नोट हो तो लाओ दो! मैं अभी बता सकता हूं, नहीं तो इंतज़ार करो. घर पहुंच कर सब कुछ पता लग ही जायेगा.''

उसकी बातें सुनकर सेठ कसम खाने लगे. बाद में उन्होंने धीरे से कुर्ते की जेब में हाथ डाला और उसमें नोट कुरेदने लगे. फिर एक सौ रुपये का नोट निकाला और नाई

की ओर बढ़ाते हुए बोले — ''ले थाम सौ रुपये और बता जल्दी, ऐसी क्या बात हुई है?''

नोट पाकर उलफ़त भी ख़ुश हुआ. नोट अपनी जेब में रखकर उनके कान के पास फिर मुंह ले गया, लेकिन तभी वहां राकेश आ गया. उसे देख कर नाई चौंक कर उठ खड़ा हुआ.

राकेश ने सोचा कि उलफ़त मामूली आदमी नहीं है जहां आग लगने की कोई संभावना न हो वहां आग लगा सकता है. उसने उसके दादाजी के ज़रूर कान भरे होंगे. उसने उसका पहुंचा पकड़ा और वहां से थोड़ी दूर पर ले गया और बोला — ''बताओ, मेरे दादाजी को क्या बताया है...?''

वह उससे अपना हाथ छुड़ा कर बोला — ''अभी बताया नहीं है, अब बताऊंगा. तुम्हारे पास अगर सौ रुपये हों तो लाओ दो, तब किसी को कुछ नहीं बताऊंगा.''

फिर राकेश ने कुछ नहीं कहा. पेंट की जेब से पर्स खींचा और उसमें से एक सौ रुपये का नोट खास अदा के साथ निकाला और उसको थमा दिया.

उलफ़त गहरा मुस्कुराया और वहां से चला गया. बाद में राकेश भी अपने दादाजी की बांह पकड़ कर पार्क से बाहर निकल गया.

एफ-५५७, कमला नगर,
आगरा-२८२००५.
मो. ९४१०६३१९७४

बेज़ुबान

(पृष्ठ ६४ का शेष भाग...)

भागीरथ घोड़े से छुट्टी पा चुका था. बैल के पास आकर बोला — ''अरे आजा भाई गुलफ़ाम, ज़रा गोला-लाठी बंधवा दे.''

पलभर में वहां एक बड़ी क़द काठी का व्यक्ति प्रकट हो गया. विष्णु आश्चर्य से उसे देखता रहा. वो बड़े-बड़े हाथों तथा चौड़े पैरों वाला आदमी था. अब तक वो दिखा ही नहीं था न जाने कैसे भागीरथ की एक आवाज़ में सामने आ गया.

तीनों ने राजा की टांगों में लाठी फंसाकर रस्सी बांध दी. भागीरथ ने घिसी नाल निकाल फेंकी और नाप-नाप कर नयी बैठाने लगा.

वे दोनों थोड़ी दूरी पर उकड़ू बैठ गये और मुंह उठाकर भागीरथ के चलते हाथों को देखने लगे.

गुलफ़ाम जो राजा के सिर के समीप बैठा था, अचानक चीख़ा, ''अरे! इसे क्या हो गया?''

राजा की आंखों की पुतलियां पलट रही थीं, वो लगातार हिचकियां और लंबी सांसें ले रहा था.

विष्णु तेज़ी से उस ओर लपका और घुटनों के बल नीचे बैठकर राजा के माथे को सहलाने लगा. हिचकियां बंद नहीं हुईं. विष्णु बुरी तरह बेचैन हो उठा लेकिन अब कांपते हाथों से उसकी गरदन सहला रहा था.

भागीरथ के हाथ जस के तस थम गये थे. वो आश्चर्य से आंखें फाड़े बैल को देखता रहा.

अब लंबी हिचकियों और तेज़ सांसों से राजा का सारा शरीर हिचकोले खाने लगा. मगर, अचानक ही थोड़ी देर में उसके शरीर की उथल-पुथल एकदम रुक गयी. उसने गरदन एक तरफ़ छोड़ दी. सब कुछ शांत हो गया. उसके शरीर में ज़रा भी स्पंदन नहीं रहा.

विष्णु की मानो सांस ही रुक गयी हो. गरदन सहलाते हुए, उसके हाथ रुक गये, उसने महसूस किया राजा की धड़कनें बंद हो चुकी थीं.

वहां उनके बीच एक भयावह ख़ामोशी सिमट गयी. ... और तब टूटी जब विष्णु फफक–फफक कर रोने लगा. रोने की अजीब ध्वनि मौत की तरंगों-सी आस-पास फैल गयी.

''.... मैं ही बेज़ुबान पे ज़ुल्म करता रहा, वो तो कभी कुछ न बोला, ... बस, लगा रहा बेचारा. ... मेरी ही अक़्ल पे पत्थर पड़ गये थे...'' विष्णु रोते-रोते कहता जा रहा था, ''... रात-दिन काम किया है मेरे राजा ने. .. थककर मर गया पर कभी काम ...'' वो अधिक न बोल पाया, उसका दिल डूबा जा रहा था. ग्लानि के बढ़ते बोझ को वो अपनी छाती पर महसूस कर रहा था. वो बहुत रोया पर पिछली कई रातों से न सो पाने की वज़ह से उसकी आंखें सूखकर पत्थर-सी हो गयी थीं उनसे दो बूंद आंसू भी न निकले.

विष्णु अब चुप हो चुका था. उसने दोनों हथेलियां माथे पर रख दीं और आंखें बंद कर लीं, सिर नीचा किये बैठा रहा. उसकी बंद आंखों में पिछली जागी रातों के सपने, अपनी औरत का मुखड़ा और गांव का छूटा हुआ मकान तैरता रहा.

भागीरथ और गुलफ़ाम चकित, दुखी और शोकाकुल उसकी बग़ल में बैठ गये.

डब्ल्यू.पी.-३३ सी, पीतमपुरा,
दिल्ली-११००३४.
मो.: ९९७१०१७१३६
ईमेल- rawatgsdm@gmail.com

संतोष कुमार तिवारी की कविताएं

मां को याद करते हुए

चाहता था
थोड़ा समय बीमार मां के साथ गुज़ारूं
सूख चुकी उनकी
टांगों पर लेट जाऊं, और कहूं –
''अम्मा सुनाओ कोई कहानी.''
लाख चिड़चिड़ाने के बावजूद उनके
चाहता था
अम्मा के रोपे पौधों को पानी दूं
बतियाऊं उनसे उनका सुख-दुख
गुलमोहर से कान में पूछूं –
''अम्मा को हंसते कब देखा,
सच-सच बताना?''
कई बार चाहा
पत्नी को खुलकर डांट लगाऊं,
जब वह भुनभुनाती थी
अम्मा की आदतों पर
बीमारी के चलते
थोड़े दिनों से अम्मा
ऊंचा सुनने लगी थीं.
पूरे मन से चाहा था कि
अंतिम समय में मां को
अपने कंधे पर उठाऊंगा
ठीक उस वक़्त
घर से दूर था हज़ार मील.
आज अम्मा को गवां चुकने पर
अपने आपसे सिर्फ़
एक सवाल करता हूं – क्या बस
दुनिया में मुझे पैदा करने की ख़ातिर
पैदा हुई थीं अम्मा?

पिता घड़ी थे

बरसों पहले पिता गुज़रे
कुछ ऐसे, जैसे कक्षा से
बिन बताये कोई बच्चा
निकल जाये बाहर,
ऐसे गुज़रे पिता
उस घड़ी सरीखे
जिसकी तीनों सुइयां
उलझ गयी हों आपस में
जो कभी भी
टिक...टिक...टि...क... न करेगी.
पिता जब गुज़रे
ऐसा लगा, मानो
आम की मंजरियों को पाला
मार गया.
पिता का गुज़रना, बस प्रकार
जैसे महाजन के 'शुभ लाभ' पर
कालिख पुत गयी हो.
सच कहता हूं ओ पिता
तुम्हारे गुज़रते ही
काजल की तो जगह
ही बदल गयी
मां ने अब काजल
बजाय आंख के
मांग में भर लिया.

प्रवक्ता हिंदी, राजकीय इंटर कालेज,
ग्राम व पो. ढिकुली, रामनगर- २४४७१५
जि. नैनीताल (उ. खं.).
मो. ९४५६१३७३१५, ९४११७५९०८१.

कहानी

''मानसी इन वंडर लैंड''

✍ पुष्पा सक्सेना

लंबे बालों की कस के बांधी दो चोटियों के साथ सादा-सा सलवार सूट और कोट पहने हुए, मानसी ने जैसे ही कंप्यूटर क्लास में प्रवेश किया, जेम्स ने ज़ोर से सीटी बजा कर रिमार्क किया — ''वेलकम, अगर मैं ग़लत नहीं हूं तो ये नमूना ज़रूर किसी अजायब घर से आया है.'' जेम्स की बात पर क्लास में ठहाके गूंज उठे.

''मुझे लगता है अ पोनी विद टू टेल्स कहना ज़्यादा ठीक होगा.'' जेम्स के साथ खड़ी लड़की ने कहा.

मानसी को अमेरिका आये हुए एक सप्ताह ही हुआ था. मां की विनती पर अमेरिका में रहने वाले चचेरे चाचा ने दया कर के मानसी को अपने यहां आश्रय देने की कृपा की थी. तीव्र मेधा और हर परीक्षा में प्रथम स्थान पाने वाली मानसी के पिता को अपनी मानू बेटी पर गर्व था. कंप्यूटर साइंस में बी. टेक. में अच्छे अंक पाने पर उसके पापा ने निश्चय कर लिया — ''अपनी बेटी को कंप्यूटर साइंस में पोस्ट ग्रेज्युएशन करने अमेरिका भेजूंगा. मुझे पूरा विश्वास है, वहां भी यह अव्वल नंबर पर रहेगी.''

''क्यों लड़की को झूठे सपने दिखा रहे हो? लड़की की जात है दो-चार साल में शादी के बाद पराये घर चली जायेगी. पढ़ने के लिए क्या अमेरिका ही रह गया है?'' मां रोष दिखातीं.

''अरे कमला तुम अपनी बेटी को साधारण मत समझो, मेरी बेटी ही मेरा नाम रोशन करेगी. इसे तो अमेरिका ज़रूर जाना है, यह मेरी ज़िंदगी का सपना है. जिस बेटे पर आस लगाये बैठे थे, वह तो ख़ानदान पर कलंक लगा कर कहीं भाग गया. अब मेरी मानू ही मेरे सपने पूरे करेगी.''

भाई का घर से अचानक भाग जाना एक ऐसी दुखद घटना थी जिसने पूरे परिवार को तोड़ दिया, पर मानसी के पापा ने अपने को सहेज, मानसी पर ही अपना पूरा ध्यान केंद्रित कर दिया था. हल्के सांवले रंग के साथ आकर्षक नयन नक्श वाली मानसी की बुद्धि-प्रदीप्त आंखें अनायास ही दूसरों को आकृष्ट कर लेती थीं, सादा जीवन उच्च विचार की बात उस पर पूरी तरह से चरितार्थ होती थी. पापा की तरह मानसी ने भी अमेरिका के सपने देखने शुरू कर दिये थे. सोचती अगर वह अमेरिका पहुंच कर एम. टेक. में अच्छे अंक पा सकी तो मां-पापा का भाई के घर से चले जाने का दुःख कुछ कम कर सकेगी. पर जो सोचा जाये वो हमेशा पूरा ही तो नहीं होता. पिता की आकस्मिक मृत्यु ने मानसी और उसकी मां को जीवन की कटु वास्तविकता से परिचित करा, उन्हें स्तब्ध कर दिया. उदार पिता ने खुले हाथों दूसरों की सहायता कर के यश ज़रूर पाया, पर अपने परिवार के लिए कुछ नहीं छोड़ गये थे. अपनी स्थिति समझ कर मानसी ने भारत में ही कंप्यूटर साइंस में एम.टेक. करने का निश्चय किया, पर कमला को पति का अंतिम सपना याद हो आया. जो भी हो जाये मानसी के पिता की आख़िरी इच्छा वह ज़रूर पूरी करेगी. सबसे बड़ी समस्या अमेरिका के कॉलेज में पढ़ाई के लिए भारी फ़ीस की थी. मानसी के अच्छे परिणाम के कारण एडमीशन तो हो गया, पर एप्लीकेशन देर से पहुंचने के कारण स्कॉलरशिप नहीं मिल सकी थी. मानसी के भारतीय प्रोफ़ेसर को यक़ीन था, मानसी जैसी मेधावी लड़की एक बार अमेरिका पहुंच जाये तो उसे आर्थिक सहायता ज़रूर मिल जायेगी. मानसी के बार-बार मना करने पर भी मां नहीं मानी, अपना घर गिरवीं रख कर मानसी का अमेरिका

पुष्पा सक्सेना

एम. ए. (भूगोल व हिंदी), पी-एच. डी (हिंदी)

लेखन : *राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में १०० से अधिक कहानियां, लेख व यात्रा-संस्मरण आदि प्रकाशित.*

प्रकाशन : *कहानी संग्रहों, उपन्यासों, बाल साहित्य व एकांकी की २४ पुस्तकें प्रकाशित. मास्को वि. वि. के हिंदी विभाग के कोर्स में एक पाठ्य-पुस्तक. वाशिंगटन वि. वि. में पाठ्य-क्रम में कई कहानियां.*

प्रसारण : *स्थानीय व राष्ट्रीय टी.वी. के लिए अनेक शैक्षिक स्क्रिप्टों का लेखन व विकास. यथा : प्रयास, वज़ूद, छूना है आकाश, पुकार आदि. किरण बेदी, भीमसेन जोशी, राजेंद्र यादव, तीजन बाई आदि का टी.वी. के लिए साक्षात्कार. दिल्ली व रांची आकाशवाणी के केंद्रों से कई कहानियां व एकांकी प्रसारित. राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संस्था द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों का लेखन व निर्देशन, जिन्हें तीन वर्षों तक १२ भाषाओं में प्रसारित किया गया.*

अनुभव : *कार्यक्रम निदेशक (सेल कम्यूनिकेशन नेटवर्क)- ९ वर्ष. वरिष्ठ हिंदी अधिकारी (सेल)- १२ वर्ष. प्रधानाचार्या (बोकारो गर्ल्स कॉलेज)- ५ वर्ष. प्रधानाचार्या (लाला लजपतराय स्कूल, रांची) - ३ वर्ष. हिंदी और भूगोल अधिवक्ता (राउरकेला, बोकारो व दिल्ली)- २० वर्ष.*

पुरस्कार/सम्मान : *बी. ए. में तीन स्वर्ण-पदक व प्रथम स्थान (इलाहाबाद वि. वि.), उ. प्र. सरकार द्वारा उत्कृष्टता के लिए छात्रवृत्ति, तीन विशिष्ट सेवा पुरस्कार (सेल, रांची), 'अलविदा' पुस्तक के लिए भारतीय ऑथर्स गिल्ड द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार. अनेक संस्थाओं की सदस्य.*

का टिकट ले ही लिया. अमेरिका में रहने के लिए देवर का सहारा मिल ही गया था. अपने इसी चचेरे भाई को अमेरिका भेजने के लिए मानसी के पापा ने बहुत बड़ी धनराशि दी थी.

अमेरिका पहुंची मानसी को एक और वास्तविकता का सामना करना पड़ा. चाचा के घर उसे अनचाहे मेहमान की तरह स्वीकार किया गया था. चाची ने साफ़ शब्दों में जता दिया — ''यहां जो भी रहता है, बदले में उसे घर के कामों में हाथ बंटाना पड़ता है. ये हिंदुस्तान नहीं है, जहां घर में काम करने के लिए बाई या नौकरानी आती है. मैं अकेली सारे काम कैसे कर सकती हूं. जब रहने और खाने वाले बढ़ेंगे तो काम भी तो बढ़ेगा.''

''जी चाची जी, मेरी वजह से आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी. आप जो कहेंगी मैं करूंगी.'' कमरे में आते ही मानसी की आंखों से आंसू बह निकले. मां का प्यार और दुलार याद हो आया. ये वही चाचा-चाची हैं जो उसके उदार पिता के कारण अमेरिका में सुख भोग रहे हैं.

आज कॉलेज आते समय उसका दिल धड़क रहा था, पर उसे अपनी क्षमता पर पूरा विश्वास था. उसे अपने पिता का सपना और मां के त्याग को सत्य सिद्ध करना है. मानसी क्लास में समय से पूर्व पहुंच गयी थी. अभी प्रोफ़ेसर क्लास में नहीं आये थे. जेम्स और उस लड़की के रिमार्क्स से अविचलित मानसी ने अपने बैठने के लिए क्लास-रूम में दृष्टि डाली. क्लास में अमरीकी लड़के लड़कियों के अलावा कुछ बाहर से आये स्टूडेंट्स थे. उसे चारों और नज़र दौड़ाते देख एक लड़की ने पुकारा था — ''कम हियर. तुम मेरे साथ बैठ सकती हो.''

''थैंक्स, मैं एक वीक पहले ही इंडिया से आयी हूं. मेरा नाम मानसी है, पर सब मुझे मानू पुकारते हैं. आपका नाम जान सकती हूं?'' मानसी ने शांति से अंग्रेज़ी में कहा.

''मैं जेनिफर हूं. सब मुझे जेनी कहते हैं. तुम जेम्स और मारिया की बात माइंड मत करना, जेम्स की आदत है सबको परेशान करता है. बड़े बाप का बेटा है, इसलिए मारिया जैसे कुछ स्टूडेंट्स उसका साथ देते हैं. ठहरो, मैं तुम्हारा परिचय सबसे कराती हूं.''

''गाईज, मीट अवर न्यू कुलीग, मानसी उर्फ़ मानू, जेम्स फॉर योर काइंड इन्फ़ॉर्मेशन मानू किसी अजायब घर से नहीं इंडिया से आयी है, प्लीज़ माइंड योर लैंग्वेज.''

''ओ के जेनी, अब मुझे भी मिस मानू से इंडिया के बारे में कुछ जानकारी लेने की तो परमीशन है?''

अपनी बात ख़त्म करता जेम्स मानसी के सामने आकर बैठ गया.

''सुना है, इंडिया में लोग ब्लैक मैजिक जानते हैं. अपने मैजिक से वो आदमी को बंदर बना देते हैं. हिंदुस्तान क्या सांप और बंदरों का देश है?'' जेम्स ने शरारती अंदाज़ में पूछा.

जेम्स की बात पर पूरा क्लास हंस पड़ा, पर मानसी ने शांति से कहा — आप तो कंप्यूटर साइंस के स्टूडेंट हैं, इंटरनेट पर इंडिया के बारे में पढ़ लीजिए. आप जान जायेंगे

हिंदुस्तान कैसा देश है. वैसे तो डार्विन की थ्योरी के अनुसार हम सभी के पूर्वज बंदर ही थे.''

''एक बात तो माननी पड़ेगी, मानू बहुत इंटेलिजेंट है. जेम्स ने मानसी को प्रोवोक करना चाहा, पर उसने क्या मार्के का जवाब दिया है.'' जेनी ने मानसी की तारीफ़ की.

''मानसी, तुम कंप्यूटर साइंस की पढ़ाई करने अमेरिका आयी हो, पर अब तो भारत भी तकनीकी क्षेत्र में बहुत आगे है. तुम अपने देश में भी यही कोर्स कर सकती थीं. माइकेल ने सवाल किया.

''बचपन से मेरा सपना था, अमेरिका की किसी अच्छी यूनीवर्सिटी से पोस्ट ग्रेजुएशन करूं. मेरे पापा भी यही चाहते थे. उनका सपना पूरा करने मैं यहां आयी हूं.'' इतना कह कर मानसी चुप हो गयी.

मानसी यह देख कर आश्चर्य में पड़ गयी कि क्लास में प्रोफ़ेसर विन्सेंट के प्रवेश पर भी स्टूडेंट्स उनके आदर में खड़े नहीं हुए बल्कि जेम्स तो टेबल पर पैर रखे मज़े से कोक पीता रहा. प्रोफ़ेसर ने सबका परिचय ले कर पढ़ाना शुरू किया. मानसी पूरे ध्यान से प्रोफ़ेसर का लेक्चर सुन रही थी और कुछ नोट भी करती जा रही थी. थोड़ी देर में ही जेम्स और उसके दो-तीन साथी क्लास छोड़ कर बाहर चले गये. उसके साथ एक लड़की भी चली गयी थी. उनके बाहर जाने पर भी प्रोफ़ेसर ने कोई प्रतिक्रिया ज़ाहिर नहीं की और पहले की तरह से ही लेक्चर देते रहे.

क्लास के बाद विस्मित मानसी ने जेनी से पूछा — ''यहां प्रोफ़ेसर का क्लास छोड़ कर बाहर जाने पर प्रोफ़ेसर को कोई ओब्जेक्शन नहीं होता?''

''नहीं, यह स्टूडेंट की अपनी रिस्पॉन्सिबिलिटी है, वैसे सेमेस्टर के काम पर मार्क्स मिलते हैं. जेम्स बेहद शरारती और केयरफ्री होने के बावजूद बहुत इंटेलिजेंट है. इसीलिए प्रोफ़ेसर को उससे शिकायत नहीं होती. जो लड़की जेम्स के साथ बाहर गयी थी, वह मारिया है और जेम्स की ख़ास दोस्त हैं.''

मानसी की समझ में आ गया भारत और अमेरिका में बहुत अंतर है और उसे इस अंतर को समझना है और उसके अनुरूप अपने को ढालना होगा. घर में चाची का रूखा व्यवहार उसे आहत करता, पर अपनी स्थिति को मां से छिपाये रखती. घर का बहुत सा काम उसके ज़िम्मे आ गया था. काम ख़त्म करके वह दिनभर पढ़ाये गये लेसन्स दोहराती. क्लास में जो प्रॉब्लेम दी जातीं, उन्हें सॉल्व करती. इतना ज़रूर था कठिन से कठिन प्रॉब्लेम भी वह जल्द ही सॉल्व कर लेती. जेनी के साथ उसकी अच्छी मित्रता हो गयी थी. अक्सर जेनी प्रॉब्लेम सॉल्व करने में मानसी की सहायता लेती. जेनी मानसी की बुद्धि से चमत्कृत होती. देर रात तक बत्ती जलाये रखने पर मानसी को चाची की बातें भी सुननी पड़तीं, पर मानसी के पास और कोई विकल्प भी नहीं था. कभी-कभी चाची के डर से मोमबत्ती की हल्की रोशनी में पढ़ाई करती मानसी की आंखें भर आतीं. अमेरिका आकर व्यक्ति कितने स्वार्थी और व्यावहारिक हो जाते हैं, चाचा-चाची इस बात के उदाहरण थे.

अभी तक मानसी को स्कॉलरशिप नहीं मिल सका था. उसके आवेदन पर विभागाध्यक्ष ने उससे कहा था, यदि मानसी को सेमेस्टर में प्रथम स्थान मिले या बहुत अच्छे नंबर आयें तो वह छात्रवृत्ति की हक़दार हो सकती है. अपने साथ लाये सीमित पैसों को मानसी बहुत सोच-समझ कर ख़र्च करती. रोज बस से आने-जाने में उसका काफ़ी समय बर्बाद हो जाता, पर दूसरा कोई उपाय भी नहीं था. जेनी को मानसी के साथ सहानुभूति थी.

''मानू, बस में क्लास के लिए आने-जाने में तेरा बहुत समय व्यर्थ जाता है, अमेरिका में अपने पास कार या बाइक होने से बहुत आसानी होती है. अगर तुम ड्राइविंग जानती हो तो तुम कोई पुरानी कार ख़रीद सकती हो. इसके अलावा तुम चाहो तो कहीं पास में किसी लड़की के साथ अपार्ट्मेंट शेयर कर सकती हो. तू कहे तो मैं किसी लड़की से बात करूं, तेरा बहुत समय बच जायेगा.''

''थैक्स, जेनी, मुझे तकलीफ़ सहने की आदत है. मैं एक परिचित फ़ैमिली के साथ रहती हूं. तुम जानती हो, मुझे फ़ाइनेन्शियल-एड नहीं मिलती है. मैं अभी कार अफ़ोर्ड नहीं कर सकती. अभी मैं अपार्टमेंट भी शेयर करने की स्थिति में नहीं हूं. तुम परेशान मत हो.'' इतना कह कर मानसी चुप हो गयी, पर चेहरे पर उदासी स्पष्ट थी.

मानसी क्लास में शांत रहती, अगर किसी ने कोई बात पूछी तो जवाब दे देती, पर अपनी ओर से किसी के साथ बात नहीं करती. अक्सर वह जैसे कहीं खो सी जाती, चेहरे पर उदास छाया तैर जाती.

''गाईज़, ये लड़की मानसी इतनी चुप कैसे रहती है, ऐसा लगता है जैसे किसी अनजानी दुनिया में आकर खो गयी है.'' हेनरी ताज़्ज़ुब करता.

''लगता है इसकी हंसी कोई डेविल ले गया है. आई हेट सच गर्ल्स. इसे तो वापस इंडिया ही पैक करके भेजना अच्छा होगा.'' जेम्स मुंह बना कर कहता.

''लगता है, तुझे इस लड़की से डर लगता है, कहीं

अपने ब्लैक मैजिक से तुझे बंदर न बना दे. आख़िर इंडिया से आयी है, काला जादू जानती होगी.'' रॉबिन ने मज़ाक किया.

''शट अप, ऐसी बात कहने की तेरी हिम्मत कैसे हुई? इस ब्लैक कैट की मज़ाल जो मेरे पास भी फटक सके.'' जेम्स का चेहरा ग़ुस्से से लाल हो गया.

''नाराज़ क्यों होता है, मैं तो मज़ाक कर रहा था, उस दिन तूने ही कहा था इंडिया के लोग काला जादू जानते हैं. वैसे उसे काली बिल्ली कहना बिलकुल ग़लत है मुझे तो ये लड़की बड़ी चार्मिंग लगती है. आई लव हर कॉफी कलर. इसी कलर के लिए तो हम कितनी सन-टैनिंग करते हैं.'' रॉबिन ने कहा.

''कॉफी कलर या कड़वा टेस्ट?'' जेम्स चिढ़ गया.

''मुझे तो यह भोली सी लड़की 'गर्ल इन अ वंडर लैंड' लगती है. इसीलिए ऐसी खोयी-खोयी–सी रहती है.'' साइमन ने अपने मन की बात कही.''

''अरे वाह क्या नाम दिया है, अब हम उसे तेरे दिये नाम से ही पुकारेंगे 'गर्ल इन वंडर लैंड', तू तो ज़ीनियस है, साइमन.'' हेनरी ने भी ख़ुशी ज़ाहिर की.

''ओह गॉड, हम उस फ़ालतू काली बिल्ली के बारे में बात करके अपना टाइम क्यों वेस्ट कर रहे हैं. लेट्स गो, जेम्स हमें जाना है.'' अब तक चुप खड़ी मारिया से अब नहीं रहा गया.

उस रात भारी स्नो-फाल हुआ था. सबेरे उठी मानसी घर के बाहर बिछी बर्फ़ की सफ़ेद चादर देख कर ख़ुश हो गयी. उसने जीवन में पहली बार ज़मीन पर इतनी बर्फ़ देखी थी. क्लास के लिए तो जाना ही था. न जाने क्या सोच कर चाचा ने कहा — ''मानू, आज तुझे बस स्टैंड तक जाना कठिन होगा, मैं कार से छोड़ दूंगा. पर कुछ जल्दी चलना होगा. तू तैयार है ना?''

''जी चाचा जी'', चाचा के इतने से कंसर्न पर ही मानसी की आखें भर आयीं.

क्लास के सामने काफ़ी स्नो जमा थी. बाहर साथ के लड़के स्नो की बॉल बना कर एक-दूसरे पर फेंक कर खेल रहे थे. स्नो पर चलने का अभ्यास न होने की वजह से मानसी का पांव बर्फ़ पर फ़िसल गया. मानसी के गिरते ही साइमन, हेनरी और दूसरे लड़के उसे उठाने में मदद करने के लिए आ गये. उठती हुई मानसी के चेहरे पर संकोच की लालिमा छा गयी.

''सॉरी, मुझे स्नो पर चलने की प्रैक्टिस नहीं है. थैंक्स फॉर योर हेल्प.''

''इट्स ओके, मैं भी कई बार गिर चुका हूं.'' साइमन ने उसका संकोच दूर करना चाहा.

''अरे अगर इसके पास स्नो बूट्स के लिए पैसे नहीं हैं तो मैं डोनेट कर दूं?'' जेम्स ने मानसी के मामूली सैंडल देख कर टॉन्ट किया.

''नो थैंक्स, किसी से भीख लेने की जगह मैं बार-बार गिर कर उठना पसंद करूंगी.'' अपमान से मानसी की आंखें जल उठीं. जेम्स उसकी आवाज़ की तेज़ी से अवाक रह गया.

''जेम्स अपने को समझता क्या है, तेरी इंसल्ट करने की उसकी हिम्मत कैसे हुई? अपने फादर की अमीरी पर सबको नीचा दिखाता है. अभी जाकर उसकी ख़बर लेती हूं.'' पूरी बात सुन कर जेनी नाराज़ हो गयी.

''नहीं जेनी, शायद उसकी बात में कुछ सच्चाई ज़रूर है. यहां तो अक्सर स्नो-फाल होगा, मुझे स्नो-बूट्स ख़रीदने ही होंगे. तुझे तो पता होगा बूट कितने डॉलर में मिलेंगे.'' संकोच से मानसी ने पूछा.

''एक बात कहूं, मुझे ग़लत तो नहीं समझेगी.''

''नहीं जेनी, तू ही तो मेरी सच्ची दोस्त है, तेरी बात में ज़रूर मेरी भलाई होगी.''

''देख आजकल कई जगह सेल चल रहा है. एक दुकान में आधे दामों पर जूते मिल रहे हैं. यहां ज़्यादातर लोग ऐसे ही सेल का इंतज़ार करते हैं. अगर तू चाहे तो मैं तेरे साथ चल सकती हूं.''

''थैंक्स, जेनी, कल पैसे ले आऊंगी तब तेरे साथ चलूंगी.''

''पैसे की चिंता मत कर, मेरे पास डेबिट कार्ड है, यहां कैश कम ही रखा जाता है. सारे पेमेंट्स कार्ड से करते हैं. पैसे कल दे देना. अगर कल फिर स्नो फाल हुआ तो तुझे यहां आने में मुश्किल होगी.'' जेनी ने प्यार से कहा.

जूतों की दुकान पर तरह-तरह के जूते, चप्पलों के साथ स्नो बूट्स सजे हुए थे. मानसी ने सबसे कम दाम वाले बूट्स पसंद किये थे. अपनी आर्थिक स्थिति वह जानती थी. अब उसे दूसरी सुबह का इंतज़ार था जब वह अपने बूट्स पहन कर जायेगी. दूसरे दो-चार दिन स्नो-फाल न होने से मानसी निराश हो गयी.

फिर जिस दिन स्नो फाल हुआ मानसी उत्साह से अपने बूट्स पहन कर कॉलेज गयी. बर्फ़ पर चलना बहुत आसान लग रहा था. उसके मन में अचानक ही ख़्याल आया जेम्स उसके बूट्स पर कोई रिमार्क ज़रूर देगा, पर जेम्स अभी पहुंचा ही नहीं था. शायद मानसी कुछ निराश भी हुई थी. उस दिन के जेम्स के अपमानजनक शब्दों की जगह आज कुछ

अच्छा सुनने की इच्छा मन में रही होगी.

पास के कॉलेज में एक कंप्यूटर-विशेषज्ञ का लेक्चर था, उसमें मानसी के विभाग को भी आमंत्रित किया गया था. नियत दिन पर सबको बस से जाना था. मानसी उनका लेक्चर सुनने के लिए बहुत उत्सुक थी. विशेषज्ञ को अपने उत्कृष्ट कार्यों के लिए बहुत से पुरस्कार मिले थे. नियत समय पर विभाग के सारे स्टूडेंट्स बस की प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी जेम्स अपनी लाल लेक्सस कार में आ पहुंचा. उसके साथ सामने वाली सीट पर शान से मारिया बैठी थी. जेम्स ने लड़कियों को आवाज़ दी — ''हे आल ब्यूटीफुल गर्ल्स, आइए और मेरी कार की शोभा बढ़ाइए.'' दो-तीन लड़कियों के साथ जेनी ने मानसी का हाथ खींचते हुए आगे बढ़ना चाहा. मानसी हिचकिचा रही थी, पर जेनी उसे खींच रही थी.

''हाय जेनी डियर, आई सेड ब्यूटीफुल गर्ल्स ओनली. अपने साथ जिसे ला रही हो, उससे मेरी कार की शान में धब्बा लग जायेगा. सॉरी तुम चाहो तो अकेली आ सकती हो.''

''गो टू हेल विद यू. एंड योर कार. हम बस से आयेंगे.'' ग़ुस्से से जवाब देती जेनी मानसी के साथ बस की ओर चल दी.

''जेनी, तू कार में चली जाती. मेरी वजह से....''

''ठीक कह रही है तेरी वजह से उस घमंडी की बातें सुनने से बच गयी. देख लेना एक दिन इसे अपने घमंड की सज़ा ज़रूर मिलेगी.'' मानसी की बात काट कर जेनी ने ग़ुस्से से कहा.

विशेषज्ञ के सारगर्भित लेक्चर ने मानसी का तनाव दूर दिया. मानसी ने प्रश्नोत्तर सेशन में जो सवाल पूछे, उनकी विशेषज्ञ ने बहुत प्रशंसा की और मानसी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति विश्वास प्रकट किया. लौटते समय बस में भी साइमन, हेनरी, रॉबिन और दूसरे साथियों ने मानसी को बधाई दी.

''हमें तो पता ही नहीं था हमारे साथ मानसी नाम की एक ज़ीनियस लड़की पढ़ती है.'' रॉबिन ने कहा.

''मुझे तो मानसी के प्रश्न तक समझ में नहीं आये.'' हेनरी ने स्वीकार किया.

''अरे इसीलिए तो एक्सपर्ट ने कहा मानसी का फ्यूचर बहुत ब्राइट है.'' जेनी ने ख़ुशी से कहा.

''मानसी इसी बात पर कल क्लास के बाद ट्रीट हो जाये.'' साइमन ने कहा.

''मानसी की ओर से ट्रीट मैं दूंगी. मुझे ख़ुशी है, मैं एक ज़ीनियस की फ्रेंड हूं.'' जेनी ने जोश से कहा. असल में वह मानसी की आर्थिक स्थिति जान चुकी थी.

''थैक्स, जेनी, यह मेरा भी सौभाग्य है कि मुझे तुम जैसी दोस्त मिली.'' मानसी जेनी की आभारी थी.

अब सब साथी मानसी की बुद्धि का लोहा मान चुके थे.

दूसरे दिन जब मानसी क्लास के लिए पहुंची तो देखा सब साथी तनाव में थे. सबके चेहरों पर चिंता थी. जेनी मानसी का हाथ पकड़ कर एक ओर ले गयी.

''जानती है, कल रात जेम्स का एक्सीडेंट हो गया. तेज़ स्पीड में कार चला रहा था, कार पेवमेंट से टकरा कर उलट गयी. जेम्स सीरियस है. उसका बहुत ख़ून बह गया है. मुझे लग रहा है, कल ही मैंने कहा था उसे अपने घमंड की सज़ा मिलेगी. आज अपने कहे हुए पर बहुत दुःख हो रहा है.'' जेनी तनाव में थी.

''नहीं जेनी, किसी के कहने से कुछ नहीं होता. तू अपने को दोष मत दे. तेज़ स्पीड में कार चलाना ठीक नहीं होता, उस पर कंट्रोल नहीं रह पाता. जेम्स किस हॉस्पिटल में है?''

''जीजस-मेरी हॉस्पिटल में है. प्रॉब्लेम यह है कि उसका ब्लड ग्रुप बी-नेगेटिव है. यह ग्रुप बहुत रेयर होता है, जेम्स को काफी ब्लड की ज़रूरत है. कॉलेज में ब्लड डोनेट करने के लिए अपील की गयी है.''

''जेनी, मुझे जल्दी हॉस्पिटल जाना है, मेरा ब्लड-ग्रुप बी-निगेटिव है. मेरा ब्लड जेम्स के काम आ सकता है.'' मानसी की आवाज़ में सच्चा कंसर्न था.

''क्या तू उस जेम्स के लिए ब्लड डोनेट करेगी? भूल गयी वो तेरी कितनी इंसल्ट करता रहा है?''

''ये वक़्त वे सब बातें याद करने का नहीं है, इंसानियत के नाते मुझे किसी की जान बचानी है. मुझे हॉस्पिटल ले चलेगी, जेनी प्लीज़.''

जेनी के साथ पहुंची मानसी ने डॉक्टर को बताया कि उसका ब्लड-ग्रुप बी-नेगेटिव है और वह ब्लड डोनेट करने को तैयार है. वह बालिग है अत: ऐसे निर्णय वह स्वयं ले सकती है. मानसी का रक्त-परीक्षण के लिए ले लिया गया. जेम्स के पेरेंट्स मानसी के सर पर हाथ रख कर दुआ देते रहे. मानसी का रक्त जेम्स के लिए सूटेबल पाया गया. मानसी का ब्लड जेम्स को चढ़ाया जाने लगा. ब्लड देने के बाद मानसी ने डॉक्टर से कहा — ''डॉक्टर जब भी मेरा और ब्लड चाहिए मुझे इन्फॉर्म कर दीजिएगा. मैं पूरी तरह से स्वस्थ हूं. अगर मेरा रक्त जेम्स को जीवन दे सके तो मुझे बहुत ख़ुशी होगी.'' मानसी ने सच्चे मन से कहा.

''थैंक्स, तुम एक ब्रेव और बहुत अच्छी लड़की हो. हम और जगह से भी ब्लड के लिए कोशिश कर रहे हैं, पर इस मुश्किल वक़्त में तुम्हारा ब्लड बहुत काम आया.'' डॉक्टर ने कहा.

''तू सचमुच अद्भुत है, मानू, मुझे तुझ पर गर्व है. मुझे पूरा यक़ीन है, अब जेम्स ज़रूर ठीक हो जायेगा क्योंकि उसके शरीर में तेरा उदार रक्त पहुंच गया है.'' जेनी भावुक हो उठी थी.

उस दिन के बाद से मानसी रोज़ क्लास के बाद जेम्स की स्थिति जानने को हॉस्पिटल जाती थी. दिन बीतने लगे. जेम्स की स्थिति में सुधार बताया जा रहा था, पर अभी भी उसे लोगों से मिलने की इज़ाज़त नहीं थी. आख़िर एक दिन जेम्स को आई. सी. यू. से बाहर प्राइवेट वार्ड में शिफ़्ट कर दिया गया और लोगों को एक-एक करके कुछ देर के लिए मिलने की इज़ाज़त दे दी गयी. हल्की मुस्कान के साथ मानसी ने वार्ड में प्रवेश किया.

''अब कैसा महसूस कर रहे हो, जेम्स?''

''एक सवाल मुझे परेशान कर रहा है, तुमने अपना ब्लड मुझे क्यों दिया, मानसी? मैं इस लायक नहीं था. तुमसे तो नज़रें मिलाने की भी जुर्रत नहीं कर सकता. माफ़ी का हक़दार तो हो ही नहीं सकता, फिर भी क्या मुझे माफ़ कर सकोगी?'' जेम्स की शर्मिंदा दृष्टि मानसी के चेहरे पर निबद्ध थी.

''ये क्या बातें ले बैठे, जेम्स तुम्हारे मुंह से ऐसी सीरियस बातें अच्छी नहीं लगतीं. आख़िर तुम क्लास के बिंदास हीरो हो. तुम्हारी छेड़खानी ही सब एंज्वाय करते हैं.'' मानसी ने परिहास में बात टालनी चाही.

''तुम सचमुच सबसे कितनी अलग हो मानू. समझ नहीं पाता कोई इतना अच्छा कैसे हो सकता है, जब से होश आया मॉम से पता लगा तुमने मेरे लिए अपना ब्लड ही नहीं दिया बल्कि उसके बाद भी रोज़ मेरा हाल जानने आती रही, क्यों मानू?''

''यह कोई बड़ी बात नहीं थी, जेम्स. मुसीबत की घड़ी में किसी अजनबी की भी मदद करना हर इंसान का फ़र्ज होता है फिर तुम तो मेरे साथी हो.'' स्नेह से मानसी ने कहा.

''अपने बर्ताव के बारे में सोच कर अपने ऊपर शर्म आती है. एक ओर मैं, जिसने तुम्हारी इंसल्ट करने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ा और दूसरी ओर तुम जो उस क्रूशल वक़्त में गॉडेस की तरह आयीं और मुझे संकट से उबार लिया. डैड और मॉम के लिए तो तुम मदर मेरी का प्रतिरूप ही हो.'' जेम्स की आंखों के मुग्ध भाव ने मानसी को संकुचित कर दिया.

''बस अब तुम जल्दी से ठीक हो जाओ, हम सब तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं.''

''क्या तुम भी मेरी एब्सेंस महसूस करती हो, मेरा इंतज़ार कर रही हो मानू? एक सच बताऊं, मैं तुम्हारे पांवों की आहट पहचानने लगा था. मुझे तुम्हारा इंतज़ार रहता था, मेरे लिए यह बिलकुल नयी फीलिंग थी, ऐसा क्यों होता था, मानू, क्या तुम बता सकती हो?'' जेम्स की सवालिया नज़र मानसी के चेहरे पर थी.

''सब में क्या मैं शामिल नहीं हूं, जेम्स? अब चलती हूं, आज काफ़ी होम वर्क मिला है. बाय.'' जेम्स के सवाल को अनुत्तरित छोड़, वापस जाती मानसी की पीठ पर जेम्स की दृष्टि निबद्ध थी.

वापिस लौटती मानसी सोच में पड़ गयी. जेम्स उसका इंतज़ार करता था. जिस दिन आई. सी. यू. में एडमिट जेम्स को बाहर से देखा था तो वह कितना निरीह और भोले शिशु–सा लगा था. हमेशा के दबंग जेम्स को उस स्थिति में देख कर उसके मन में जेम्स के लिए करुणा का ज्वार-सा उमड़ आया था. शायद इसीलिए वह रोज़ हॉस्पिटल जाती रही. कई बार उसे ऐसा लगा जैसे उसे देख जेम्स ने मुस्कुराने की असफल चेष्टा भी की थी, पर उसने उसे अपना भ्रम ही माना था, पर आज जान पायी वह सच था.

जिस दिन कमज़ोरी के कारण जेम्स छड़ी के सहारे मुस्कुराते हुए क्लास में दाख़िल हुआ, सबने ख़ुशी से उसका ज़ोरदार स्वागत किया. साइमन ने आगे बढ़ कर जेम्स से हाथ मिलाया.

''थ्री चियर्स फॉर डियर जेम्स'', हेनरी ने ज़ोर से कहा और सबने तालियां बजाकर ख़ुशी जाहिर की.

''फ्रेंड्स आज मैं तुम सबसे अपनी ग़लतियों के लिए माफ़ी मांगता हूं. ख़ासकर उस लड़की का मैं गुनहगार हूं जो आज मेरे मन में एक मामूली लड़की से एक ख़ास लड़की की तरह अपनी जगह बना चुकी है. मानसी से मैंने जाना बुराई के बदले भलाई करना कितना महान कार्य होता है. मेरी ज़िंदगी में एक और लड़की भी थी, जिसे अपनी दोस्त समझता था, मेरे एक्सीडेंट के समय वह अपने नये फ्रेंड के साथ हवाई चली गयी. अच्छा हुआ मेरी आंखों से झूठ का पर्दा हट गया. वादा करता हूं. अब अच्छाई की राह पर चलने की पूरी कोशिश करूंगा. उम्मीद है तुम सब भी मेरा साथ दोगे.'' जेम्स ने सच्चाई से कहा.

''श्योर मेरे दोस्त, हम सब तेरे साथ हैं.'' साइमन ने ख़ुशी से कहा.

वो दिन हंसी-ख़ुशी में बीत गया. जेम्स के घर से उसके ठीक होने की ख़ुशी में केक आया था. सबके साथ बातें करते जेम्स का पीला चेहरा ख़ुशी से चमक रहा था.

अगले दिन मानसी को क्लास में न देख जेनी ताज़्ज़ुब में पड़ गयी. फ़ोन पर बात करने पर मानसी ने रुंधी आवाज़ में बताया, उसकी मां बहुत बीमार हैं. इंडिया में उसे हॉस्पिटल में एडमिट किया गया है. मानसी को इंडिया जाना होगा, पर वापसी शायद ही हो सके. मां के पास उसे फिर अमेरिका भेजने के लिए पैसे नहीं हैं. अभी तो हॉस्पिटल का ख़र्च ही ज़रूरी है. मानसी को आशा थी, उसे स्कॉलरशिप मिल जायेगा, पर अभी तक कुछ नहीं हो सका है. परीक्षा में उसके पेपर्स अच्छे हुए थे, पर सेमेस्टर एक्ज़ाम का अभी रिज़ल्ट नहीं आ सका है.

दूसरे दिन क्लास में जेनी से मानसी के विषय में सुन कर सब चिंतित हो गये. कुछ ही दिनों में मानसी सबको अच्छी लगने लगी थी. उसकी बुद्धि और शांत स्वभाव ने सबका दिल जीत लिया था. अक्सर कोई कठिन सवाल होने पर उसके साथी उसकी मदद से सवाल हल करते थे और मानसी बड़ी ख़ुशी से उनकी मदद करती थी.

''जैसे भी हो हमें मानसी की हेल्प करनी चाहिए. उस जैसी ब्रिलिएंट और अच्छी लड़की को हम खो नहीं सकते. हमें उसके भविष्य के लिए कुछ करना होगा.'' साइमन ने कहा.

''साइमन तेरी बात से मैं भी सहमत हूं, पर इतने पैसे कैसे इकट्ठे करें?'' रॉबिन ने कहा.

''हम एक म्यूज़िक कॉन्सर्ट का टिकट-शो कर सकते हैं'', रिचर्ड ने सुझाव दिया.

''म्यूजिक कॉन्सर्ट के लिए अब टाइम कहां है?'' हेनरी की बात में सच्चाई थी.

''तुम सबको परेशान होने की ज़रूरत नहीं है, मेरे डैड ख़ुशी से मानसी का इंडिया के लिए रिटर्न टिकट अरेंज कर देंगे. अगर ज़रूरी हुआ तो बाद में हम कोई शो या दूसरा काम कर के डैड के पैसे लौटा सकते हैं, पर शायद उसकी ज़रूरत न हो.'' जेम्स ने कहा.

''थैंक्स, जेम्स, पर मानसी जैसी स्वाभिमानी लड़की तुम्हारा प्रस्ताव मंजूर नहीं करेगी.'' जेनी ने कहा.

''मैं कोशिश करके देखता हूं.'' जेम्स के चेहरे पर गंभीरता थी.

जेम्स को अपने घर आया देख, मानसी विस्मित थी. मानसी के चेहरे पर उदासी झलक रही थी.

''जेम्स तुम यहां कैसे, क्या कुछ काम है?''

''डैड ने तुम्हारे लिए यह पैकेट भेजा है.''

''इसमें क्या है, जेम्स?''

''खोल कर देख लो, मुझे भी नहीं पता.''

लिफ़ाफ़ा खोलने पर इंडिया के रिटर्न टिकट के साथ एक बड़ी धनराशि का चेक था.

''ये क्या है, जेम्स, मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती. मैंने चाचा जी से टिकट अरेंज करने को कहा है.''

''चाचाजी शायद मुश्किल से एक तरफ़ का टिकट दे सकें, फिर तुम वापस कैसे आओगी, मानू?''

''शायद मेरी किस्मत में यही लिखा था.'' मानसी की आंखें भर आयीं.

''यक़ीन नहीं होता मानसी जैसी लड़की इतनी कमज़ोर होगी, तुम्हारी बातों से लगता था, तुम अपनी किस्मत ख़ुद लिखोगी. तुम किसी भी परिस्थिति से हार नहीं मान सकतीं. अब मेरी बात मानो, इंडिया जाओ और फिर मां के ठीक होने पर लौटने की बात सोचो.'' जेम्स ने ज़ोर दे कर कहा.

''किस अधिकार से तुम्हारा ये एहसान ले सकती हूं, जेम्स? कहीं तुम मेरा एहसान तो नहीं मान रहे हो, पर ये बिल्कुल ग़लत बात होगी.'' कुछ सोचती मानसी बोली.

''एक दिन अपना अधिकार ज़रूर जान जाओगी. रहा तुम्हारा एहसान. वो तो मेरे ब्लड में बह रहा है, उससे तो अब छुटकारा पा नहीं सकता. अब बस इतना ही कहूंगा. तुम इसे क़र्ज ही समझ कर स्वीकार कर लो. डैड ने कहा है, तुम अपनी मां का इलाज़ इंडिया के बेस्ट हॉस्पिटल में कराना तभी उन्हें

संतोष होगा. वे ख़ुद आते, पर आज यहां नहीं हैं.'' जेम्स ने बड़ी गंभीरता से अपनी बात कही.

''पता नहीं मां कैसी है, अगर वो जल्दी ठीक नहीं हुई तो कैसे वापिस आऊंगी, जेम्स? तुम्हारा कर्ज़ कैसे चुका पाऊंगी?'' मानसी परेशान थी.

''परेशान मत हो, मेरे लिए तुम्हें वापस तो आना ही होगा, मानू. अगर तुम नहीं आयीं तो मैं ख़ुद इंडिया से तुम्हें वापिस खींच लाऊंगा. अपनी कर्ज़दार को ऐसे ही तो नहीं छोड़ दूंगा.'' शरारत से जेम्स ने कहा.

पता नहीं यह ठीक है या नहीं, दुविधा में मानसी मौन थी.

''किस सोच में पड़ गयी मानू, तुम जैसी इतनी इंटेलिजेंट लड़की क्या इतना भी नहीं समझ सकी कि मैं तुमसे प्यार करने लगा हूं और प्यार में कुछ भी करना संभव है.''

''नहीं जेम्स तुम शायद अभी मेरे प्रति आभार मान रहे हो और इसे अपना प्यार समझ रहे हो, पर प्यार बिलकुल अलग चीज़ होती है. मुझे लगता है तुम अभी अपने मन को ठीक से समझ नहीं पा रहे हो, तुम्हें तो बहुतों ने अपना ब्लड दिया है, क्या उन सबसे प्यार कर सकते हो.''

''अपने आपको और अपने मन को अभी ही तो समझ सका हूं, मानसी. मुझे अपने मन पर पूरा यक़ीन है, जो सोच रहा हूं, वो ग़लत नहीं है. यह सच है मुझे बहुतों ने ब्लड दिया है, उन सबका आभारी हूं, पर मैंने प्यार तो बस अपने एक परिचित से किया है.''

''अगर मैं कहूं कि मुझे तुमसे प्यार नहीं, सहानुभूति है, तब तो यक़ीन करोगे. प्यार एक तरफ़ा नहीं हो सकता. जेम्स. अपनी परिस्थितियों में मुझे किसी से भी प्यार करने का अधिकार नहीं है. जिस उद्देश्य से यहां आयी हूं, उसे पूरा करना ही मेरा लक्ष्य है.'' मानसी उदास थी.

''अगर नफ़रत एक दिन प्यार में बदल सकती है तो सहानुभूति तो प्यार के बहुत नज़दीक है, मुझे पूरा यक़ीन है, मेरा प्यार तुम्हें मुझसे प्यार करने को मज़बूर कर देगा.'' जेम्स ने दृढ़ता से कहा.

''प्लीज़ जेम्स, ऐसी बातें मत करो, नहीं जानती कल क्या होनेवाला है. इन बातों को वक़्त पर छोड़ना ही ठीक है.''

''मुझे अपने वक़्त पर पूरा यक़ीन है और हां रही कल की बात तो कल फ़्लाइट के लिए टाइम पर तैयार रहना है. तुम्हें एयरपोर्ट छोड़ने आऊंगा. नहीं, डरो मत, कार मैं नहीं मेरा ड्राइवर ड्राइव करेगा. वैसे भी तुमसे वादा किया है कभी तेज़ स्पीड में ड्राइव नहीं करूंगा. कहीं फिर एक्सीडेंट कर बैठा तब तो तुम ग़ुस्से से ब्लड भी नहीं दोगी.'' जेम्स ने मज़ाक किया.

''छि: कैसी बात करते हो, इतनी तकलीफ़ झेल कर सबक नहीं सीखा.'' मानसी ने मीठी झिड़की दी.

दूसरे दिन मानसी को छोड़ने एयरपोर्ट पर जेनी के साथ कई साथी थे. जेनी ने चहकते हुए कहा — ''मानसी तेरे लिए एक ख़ुशख़बरी है, तूने सेमेस्टर में टॉप किया है. दूसरी अच्छी ख़बर जेम्स की पॉकेट में है. शायद तुझे अकेले में देना चाहता है, क्यों जेम्स ठीक कह रही हूं न?''

''मानसी तुम्हें स्कॉलरशिप मिल गया है. तुम्हारे टॉप करने की वजह से जिस दिन से तुमने कॉलेज ज्वाइन किया है, उसी दिन से फ़ाइनेंशियल-एड मिली है. इकट्ठे पैसे मिलने की वजह से अब तो तुम काफ़ी पैसे वाली हो गयी हो.'' हंसते हुए जेम्स ने लेटर मानसी को थमाया.

''सच? तुम सबका शुक्रिया कैसे अदा करूं, मेरे कठिन समय में तुम्हारी बेस्ट विशेज़ ने मेरी कितनी मदद की है, हिम्मत दी है. अब कह सकती हूं, मुझे यानी इस मानसी को अमेरिका सचमुच वंडर लैंड सिद्ध हुआ है, जहां अपने माता-पिता के सपने पूरे कर सकूंगी. तुमने मुझे ठीक नाम दिया था. साइमन.'' ख़ुशी से मानसी ने कहा.

''इसका मतलब तुम जानती थी, हम तुम्हें अ गर्ल इन वंडर लैंड कहते थे.'' साइमन ने पूछा.

''हां, और ये भी जानती हूं, जेम्स मुझे ब्लैक कैट यानी काली बिल्ली कहता था, पर वह यह नहीं जानता, मुझे बिल्लियों से कितना प्यार है. मेरे घर में एक प्यारी–सी काली बिल्ली है.'' हंसते हुए मानसी ने कहा.

''तो एक सच और भी जान लो, जेम्स को भी काली बिल्ली अच्छी लगने लगी है यानी उसे ब्लैक कैट से प्यार-सा हो गया है, क्यों जेम्स ग़लत तो नहीं कह रही हूं?'' जेनी ने शैतानी से कहा.

''धत्त, जो जी में आता है बोल देती है.'' कहती मानसी का चेहरा अबीरी हो गया.

''हां, अब मुझे ब्लैक कैट बहुत अच्छी लगती है. तुम सच कह रही हो, जेनी.'' मानसी पर प्यार भरी नज़र डालते जेम्स ने कहा.

फ़्लाइट का अनाउन्समेंट हो रहा था. जेम्स के हाथों से लाल गुलाब लेती मानसी सबकी शुभ कामनाओं के साथ सिक्योरिटी चेक के लिए चल दी. अब उसकी आंखों में इस वंडर लैंड में वापसी के निश्चय की चमक थी.

13819 NE 37TH Pl,
Bellevue, WA 98005
Tel : 425-869-5679
E-mail : pushpasaxena@hotmail.com

कहानी

सुबह होने वाली है

✍ बद्रीनाथ सिंह भाटिया

नदी अपनी गति से बह रही है. रात होने से पहले जब आकृतियां मात्र छाया-सी ही दिखती हैं और रात का सन्नाटा आरंभ हो रहा होता है नदी के बहते पानी का शोर वातावरण में ऊपर उठने लगा है. यह उसी समय की बात है. नदी किनारे एक स्त्री गोल पत्थर पर बैठी है. वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद नदी में कंकर-पत्थर फेंक रही है. लगता है, वह उदास है. मगर उसकी उदासी नहीं देखी जा रही है, केवल कंकर-पत्थर फेंकने से पता चलता है कि वह उदास होगी. एकाएक वह महसूस करती है कि कोई पीछे से दौड़ता आ रहा है. चौंकती है. पत्थर फेंकने की प्रक्रिया रुकती है. वह रुकी है. फेंका जाने वाला पत्थर उसी तरह हाथ में रह जाता है. मुड़ती है और देखती है कि एक स्त्री आकृति बदहवास सी दौड़ती थप्प...थप्प करती बढ़ी आ रही है नदी की ओर. समीप आने पर उसने आवाज़ दी, कौन? मगर उसकी हल्की हांक-सी आवाज़ का उसे कोई एहसास नहीं हुआ. लगा वह रुक नहीं रही और नदी में छलांग लगा देगी.

वह छोर पर पहुंची ही थी कि उस स्त्री ने ज़ोर से आवाज़ दी ''ए.. अरी, ओऽऽ, कहां जा रही है? आगे नदी है. बहुत वेग है. मर जाणी.'' उसके हाथ का पत्थर छूट जाता है. वह झटके से उठ जाती है और उसकी ओर दौड़ती है मगर स्त्री रुकती नहीं है. दौड़ती वह फिर ज़ोर से पुकारती है. ''ऐऽऽऽ, सुन! कहां जा रही है, मरने?'' और उसके पास पहुंच जाती है. अचानक आवाज़ सुन और अपने समीप किसी के वहां होने के एहसास से स्त्री झटके से संभलती हुई रुक जाती है मगर तब तक वह पानी में काफ़ी आगे चली गयी है. वह तेज़ लहरों के काफ़ी क़रीब ही थी. बस एक क़दम और आगे चली जाती तो फिर हाहाकार करती नदी उसे अपने भीतर ले लेती. वह गिरने को होती है कि पहले वाली स्त्री उसे थाम लेती है. झटके से पीछे खींच लेती है और ज़रा संभल कर उसे घसीट कर किनारे ले आती है. आत्महत्या करने जा रही थी. मरजाणी ये जीवन...। बाहों में पकड़ी उस स्त्री को वह लिटा देती है. उसके भारी शरीर को खींच कर लाने से थकान महसूस करती है. हांफ़नी छूट जाती है. हांफ़ते हुए बोलती है — ''अरी मूर्ख! यह क्या कर रही थी? आत्महत्या. छीऽ. यह विकराल नदी खा जाती तुझे. इसकी लहरें ... मगर कोई प्रत्युत्तर नहीं. वह लेटी स्त्री के गाल थपथपाती है-- उठ, आंखें खोल. तू ज़िंदा है. फिर स्वयं से बोलती है, ''ज़रूर किसी की सतायी हुई है. वर्ना....'' स्त्री से मुख़ातिब हो कर, ''मरजाणी, ये क्या कर रही थी?'' इस बार स्त्री चेतती है. उठती है और पूछती है, ''मैं कहां हूं?''

पहले वाली स्त्री ने कहा — ''मेरे पास.''

डूबने वाली स्त्री ने पूछा — ''आप कौन?''

''तुझे बचाने वाली. पर तू कौन है? ऐसा करने की क्या पड़ी? मरजाणी ये जीवन...'' वह रुक जाती है.

डूबने वाली स्त्री ने कहा — ''मैं कौन हूं? मैं.... मैं.... मैं... कौन हूं?'' वह उठती है, सिर को झटका देती है और चुंचुआती-सी आवाज़ में पूछती है — ''मैं कौन हूं?'' चीख़ती है, ''मैं कौन हूं?'' इस चीख़ के साथ उसकी हांफ़नी छूट जाती है. वह तेज़-तेज़ सांस लेने लगती है. पहले वाली स्त्री ने झुक कर धीमे से पूछा — ''यही तो मैं पूछ रही हूं. तू कौन

बद्रीनाथ सिंह भाटिया

४ जुलाई, १९४७ को सोलन जिले की अर्की तहसील के गांव ग्याणा में.

स्नातकोत्तर (हिंदी) तथा लोक संपर्क एवं विज्ञापन कला में डिप्लोमा.

प्रकाशन : *दस कहानी संग्रह, एक उपन्यास, एक कविता संग्रह, इसके अलावा अनेक संपादित संग्रहों में कहानियां संकलित तथा देश की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित, कुछ कहानियां अनूदित भी. विकासात्मक लेखन, पहली सरकारी नौकरी के समय में मेडिकल कॉलेज़ शिमला की कर्मचारी यूनियन की पत्रिका 'तरु-प्रछाया' का संपादन, कालांतर में सूचना एवं जन संपर्क विभाग में नौकरी के साथ साप्ताहिक पत्र 'गिरिराज' और मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' में संपादन सहयोग.*

सम्मान : *साहित्यिक यात्रा में सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं से कुछ पुरस्कार भी प्राप्त.*

अन्य : *अर्की-धामी ग्राम सुधार समिति और ग्याणा मंडल विकास संस्था के अध्यक्ष पद पर रहते हुए समाज सेवा तथा विभिन्न कर्मचारी यूनियनों–एसोसिएशनों में अनेक गरिमामय पदों पर सक्रिय भागीदारी. 'अर्पणा' (साहित्यिक एवं वैचारिक मंच) के अध्यक्ष पद पर भी कार्य. अब सरकारी सेवा से निवृत्ति के बाद लेखन के अलावा पैतृक गांव ग्याणा में खेती-बाड़ी में संलग्न.*

संप्रति : *हि. प्र. सूचना एवं जन संपर्क विभाग, शिमला में संपादक पद पर से फरवरी २००५ में सेवा निवृत्ति.*

है और यह कृत्य करने की....'' उसने अपनी बात बीच में ही छोड़ दी.

डूबने वाली स्त्री ने सांस संयत कर पूछा — ''आप डा...डा..यन हो? जो इस समय यहां.....'' और झटके से उठ उसका गला पकड़ती है.

पहले वाली स्त्री ने अपने गले के पास पकड़ी कमीज छुड़ायी और कहा — ''नहीं. मगर समझ ले मैं हूं.''

डूबने वाली स्त्री ने थोड़ा पीछे हटकर कहा — ''तब ठीक है. मैं, मैं...भी...मेरा नाम डायन है. मैं आदमियों और बच्चों को खा जाती हूं. विकराल हंसी हंसती है, हीं...हीं...हीं...हीं मैं, डायन हूं.'' और उस स्त्री की बाहों में झूल जाती है. बेसुध सी.

पहले वाली स्त्री ने कहा — ''तुम डायन नहीं हो. मैं भी नहीं.''

ज़रा जोर से कहती है — ''तुम डायन नहीं हो.''

द्रवित सी आवाज़ में कहा — ''मेरी बहन तुम डायन नहीं हो.''

रुआंसी हो जाती है. उसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं और नाक से पानी. नाक की सुड़क सुनायी देती है. वह उसे वहां से उठाती है और अपने पास वाले पत्थर पर बिठा देती है, ''बैठो, संभालो अपने आपको. मैं पानी लाती हूं.'' डूबने वाली स्त्री संभलने की कोशिश करती है. पहली नदी किनारे जा कर अंजुरी में पानी लाती है. पिलाने लगती है, मगर अंजुरी में उतना पानी नहीं बचा था. फिर जाती है और अपना दुपट्टा भिगो कर लाती है. निचोड़ कर उसे पानी पिलाती है. स्त्री पानी पी कर दीर्घ नि:श्वास छोड़ती है और एकदम खड़ी हो जाती है.

दूसरी स्त्री पूछती है — ''तुम कौन हो? और इस समय यहां?''

पहले वाली ने कहा, ''मैं ऽ!'' मन ने पूछा — ''क्या उत्तर दे? क्या बता दे कि...'' फिर कहीं भीतर गहरे से आवाज़ आयी, 'नहीं! अभी इसे संयत होने दो. इसे सहारे की ज़रूरत है.' बोली,'' ये समझ ले तुम्हें बचाने वाली ईश्वर की भेजी प्रतिनिधि.'' अपना अवसाद रोक मुस्कराने की कोशिश करती है.

दूसरी स्त्री ने पूछा — ''तूने मुझे क्यों बचाया?''

पहले वाली ने कहा — ''क्या पूछती है? मेरे सामने कोई डूब रहा हो और मैं चुप देखती रहूं यह कैसे हो सकता है और यह मेरे उसूलों के विरुद्ध भी है. मेरे मन ने कहा कि तुम्हें बचाना चाहिए. ज़िंदगी ईश्वर की दी हुई नियामत है और यह दुनिया बहुत ही सुंदर है...इसलिए.''

दूसरी स्त्री ने कहा — ''ग़लत, यह दुनिया इतनी सुंदर नहीं है जितना तुम कहती हो..... क्या दिया इस दुनिया ने मुझे? जलालत. जलालत के अलावा और क्या कुछ दिया? कतरा-कतरा कर मारा और जब...मगर यह बताओ तुम कौन हो?....हां! मैं जानती हूं तुम पुलिस हो. उन्होंने ही तुम्हे भेजा है. मेरे पीछे. यहां भी नहीं छोड़ा.'' उठती है, मगर पहले वाली उसे बाजू से पकड़ लेती है. बिठाती है, ''बैठ पहले. अभी बात पूरी नही हुई. मैं पुलिस-उलीस नही हूं. मैं बता रही हूं... बस ये समझ ले तुझे बचाने वाली... पर तुम्हें अपने शरीर को ख़त्म करने का कोई हक़ नहीं है...क्या नाम है तुम्हारा?''

उसकी बात से दूसरी स्त्री विचलित होती है, ''क्यों?'' वह चुप हो जाती है. काफ़ी देर बाद ज़ोर से बोलती है, ''सुनना ही है तो सुन, मेरा नाम डायन है. मैं आदमियों और बच्चों.....'' थोड़ा संभल कर पूछती है, ''एक बात

बता? जब यह संसार जिसे तुम सुंदर कहती हो, अगर तुम्हें नहीं स्वीकारे और प्रताड़ित करता रहे, तब....तब जीने का क्या अर्थ रह जाता है. कहां जाये वह? कैसे जिये?''

''हां, यह ठीक है. मगर तब भी नहीं. और तुम किस संसार की बात कर रही हो? यह जो कुछ लोगों के बीच रह कर, जिसे तुम गांव, क़स्बा या शहर कहती हो या फिर परिवार. उन्होंने बनाया है. एक संसार तुम्हारा अपना भी है बेबी. उसे देखा है कभी...क्या नाम है तुम्हारा?''

दूसरी स्त्री ज़ोर से चीख़ती है, ''नाम, नाम, नाम! बार-बार क्यों पूछ रही हो? मेरा नाम ख़त्म हो गया है. मेरा नाम.... मैं अपना नाम नहीं जानती. लोग जानते हैं. पीठ पीछे बोलते हैं. डायन. और तब, जब कोई विवाद होता है तो मुंह पर भी बोलते हैं. ...मैं तंग आ गयी हूं इस नाम से ...?'' पहली स्त्री ने शांत मन से कहा, ''माना. पर वे खुंदक या किसी जलन या किसी और वजह से भी तो कहते होंगे. आज समाज में कितनी तरह के लोग हैं. तू इसे छोड़. तुम्हारे मां-बाप?''

दूसरी स्त्री चुप रहती है, और स्वयं से बतियाती है, धीमे से, ''यह नाम पूछ रही है. मां-बाप के बारे में भी. क्यों, कौन होगी ये? अपने बारे में कुछ भी नहीं बता रही और मेरे से ही पूछे जा रही है. कहीं कोई....'' चुप हो जाती है. सामने निहारती रहती है.

पहले वाली स्त्री उसकी बुदबुदाहट सुन लेती है और कहती है — ''हां तभी तो मैं....''

उसकी ओर उन्मुख हो कर कहती है, ''माता-पिता ने तो स्वर्णलता रखा था.''

''ठीक है स्वर्णलता. और लोगों ने रख दिया....''

स्वर्णलता पीछे देखती है. उसे किसी और के होने का आभास होता है. घबरा जाती है. बोलती है, ''वे आ रहे हैं. मेरे पीछे दौड़ रहे हैं. मुझे ढूंढ निकालेंगे. मुझे मारेंगे,'' और रोने लगती है.

पहली स्त्री ने आस-पास देखा. कहा, ''यहां तो कोई नहीं है. दूर तक कोई आहट भी नहीं है.''

पर मुझे सुनायी दे रही है. उठती है और चहलक़दमी करती है. रुकती है. ''ऐसा लग रहा है मानों वे दौड़ रहे हैं. मुझे ढूंढ रहे हैं.'' उंगली से इंगित करती है, ''वे जंगल में हैं. आज तो वे मुझे ख़त्म ही कर देंगे.'' पीछे हटती है.

''तुम भाग कर आयी हो. उनसे बच कर.''

''हां ऽ वे मेरे पीछे दौड़े. मैं भागी.''

''कहां से आयी हो? किसी...''

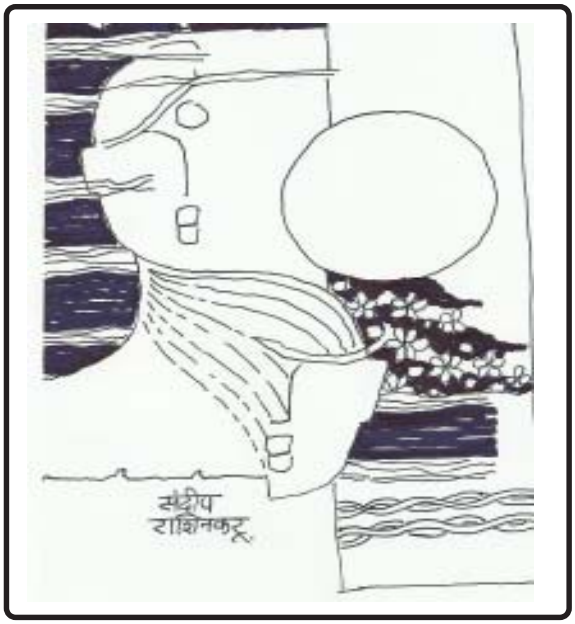

दूसरी स्त्री चुप रहती है. कुछ देर बाद कहती है, ''तुम मानती ही नही.'' फिर उसे पकड़ती है, ''मुझे बचा लो. मैं ऽ मैं ऽ मैं जीना चाहती हूं.''

पहली स्त्री उसका हाथ पकडती है, ''हां! मैं तुम्हें बचाऊंगी. मैं तुम्हें नहीं मरने दूंगी. किसी को मारने भी नहीं. तुम मेरी छोटी बहन हो. लेकिन....''

''लेकिन!''

पहले अपने बारे में बताओ — ''यहां, इस मंजर तक आने का सबब...''

स्वर्णलता थोड़ा सहज हुई. सूखे गले को थूक गटक कर तर करती है. बोली, ''मैं... मैं ... नहीं, मैं नहीं बता पाऊंगी.'' मन ही मन सोचती है — ''कौन होगी यह? इस तरह कुरेद-कुरेद कर क्यों पूछ रही है? ज़रूर कोई डायन-वायन होगी. कोई चुड़ैल या कोई और जो इस समय दरिया के किनारे....कोई बलि देने वाली या...यह कोई ऐसी भी हो सकती है जो अपने प्रेमी से मिलने आयी हो और वह आया न हो. इसका यहां मिलना ठीक नहीं हुआ....उसका मंतव्य सफल नहीं हुआ. मर जाती तो ठीक था. इस वक़्त तक तो जाने नदी के बहाव में कहां तक चली गयी होती. क्या पता किसी किनारे लग गयी होती कि बच ही गयी होती. लोग कहते हैं नदी कई बार आदमी को स्वीकार नहीं करती, किनारे फेंक देती है. यदि ऐसा होता तो उसका क्या होता? कहीं ऐसे विकट स्थान पर फेंका होता जहां से निकलना ही मुश्किल होता तब...तब कोई जंगली जानवर भी तो उसे खा सकता था.

नहीं, जानवर ऐसे समय में हमला नहीं करते. वे तो ख़ुद डरते हैं कि यह कौन आ गया उनके एकांत में... फिर वह किसी दूसरे क्षेत्र में चली जाती या कोई उसे देख ही लेता तब भी....'' अनेक सवाल उसे घेर रहे थे.

वह सोचती जाती कि पहले वाली स्त्री ने पूछा — ''तुम घर से भागी हुई हो. कोई प्रेम-व्रेम का चक्कर. तुम शादी-शुदा लगती हो. प्रेमी होगा कोई, पति ने पकड़ लिया होगा और मारने दौड़ा होगा, तब तुम भागी होगी. यह डायन का चक्कर जो तुम गढ़ रही हो, गले नहीं उतरा....यह भी हो सकता है कि तुम किसी गहरी यातना से गुज़र रही हो या तुम्हें कोई बेच रहा था या कोई और कृत्य जो तुम्हारे मन के विरुद्ध हो. तुम हार गयी होगी. अपनी हार को सहन न कर पाने के कारण भी कुछ स्त्रियां...कोई दहेज-वहेज का मामला तो नहीं? आजकल की सासों की इच्छाएं पूरी ही नहीं होतीं. पति भी लालची होते हैं...''

''नहीं ऐसा कुछ नहीं है. तुम यूं ही अटकलें लगा रही हो.''

''तुम किसी बाई की पुत्री हो और तुम्हारे साथ कोई बलात्कार या जैसा कृतघ्न कृत्य करने जा रहा हो या फिर...''

''मैं नही समझ पा रही हूं तुम क्या पूछ रही हो? मैं स्वर्णलता हूं. एक डायन. जिसे लोग ख़त्म करना चाह रहे थे. मैं तेज़ भागी और वे पीछे छूट गये. बस.''

''डायन! क्यों हो तुम डायन? और यदि तुम हो तो... तुम्हारे भागने, इस तरह दौड़ने और नदी में छलांग लगाने का सबब गले नहीं उतर रहा... देखो रात गहराने लगी है. हमें यहां से निकलना चाहिए. जंगली इलाक़ा है, कहीं कोई जानवर...तुम मुझे बताओ, तब आगे की सोचते हैं. कहां की रहने वाली हो?''

''डायन, मेरे परिवार वाले कहते हैं. गांव के लोग कहते हैं. उन्होंने मुझे डायन बना कर छोड़ा. मुझसे हर कोई पूछता है कि.... उनके लांछनों की इतनी हद हो गयी कि सहन नहीं कर सकी. उनके प्रश्न मेरे कानों में आज भी गूंज रहे हैं. और वे मुझे.... इसलिए मैं भाग गयी. इससे पहले कि वे मुझे मारें मैं स्वयं ही...

''तो तुम वास्तव में डायन हो?''

''नहीं ऽ मैं डायन नहीं हूं.'' वह चीख़ती है. ''ऐसा मत बोलो, मुझे इस शब्द से चिढ़ है. यह शब्द और प्रश्न सुन मेरी कनपटी की नसें ख़ून से भर जाती हैं. भीतर कुछ होता है. कहीं नसें फट गयीं तो यूं ही मर जाऊंगी और मैं....''

''तुम कहां की रहने वाली हो?''

''सुल्तानपुर. सुना है. यही कोई एक कोस होगा.''

''क्या हुआ तुम्हारे साथ?''

आक्रोश में ऊंचे स्वर में कहती है, ''क्या नहीं हुआ! वे मुझे तड़पा-तड़पा कर मारना चाह रहे थे. मुझे उनकी योजना का पता चल गया था. बड़ी मुश्किल से उनकी क़ैद से छूट कर आयी थी. मैं दौड़ रही थी. तभी निर्णय लिया कि मर जाना चाहिए. मैं उन्हें चकमा देकर इस ओर आयी थी मगर आपने मेरा संकल्प ही तोड़ दिया.''

''अब क्या विचार है?''

''कुछ नहीं. अभी सोचा नहीं.''

''क्या किया था उन्होंने? उनकी क़ैद. मैं समझी नहीं. सिलसिले से बताओ.''

स्वर्णलता आसमान की ओर देखती है. मानो कोई तारा उसकी मदद करे. वह इधर-उधर जंगल के सन्नाटे को महसूस करती है. नदी के शोर को महसूसती है. पहली स्त्री जिज्ञासा से उसके चेहरे की ओर ताकती रहती है. काफ़ी देर की चुप्पी के बाद बोली, ''मैं... पिता की पहलौठी की संतान. स्वर्णलता. हम छः बहनें हैं. सातवें स्थान पर एक भाई है. अभी पिता मेरा और छोटी का रिश्ता तय करके आये ही थे कि उन्हें हार्ट अटैक पड़ गया. वे नहीं रहे. बस तब से बिगड़ गया सब कुछ.'' वह क्षण भर को रुकती है, पिता ने पुत्र सुख के लिए ....ओफ्ह, वह बच्चियां ही पैदा करता गया...मगर उसने शायद कुछ सोचा होगा. परंतु उसका मरना...''

''अरे! छः लड़कियां.... क्या होगा इस देश का? ये मर्द...''

''और मेरी अनपढ़ मां. उसने जैसे-तैसे हमारा ब्याह कर दिया.'' फिर रुकती है. ''मैं यहीं सुल्तानपुर में ब्याही गयी हूं. ससुराल का क्या बयान करना? यहां ही तो मुझे नर्क मिला.''

''कैसा नर्क?''

और वह अपने ससुराल के दिनों का अपना हाल बयान करने लगी.

□

उस दिन मेरी सास और ननद दोपहर की नींद लेने के बाद आंगन में बैठी थीं. शायद कोई अनाज साफ़ कर रही थीं. तभी सास की आवाज़ गूंजी. कर्कश. ''स्वर्णलता ऽ! ओऽ स्वर्णलता!'' मैंने भीतर से ही कहा — ''आयी मां ऽ''

''मां की बच्ची. पशुओं को घास-पात दिया कुछ. मैं न कहूं तो यहां कुछ नहीं होता. ये नवाबजादी सजने के अलावा कुछ करती ही नहीं. आने दे उसे, तेरी तो ऐसी धुनाई

कराऊंगी कि तू याद रखेगी.'' सास ने अपना राग ज़ारी रखा. मैंने कहा, ''मां दे दिया है. पर आज घास कुछ कम थी.''

''क्यों तू लायी नहीं थी?''

''मां लायी थी. मगर...आज ननद जी भी नहीं गयीं. शायद इसलिए...''

इस पर ननद तुनक कर बोली — ''क्यों मैं क्यों जाती? तू क्या करती है? भई ये तेरा घर है, तुझे चलाना है, मैं तो कल चली जाऊंगी यहां से.''

मैंने कहा — ''ननद जी, मैं अभी घास काटना सीख रही हूं. जितना होता है करती हूं.''

मेरी ननद का नाम रतना था. वह प्रतिवाद में बोली, ''देवी जी, यह तो शादी से पहले सीखना चाहिए था. गांव में आयी हो तो यह करना पड़ेगा. तेरा बाप तो बोलता था कि हम भी गांव के ही हैं.... यहां तेरी मां तो नहीं आयेगी. न उन्होंने कोई नौकर भेजा है जो तेरा काम कर देगा. घास तो तुझे ही लानी पड़ेगी.'' मैंने कोई प्रतिवाद नहीं किया. केवल इतना कहा — ''ननद जी मेरी उंगली कट गयी थी. इसलिए पूरी घास नहीं काट सकी.''

''उंगली कट गयी थी कि कोई याद आ गया था. पिछला. सुना है तेरा था कोई.''

''ननद जी ये क्या कह रही हैं? आप यूं ही...'' मैं रुआंसी हो गयी. कोई भी ख़ुद्दार लड़की अपने पर ऐसे लांछन नहीं सुनना चाहती. गयी गुज़री भी नहीं. मगर ननद कहां चुप रहने वाली थी. बोली, ''क्यों री? वो तुम्हारे साथ जो स्कूल जाया करता था. वो क्या नाम...'' मैं हैरान. इसने तो मेरी कुंडली ही बांच कर रखी है. मगर मैं कहां ग़लत थी? मैंने कहा, ''ननद जी वह आपके भैया के... मेरा उससे कोई....''

''अच्छा....ऽ तो हमारे भैया से...'' फिर अपनी मां को इंगित कर कहा, ''देख अम्मा. अब भैया नहीं रहा आपका. यह हमारी शिकायत करेगी. हमें डांट दिलवायेगी. पिटवा भी सकती है.''

''मर गयी ये पिटवाने वाली. इसका मुंह है इतना. पर है जादूगरनी. मेरे बेटे पर ऐसा जादू किया है कि कुछ बोलता ही नही.'' फिर मेरी ओर आंख उठा कर कहा, ''अगर मेरे लड़के पर जादू किया तो देख लेना... फिर एकाएक उठी, पास पड़ा झाड़ू उठाया और दे मारा मुझे. ले...सड़ाक, सड़ाक. इससे पहले कि तू कुछ कहे, मैं ही तेरा जादू उतार देती हूं. ख़बरदार जो उससे हमारे बारे में कुछ कहा. उसी बीच ननद भी उठी. उसने मां से झाड़ू लिया और दो तीन सटाके मेरी पीठ और टांग पर मारे. इस अप्रत्याशित प्रहार से मैं रोती, अपने को बचाती, पीछे हटती दरवाज़े से भीतर चली गयी...ओफ्ह! वे दिन याद कर भीतर ही भीतर जलन होती है. मैं कैसे सहन करती गयी?'' वह थोड़ी देर तक चुप रही. फिर बोली, ''मैं भीतर गयी तब ननद ने हौले-से सास से कहा, ''अम्मा ये बाहरी लड़की ब्याह कर ग़लत किया आपने. अब तो इसे भगाना ही होगा.''

''मत मारी गयी थी. सोचा था, इसका बाप पी.डबल्यू.डी. में है, ठीक-ठाक दहेज देगा. पर वह तो इससे पहले ही चल दिया. तब क्या करते...''

''इसकी मां ने दबा कर रखा होगा. आख़िर अभी चार और हैं. मुए कमीने. देख मुझे सूट दिया नकली, वो....और हां, कल मैंने इससे कहा कि अपनी सोने की चेन मुझे पहनने को दे दे, पर....मुकर गयी.'' सास ने कहा, ''यूं मांगनी थी देखने को या फिर छीन लेनी थी. ये क्या करती? यदि करती कुछ तो मैं इसकी जान निकाल देती.'' वह चुप हो गयी. यूं ही छाज में कुछ छांटती रही. थोड़ी देर बाद कहा, ''छांव आ रही है. चल भीतर चलते हैं. ये रामजाणी तो बिस्तर में ही होगी. मैं भैंस को भी देखती हूं. पता नहीं कलमुंही ने क्या किया होगा? घास लानी पड़ेगी....यहीं पास के खेत में देखते हैं.''

इस पर ननद ने कहा, ''हां, और घास दे देना. मैंने इसे

लघुकथा

सूदखोर

✍ रघुराज सिंह 'कर्मयोगी'

ग़रीब किसान दस वर्षों से सूदखोर को ब्याज दे रहा था. सूदखोर को मूलधन में कोई आकर्षण न था. किसान के गिड़गिड़ाने पर सेठ का मित्र विजय पिघल गया और बोला — ''यार, तू इस ग़रीब से ब्याज के तौर पर मूलधन से कई गुना रक़म वसूल चुका है. अब तो इसका पीछा छोड़!''

चेहरे का भूगोल परिवर्तित करते हुए सेठ तपाक से कहने लगा — ''मूल से ब्याज प्यारा होता है. मुर्गी के अंडों की तरह नियमित ब्याज क्यों छोड़ूं. तेरे हिसाब से ब्याज छोड़ने लगा तो मेरा धंधा ही चौपट हो जायेगा.'' विजय अपना-सा मुंह लेकर चलता बना.

कर्मयोगी सदन, तीसरा एवेन्यू, १०५९/८, आदर्श कॉलोनी, डडवाड़ा.
कोटा जं.-३२४००२.
मो. : ८००३८५१४५८.

परखने के लिए छिपा कर रखी थी कि देखती हूं क्या करती है. अभी निकालती हूं.'' इतना कह उसने पहली स्त्री से पूछा — ''अब तुम्हीं बताओ बहन... मैंने बहन कहा है आपको.'' स्वर्णलता ने कहा.

''हां, हां! तुम आगे सुनाओ.''

''यह तो एक बानगी है. इससे भी ज़्यादा. वे मेरे हर काम में कुछ न कुछ कमी निकालती रहतीं. उनके द्वारा दी यातनाओं को पति को बताती. मगर वह कुछ नहीं कहता. और उस दिन की भी शिकायत मैंने पति से की.

''फिर.''

''फिर क्या. वही पहले की सी चुप्पी. मानो उसे पता हो. काफ़ी देर बाद बोला — देख स्वर्णलता. मैं मां से झगड़ा या तफ्तीश नहीं करूंगा. तू किसी तरह उन्हें ख़ुश रख. रतना की तो आदत है. वह तो मुझसे भी लड़ती है. तू कुछ कर.'' इतना कहने के बाद वह रुकी, फिर इधर-उधर निहारा. तब बोली, ''मैंने फिर पति के पौरूष को ललकारा. आप बीच का रास्ता क्यों निकालते हो? मेरे पति हो, मेरी ग़लती बताओ? मैं क्या करूं, मर जाऊं इनके आगे. अब जितना काम आता है, जितना सीखा है कर तो रही हूं. करती हूं पर ये...और वह मेरी बात बीच में काट जाता — लता मैं नहीं कर सकता ये सब. तू...ही...और चुप हो जाता. तब मैं तल्ख़ हो जाती. कहती — कैसे मर्द हो? कल कोई मुझ से बदतमीज़ी करेगा तो भी तुम... मैं चुप कर गयी थी. काफ़ी देर बाद उसने फिर वही लिजलिजा सा उत्तर दिया, ''ऐसा नहीं होता, हमारा गांव ऐसा नहीं है.'' मैंने उसे कुछ नहीं कहा. मैं जानती थी, यह ऐसा ही बोलेगा, मगर मन का संताप सुनाने और सुनने के लिए कोई तो चाहिए. उसमें इतनी तो बात थी कि वह यदि कुछ कर नहीं सकता था तो सुन तो सकता था. चुपचाप.''

उसकी बात से पहली बुदबुदाती है, 'स्पाइनलेस पर्सन' और फिर कहती है, ''हां! रीढ़ विहीन व्यक्ति से क्या अपेक्षा की जा सकती है? ऐसे व्यक्ति अपने लिए एक ककुन बनाये रखते हैं. मैं ऐसे लोगों से घृणा करती हूं. मेरे साथ...'' वह अपने जीवन का कोई प्रसंग जोड़ना चाहती थी मगर रुक गयी. बोली, ''फिर?'' स्वर्णलता को उसका हां, हूं और यह फिर कहना अटपटा लगता है. वह आसमान की ओर देखती है. कुछ देर बाद पूछती है, ''पहले यह बताओ, आप कौन हैं? यहां कैसे, कहीं कोई...'' और बात बीच में छोड़ देती है.

पहली उसका अंतर्द्वंद्व समझ गयी थी. वह यूं भी उसे बचाने के कारण बड़ा बनना दिखाना चाहती थी. वैसे वह उम्र में उससे बड़ी थी भी. बोली, ''ख़तरनाक नहीं हूं. दूर देश की हूं. मैं भी बताऊंगी मगर पहले अपने बारे में बताती जाओ. मैं सुनना चाहती हूं. फिर क्या हुआ? इतना तो आत्महत्या के लिए काफ़ी नहीं. कोई भी लड़की अपने परिवार में रहने के लिए बहुत से एडजस्टमैंट करती रहती है. आत्महत्या तक पहुंचने के लिए तो... यातना की पराकाष्ठा से...'' वह बात बीच में छोड़ती है.

''हां ये तो ठीक है मगर इतना होता तो चल जाता. मैं इससे भी ज़्यादा यातना से गुज़री हूं. मर्मांतक.''

''बोलो न. यहां हम दो ही हैं. फिर राज़दार भी. किस बात की झिझक? रात गहरा रही है. वो देखो, दूर किसी गांव या क़स्बे की वह देर तक जलने वाली बत्ती भी बुझ गयी.''

''तुम इस बस्ती की रोशनी का सहारा ले रही थी.'' हंसती है.

''इतने दूर की बस्ती का भ्रम...क्या हो तुम भी?''

''नहीं ऐसा नहीं है, मैं तो यह समय को समझने के लिए कह रही थी.''

''तुम्हारे पास घड़ी या मोबाइल नहीं है?''

''नहीं.''

''क्यों?''

''हड़बड़ी में छूट गये. तुम बताओ, आगे क्या हुआ? तुम्हारी बात से मेरी जिज्ञासा बढ़ रही है.''

स्वर्णलता ने कहा, ''ठीक है, फिर मैं अपनी तकलीफ़ों से गुज़रती गयी और एक दिन मां बन गयी. लड़की हुई. मैं जहां मातृसुख से सराबोर थी वहां सास के टोहके ज़ारी थे. ननद उसी तरह पीड़ादायिनी थी. उसका ब्याह नहीं हो रहा था. उम्र के साथ उसकी चिड़चिड़ाहट ज़्यादा बढ़ रही थी. वे दिन याद कर मैं आज भी उस मानसिक पीड़ा को नहीं भूलती. ओफ्ह!'' वह यादों में खो जाती है. और ऊपर आसमान की ओर ताकने लगती है. वह देखती है — सास का वह कड़वा स्वर, ''स्वर्णलताऽ! ओऽ स्वर्णलता!!'' फिर कर्कश स्वर, ''लताऽ!''

''आई मांऽ.''

''मां की जणदी, मरजाणी, कहां थी? मेरा गला फट गया आवाज़ देते. चल मेरे सिर में तेल लगा. जुएं भी देख. कल नीचे गयी थी कादसी के घर. ज़रा सा लेटी कि... सरसराहट हो रही है. बहुत ख़ारिश हो रही है.''

''अच्छा ऽ मां जी आती हूं. मैं थोड़ी देर में आकर उसके पीछे बैठ कर सिर में तेल लगाने लगी. तेल लगाते सास ने कहा, देख लता. मुझे तो लड़का चाहिए. हमारे कुल

में पहलौठी का लड़का ही हुआ है. ये तेरे लड़की कहां से हो गयी?

''मांऽ जी.''

''हां! तू सोच ले. वर्ना.''

मैंने हाथ रोक कर पूछा, ''वर्ना.''

''मैं लड़के का दूसरा ब्याह करूंगी. फिर न कहना.'' और देखो हमारा समाज यह नहीं देखता कि कहां क्या चल रहा है? क्या हो रहा है? बस किसी ने कहा कुछ तो बिना छानबीन के मान लिया. इसी प्रचलन के आधार पर तो सास ने ऐसा कहा. तभी ननद भी कहीं से आ गयी. उसने हमारी बात सुन ली थी. बोली, ''क्या बात करती हो मां? इसकी मां ने तो छः लड़कियां जनी हैं तब कहीं...'' बात को एक नया अर्थ दे अपनी बात बीच में ही छोड़ आगे बोलती निकल गयी, ये भी.... मेरे दिल को चीर कर.

उसकी बात से सास ने कहा, ''ये मैं नहीं जानती. हां तू कल इसे किसी डाऊ (ओझा) को दिखा कर ला. वही बता पायेगा कि इसके क्या होना है?''

ननद ने यह सुन लिया था. लौटी और बोली, ''ठीक है. परसों मंगलवार है.'' फिर मेरी ओर इंगित कर कहा, ''लता तैयार रहना. दूर जाना है.'' तब मैंने कहा था, ''पर दीदी, मेरे तो दिन...'' मैंने उसे अपनी वर्तमान स्थिति बतायी. मैं रजास्वला थी. ऐसे में कहीं जाना ठीक नहीं था. मेरी इस बात से सास जल-भुन गयी. बोली — ''तेरा तो स्यापा ही रहा. जब भी किसी शुभ काम की बात होती है तो इसका यही हाल होता है. मैंने सोचा था कोई तावीज़ वग़ैरा मिलेगा तो हो जायेगा.'' वह झटके से उठी और भीतर चली गयी. ननद भी कुछ बड़बड़ाती भीतर चली गयी. भीतर से सास का स्वर सुनायी दिया, ''अगले हफ़्ते चले जाना, पर....''

और इस तरह मेरे तीन लडकियां हो गयीं. तीसरी के बाद जब सास ने उलाहना दिया तो एक दिन मैंने उनसे कह ही दिया — कह क्या, मुंह से निकल गया, ''मां जी, लड़का पैदा करना औरत के वश में नहीं होता ये तो....'' मैं अभी अपनी बात पूरी कर भी नहीं पायी थी कि सास ने पास पड़ा डंडा उठाया और दे मारा मेरे माथे पर. ''साली जवाब देती है.'' ये देखो उसके निशान. ख़ूब गालियां दीं उसने. मेरे मायके और न जाने किस-किस को. वह चुप हो गयी थी. उसकी पीड़ा उसके चेहरे पर आ गयी थी.

''फिर?'' पहली स्त्री ने पूछा.

''फिर क्या? मैं उस समय पेट से थी. पता नहीं सास की मार से या किसी अन्य वजह से वह गर्भ गिर गया. इस पर भी बवेला मचा. तब एक और गर्भ ठहरा. जन्म हुआ लड़के का मगर मृत. इस पर और मुसीबत हुई. मुझ प्रसूता की बिना बच्चे के सेवा का बोझ. तब एक दिन सुना. ननद सास से कह रही थी. खुले आंगन में. ऊंचे स्वर में. ''मांऽ तुम्हारी ये बहू तो डायन है. मैंने डाऊ से पूछा था. उसने बताया था कि डायन के लड़के नहीं होते. और यदि हो भी गये तो वह अपने लड़के को खा जाती है. इसके जो गर्भ गिर गया था वह भी लड़का ही होगा. इसलिए उसे गर्भ में ही खा गयी. और दूसरे को जन्मते ही....'' ननद की यह बात राह में चलते या किसी दूसरे आंगन में बैठी औरतों ने भी सुनी होगी. एक दो दिन बाद कुछ हम उम्र साथिनों ने पूछ ही लिया. मेरे न करने पर उनका एक ही सवाल था — ''तब तुम्हारी सास और ननद यह क्यों कहती फिर रही हैं?'' मैं क्या जवाब देती? उन्हें छोड़ आगे बढ़ जाती अपनी मानसिक पीड़ा को सहती. मन होता सास और ननद को ऐसा करारा जवाब दूं कि नानी याद आ जाये. पर... सहन करने के सिवा चारा नहीं था.... और मैं हो गयी डायन. लोकणियां मुझे अपने आंगन में आते देख अपने बच्चों के मुंह ढक देतीं. मैं समझती उनकी बात. कह देती — मैं नहीं हूं डायन. तुम खामख़्वाह डर रही हो. फिर उनके पास अपना काम बताने से पहले कहती, ये मेरी सास और ननद का प्रपंच है. वे मुझे घर से निकालना चाहती हैं. अपने लड़के का दूसरा ब्याह करना चाहती हैं. और यह बात सास के पास पहुंच जाती. तब वह फिर मुझे मारती — मेरी चर्चा करती है, मुझे एक पोता तो नहीं दे सकी और...

''अरेऽ ऐसा भी होता है!'' पहली ने कहा.

''हां, इतना ही नहीं अभी और भी है.''

''क्या?''

''उसके बाद मेरी यातना का एक और दौर चला.... घर में दहेज, लड़का न होने की प्रताड़ना. पति का साथ न देना मुझे अवसाद में घेरने लगा. मैंने अपना दुःख मां को बताया — ''अम्मा जी ये कैसा नर्क दिया मुझे?'' मां ने समझाया — ''बेटा यह कालांतर से होता आया है. इसे अपना प्रारब्ध मान. हम सब पुरुष समाज की गोटियां हैं. हमें यह बचपन से ही सिखा दिया जाता है कि तुम्हारा क्या स्थान है....'' फिर मैंने मां से पूछा था — ''अगर बेटियों को बचपन से ही दब कर रहना सिखाया जाता है तो मुझे क्यों नहीं सिखाया. मेरी सास और ननद को क्यों नहीं सिखाया गया?'' मेरी सांस चढ़ गयी थी. तल्ख़ आवाज़ हो गयी थी. तब मां ने कहा था — ''हां कुछ स्त्रियां होती हैं जो पुरुष पर दबाव बना लेती हैं. पति पर

और बेटे पर भी मगर वहां पुरुष कमज़ोर होते हैं या किसी मर्यादा के कारण चुप रहते हैं. बेटा, मर्दों की भी कई जातियां होती हैं. कई प्रकार के होते हैं. सब एक से नहीं होते. मगर जो कमज़ोर होते हैं वे कुछ भी नहीं कर पाते. बेटा ये समाज है इसे समझना कठिन है. तू समाज से समझौता कर. अब जो जीवन मिला है उसे तो किसी तरह जीना ही पड़ेगा. और देख, ऐसा-वैसा कुछ न करना. अभी पीछे चार पड़ी हैं. दो का रिश्ता हो गया है...'' और मां ने अपना पक्ष समाप्त कर दिया था. उनसे कोई प्रतिवाद या सहानुभूति की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी.

पहली ने आक्रोश में कहा, ''तुम्हारी मां ने तुम्हें भीरु बना दिया. पर स्वर्णलता आज समय बदल गया है. अब सब समान हैं. ऐसी औरतें जो ज्ञानवान नहीं हैं, जिन्हें केवल अपना निज ही दिखता है, वे वाकई हत्यारी होती हैं — वे अपने स्व की साधना के लिए गर्त के किसी भी स्तर तक चली जाती हैं. मैंने....'' वह अपनी बात बीच में ही छोड़ देती है. उसकी बात से स्वर्णलता को खटक-सी होती है. मन ही मन सोचती है यह भी ज़रूर मेरी तरह ही प्रताड़ित है. तभी यहां आयी है. हो सकता है यह भी...वह अपनी सोच को छोड़ अपने मन के संताप को कड़ी न टूटने के कारण बयान करने लगती है.

''हां! आपने सही कहा — मेरी सास ने पोते का मुंह देखने के लिए जाने कितने टोटके किये और एक दिन....'' वह उदास हो जाती है.

''एक दिन?''

''एक दिन जाने क्या हुआ कि मेरा पति रात को जो सोया सुबह उठा ही नहीं.'' उसकी आवाज़ में दर्द था.

''अरे! यह तो बुरा हुआ.''

स्वर्णलता ने ज़रा दीर्घ श्वास लिया और कहा — ''हां! कैसा भी था मगर मेरा सहारा था. उसके पास मैं अपना दुखड़ा रो लेती थी. वह यद्यपि कुछ नहीं कर पाता था मगर उसके पास मेरे भीतर का गुबार निकल जाता था. वह पीठ पर थपकी देता तो भीतर का दु:ख शांत होता. तब उसकी असहायता का भी एहसास होता — ऐसी खड्डूस मां के मुंह लगने की इसकी क्षमता नहीं. या यह उससे अपनी फ़जीहत के डर से चुप रहना उचित समझता हो.''

पहली ने कहा — ''यह जीवन है लता. किसी को पूर्ण सुख मिलता है किसी को नहीं. हम एक सुख की कामना में जीवन जिये जाते हैं. कोई सब कुछ पा कर भी सुखी नहीं रहता. कोई सुख की तलाश में भटकता दूर तक चला जाता है. और दु:ख. कोई सीमा नहीं. कोई पुत्र के लिए दु:खी है तो कोई धन के लिए. कोई ज़मीन के लिए तो कोई किसी अन्य इच्छा की पूर्ति न होने पर. ऐसे में आज जाने कितने अख़बार पारिवारिक हिंसा की घटनाओं से भरे रहते हैं. तुम क्यों...'' वह भरे गले से रुक जाती है.

''बहन जी. अख़बार तो कभी पिता के घर पढ़ते थे. ससुराल में टी. वी. तो है मगर जब तक टी. वी. देखने का समय मिलता है तब तक रात बहुत बीत गयी होती है. थकान से शरीर टूटा होता है. तब सोने को ही मन करता है. कभी चलते-चलते, काम करते यूं टी. वी. के पास खड़े हो भी गये तो वे बोर करने वाले नाटक मन को नहीं भाते. एक ही झगड़ा. सास-बहू का. कई बार सोचती कि क्या समाज इतना गिर गया है? कहीं मेरी सास टी. वी. पर दर्शाये फॉर्मूले मेरे पर तो नहीं लागू कर रही?''

पहली ने कहा, ''शायद हां! समाज बहुत गिर गया है. आज पैसा ही सब कुछ है. भगवान नहीं तो भगवान से कम भी नहीं. तुमने आगे नहीं बताया. फिर क्या हुआ?''

''पति का न रहना भी मेरे माथे मढ़ा गया. कहा गया कि इसने पति पर वशीकरण किया और उसके लिए कुछ खाने को दिया जिससे वह मर गया. कि यह जादूगरनी है. डायन है. यह एक दिन हम सबको खा जायेगी.... सास और ननद अब मेरे हाथ का बना खाना नहीं खातीं. मैं अपने ही घर में अछूत हो गयी. मेरी बेटियां भी मुझसे पूछतीं — मां क्या तुम सच में डायन हो? मैं क्या उत्तर देती? चुप कर जाती. भीतर ही भीतर पीड़ा से छटपटाती, डांटती उन्हें. कई बार उन्हें अपने आगोश में लेकर कहती — ''नहीं बेटा, ये तेरी दादी का....'' मगर अगले दिन फिर मेरी पिटाई. उन्हें पता चल गया था. क्या पता वे हमारी बातें सुन रही होंगी या उन्होंने बच्चियों से डरा कर पूछा हो? .... कितनी बार!... कितनी बार! मैंने अपने कानों से सुना — सास का प्रलाप — यह मुझे पोता तो नहीं दे सकी, मेरे बेटे को ही खा गयी.

पहली उसकी बात से भीतर ही भीतर पीड़ा महसूस करने लगी थी. इस बार वह कुछ नहीं बोल सकी. उसकी चुप्पी देख स्वर्णलता ने कहा, ''हां, बहन हां. मैंने सहा है यह. यही नहीं, अभी पति को मरे महीना भी नहीं हुआ था. सास एक दिन अपने किसी रिश्तेदार को ले आयी. मुझे कहा गया कि...बच्चा पैदा करो.

''यानी!''

''हां. वह बताना चाहती थी कि जब उसका लड़का मरा तो यह गर्भ से थी.''

''यह तो सरासर ज़्यादती है. व्यभिचार...इतना नीचे...''

''हां, और...''

''उस दिन....'' वह पीड़ा से चुप हो जाती है. कुछ देर तक यूं ही रहती है, तब कहती है, ''उस दिन गांव में एक घटना घटी.''

''क्या?''

''गांव में डायनों का होना तो चर्चा का विषय ही था. एक मैं ही नहीं थी जो इस पीड़ा से गुज़र रही थी. इसलिए कुछ लोग एक महाकाली के उपासक को ले आये. उनकी मन्शा थी की गांव में जितनी भी डायनें हैं, उनका पता लगाया जायेगा और उन्हें रोक कर उनके भूत दरिया में फिकवा दिये जायेंगे. यह भी बताया गया कि यह उपासक इतना तेज़ है कि काली मां उससे सीधे बातें करती हैं, कि सारी डायनें उसके पास स्वयं जायेंगी और बतायेंगी. वह उनके पाप को छिपा कर रखेगा और चुपके से उन्हें उनके कर्म से छुटकारा दिला देगा. गांव तब शुद्ध हो जायेगा.... सास को यह एक सुनहरा मौक़ा मिला. वह उपासक के पास गयी और कुछ मंत्रणा करके आयी. तब उपासक ने कहा कि वह अपना कौशल सार्वजनिक रूप से दिखायेगा. और उसने...'' स्वर्णलता उस घटना को याद करती है.

मुंह में आया थूक निगल कर बोली, उपासक (तांत्रिक) आया और एक आसन पर विराजमान हो गया. उसके पीछे कुछ गांव के लोग आये. बैठने के बाद उसने ओऽम का उच्चारण किया और गांव वालों से कहा — उन औरतों को बुलाओ जिन पर डायन होने का शक है. उसकी बात पर मुखिया ने कहा, ''जी महाराज. शक नहीं उन पर किसी न किसी ने लांछन लगाया है मगर वे अपने को निर्दोष मानती हैं.''

''ठीक है, उन्हें मेरे सामने से गुज़ारो. जो डायन होगी उस पर माता अपने आप छड़ी लगा देगी. बाक़ी साफ़ निकल जायेंगी. अपने आप दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा.''

मुखिया ने कहा — ''ठीक है महाराज. हम भी यही तो चाहते हैं. यह रोज़-रोज़ का बखेड़ा ठीक नहीं. गांव की बदनामी हो रही है. कहीं जा नहीं सकते. रिश्ते नहीं हो सकते. लोग एक ही सवाल पूछते हैं — डायन का. तब सिर शर्म से झुक जाता है.''

''अब ऐसा नहीं होगा. सब ठीक हो जायेगा. तो करो शुरू.'' वह कुछ बुदबुदाने लगता है. और तभी उसके सामने से गांव की औरतें गुज़रने लगती हैं. दूसरे मर्द जिज्ञासा से देखने लगते हैं. मेरी बारी आते ही तांत्रिक ने मुझे छड़ी लगा दी. मैं हक्की-बक्की. मैं वहीं चुप खड़ी हो गयी. यह क्या? की मुद्रा में. लोग एक स्वर में बोलने लगे. हां एक डायन तो पकड़ी गयी. मगर मैं आगे नहीं बढ़ी. मुझे ग़ुस्सा आ गया. खामख़्वाह का इलज़ाम...पीछे मुड़ी और उसके बालों को पकड़ने के लिए झपटी. पकड़ लिये थे मगर वह पीछे हट गया. प्रक्रिया रुक गयी. कहा, ''मैं डायन नहीं हूं. तू मुआ भड़ुवा...किसकी चाल से कर रहा है ये?'' मगर तभी मुखिया ने आगे आ कर मुझे रोक दिया.

''क्या बोलती है? यह आदमी दुर्गा का उपासक है. गुणी है. तुम क्या जानती हो? इसने तुझे डायन कहा तो कहा. तुझे कुछ कहना होगा तो बाद में कहना. अभी डायन परखने की प्रक्रिया चलने दो. तू ही नहीं है, और भी हैं.'' गांव वालों ने समवेत कहा, ''हां, हां, सच्ची-झूठी का फ़ैसला बाद में होगा.''

मगर मैं वहां से नहीं हटी, ''नहीं मुआ ये...मेरा फ़ैसला तो अभी ही होगा. मैं तो..'' तभी कुछ और औरतें आगे आ गयीं. वे एक स्वर में बोलीं — ''हां, ये डायन नहीं है'', मगर कुछ ने कहा कि पहले डायनों का पता चलने दो. एक युवा स्वर भी उभरा — ये मुखिया का तंत्र है और तभी मेरी सास चीख़ती हुई आगे आयी. कहती — ''हां, ये डायन है. तभीऽ....'' रोते हुए कहती है — ''तभीऽ ये मेरा बच्चा खा गयी. अपने लड़के भी खा गयी. रेऽ ये डायन है. डायन. इसका झोंटा खींच कर इसे गांव से बाहर करो कोई.''

स्थिति को बिगड़ता देख मुखिया ने ऊंची आवाज़ में कहा — ''कोई कुछ नहीं करेगा. इसका फ़ैसला कल पंचायत में होगा. अभी और भी पता करना है. मैं पहले ही इस कार्य के सार्वजनिक रूप से करने के ख़िलाफ़ था. पर तू ही नहीं मानी.'' मैं अवाक. ''तो यह कार्य मेरी सास का था.'' मैं बुदबुदायी. और वह षडयंत्र वहीं रुक गया था. फिर दूसरे दिन पंचायत का एक रुक्का आया. जाना पड़ा. पति तो था नहीं जिससे विरोध करने को कहती. इसलिए गयी.'' उसका गला रुंध गया था.

अधीरता से पहली ने पूछा — ''दूसरे दिन क्या हुआ पंचायत में?''

''मैं रात भर सो नहीं सकी. सुबह मैं पहले प्रधान के पास गयी. प्रधान तो बेचारी अनपढ़ थी. सारा काम उसका पति ही करता था. उसने सीधा कहा — ''तुम मेरे पति के पास जाओ उससे बात करो. वे कहेंगे तो मैं कुछ कर पाऊंगी. यह मामला लोगों का है. मेरे वश में नहीं.''

''क्यों उसके वश का क्यों नही? वह प्रधान है तो... उसका पति... समझ नहीं आया. यदि वह समर्थ नहीं थी तो

प्रधान क्यों बनी?''

''वह नहीं बनना चाहती थी. उसे तो उसके पति ने बनाया. इस बार पंचायत में कोटा महिला के लिए था. इसलिए... गांव का मुखिया तो उसके आगे पानी भरता है. कहता है, सरकार कोई भी हो. गांव का नेता तो वही रहेगा.''

''यानी दल-बदलू. वह कोई चालू किस्म का इन्सान होगा. अवसरवादी...ओफ्ह! यह समाज कैसे-कैसे लोगों से भरा हुआ है. हां, तब क्या हुआ?''

स्वर्णलता ने कहा — ''पंचायत में कुछ नहीं हुआ. यूं बात टाली गयी. जब मैं पंचायत के प्रांगण से बाहर आयी तो कुछ स्त्रियों और बच्चों ने मुझे पत्थर मारे. मैं हैरान. मैंने पीछे मुड़कर उन्हें प्रताड़ा मगर तब तक एक पत्थर मेरे माथे पर लगा, मैं गिर गयी. फिर उठी. लहू से मेरे कपड़े भीगने लगे. गांव न जाकर पीछे भागी अपने मायके की ओर.''

''अरे! इतना हो गया और कोई आगे नहीं आया जो तुम्हें बचाता.''

''नहीं, कोई नहीं. सब तमाशा देखते रहे. ऐसा लगा यह सब पूर्वनियोजित था. मेरी सास अपने मंतव्य में कामयाब हो गयी थी... बहन यही नहीं. मैं बदहवास भागने लगी कि उधर से आते गांव के एक व्यक्ति से टकरायी. उसने मुझे पकड़ा और वापस ले आया.''

''यह तो ठीक हुआ, कोई तो मिला.''

''ख़ाक ठीक हुआ.'' वह रुआंसी आवाज़ में बोली — ''उन्होंने मुझे पकड़ा फिर मेरा मुंह काला किया. गले में जूतों की माला डाली और गांव के बाहर कर दिया. वे तो नंगा भी करना चाह रहे थे मगर एक औरत ने इस पर आपत्ति की. उसके कहने से नंगा करने वाली औरत के बढ़ते हाथ रुक गये. कौन थी वह? नहीं पहचान पायी. आंखों में पानी और क्रोध का लहू उतर आया था. कुछ नहीं कर पा रही थी. ओफ्ह! इतनी प्रताड़ना....मैं छूट कर भागी. देख नहीं सकी किस ओर. वे भी भागे मेरे पीछे. वे पत्थर मारने लगे. मैं एक तो शर्म के मारे, दूसरे उनके पत्थरों के डर से और तेज़ भागने लगी. वे मेरे पीछे भागते रहे. पत्थर मारते. कोई पत्थर पैर पर लगता कोई पीठ पर. मैं भागती रही. फिर पत्थर लगने बंद हो गये मगर लगा कि वे मेरे पीछे भाग रहे हैं कि वे मुझे मारना चाहते हैं. और मैं दौड़ती गयी. यहां तक..... और.... मैंने अपना काला मुंह रास्ते में दौड़ते पोंछा. शायद कहीं अब भी कुछ निशान हों. देखो.''

पहली निहारती है. ''दिख नहीं रहे. यह कब की बात है?''

''आज की. अपराह्न की.... फिर?''

''बीच में कोई और नहीं मिला?'

''मिले. मैं तब उनसे छिप जाती या अपनी चाल धीमी कर देती. किसी छोटे गांव के पास आती तो किनारे से निकल जाती. बस एक ही धुन में कि अब नहीं...''

''घटिया समाज. औरतों की घिनौनी चालें. औरत के विरुद्ध षड़यंत्र. ये आज हम कहां आ गये हैं? कहां जा रहे हैं?''

''आपने मुझे बचा लिया. मरने देतीं तो इस जीवन से छुटकारा मिल जाता. क्या करूंगी मैं अब इस जीवन का. कहीं जा नहीं सकती. कहीं....पर...''

''पर... मुझे बचाने वाली, ईश्वर की दूत. आप अपने बारे में भी बताओ. इस समय, इस आदमखोर नदी के किनारे आप क्या कर रही हैं?'' फिर अपनी आवाज़ सख़्त करती है, ''कौन हो तुम?''

''मैं!''

''हां तुम?''

इस प्रश्न से वह बचना चाह रही थी. मगर कहीं यह सोच भी थी कि एक बिंदु पर यह सवाल सामने आ सकता है. उसके सवाल से गला सूख-सा गया था. क्या जवाब दे? बोले कि वह तो यूं ही आयी थी. तफरीह करने. सोचते यह वक़्त हो गया फिर तुम मिल गयीं कि ... तभी स्वर्णलता ने पूछा — ''कहो न।'' थूक निगल कर उसने कहा, ''मैंने कहा न. ख़तरनाक नही हूं. तुम्हारी हितैषी हूं. मैंने तुम्हें बहन कहा है न.''

''सो तो है मगर...''

''तुम्हारा बच जाना एक झटका था मेरे लिए. तुम्हें सुन लिया. लगा आत्महत्या करने वाला एक पक्षीय सोच का होता है. वह बच जाये तो उस पर ही मुकद्दमा चलता है. यदि मर भी जाये तो यह समाज उसी तरह बदस्तूर चलता रहता है... यदि कुछ होता है तो समाज से एक आदमी की कमी जिसका किसी को फ़र्क नहीं पड़ता. समुद्र से लोटा भर जल भरने की तरह. यदि कहीं पड़ता भी है तो क्या किया जा सकता है....वही कुटिल चालें. वही रिश्तों की ब्लैकमेलिंग और उठापटक.''

''मैं समझी नहीं तू क्या कहना चाहती है.''

पहली अपने से ही कहती है, ''क्या उत्तर दूं? मैं भी तो....'' चहलक़दमी करती है. फिर स्वयं से कहती है, किसी भीतरी हांक ने ही तो रोका था मुझे. ''रुको अनामिका! रुको; ये जीवन इस तरह न गंवाओ. उस आवाज़ से मैं चौंकी थी.

और लहरों की ओर बढ़ती रुक गयी थी. पीछे हटी तो अपने कृत्य पर शर्म सी आयी थी और....मैं रुकी रही. यह सोच कि जाने फिर मन बन जाये और...मगर तभी भीतर से आवाज़ आयी, ''नहीं, मुझे जीना है.....अभी ठीक से संभली भी नहीं थी कि... अब मुझे जीने का सबव मिल गया है.....मैं जीऊंगी इसके लिए. अपनी बहन स्वर्णलता के लिए. इसके हक़ के लिए. इसकी बेटियों के लिए. मैं खड़ी हूंगी उस कृतघ्न समाज के आगे और पूछूंगी. अभी तक मैं स्वयं को अकेला पाती थी, पर नहीं, इस समाज में मेरी तरह और भी हैं. यदि कुछ भिन्न है तो कारण. अनेक कारण.''

स्वर्णलता उसे टोकती है, ''तुम कुछ कह नहीं रहीं. यूं चहलक़दमी से मेरा सवाल ख़त्म नही होगा.''

पहली उसकी ओर मुड़ कर, ''मैं तुम्हारे गांव से ज़रा ज़्यादा दूर से आयी थी. एक क़स्बे से. बस में सोचती रही. अपने निर्णय के बारे में. यहां आने पर नदी की धारा में चली भी गयी थी. मगर फिर कहीं से कोई आवाज़ आयी या मैं साहस नहीं कर पायी. लौट गयी. शायद अपने निर्णय को अंजाम देने में देर हो गयी होगी. यह एक कारण भी हो सकता है. तभी अपने से मोह हो आया. मेरा यह जीवन....लौटी तो यहां शिला पर बैठ सोचने लगी थी. अभी सोच ही रही थी कि तुम्हारी धप्पड़-धप्पड़ की आवाज़ सुनी. मैं चौंकी. डर भी गयी थी. कहीं कोई मेरी टोह में आ तो नहीं रहा. इसलिए उठ कर जाने लगी थी कि मन किया कि देखती हूं. और...अब तुम जानती हो.''

''मतलब! तुम भी!''

''हां. मैं भी....ज़िंदगी की दौड़ में तुम्हारे साथ कम से कम तुम्हारा पति तो था. बेशक वह एक कमज़ोर मानसिकता का व्यक्ति था. मगर मेरे साथ कोई नहीं था. न पति, न सास-ससुर न कोई कलीग्स. मैं घर में कमाऊ और काम की जगह एक नकारा मानुष नहीं बल्कि चीज़ बना दी गयी थी. मेरा बेटा भी मेरा नहीं था. मेरे भाई भी नहीं. और तब लगा यह जीवन निरर्थक है. कहां जाये कोई? किसके पास कहे अपना दु:खड़ा? कोई सुनता ही नहीं. यदि कोई सुनता भी है तो उसके पास कोई हल नहीं. वह चटकारे लेता ऐसी सलाह देता है जिसे मानना उचित नहीं होता. और यदि कहीं कोई विवाद हो जाये या मात्र असहमति की बहस तो सारा कुछ बयान हो जाता. लौटाया जाता कि....तुम तो हो ही ऐसी. अब बताओ क्या रह जाता है? जीवन कैसा हो जाता है? तब मन में आया कि क्या ज़रूरत है इसकी. इसलिए चली आयी थी....''

ग़ज़ल

हरिश्चंद्र

आदमी ईमान पर जब मर मिटेगा,
ख़ुद-ब-ख़ुद सूरज नया फिर से उगेगा ।
है धरोहर क्या किसी की यह ज़मीं,
जो कोई इसके कई टुकड़े करेगा?
कौन-सी है बात इनसां से बड़ी,
आदमी जब कस कमर करने चलेगा?
हैं समस्याएं बहुत तो क्या हुआ,
सुलझने में वक़्त थोड़ा तो लगेगा ।
बात को गंभीरता से ले अगर,
हाथ रे तुझको नहीं मलना पड़ेगा ।
तू नहीं झुकना किसी के सामने,
सामने तेरे जहां ख़ुद ही झुकेगा ।

सिद्धि गणेश, प्लॉट नं. ८५७/४-बी,
सेक्टर-८, चारकोप, कांदिवली (प),
मुंबई-४०००६७.
फोन : ९३२२१८२६२७

स्वर्णलता बीच में ही टोक देती है, ''मगर तुमने...'' फिर जाने किसी अंत:-प्रेरणा से अपनी बात रोक देती है.

''हां, अब मुझे तुमसे बल मिला है. जीने का सबव. तुम मेरा साथ दोगी तो हम एक नया रास्ता निकाल जीवन शुरू कर सकती हैं. तुम्हारी बेटियां...उन्हें समाज की जलालत से बचाना ज़रूरी है. वर्ना उन्हें बहुत तंग किया जायेगा. उन्हें समाज में एक स्थान दिलाना है...'' वह रुकती है.

''मगर यह कैसे संभव होगा? मुझे मेरी बेटियां याद आ रही हैं.'' स्वर्णलता ने रुआंसे से कहा.

''अब हम दो हो गयी हैं..... करने को बहुत कुछ है...'' तभी वह देखती है पूर्व दिशा में भोर का तारा चमकने लगा है. बोली — ''आओ चलें. आज की काली रात विदा ले रही है. सुबह होने वाली है. इससे पहले कि सुबह हो, हमें किसी ठीक जगह पहुंच जाना है.'' और वे दोनों हाथ पकड़कर जंगल के दूसरे रास्ते से आगे बढ़ने लगती हैं.

२-हरबंस कॉटेज, संजौली,
शिमला-१७१००६
मो. : ९४१८४७८८७८.
ई-मेल : bsbhatia1947@gmail.com

अनिल पुरोहित की कविताएं

स्याह साये

कठपुतली से चलते देखा मैंने
क़दम से क़दम मिलाते
कोई आहट नहीं
सन्नाटे में और सन्नाटा घोलते.
रौशनी के छिपते ही
लिपट गये मुझसे
स्याह साये–
धीरे–धीरे सांसों में घुलते
और रग–रग में मेरे रम रहे.
चिंगारियां रुक–रुक कर उठतीं,
तराशती इन्हें.
पर रंगों को चुरा
फिर छिप जाते अंधेरों में.
सूरज चांद तारों के इर्द–गिर्द
मंडराते फिरते रहते
आकाशगंगा से थिरकते
क्षितिज के इस छोर से उस छोर तक.
दीवारों, रौशनदान से रिसते
चिमनियों से उतरते
दरवाज़े, खिड़कियों तक अधिकार जमा रखा
बिखरे हुए अब हर कोने में.

तरकश

बींध छलनी कर दिया
हर तरफ़ से चलते शब्दों के बाण.
जहर में सने–तीर जहरीले
सन–सन कर आते
कर देते सब कुछ सुन्न.
भावहीन, अर्थहीन, संज्ञाहीन
चले जा रहे हर दिशा,
ना ही लक्ष्य ना कोई पथ
बवंडर सा मचा रखा सबने.

सरों की शैय्या पर लिटा
चारों तरफ़ घेर रखा मुझे
चापलूस, मतिहीन, स्वार्थी
लगे हैं अपना पौरुष जताने.
किस बाण ने आहत किया,
किसने लगाया मरहम
संवेदनहीन शरीर – सबसे अनभिज्ञ,
सारी इंद्रियां निष्क्रिय.

कोई अर्थ बटोरने में,
कोई पोटली धर्म की खोले
कोई सपने विकास के दिखा रहा,
कोई कोरे ज्ञान भांज रहा.
सब कुछ देख सकता मैं
पर एक लकीर शिकन की माथे पर नहीं,
ना ही लबों पर तैरती मुस्कान.
बस पुतलियां इधर से उधर,
देख रहीं अगिनत चलते बाण.

एक लचीला धनुष,
छिपा रखा जाने कहां तरकश.
अनर्गल बौछारें करता जा रहा,
जैसे बूंदें टपकती बारिश से.
ज़मीन पर एक गिरती,
तो हज़ारों उसमें से फिर उछलतीं.
परत दर परत छलनी कर रहीं,
उग्र से उग्रतर होती जा रहीं.

✉ 3892, Stoney Cres.
Mississauga, ON LSN 0N7, Canada.

कहानी

नटवर का नानका

✍ बलराम अग्रवाल

'मल्लू काका....ऽ...., पानी लाना एक गिलास.' सुदीप की आवाज़ आयी तो मल्लू पानी भरा गिलास ट्रे में रखकर ले चला. अभी-अभी किसी ने कॉल-बेल दबायी थी तो निकट खड़ा होने के कारण दरवाज़ा सुदीप ने ही खोल दिया था. सुदीप बाबू का कोई दोस्त होगा—मल्लू ने सोचा था. गेस्ट रूम में क़दम रखा तो डाइनिंग टेबल की कुर्सी पर पुराना-सा काला सलवार-कुर्ता पहने बैठी एक औरत की पीठ को देखा. सुदीप उससे अलग सोफ़े पर बैठा था.

'मुझे अंदर आने देकर आपने बड़ी मेहरबानी की सर जी.' वह औरत कह रही थी, 'आज के समय में आप-जैसे दयावान मिलते कहां हैं?'

'आदमी ही आदमी के काम आता है बहन', सुदीप कह रहा था, 'आपने अच्छा किया जो बेल दबा दी. इतनी रात में अकेली औरत का शहर की सड़क पर कहीं रुकना-बैठना ख़तरे से खाली नहीं है. ज़माना काफ़ी ख़राब है.'

'आपकी मेहरबानी.' वह बोली, 'मैं मुंह-अंधेरे ही यहां से निकल जाऊंगी.'

तभी, ट्रे हाथों में थामे मल्लू उस औरत के सामने जा खड़ा हुआ. उसकी नज़र औरत के चेहरे पर पड़ी और औरत की नज़र उसके चेहरे पर. दोनों की नज़रें मिलीं. कौए को जैसे चमगादड़ नज़र आ गया हो और चमगादड़ को जान पर बन आया ख़तरा—ये दोनों घटनाएं पलक झपकने के भी सौवें सेकेंड में बड़ी तेज़ी से घट गयीं. मल्लू क्रोध से कांप उठा. ट्रे उसके हाथों से छूट गयी और डाइनिंग टेबल की कुर्सी पर निरीह बनी बैठी वह औरत फुर्ती का अवतार बनकर मेन-गेट की ओर भाग खड़ी हुई. मल्लू उसे पकड़ने को दौड़ा और अंधेरे में कुछ दूर तक तलाश करने भी गया, लेकिन दरवाज़ा खोलकर वह किधर उड़न-छू हो गयी, पता ही न चला.

सुदीप तो यह सब देखकर हक्का-बक्का रह गया. मल्लू काका को देखते ही वह लिजलिजी और डरी-डरी-सी औरत क्यों भाग खड़ी हुई और मल्लू काका क्रोधित होकर क्यों उसे पकड़ने को दौड़े—उसकी कुछ समझ में न आया. वे जब हताश-हाल लौटकर आये तो उसने पूछा — 'क्या हुआ काका? कौन थी वह औरत?'

'क्या बताऊं.' मल्लू बोला, 'हाथ आ जाती तो गरदन मरोड़ देता अभी.' यों कहता हुआ वह डाइनिंग टेबल के नीचे जा पड़े गिलास और ट्रे को उठाने लगा.

'आप जानते थे उसे?' आश्चर्यपूर्वक सुदीप ने पूछा.

'हां.' कहता हुआ मल्लू अंदर चला गया. गिलास व ट्रे को किचन में रखकर वहां से वाइपर ले आया और फ़र्श पर बिखरे हुए पानी को पोंछने लगा. सुदीप इस बीच उसके बोलने का इंतज़ार करता उसकी ओर ताकता बैठा रहा. पोछा लगाकर भीगे हुए वाइपर को मल्लू पुन: किचन में डस्टबिन के निकट रख आया और आकर बताने लगा.

'जवानी के दिन थे. काम-धंधे की तलाश में गांव से निकलकर मैं पॉटरी उद्योग की नगरी खुर्जा पहुंच गया था. कई दिनों तक यहां-वहां मारा-मारा फिरता रहा. कोई काम नहीं मिला. कई दिनों से खाने को कुछ नहीं मिला था. एकाएक ख़्याल आया कि सरकारी मेहमान बनने से कुछेक दिनों के लिए दाना-पानी का इंतज़ाम हो सकता है. लेकिन चोरी-उठाईगीरी करना

बलराम अग्रवाल

२६ नवंबर, १९५२ जिला बुलंदशहर.

शिक्षा : एम. ए., पीएच. डी. (हिंदी), अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा

प्रकाशन : *कथा-संग्रह : सरसों के फूल (१९९४), 'जुबैदा' (२००४), चन्ना चरनदास (२००४).*

बालकथा संग्रह : दूसरा भीम (१९९७), ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी (२०१२).

समग्र अध्ययन : उत्तराखंड (२०११); खलील जिब्रान(२०१२).

अंग्रेज़ी से अनुवाद : फोक टेल्स आफ अंडमान एंड निकोबार (२०००); लॉर्ड आर्थर सेविलेज़ क्राइम एंड अदर स्टोरी (ऑस्कर वाइल्ड); अनेक विदेशी कहानियां व लघुकथाएं.

संपादन : *मलयालम की चर्चित लघुकथाएं (१९९७), तेलुगु की मानक लघुकथाएं (२०१०), 'समकालीन लघुकथा और प्रेमचंद' (आलोचना :२०१२), 'जय हो!' (राष्ट्रप्रेम के गीतों का संचयन :२०१२); कुछ वरिष्ठ कथाकारों की चर्चित कहानियों के १२ संकलन; १९९३ से १९९६ तक साहित्यिक पत्रिका 'वर्तमान जनगाथा' का प्रकाशन/संपादन; सहकार संचय (जुलाई १९९७), द्वीप लहरी के कुछ विशेषांक तथा आलेख संवाद (जुलाई २००८) के विशेषांकों का संपादन. हिंदी साहित्य कला परिषद, पोर्टब्लेयर की साहित्यिक पत्रिका 'द्वीप लहरी' को १९९७ से अद्यतन संपादन सहयोग.*

अपने ख़ून में नहीं था और उसके बिना तो कोई जेल भेजने से रहा. एकाएक सोचा कि मेल-एक्सप्रेस ट्रेन से बिना टिकट दिल्ली जाया जाय. टीटी लोग ख़ुद-ब-ख़ुद पूरी कर देंगे तमन्ना और अगर न की, तो दिल्ली राजधानी है देश की, कोई न कोई काम तो वहां मिल ही जायेगा. बस, उसी रात रेलवे स्टेशन जा पहुंचा और नयी दिल्ली की ओर जाने वाली एक रेलगाड़ी में सवार हो गया. सोचा, पकड़ा गया तो जेल भेज दिया जाऊंगा, भूखा नहीं मरना पड़ेगा. लेकिन दुर्भाग्य की बात कि स्लीपर कोच में चढ़ा होने के बावजूद किसी ने टिकट नहीं मांगा. गाड़ी जब नयी दिल्ली स्टेशन पर रुकी तो निडर होकर मुख्य निकास द्वार की ओर गया जहां दो-दो टिकट चेकर खड़े थे. ग़ज़ब हो गया! उन दोनों के बीच से बाहर निकल गया और एक ने भी टिकट नहीं मांगा.'

'मैं आपके नहीं, उस औरत के बारे में पूछ रहा हूं काका.' बेचैन हुए से सुदीप ने सोफ़े पर ही करवट-सी बदलकर मल्लू से कहा.

'मैं वही आपको बता रहा हूं बाबू.' उसकी जिज्ञासा से विचलित हुए बिना मल्लू बोला, 'जब दो-दो टिकट चेकरों ने भी टिकट नहीं मांगा तो मैंने मन ही मन सोचा, क़िस्मत में अभी कुछ और दिन भूखों मरना लिखा है मल्लू!—और सड़क पर आ गया. पूंजी के नाम पर सिर्फ़ पांच चीजें थीं मेरे पास — घिसी-पिटी-सी हवाई चप्पलें, कच्छा, बनियान, खाली जेबों वाला कुर्ता और बिना जेबों वाला धारीदार पाजामा. हाथ ख़ाली थे और आंखें उम्मीदों से लबालब. दिमाग़ में बस एक ही बात थी—पैर टिकाने को कहीं जगह मिल जाये, बाक़ी मैं ख़ुद देख लूंगा.

अभी कुछ ही क़दम आगे बढ़ा था कि दायीं ओर से शोर सुनायी पड़ा—'पकड़ो, पकड़ो!'

मैंने देखा कि चमड़े का ब्रीफ़केस लिये एक नौजवान भागा चला आ रहा था जो ख़ुद भी 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्ला रहा था. लेकिन पीछे से आ रहे शोर को सुनकर एक पल में निर्णय लिया. भागते आ रहे नौजवान को टंगड़ी मारकर गिरा दिया और जकड़ लिया. उसने बहुत कोशिश की मेरी जकड़ से निकल भागने की लेकिन ख़ुद को छुड़ा नहीं पाया. पीछे से आये हुए लोगों में से एक ने सबसे पहले उसके हाथ से बैग को अपने क़ाबू में किया. बाक़ी ने उस चोर को धुनना शुरू कर दिया. तभी, एक पुलिसमैन भी कहीं से आ गया और टांगों के निचले हिस्से पर बेंतें मारता हुआ किसी से कुछ भी कहे-पूछे बिना चोर को अपने साथ घसीट ले गया. भीड़ तितर-बितर हो गयी.

'बहुत-बहुत शुक्रिया भाई.' बैग वाले सज्जन ने मुझसे कहा, 'यह बैग चला जाता तो मेरा बहुत नुक़सान हो जाता.'

मैं कुछ न बोला, मुस्करा भर दिया. उसके बाद उन्होंने मुझसे वही बातें पूछी जो खारी बावली में उस दिन आपने पूछी थीं.' इतना कहकर मल्लू जैसे सांस लेने के लिए रुक गया.

'कौन-सी बातें?' सुदीप ने पूछा.

'यही कि कहां के रहने वाले हो?' मल्लू बोला, 'मैंने कहा—यूपी का. 'यूपी में कहां के?' बुलंदशहर का. 'ख़ास बुलंदशहर के? 'नहीं, पास में ही क़स्बा है.' 'किस नाम का? 'शिश...' शिकारपुर' मैं हकलाता हुआ बोला. क़स्बे का नाम सुनते ही वे मेरे हकलाने की वजह समझ गये; लेकिन हंसे नहीं, सामान्य बने रहे. कुछ देर बाद पूछा, 'करते क्या हो?'

'पेट पालने लायक काम की तलाश में खुर्जा गया था. अब दिल्ली आया हूं. अभी-अभी उतरा हूं ट्रेन से.' मैंने कहा.

'कितना पढ़े हो?'

'बारहवीं तक पढ़ा, पर पास नहीं की.'

'कोई एतराज़ न हो तो मेरे साथ चलो.' वह बोले.

भीतर से आवाज़ आयी—पैर रखने को जगह मिल रही है मल्लू, मना मत कर. तुरंत 'चलिए' के अंदाज़ में सिर को हिलाया और उनके साथ हो लिया. वह वापस उधर ले गये जिधर से वह चोर के पीछे भागकर आये थे. वहां प्री-पेड बूथ पर जाकर एक टैक्सी की पर्ची कटवायी, टैक्सी में ड्राइवर के निकट मुझे बैठाया और ख़ुद पीछे की सीट पर बैठ गये.

'वसंत कुंज' टैक्सीवाले से इतना कहकर वह मुझसे मुखातिब हुए, 'हैंड राइटिंग कैसी है?'

'ठीक-ठाक है, बहुत सुंदर नहीं तो गंदी भी नहीं है.' मैंने कहा.

उसके बाद हम दोनों के बीच कोई बात नहीं हुई. वसंत कुंज नया-नया बस रहा था उन दिनों. जंगल और इमारतों का मिला जुला-सा इलाक़ा था. टैक्सी वसंत कुंज की एक बहुमंज़िला इमारत के आगे जा रुकी. उन्होंने पैसे चुकाये और मुझे साथ लेकर सीढ़ियां चढ़ते हुए एक फ़्लैट के सामने जा रुके. ताला लगा था. बैग से चाबियां निकालकर ताला खोला और अंदर दाख़िल हो गये. मुझसे कहा, 'आओ. नाम क्या है तुम्हारा?'

'जी, मलखान. गांव में सब 'मल्लू' कहते हैं.'

'मैं भी मल्लू ही कहूं, बुरा तो नहीं मानोगे?'

'जी, यही कहिए. मैं आपको 'साहब' कहूंगा.' मैं बोला.

सुदीप का धैर्य एक बार फिर जवाब दे गया. दरअसल, जिस बारे में वह जानना चाहता था, उसका अभी ज़िक्र ही मल्लू ने नहीं किया था. इसलिए वह किंचित नाराज़ी भरे अंदाज़ में उससे बोला — 'मैं जो पूछ रहा हूं, उसका जवाब देने की बजाय आप अपनी ही कहानी सुनाये जा रहे हैं!' सीधे-सीधे मुद्दे पर आइए और यह बताइए कि यह औरत, जो आपको देखते ही डरकर भाग गयी और जिसके पीछे आप शिकारी कुत्ते की तरह लपककर गये, कौन थी?'

'नाराज़ न होओ बाबू.' उसकी बात सुनकर मल्लू अपनी जगह से उठकर किचन की ओर बढ़ता हुआ बोला, 'मैं चाय बनाकर लाता हूं आपके लिए. उसे पीते हुए सुनते रहना उस रांड की रामकहानी.'

'चाय नहीं, पेप्सी का कन्टेनर लाकर दे दो एक.' सुदीप ने कहा, 'बार-बार उसकी शुरू करके अपनी रामकहानी सुनाने लगते हो. उससे ज़्यादा आपने गर्म कर दिया है दिमाग़.'

'ठीक है, मैं लाता हूं.' कहकर मल्लू किचन में गया और पेप्सी का एक २०० एमएल वाला कन्टेनर ट्रे में रख लाया. ट्रे को उसके सामने करके वह बोला — 'यह लीजिए. अब आराम से सुनिए कि वह औरत कौन थी.'

सुदीप ने ट्रे से उठाकर कन्टेनर का ढक्कन खोला और हल्का-सा सिप लेकर बोला — 'ठीक है, अब पकाओ मत, जल्दी बताओ.'

'यह जो आपको अपने बारे में बता रहा हूं न बाबू, यह भी उस औरत के बारे में ही बताना समझिए.' खाली ट्रे को मेज़ पर टिकाकर वह सुदीप से बोला, 'तो मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा—साहब या लाट साहब, तुम मुझे जो चाहो, कहो. आज से तुम यहां रहोगे. इस फ़्लैट की देखभाल, साफ़-सफ़ाई, बिजली-पानी-टेलीफ़ोन के बिलों को जमा कराके आना, आने वाली डाक को लेना, सम्हालकर रखना और उसके बारे में हर शाम टेलीफ़ोन करके मुझे बताना—यह तुम्हारी ड्यूटी होगी. खाने-पीने और रहने के अलावा जेब-ख़र्च के लिए कुछ रुपए हर महीने अलग से. बोलो.'

ऊपरवाला एकदम से इतना मेहरबान हो जायेगा, मैंने सोचा नहीं था. लेकिन तुरंत 'हां' नहीं कर पाया. पता नहीं कैसा आदमी है? क्या करता है?—इस जैसे कितने ही सवाल मेरे जेहन में घूमने लगे थे.

'सोचो मत. यहां रहते हुए अपने लिए दूसरे काम को तलाश करने की आज़ादी तुम्हें रहेगी. जब भी अच्छा काम मिल जाये, जाने से दो दिन पहले मुझे फ़ोन कर देना, मैं आ जाऊंगा.' मुझे सोचता देखकर साहब ने कहा — 'हां, एक बात का ध्यान रखना, अकेले रहते हुए इस कमरे पर कोई गड़बड़ काम मत करना. मेरी डाक को खोलकर मत देखना. तुम्हारी बहादुरी तो मैंने देख ली, ईमानदारी और सच्चाई देखना बाक़ी है.'

मैंने 'हां' कह दी. उसके अलावा कुछ और कह भी क्या सकता था. दिल्ली में पैर रखते ही रहने-खाने का जुगाड़ हो गया था, जेब-ख़र्च के लिए रुपए अलग से !

'और हां, मुझे जिस दिन भी तुम्हारी किसी चालाकी या बदमाशी का पता चलेगा, बहुत पीटूंगा, याद रखना.' मेरे 'हां' कहते ही साहब ने धमकी भरे अंदाज़ में कहा. उनके उस तेवर को देखकर मैं सहम-सा गया था. तब उन्होंने ज़ोर का ठहाका लगाकर मेरे कंधे पर हाथ रखा — 'डर मत, मज़ाक कर रहा

हूं. भले लोग कभी भी दूसरों की चिट्ठियां खोलकर नहीं पढ़ते; और मैं जानता हूं कि यह बात तू अच्छी तरह जानता है.'

मल्लू जैसे-जैसे अपनी दास्तान को आगे बढ़ा रहा था, उस औरत के बारे में जानने को उत्सुक सुदीप का धैर्य वैसे-वैसे जवाब देता जा रहा था. तनाव उसके चेहरे पर झलकने लगा था. लेकिन उस तनाव से अनजान मल्लू अपनी रौ में बोलता ही जा रहा था — 'एक-दो दिन साथ रहकर उन्होंने मुझे बिल वग़ैरा ज़मा करने वाली आसपास की सारी जगहें दिखा दीं. कुछ ही दूरी पर एक ढाबे पर साथ ले गये और सुबह-शाम मेरे खाने का महीने भर का भुगतान एडवांस में कर आये. फ़ोन का इस्तेमाल मैंने पहले-पहल वहीं किया था. शुरू-शुरू में तो साफ़-साफ़ सुनाई तक नहीं देता था कि उधरवाला बोल क्या रहा है! धीरे-धीरे आदत पड़ गयी.

वहां रहता रहा. पहले गर्मियां बीतीं, फिर बरसात. सर्दियां आ गयीं. 'साहब' हर महीने एक बार तो दिल्ली आते ही थे, किसी-किसी महीने दो-तीन बार भी. पिछली बार वे अपने उतारे हुए कुछ गर्म कपड़े मेरे लिए ले आये थे. फटे-पुराने नहीं, नये-जैसे ही थे. एक रज़ाई-गद्दा उन्होंने गांधी आश्रम से ख़रीदवा दिया था.

'औरत ... मल्लू काका 'उस औरत' के बारे में बताइए अब.' अंततः दांत किसकिसाकर सुदीप बेहद खीझे स्वर में लगभग चीख़ता-सा बोला.

'सुनिए—' हाथ के इशारे से उसे धीरज बरतने को कहता-सा मल्लू पूर्ववत बोलता रहा — 'एक रात की बात है. ढाबे से खाना खाकर लौट रहा था. घुप अंधेरा था. दूर-दूर तक कोई नहीं. यह सुनसानपन मेरे लिए नया नहीं था. वह इलाक़ा ही उन दिनों कुछ ऐसा था कि रात नौ बजे के बाद पूरी तरह अंधेरे में डूब जाता था. किसी-किसी फ़्लैट की खिड़की के परदे भीतर के प्रकाश की वजह से रोशनी में नहा रहे होते थे, बस. मस्त चाल से मैं अपने फ़्लैट की ओर बढ़ा चला जा रहा था कि आगे बिजली के एक खंभे के पास से सिसकियां-सी सुनायी पड़ीं. ध्यान से देखा—एक जवान लड़की उकड़ू बैठी सिसक रही थी.

'क्या हुआ?' उसके पास पहुंचकर पूछा — 'कौन हो? यहां अंधेरे में बैठी रो क्यों रही हो?'

'मज़दूरन हूं जी.' लड़की ने कहा — 'अपने साथवालों से भटक गयी हूं. सूझ नहीं रहा किधर जाऊं?'

'रहती कहां हो?' मैंने पूछा.

'नाम से जगह नहीं मालूम.' लड़की ने कहा, 'दिन के समय रास्ता पहचानकर जा सकती हूं.'

'तो क्या यहीं बैठकर गुज़ारोगी सारी रात?' मैंने पूछा.

'और क्या करूंगी?' रोते हुए वह बोली, 'ठंड और कुत्तों-भेड़ियों से बची रह गयी तो सुबह को घर चली जाऊंगी.'

'अगर मुझ पर भरोसा हो तो मेरे कमरे पर चलकर काट सकती हो यह रात.' मैं उससे बोला, 'सुबह चली जाना.'

यह प्रस्ताव सुनकर लड़की ने कृतज्ञताभरी नज़रों से देखा और उठकर खड़ी हो गयी. मैं उसे कमरे पर ले आया. एक ही रज़ाई-गद्दा था.'

बतायी जा रही कहानी में जवान लड़की की आमद और घर में एक ही रजाई-गद्दा होने की बात ने सुदीप के मन में दूसरा ही रोमांच पैदा कर दिया. वह आंखें फाड़कर आश्चर्यपूर्वक मल्लू की ओर देखने लगा.

उसकी इस मुद्रा के पीछे छिपी उत्कट जिज्ञासा को भांपकर मल्लू को लगा कि वह पुनः उसे टोकने वाला है. इसलिए आधिकारिक कथावाचक के अंदाज़ में उसे चुप रहने का आदेश देता-सा बोला — 'सुनते रहना बाबू, टोकना मत बीच में. लड़की को रज़ाई-गद्दे पर सो जाने को कहकर मैं लॉबी में पड़े सोफ़े पर जा लेटा — ज़्यादा से ज़्यादा एक घंटा गुज़रा होगा कि कॉल-बेल ने तराना छेड़ दिया. आंख खुल गयी.

'कौन?' मैंने पूछा.

'दरवाज़ा खोलो.' बाहर से मर्दाना आवाज़ आयी.

देखने के लिए बत्ती ऑन करके दरवाज़ा खोला. तुरंत ही दिल्ली पुलिस के दो सिपाही अंदर आ घुसे. चारों ओर देखते हुए बोले —'लड़की किधर है?'

'कौन लड़की?' मैंने पूछा.

'वही, जिसे तू गुलछर्रे उड़ाने के लिए किराए पर लाया है.' उनमें से एक ने कहा.

'अरे बाप रे!' यह बात सुनकर सुदीप एकाएक बोल उठा — 'फिर क्या हुआ?'

'उसकी यह बात सुनते ही मेरी तो घिग्घी बंध गयी.' मल्लू बोला — 'गुल...गुल...गुलछर्रे उड़ाने के लिए! कि... कि... किराये पर!' मैं हकलाता हुआ बोला.

'हां जी, गुलछर्रे उड़ाने के लिए किराए पर ... किधर छिपा रखी है?' दूसरे ने पूछा.

'छिपा नहीं, सुला रखी है', मैं ताकत जुटाकर बोला, 'उ... उस कमरे में है.'

यह सुनते ही वे दोनों उस कमरे में जा घुसे. लड़की रज़ाई के भीतर सुख की नींद सोयी थी. बेरहमी के साथ उन्होंने

एक झटके में उसके ऊपर से रज़ाई को हटाकर दूसरी ओर फेंक दिया. वह हड़बड़ाकर उठ बैठी. पुलिस वालों को देखते ही रुआंसी आवाज़ में बोली — 'साहब, मुझे मेरे घर पहुंचा दो.'

'तुझे तेरे घर पहुंचाने के लिए ही हम आये हैं मेरी जान.' एक बोला.

दूसरे ने एकाएक अपने हाथ के डंडे से मेरी टांगों को कूटना शुरू कर दिया, 'लुगाईबाजी का अड्डा चलाता है भौंस... के!'

'अरे, आप पहले पूरी बात तो सुन लो.' उसके डंडों की मार से बचने की बेकार कोशिश करता मैं चिल्लाया, 'इस लड़की से ही पूछ लो सच्चाई क्या है?'

'सच्चाई ससुराल में जाके बताइयो हरामख़ोर.' पहला बोला — 'चल, थाने चल.'

थाने चलने का नाम सुनते ही मेरे पैरों के नीचे से ज़मीन ख़िसक गयी.

'थाने? थाने क्यों?' मैंने पूछा. लड़की इस बीच सहमी-सी एक ओर खड़ी थी. पुलिस के सिपाहियों ने उससे कुछ नहीं पूछा. वे हम दोनों को पुलिस चौकी ले गये. वहां पर एक ए. एस. आई. भी बैठा था. हमें देखते ही बोला — 'बंद कर दो दोनों को. एक बजे आकर साहब देखेंगे.

'साहब, आप मेरी बात तो सुनिए साहब.' हवालात में बंद करने की उसकी बात को सुनकर मैं उसके पास जाकर गिड़गिड़ाया, 'आप इस लड़की से पूछिए न यह आपको असलियत बता देगी.'

'इंस्पेक्टर साहब जब डंडा घुसेड़ेंगे चूतड़ों में तो तू ख़ुद ही बयान करने लगेगा सारी असलियत,' ए. एस. आई. बोला — 'इससे कुछ पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी.'

मैंने सुन रखा था कि रात के समय पुलिसवाले बंदियों को उधेड़ने का अच्छा अभ्यास करते हैं. पीट-पीटकर इस हालत में पहुंचा देते हैं कि जैसा बयान वे चाहें आदमी वैसा ही लिखने-बोलने लगता है. यह सोचकर रूह कांप गयी. 'साहब' क्या सोचेंगे, मैं सोचने लगा—यही कि सीधा-सादा लगने वाला यह मल्लू रात में लड़कियां कमरे पर लाता था! हे राम! अच्छी-ख़ासी चल रही ज़िंदगी में यह कौन-सा पेंच डाल दिया प्रभु!! डर और चिंता के कारण शरीर पसीने से तर-ब-तर हो गया. एकाएक ख़याल आया कि जो भी हो, इस सारी घटना की जानकारी साहब को दे देनी चाहिए.

'साहब, मुझे मेरे मकान मालिक को फ़ोन करने दो साहब.' मैं ए. एस. आई. से गिड़गिड़ाया.

यह सुनते ही ए. एस. आई. ने खड़े होकर एक झन्नाटेदार झापड़ मेरी कनपटी पर दे मारा और सिपाही पर चिल्लाया — 'ले जाके बंद क्यों नहीं करता है इस लुगाईबाज़ को हवालात में?'

सिपाही तुरंत घसीटता-सा पुलिस चौकी के अंदर ही एक कोठरी में ले चला. पुलिस चौकी में लाया जाने और बेबात पीटा जाने का मेरे साथ वह पहला ही वाक़या था इसलिए ए. एस. आई. के झापड़ से बुरी तरह सहम गया. ज़्यादा पिटाई से बचने के लिए भी सिपाही द्वारा अपने-आप को घसीट लिया जाने दिया. उस कोठरी में उस रात मैं अकेला ही था. दहशत के कारण नींद आंखों से कोसों दूर हो चुकी थी.

लड़की को इन्होंने औरतोंवाली कोठरी में बंद किया होगा—बैठा-बैठा सोचता रहा—वह बेचारी रात के अंधेरे से बची तो इन सालों के चंगुल में फंस गयी. पता नहीं क्या सुलूक करेंगे उसके साथ? क्या सोचेंगे उसके मां-बाप यह सुनकर कि उनकी बेटी किसी अनजान आदमी के साथ गुलछर्रे उड़ा रही थी, धंधा कर रही थी देह का. वे अपनी बेटी की बात पर यक़ीन करेंगे या इन कुत्तों की बात पर —सोचते-सोचते पेट में ऐंठन-सी महसूस होने लगी. कुछ ही समय में वह बर्दाश्त से बाहर हो गयी.

सुदीप को ग़ुस्सा-सा आ रहा था कि मल्लू बात को बिना मतलब लंबी क्यों खींच रहा है. तेज़ी से बताता क्यों नहीं कि पुलिस चौकी में उस लड़की के साथ हुआ क्या? वह सोफ़े पर कभी दायीं करवट बैठता तो कभी बायीं. उसे ऐसा करते देख मल्लू यही समझ रहा था कि सुदीप बाबू के सोने का समय हो चुका है लेकिन उसकी आपबीती सुनने में उन्हें मज़ा आ रहा है इसलिए करवटें बदल-बदलकर वे नींद को टालने का प्रयास कर रहे हैं. उत्साहित-सा हो उसने आगे सुनाना शुरू किया —

मैंने कोठरी के बाहर कुर्सी पर ऊंघ रहे सिपाही से कहा—'साहब, मुझे प्रेशर बन रहा है साहब.'

'बैठा रह चुपचाप', सिपाही बोला, 'ज़्यादा चिल्लाया तो ये डंडा ठूंस दूंगा हलक में.'

अजीब बात थी. ए. एस. आई. हो या सिपाही, पुलिस का हर आदमी डंडा ठूंसने की ही बात करता है! — मैं सोचने लगा. लेकिन पेट-दर्द काफ़ी बढ़ गया था इसलिए हिम्मत करके कहा, 'चिल्ला नहीं रहा, विनती कर रहा हूं साहब. रुका नहीं जा रहा.' यों कहता हुआ मैं आधा खड़ा हो गया और दोनों हाथों से चूतड़ों को दबाने-सा लगा. भीतर का दबाव असह्य होता जा रहा था. रोकते-रोकते थोड़ी हवा भी खारिज़ हो गयी.

'चल-चल, यहां से बायीं ओर जाके सामने ही है.' निकली हुई हवा की बदबू से बदहाल सिपाही अपनी नाक के आसपास की हवा को दोनों हाथों से हटाता बुरा-सा मुंह बनाकर बोला — 'जल्दी आइयो निबटके.'

चल दिया. बायीं ओर मुड़ते ही निग़ाह अचानक दायीं ओर की दीवार के एक झरोखे में पड़ गयी जो दूसरी ओर गैलरी में खुल रहा था. वहां उसी लड़की को, जिसे अपने कमरे पर ले गया था और जिसके साथ पुलिस के सिपाही पकड़कर चौकी में लाये थे, शान के साथ एक कुर्सी पर बैठे देखा. ए. एस. आई. उसके बराबर वाली कुर्सी पर बैठा था.

'पांच हज़ार से कम की मुर्गी नहीं है बलराज.' लड़की उससे कह रही थी, 'इसका मालिक नाक रगड़कर यह रक़म देगा.'

'अगर नहीं माना?' ए. एस. आई. ने शंका जतायी, 'कहने लगा, डाल दो साले को जेल में, तब?'

'कैसे कह देगा?' लड़की ने कहा, 'केस हम इस पर नहीं, मकान मालिक पर बनायेंगे. शरीफ़ों की बस्ती में चकलाघर चलाने का. इसे ग्राहक दिखायेंगे.'

अरे बाप रे!—उनकी बातचीत सुनते ही मेरा मल एकदम से ऊपर को चढ़ गया — यह तो साली नटवरलाल की नानी है और ये सब के सब मामे! इस कुनबे की गिरफ़्त से अगर निकलना है मल्लू तो हिम्मत और अक्ल से काम लेना होगा. मैंने चौकस नज़रों से इधर-उधर देखा. संडास की ओर जाने की बजाय दबे पांव वापस लौटा. देखा कि कुर्सी पर बैठा सिपाही गरदन लटकाये खर्राटे ले रहा था. सांस रोककर उसके सामने से होता हुआ बाहर की ओर निकल गया. फिर किसी को भी आसपास न पाकर बेतहाशा दौड़ लगा दी.'

'बड़ा जिगरा दिखाया आपने!' प्रशंसा भाव से सांस लेकर सुदीप बोला, 'फिर पकड़ में नहीं आये पुलिस वालों की?'

'आ जाता अगर कमरे पर छूट गये अपने सामान और रूपयों-पैसों का लालच करता.' मल्लू गरदन तानकर सुनाता हुआ बोला — 'लौटकर वसंत कुंज नहीं गया. आंख-कान खोलकर दौड़े जा रहा था, किधर? नहीं मालूम था. बस यही सोच रखा था कि वसंत कुंज की सीमा से बहुत दूर निकल जाना है. चोट खाये सांप की तरह पुलिस वाले साले खोजेंगे ज़रूर. दिन निकलने तक कभी भागता, कभी तेज़ चलता रहा. बीच-बीच में पुलिस जिप्सियां भी दिखायी दीं. वहां ऐसे दिखाता जैसे सुबह की सैर के लिए निकला होऊं. इत्तफाक़ से किसी पुलिसवाले ने कुछ पूछा भी नहीं.'

उजाला हो जाने तक एक मंदिर के निकट जा पहुंचा. थक भी गया था इसलिए उसके बाहर ही बैठ गया और भक्तजनों से भीख़ मांगने लगा. जैसे ही दसेक रुपये इकट्ठे हुए, उठ खड़ा हुआ. पूछता-पाछता उस इलाक़े के तारघर में गया और वहां से 'साहब' का नंबर मिलाया—'हैलो! साहब, मैं बोल रहा हूं, मल्लू. साहब, मुझे अचानक आपका कमरा छोड़कर भागना पड़ गया है. कारण? कारण फ़ोन पर मत पूछिए, कभी मिलेंगे तो आमने-सामने ही बता पाऊंगा. आपके कमरे की चाबियां मेरे पास ही हैं लेकिन दे नहीं पाऊंगा. आप ताला तुड़वाकर दूसरा लगवा लेना. बस इतना ही कहता हूं कि मेरे बारे में मुझ पर ही यक़ीन करना, किसी और की बातों पर मत जाना. अब रखता हूं साहब. नमस्ते.

उसके बाद पता नहीं कहां-कहां ठोकरें खायीं. कभी रकाबगंज तो कभी शीशगंज गुरुद्वारे का लंगर छका, गौरीशंकर मंदिर के बाहर दानदाताओं की रोटियां और कढ़ी-चावल खाकर दिन गुज़ारे, कनाट प्लेस और जमना बाज़ार के हनुमान मंदिर के बाहर स्मैकियों के बीच सोया. गारा-मज़दूरी की, खारी बावली के दुकानदारों का माल पीठ पर ढोया और वहीं पर एक दिन आपसे मुलाकात हो गयी.'

इतना कहकर मल्लू चुप हो गया. कमरे में दो मिनट सन्नाटा-सा छाया रहा जैसे कि सांय-सांय करता भयंकर तूफ़ान अभी-अभी वहां से गुजरा हो.

'तो यह था मामला...!' गुज़र चुके तूफ़ान की धूल को बदन से झाड़ने की कोशिश करते-से सुदीप ने सोफ़े से खड़े होकर एकाएक कहा, 'यह औरत नये बखेड़ों के साथ इस कमरे पर धमक सकती है काका. अपने पहचान लिये जाने को नया मोड़ देकर हम-दोनों को फंसा डालने का कुचक्र रच सकती है.' फिर किंचित हताश स्वर में बोला, 'मुसीबत यह है कि इसके खिलाफ़ हमें जाना तो पुलिस की ही शरण में पड़ेगा!'

'पुलिस के खिलाफ़... पुलिस में!' मल्लू के मुंह से निकला.

'जी, पुलिस के खिलाफ़ पुलिस में.' सुदीप ने कहा — 'कोई तो मिलेगा, जो उस कीचड़ में कमल-सा खड़ा रहता हो, सिर उठाये. हां, गवाही तुम्हें भी देनी होगी.'

'हमारी तरफ़ से आप बेफिक्र रहें बाबू,' मल्लू विश्वासभरे लहज़े में बोला — 'मल्लू लफड़ों से बचता ज़रूर है, डरता किसी से नहीं है.'

एम-७०, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२.
मो : ९९६८०९४४३१
ई-मेल : 2611ableram@gmail.com

कहानी

उसका सच

✍ मंजुश्री

आज अचानक न जाने क्या हुआ कि सभी सकते में थे. रोज़ सुबह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर घर को सिर पर उठा लेने वाली बंतो मौसी आंगन में बिछे तख़्त पर औंधी पड़ी सिसक रही थीं और सदा हंसती मुस्कुराती रहने वाली सुमन भाभी ग़ुस्से से तमतमाती बंतो मौसी को खरी-खोटी सुना रही थीं. उनके हाथ में कपड़े धोनेवाली मुगरी थी जो उन्होंने सुधीर के हाथ से छीन ली थी. और ऊपर की दोनों मंज़िलों में रहनेवाले सब लोग आंगन में लगी लोहे की जाली से नीचे मकान मालकिन बंतो मौसी के घर का यह नया तमाशा अलसाई आंखों से देख रहे थे. हम सब को झांकते देखकर अकबकाकर सुधीर बाथरूम में घुस गया.

शहर के गड़रिया मोहाल के पुराने से इस तीन मंज़िले मकान में नीचे मकान मालकिन बंतो मौसी, उनका बड़ा बेटा सुधीर, उसकी पत्नी सुमन और छोटा बेटा राकेश रहते थे. सुमन सुधीर की दूसरी पत्नी थी. बीच के हिस्से में हमारा छः लोगों का परिवार रहता था. हम चार बहनें और मम्मी पापा. पापा अधिकतर बाहर टूर पर रहते थे. मैं सबसे बड़ी थी. ऊपर की मंज़िल में दो लड़के किराये पर रहते थे. पैंतीस वर्षीय गोपाल लाल इमली मिल में नौकरी करता था और दूसरा विनोद डी. ए. वी. कॉलेज में बी. कॉम. कर रहा था. नीचे के मकान में बीच में आंगन और उसके चारों ओर कमरे और किचन, बाथरूम बने थे. उस डिब्बे–से घर के बाहर के कमरे में थोड़ी-बहुत रोशनी रहती थी पर अंदर के कमरों और बरामदे में हमेशा अंधेरा-सा ही रहता था. बरामदा धुएं से काला हो गया था. फिर बरसों से मकान की पुताई भी नहीं हुई थी. सुबह उठते ही मुहल्ले के सभी लोग घर के बाहर की सीढ़ियों पर अंगीठी सुलगा कर रख देते थे जिससे घरों में धुआं न आये, पर धुआं आ ही जाता था. किचन और बाथरूम तो हमेशा गीले-से ही रहते थे. आंगन के एक कोने में पानी की एक हौदिया थी जहां सुमन भाभी रोज़ बर्तन मांजती दिखती थीं.

बाहर की तरफ़ से ऊपर जानेवाली सीढ़ियों के नीचे और गैलरी में घर भर का टूटा-फूटा, फ़ालतू सामान, साइकिलें, बाल्टियां, झाड़ू रखी रहती थीं. आंगन में लगी लोहे की जाली के ऊपर से हम लोग एक कमरे से दूसरे कमरे में आते-जाते थे. पहले हम देखते कि आंगन में कोई बैठा तो नहीं है. हमारे ऊपर वाले हिस्से में भी जाली लगी थी. दड़बे जैसे मकान थे पर उस मुहल्ले में सभी मकान लगभग ऐसे ही थे. नीचे के हिस्सों में रहनेवाले ज़्यादातर लोगों ने घर के आगे सड़क पर भी जगह को घेर कर पक्की दुकानें बना ली थीं और सुबह से ही सड़क पर कुर्सियां डालकर ऐसे ठसक्के से बैठ जाते थे जैसे सड़क उनके बाप की हो. दस-ग्यारह बजे सुबह से रात के ग्यारह बजे तक सड़क पर इतनी भीड़ हो जाती कि चलना मुश्किल हो जाता था.

मैं उस समय दसवीं कक्षा में पढ़ती थी. मेरी बाक़ी तीनों बहनें छोटी कक्षाओं में थीं. सुमन भाभी से मेरी अच्छी दोस्ती थी. हम दोनों अक्सर उनके कमरे में बातें करतीं. वे मुझे अच्छी लगती थीं. फिर और कोई था भी नहीं बातें करने के लिए. मां घर-गृहस्थी में व्यस्त रहतीं और पापा घर पर रहते ही कम थे. वे जब घर पर होते भी तो हम उनके सामने ज़रा कम ही आते. हम सब अपने में व्यस्त रहते.

कभी-कभी मैं और सुमन भाभी छत पर कपड़े फैलाने जातीं तो काफ़ी देर छत पर एक कोने में बैठकर गप्पें मारते. दोनों लड़के गोपाल और विनोद जल्दी ही घर से निकल जाते थे. छुट्टीवाले दिन वे दोनों भी घर पर होते और सुधीर भी, तो हम छत पर नहीं जाते थे. बंतो मौसी की घाघ आंखें सुमन भाभी पर ही लगी रहतीं. सुधीर मुझे कभी भी अच्छा नहीं लगा. जनखा-सा लगता था, हमेशा पान खाता रहता और मां की हां में हां मिलाता. पंजाब नेशनल बैंक में काम करता था. मैंने कभी उसे सुमन भाभी को साथ लेकर बाहर घूमने जाते नहीं देखा था. लगभग दो साल होने आये थे उनकी शादी को. शुरू में सुमन भाभी काफ़ी ख़ुश नज़र आती थीं पर फिर न जाने क्या हुआ उनका चेहरा कुम्हलाने लगा. शादी के पांच छः महीने बाद से ही बंतो मौसी का बड़बड़ाना भी शुरू हो गया था. हर बात पर चिल्लातीं.

''मेरी तो क़िस्मत ही खोटी है... लगता है पोते का मुंह देखे बिना ही चली जाऊंगी... करम जली... जल्दी जल्दी हाथ चला...''

वैसे मौसी का चीख़ना-चिल्लाना कुछ नया नहीं था. रोज़ सुबह से सुमन के हर काम में मीन-मेख निकाले बिना बंतो मौसी का दिन शुरू नहीं होता था. दुबली पतली बंतो मौसी के गले में बड़ा-सा घोंघा था. हम दोनों हंसतीं... ''चिल्ला-चिल्ला कर गला फूल गया है.''

''दिखता नहीं... सुधीर को देर हो रही है. बड़ी फूलकुमारी है, न काम की न काज की. एक बच्चा तक तो जन नहीं सकती...'' और बंतो मौसी ज़ोर से चाय के बर्तन मोरी पर पटक देतीं.

''जब देखो मुंह लटकाये घूमती रहती है, मेरा ही घर मिला था.... दोनों ही निपूती निकलीं.'' कभी-कभी दो चार हाथ भी जड़ देतीं. राकेश कभी-कभी बीच बचाव करता भी, पर ज़्यादा कुछ बोल न पाता और सुधीर तो बस मां का पिछलग्गू था. कुछ न बोलता बस इधर से उधर डोलता रहता. सुमन से दूर-दूर रहता. शुरू-शुरू में जब कभी रात में सुमन सुधीर से कुछ बात करना चाहती तो वह दूसरी ओर करवट लेकर लेट जाता बिना कुछ जवाब दिये. सुमन के पास आने से सुधीर हमेशा कतराता रहता था. सुमन को बहुत आश्चर्य होता. शुरुआत में एक-आध बार उसने अपनी तरफ़ से कुछ कोशिश भी की. उसे लगता शायद सुधीर उससे नाराज़ है. फिर एक दिन ख़ूब तू-तू, मैं-मैं हो ही गयी और तब सुमन ने जाना कि सुधीर कभी उसे किसी प्रकार का कोई सुख दे ही नहीं सकता. सुमन आसमान से गिरी, पर क्या करती? किससे कहती? उसे बहुत ग़ुस्सा आया कि बंतो मौसी ने सब जानते बूझते सुधीर की एक नहीं दो-दो शादियां करवायीं. शायद अपने लड़के की इस शारीरिक कमी को वे बर्दाश्त नहीं कर सकती थीं. बहुओं में कमी बताकर ....

पहली पत्नी शांति की तरह उस पर भी बच्चे पैदा न कर पाने का दोष मढ़ती रहतीं. औरत होकर बंतो मौसी ने औरत को ठगा. समझ में नहीं आता क्या करे, धीरे-धीरे मोहल्ले की औरतों की बातें भी कान में पड़ने लगीं. लोग कानाफूसी करने से बाज नहीं आते.

शांति का जीना बंतो मौसी ने कैसे हराम कर रखा था. शादी के तीन साल बाद भी कोई बच्चा न होने का दोष उस पर लगा-लगाकर रोज़ गाली गलौज, मार-पीट करती थीं. कभी कभी तो दो-दो दिन कमरे में बिना खाना पीना दिये शांति को बंद कर देती थीं बंतो मौसी. उस बेचारी सीधी-सादी लड़की ने कभी मुंह नहीं खोला, और असलियत कभी ढंग से सामने नहीं आयी, पर औरतें भांप गयीं और फिर अचानक एक दिन खाना बनाते समय शांति के कपड़ों में आग लग गयी. बंतो मौसी ने ख़ूब हो-हल्ला किया. ''.. बचाओ.... बचाओ... मेरी बहू को...अरे.. आग लग गयी...'' पर जब तक लोग पहुंचते, शांति पूरी तरह से जल गयी थी. बच नहीं सकी. अस्पताल पहुंचते-पहुंचते उसने दम तोड़ दिया. असल में बंतो मौसी ने मदद मांगने में जान बूझकर आधा घंटा देर कर दी थी. लोग कानाफूसी करने लगे कि बंतो मौसी ने ही शांति को जलाकर मार दिया. मुझे तो तब इतनी अक़्ल नहीं थी. पर अक्सर मां कहतीं — ''अच्छा हुआ... शांति इस नरक से तो मुक्ति पा गयी.'' और शांति की मृत्यु के छः महीने बाद ही सुधीर की शादी सुमन से हो गयी. शांति की मौत के बारे में सुमन के घरवालों ने भी उसे सब सही-सही नहीं बताया था. लड़का बैंक में काम करता है छोटा परिवार है. सुखी

मंजुश्री

६ जनवरी १९४९, उरई (उ. प्र.),
एम. ए. (अर्थशास्त्र व हिंदी), बी. एड.

प्रकाशन : *सारिका, सबरंग (मुंबई) व कुछ अन्य पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित. कथाबिंब, ऋतुचक्र, पूर्वा, आघात, अपूर्वा, अर्पण, दैनिक कश्मीर टाइम्स आदि में कविताएं प्रकाशित. आकाशवाणी से भी कविताओं का प्रसारण. विभिन्न पत्रिकाओं में लेख, साक्षात्कार व लघुकथाएं भी प्रकाशित व पुरस्कृत.*

संप्रति : *'कथाबिंब' का संपादन.*

रहेगी. यह सोचकर सब ख़ुश थे. पहली पत्नी की जल्दी मृत्यु हो गयी, कोई बच्चा नहीं है... बस. बंतो मौसी सुमन को ऐसे घर से लायी थीं जहां लड़कियों की भरमार थी. इसीलिए उस पर रौब गांठती रहतीं.

सुमन लखनऊ की रहनेवाली थी. थोड़ी पढ़ी-लिखी थी और कभी-कभी पलटकर कुछ बोल भी देती थी जो बंतो मौसी को बिल्कुल न भाता. देखते-देखते लगभग दो साल हो गये पर सुमन को भी कोई बच्चा न हुआ और बंतो मौसी की आवाज़ धीरे-धीरे बढ़ने लगी.

इधर पिछले तीन चार महीनों से शाम को दफ़्तर से लौटते समय सुधीर का दोस्त रंजन उसके साथ अक्सर घर आने-जाने लगा. वह माल रोड पर किराये के मकान में दो तीन लोगों के साथ रहता था. अकेला था, पिछले साल ही अलीगढ़ से ट्रांसफर होकर कानपुर आया था. हंसमुख था. थोड़ी देर बैठता... चाय पानी पीता और चला जाता. कभी-कभी बंतो मौसी खाना खाने के लिए भी रोक लेती थीं. सुमन का उससे कभी भी सामना नहीं हुआ. वह सुधीर के साथ बाहर कमरे में ही बैठता. सुधीर चाय नाश्ता ले जाता. कमरे से बातचीत करने और हंसने की आवाज़ें आती रहतीं. आंगन के तख़्त पर सब्ज़ी काटती सुमन को धीरे-धीरे ये आवाज़ें अच्छी लगने लगीं. घर का माहौल थोड़े समय के लिए अच्छा हो जाता. उसकी आवाज़ से अंदाज़ा लगाती कैसा दिखता होगा, सुधीर का दोस्त? इतना खुलकर हंसनेवाला... मन ही मन उसकी तस्वीर बनाती. अब धीरे-धीरे वह उन शामों का इंतज़ार करने लगी. और जब कभी रंजन नहीं आता तो उसे अजीब सी बेचैनी होने लगती. काम में मन नहीं लगता था. उसके कान बाहर कमरे की ओर ही लगे रहते.

अब सुधीर का उसके पास न आना उसे बिल्कुल न खलता बल्कि अच्छा ही लगता. वह अपने ख़्यालों में डूबी काम करती रहती. बंतो मौसी का चीख़ना-चिल्लाना जैसे उसे सुनाई ही न देता हो. अनजाने खिंचाव की कसक इतनी मीठी हो सकती है उसने पहले ऐसा कभी अनुभव ही नहीं किया था. कब दिन होता, कब रात पता ही न चलता, मानों पंख लग गये हों. बस हवा में उड़ती रहती और मन ही मन कुछ गुनती-बुनती रहती. लगभग पांच महीने ऐसे ही गुज़र गये.

एक दिन चाय की ट्रे सुधीर को पकड़ाते हुए उसके हाथ से गिर गयी और ट्रे गिरने की आवाज़ के साथ ही सुधीर का झन्नाटेदार चांटा उसके गाल पर पड़ा साथ ही बंतो मौसी भी चिल्ला पड़ीं. इतनी आवाज़ें सुनकर तभी झटके से रंजन भी आंगन में आ गया. सुमन का लाल चेहरा और आंसुओं से भरी आंखों को क्षणभर वह देखता ही रह गया और तेज़ी से घर के बाहर निकल गया. उस दिन के बाद वह लगभग दो महीने तक सुधीर के घर नहीं आया. सुमन हर रोज़ उसका इंतज़ार करती. उसकी बेचैनी इतनी बढ़ने लगी कि अब किसी काम में उसका मन न लगता. घर में बस यूं ही इधर-उधर डोलती. समय काटे न कटता, पर रंजन नहीं आया.

फिर अचानक एक दिन सुधीर जबरदस्ती रंजन को घर ले आया, साथ में दो दोस्त और भी थे. छोटी–सी पार्टी रखी थी सुधीर ने रंजन के लिए क्योंकि रंजन को बैंक की तरफ़ से क्वार्टर मिल गया था. वह दो चार दिनों में वहां शिफ़्ट होनेवाला था.

रंजन की आवाज़ सुनते ही सुमन के मन के जुगनू जाग उठे. चारों तरफ़ उसके होने का अहसास... ख़ुशबू ही ख़ुशबू ...मीठी–सी जलतरंग बजने लगी मन में, दिल की धड़कन काबू में न थी. जुट गयी चाय नाश्ता बनाने में .. पर मन कहीं और था. आज बंतो मौसी की जल्दी-जल्दी हाथ चलाने की हिदायतें बुरी नहीं लग रही थीं. अंगीठी के सामने बैठी सुमन कहीं और खोयी हुई थी.

''एक गिलास पानी मिलेगा...!''

''हां, हुंअ..'' चौंक कर सिर उठाया तो रंजन सामने खड़ा था. अंगीठी की आंच से सुमन का लाल हुआ चेहरा और सुर्ख हो आया. ''ज़रूर... ज़रूर..'' हड़बड़ा कर उठी और तुरंत घड़े से एक गिलास पानी निकालकर थमाया... लगा रंजन कहीं दिल की बढ़ी धड़कन को सुन न ले.

''कैसी हैं..?''

''ठीक हूं...'' अपने आप पर काबू पाने की कोशिश करते हुए धीरे से बोली.

तब तक अंदर के कमरे से बंतो मौसी बाहर निकल आयीं.

''अरे बेटा... आवाज़ दे दी होती... मैं ले आती पानी.. नहीं तो राकेश को आवाज़ दे देता...''

''कोई बात नहीं... मैं ही चला आया.'' कहकर रंजन वापस कमरे में चला गया और बंतो मौसी ने टेढ़ी नज़र से सुमन की ओर देखा.

फिर एक हफ़्ते तक घर में सन्नाटा छाया रहा. सुधीर की बातों से पता चला रंजन अचानक अलीगढ़ चला गया है, उसकी मां की तबियत ख़राब थी, घर से तार आया था. सुमन उदास हो गयी. बंतो मौसी की चिकचिक उसके कानों में घुसती ही नहीं थी. सुधीर ज़रूर कुछ चौकन्ना-सा हो गया था, सुमन के इस बदलते रवैये से. अब सुमन उससे कुछ भी नहीं कहती, न ही उसकी बातों का बुरा मानती. सब कुछ यंत्रचालित-सा होता रहता. मानो सब कहीं थम गया हो, ठिठका-सा...

दस पंद्रह दिन बाद फिर रंजन आया पर मात्र दस मिनट के लिए. बिना चाय नाश्ता किये बाहर से ही चला गया. उसका आना ठंडे हवा के झोंके-सा सुमन को भीतर तक सहला गया. यह क्या हो रहा है उसे.... उसका मन अब उसके काबू में नहीं था. घर में बाक़ी लोगों का होना न होना अब कोई मायने नहीं रखता था.

फिर एक दिन सुबह-सुबह बंतो मौसी बाथरूम में फिसल गयीं और पैर की हड्डी टूट गयी. सुधीर और राकेश घर पर ही थे तुरंत उन्हें अस्पताल ले जाया गया. एक्सरे वग़ैरह निकलवाने के बाद पता चला कि ऑपरेशन करना पड़ेगा. दो जगह से हड्डी टूट गयी है और पंद्रह बीस दिन अस्पताल में रहना पड़ेगा. दोनों भाई सुबह से अस्पताल में ही थे.

सुमन घर पर अकेली थी कि अचानक रंजन आ गया. उसे देखते ही सुमन सकते में आ गयी.

''मौसी... तो ... अस्पताल में हैं.. और सुधीर, राकेश भी... ''

''मालूम है... सुधीर से मेरी बात हुई है... मैं तुमसे मिलने आया हूं...''

''हुंअ...'' आश्चर्य से देखा सुमन ने.

हालांकि मन ही मन वह हमेशा से ऐसा चाहती थी. पर अब जब वह सामने खड़ा था तो उसके हाथ-पांव ढीले पड़ने लगे. पांव जैसे जम गये हों. खड़े होने की कोशिश की तो लड़खड़ा गयी.

''सुमन...'' उसे संभालते हुए रंजन धीरे से बोला.

''हां... बहुत दिनों से तुमसे बात करना चाह रहा था.''

''मुझसे..., क्या बात...?''

''उस दिन का आंसुओं से भीगा तुम्हारा लाल चेहरा मेरी आंखों के सामने घूमता ही रहता है.''

सुमन चुपचाप सुन रही थी... कहना चाह रही थी कि नहीं यह सब ग़लत है, ऐसा कुछ कहना-सुनना सही नहीं है. पर शब्द जैसे गले में अटक गये हों.

रंजन कह रहा था, ''सोते-जागते बस तुम्हारी आंखें मेरा पीछा करती रहती हैं. कितनी बार मैंने तुम्हारे ख़्याल को झटकने की कोशिश की. पर जितना कोशिश करता हूं उतना ही परेशान हुआ हूं...''

सुमन की भौंचक आंखों में तैरते हज़ारों अनुत्तरित प्रश्नों को नज़रअंदाज़ कर वह बोलता जा रहा था...

''जानती हो इतने दिन क्यों नहीं आया... भाग जाना चाहता हूं कहीं दूर... पर तुम जब यहां हो तो ... मैं जा नहीं पाऊंगा कहीं... हालांकि जानता हूं तुम सुधीर की पत्नी हो.. पर..''

सुमन वहां होकर भी मानों वहां नहीं थी, सोच रही थी... क्या ऐसा संभव है... कि दो व्यक्ति जो पहले कभी न मिले हों, एक ही बात सोचते हों ... मन में बवंडर उठा हुआ था, जिसके भंवर जाल में वह गोल-गोल घूमती उसकी अतल गहराई में डूबी जा रही थी. एक थाहहीन गहराई ...पर वह उस भंवर से निकलना भी नहीं चाह रही थी डूब जाना चाहती थी उसमें.

रंजन की आवाज़ उसे बहुत दूर से आती हुई लग रही थी — ''सुमन... सुमन... सुन रही हो क्या?...'' अचानक रंजन ने मानो हाथ बढ़ाकर उसे उस भंवर से ऊपर खींच लिया. उसके गाल को हल्के से छूते हुए बोला.

रंजन का हल्का सा स्पर्श उसे जगा गया. उसका शरीर कितना हल्का लग रहा था. हवा में उड़ने लगी, अचानक रुई के फाहे की तरह ... रंजन ने उसके भीतर की तपिश को हवा दे दी थी. कितना सुंदर एहसास. सब कुछ जैसे ठहर गया हो.

रंजन उसके बहुत क़रीब था. कुछ देर वह उसके चेहरे को देखता रहा. फिर अपने आपको संभालते हुए बोला, ''मुझे चलना चाहिए. सुधीर या राकेश आते ही होंगे...'' यह कहकर वह बाहर निकल गया.

रंजन के जाने के बाद बहुत देर तक बिस्तर पर पड़ी सुमन उस एहसास को जीती रही. शाम काफ़ी घिर आयी थी. सुधीर घर वापस आ गया था, मां के लिए रात का खाना ले जाने के लिए. बाद में राकेश घर आ जायेगा और सुधीर मां के पास अस्पताल में रहेगा यह तय हो गया था.

सुमन ने अपने आपको संयत किया और चाय बनाने के लिए उठ गयी. जल्दी-जल्दी हाथ चला रही थी. बर्तनों की खटपट में मन को शांत करने की कोशिश कर रही थी.

सुधीर खाना लेकर अस्पताल चला गया. सुमन ख़ुश थी सुधीर ने ध्यान नहीं दिया था. पर दूसरे दिन खाना बनाते समय सुमन को धीमी आवाज़ में गुनगुनाते सुना तो कान खड़े हो गये.

बोला, ''कोई आया था क्या?''

''क्या....कौन आयेगा...?''

''तो फिर आज गुनगुना क्यों रही हो... मां के पैर की हड्डी टूट गयी. अस्पताल में हैं....इसलिए क्या...! बड़ी ख़ुश नज़र आ रही हो! मां की चिकचिक से छुट्टी मिली...?'' तमकते हुए बोला सुधीर.

''ऐसा ही समझ लो...'' धीरे से बोली सुमन.

''क्या...ऽऽ.... बड़ी ज़ुबान चलने लगी है... दूं क्या दो हाथ?'' और सुधीर ने हाथ उठाया. सुमन ने तुरंत उसका हाथ

पकड़कर ज़ोर से झटक दिया. ऐसा कभी न हुआ था... यह क्या हुआ...!! सकपका गया सुधीर. अचकचा कर बड़ी देर तक सुमन को देखता रहा फिर बाथरूम में घुस गया. थोड़ी देर बाद हाथ मुंह धोकर बाहर आया और खाना लेकर अस्पताल चला गया. कुछ देर बाद राकेश वापस लौटा. राकेश को सुमन ने खाना परोसा. अस्पताल के हाल-चाल पूछे और फिर राकेश सोने चला गया.

सोच रही थी कि आज कितना अच्छा दिन है... बिस्तर पर वह अकेली थी. सुधीर का बग़ल में न होना इतना सुखकर उसे कभी नहीं लगा था. इच्छाओं के पंछी ऊंची उड़ान भर रहे थे, एक कल्पित एहसास किसी के होने का... आंखों में नींद न थी. उसकी बेरंग ज़िंदगी में रंजन ने प्यार के रंग भर दिये थे, हज़ारों गुलाब महक उठे थे, चारों तरफ़ एक मादक पुरुष गंध !

सुबह उठी तो सब वैसा ही था, फिर भी कुछ अलग था. राकेश अस्पताल जाने के लिए तैयार हो रहा था. सुधीर घर आकर फ्रेश होकर ऑफ़िस चला जायेगा. सुमन जल्दी-जल्दी काम निपटाने लगी. दोनों का डिब्बा तैयार किया और चाय पीने बैठी ही थी कि तभी सुधीर आ गया.

''एक कप चाय मुझे भी पिलाओ.'' कहकर धम्म से बैठ गया तख़्त पर.

चाय लेकर सुमन आयी और मौसी के हालचाल पूछने लगी.

सुधीर सोच रहा था... क्या हो गया इसे? आज मां के हालचाल पूछ रही है? इसे तो ख़ुशी होनी चाहिए. जितने दिन मां अस्पताल में रहेंगी डांट-फटकार से बची रहेगी...!

''ठीक हैं... कम से कम पंद्रह दिन अस्पताल में रहेंगी फिर घर पर देखभाल करनी होगी.''

''सोचता हूं ऑफ़िस से छुट्टी ले लूं दस दिन की. दिन में मैं रह लूंगा अस्पताल में और रात में राकेश..... वह दो बजे की क्लासेस चला जायेगा. सुबह थोड़ा सो लेगा.''

''हूं.... अच्छा है... कुछ तो करना ही पड़ेगा...''

दूसरे दिन ही रंजन अस्पताल में हालचाल पूछने गया और सुधीर की छुट्टी की अर्जी भी दे आया ऑफ़िस में. राकेश के क्लासेस जाने के बाद इधर लगभग रोज़ ही रंजन दो एक घंटे के लिए सुमन के पास आने लगा.

शुरू-शुरू में सुमन को बहुत घबराहट होती थी. मन के किसी कोने में कहीं कुछ ग़लत किये जाने का अपराध बोध था तो दूसरी तरफ़ एक सुखद अहसास जो उसे बरबस अपनी ओर खींच रहा था जो उसे बहुत अच्छा लगने लगा

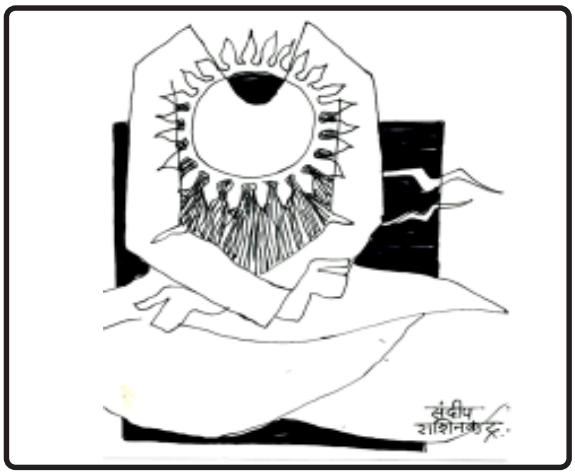

था. इस सबके लिए बंतो मौसी को ज़िम्मेदार ठहराकर अपने मन को समझाती.

धीरे-धीरे सुमन के हंसते-मुस्कराते चेहरे के साथ-साथ सूखा कुम्हलाया शरीर भी भरने लगा था. अक्सर काम करते समय भी गुनगुनाती रहती.

राकेश को सुमन में आया यह बदलाव अच्छा लगता. उसने भी नोट किया कि रंजन के घर आने-जाने से घर का माहौल कुछ ख़ुशनुमा हो गया है. लगता घर में जैसे जान आ गयी हो. वर्ना चारों लोग अपने-अपने कामों में लगे रहते. कोई किसी से बात नहीं करता... घर में अजीब मुर्दनी छायी रहती. अब सुमन राकेश से भी हंसी मज़ाक करने लगी थी. रंजन का घर आना उसे भी अच्छा लगता था. पर सुधीर के मन में शंकाएं जागने लगीं ... अचानक क्या हो गया सुमन को? इतनी ख़ुश कैसे रहने लगी?

पंद्रह दिन बाद मौसी घर आ गयीं और उन्हें अंदर के कमरे में लिटा दिया गया. सुमन देखभाल करने लगी. अब बंतो मौसी सुमन से संभल कर बात करतीं क्योंकि अपनी सभी ज़रूरतों के लिए उसके ऊपर ही आश्रित हो गयी थीं. उनका सभी काम सुमन ही करती थी. अब रंजन आता तो बाहर के कमरे में ही रहता. सुमन से मिलता और चला जाता. दोपहर में मौसी सो जाती थीं.

इधर रंजन लंच के बाद ऑफ़िस से अक्सर ग़ायब रहता. कभी किसी क्लाइंट से मीटिंग, तो कभी कोई पर्सनल काम निकल आता.

सुधीर नोटिस कर रहा था कि अब रंजन उससे भी उतना खुलता नहीं था, जितना पहले खुलता था. इधर सुमन भी सहज नहीं लगती थी. पिछले कई दिनों से उसकी तबियत भी ढीली रहने लगी थी. कभी पेट ख़राब तो कभी उबकाइयां. अब

बंतो मौसी थोड़ा-थोड़ा उठने-बैठने लगी थीं.

उस दिन दोपहर में बाथरूम जाने के लिए उठीं तो बाहर के कमरे से कुछ आवाज़ें सुनायी दीं.

''सुमन ... कौन है वहां... कमरे में...'' रंजन झटके से उठा और बाहर वाले दरवाज़े से निकल गया.

सुमन तुरंत बाहर निकली... ''कहां कौन है? कोई तो नहीं.''

''मुझे किसी के बोलने की आवाज़ें सुनायी दीं.'' उसकी तरफ़ ग़ौर से देखते हुए बोलीं.

''आपको ऐसे ही लगा होगा... कौन आयेगा भला... चलिए आपको अंदर लिटा देती हूं.''

''नहीं... यहीं तख़्त पर बैठूंगी थोड़ी देर.... लेटे-लेटे कमर टेढ़ी हो गयी है. ....'' और तख़्त पर बैठ गयीं बंतो मौसी. सुमन जल्दी से कमरे में गयी और बाहर के कमरे का गली की तरफ़ खुलने वाला दरवाज़ा बंद कर आयी.

आधे घंटे बाद रंजन ने दरवाज़ा खटखटाया.

''कैसी हैं मौसी आप ?''

''अरे... रंजन... बस ठीक हूं... बहुत दिनों बाद आये...''

''हां... थोड़ा व्यस्त था. आ नहीं पाया.'' और वह बैठ गया तख़्त पर. मौसी की बग़ल में.

''सुमनजी चाय पिलाइए हम दोनों को...'' मुस्कराते हुए सुमन की ओर देखकर बोला.

बंतो मौसी की घाघ आंखें दोनों को देख रही थीं... कुछ तो है दोनों के बीच !

सुमन चाय बनाने में व्यस्त हो गयी और रंजन मौसी से बातें करता रहा.

थोड़ी देर बाद रंजन चाय पीकर उठने लगा तो मौसी बोलीं, ''बैठो न सुधीर आता ही होगा.''

''नहीं... थोड़ा बाज़ार में काम है, फिर आऊंगा.''

रंजन ने कनखियों से सुमन को देखा और मौसी को नमस्ते कहकर चला गया.

सुधीर काफ़ी देर से घर लौटा. ऑफ़िस के बाद डॉक्टर से मिलने चला गया था. दो तीन दिन बाद मां का दोबारा चैकअप था. हाथ-मुंह धोकर खाना खाया और सोने के लिए जाने लगा तब बंतो मौसी बोलीं, ''सुधीर थोड़ा टाइम है क्या बेटा... बैठ न मेरे पास. कुछ बात करनी है...''

सुमन खाना समेट कर अंदर चली गयी थी. सुधीर थका था पर बैठ गया.

''क्या, मां...!''

''बेटा.. जो मैं देख रही हूं तू भी देख रहा है क्या... सुमन कितनी बदल गयी है. अब मेरे डांटने-डपटने पर भी चिढ़ती नहीं है... शरीर भी भर रहा है....?''

''मैं देख तो रहा हूं... पर समझ नहीं आता... मुझसे भी बात नहीं करती, न ही झगड़ती है...'' सुधीर बोला.

''हां... कुछ तो है!''

''हो सकता है आपकी तबियत की वजह से डांटने पर चिढ़ती नहीं.''

''पता नहीं... पर कुछ और ही है... कुछ ठीक नहीं है. हां.... तेरा वो दोस्त रंजन...''

''क्यों, क्या हुआ रंजन को...?'' कान खड़े हो गये उसके.

''रंजन भी कुछ ज़्यादा ही नहीं आने लगा है...?'' प्रश्न किया मौसी ने.

''तुम्हें देखने आता है.''

''वह तो ठीक है पर....''

उठ कर जाने लगा सुधीर. लेकिन मन के कोने में शंकाओं के नाग फन उठाने लगे. पिछले कई दिनों से वह भी इसी सोच में डूब-उतरा रहा था. मां ने मानो उसके सुगबुगाते मन पर कोई पत्थर रख दिया हो. उसका डर सच होता लग रहा था. हालांकि सुमन से वह प्यार नहीं करता था पर पत्नी थी उसकी. उसके पतीत्व की पहचान...

सुमन से कुछ कहने या पूछने की हिम्मत नहीं होती थी. अपनी कमज़ोरी भी तो सालती थी उसे. किस मुंह से पूछे... शांति तो चुपचाप सहती रही और वह अपना फ्रस्ट्रेशन शांति पर उतारता रहता था. आये दिन मारपीट होती रहती. पर सुमन ये बर्दाश्त नहीं करेगी जानता था वह. मन मसोसकर रह जाता. लगता सुमन का गला दबा दे...क्या करे, क्या न करे. सुमन का मुस्कराता चेहरा भीतर तक आग लगा जाता... मानो वह उसका मज़ाक उड़ा रही हो.

अब वह सुमन से नज़रें चुराने लगा था. उसके सामने आने से कतराने लगा था. न जाने क्यों उसे सुमन से डर लगने लगा था या शायद सबके सामने नंगे हो जाने का डर सताने लगा था.

वही सुमन थी, पर अब वह दबी सहमी नहीं रह गयी थी. उसके चेहरे पर ख़ुशनुमा संतोष दिखायी देता था और एक अलग-सा ठहराव आ गया था. बंतो मौसी का भी बुरा हाल था. सुमन को सामने देखते ही अपने बेटे की कमज़ोरी और ख़ुद कुछ न कर पा सकने की स्थिति उन्हें और बेबस कर देती. कलेजे पर सांप लोटने लगता. मानो सुमन ने उनके मुंह पर ज़ोरदार तमाचा जड़ दिया हो और जंगले से झांकती आंखों के अनगिनत प्रश्न भी तो बंतो मौसी के भीतर फांस की तरह अटक गये थे.

ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८
मो. : ९८१९१६२९४९.
ई-मेल : manjusaksena@yahoo.co.in

कहानी

बंदिशें

✍ महेश दवेसर 'दीपक'

पाकिस्तान बने एक उम्र बीत गयी. लाखों में आये थे वहां से उजड़े, तबाह हुए विस्थापित. सभी भारत में बसा दिये गये. फले-फूले, पनपे. मैं दुखियारी, रश्मि चावला (उर्फ रेशमा कुरैशी) अपने स्वर्गीय पति प्रोफ़ेसर बृजेश चावला की विधवा, चोरी-छुपे लंदन आ तो गयी हूं लेकिन यह छुपा-छुपी, ख़ानाबदोशी, कहां तक सहूंगी और कब तक?

भविष्य अजन्मा है और अनंत भी, मेरी व्यथा की तरह! अतीत मरता नहीं, पुकारता रहता है. आज दोहरा रही हूं सभी यादें, पुकारें! कहने चली हूं पूरी कहानी.

१९४७ ग्वालमंडी लाहौर! देश-विभाजन के दंगों के समय मैं गर्भ से थी. बीमार रहती थी. बृजेश दवा लेने निकले. हज़ार रोका, नहीं रुके .... ''अगली गली में सहगल्स की क्लीनिक तक ही तो जाना है. अभी गया, अभी आया.''

वह 'अगली गली' अमृतसर में जा निकली. वे सहगल परिवार की क्लीनिक से उन्हीं की कार में भाग निकले. बस सोच लिया, स्थिति सुधरेगी तो मुझे निकाल लायेंगे.

शाम का गहन होता अंधेरा और बढ़ती हुई घबराहट! इनका भरोसेमंद था बग़ल वाले घर का पड़ोसी, यूसुफ़ कुरैशी. उसी के साथ हर शाम उनकी शतरंज की बाजी लगा करती. उस शाम जब वह आया न कोई बिसात बिछी, न बाज़ी लगी और बिना शह के मात हो गयी. तार-तार हो गये मेरे वस्त्र. बलात्कार हुआ और बार-बार होता रहा! मेमने का कसाई की छुरी के साथ वाला समझौता मुझे भी करना पड़ा. बिना तलाक, बिना निकाह, मैं रश्मि चावला से रेशमा कुरैशी बना दी गयी.

दिन पूरे होने पर मेरा और बृज का बेटा पैदा हुआ, जावेद. वह मेरी गोद में था जब भारत-पाक समझौते के तहत बृज कुछ फ़ौजी लेकर गली में आये थे. लाउड-स्पीकरों पर पुकारते अपने नाम का मैं क्या जवाब देती? मैं यूसुफ़ के गोदाम में क़ैद थी और गले पर थी यूसुफ़ की छुरी! बृज समझ बैठे कि मैं दुनिया में नहीं रही और ख़ाली हाथ लौट गये.

समय ने मोड़ खाया. बृजेश का वह 'अभी', वह एक पल, पचास वर्ष बाद लौटा! इस बीच कितना कुछ हो गया था. यूसुफ़ अपनी क़ब्र में था. बृज का दूसरा विवाह हो गया था. कोई कमला मेरी सौत थी और मेरा सौतेला बेटा योगेश, इस्लामाबाद में भारतीय हाई कमीशन में फ़र्स्ट सेक्रेटरी था. इधर आठवीं फ़ेल, मेरा जावेद निकम्मा का निकम्मा रहा. बन गया पक्का जिहादी और आतंकी. बृजेश अपने नये पोते को देखने इस्लामाबाद आये थे. उन्होंने सोचा पाकिस्तान में हूं तो लाहौर और लाहौर में अपना पुराना घर भी देख लूं. वे आये थे 'यूसुफ़ भाई' से मिलने. सामने मैं खड़ी थी बलात्कृत, चेहरे पर झुर्रियों का जाल, एक ज़िंदा लाश! पाकिस्तान सरकार की आज्ञानुसार वे लाहौर में थे, केवल सात दिन! हिल्टन होटल में ठहरे हुए थे. मेरी ज़िद पर वे हमारे यहां आ गये. जावेद से झूठ कह दिया कि विभाजन से पहले वे हमारे पड़ोसी होते थे. उसे एतराज़ था कि हम एक 'काफ़िर, पराये मर्द को क्यों पनाह दें?' मैंने उसकी नहीं चलने दी... आख़िर बृज मेरे पति थे! बहुत महंगी पड़ी यह भूल! पाकिस्तान सरकार को शक हो गया कि इतने बड़े लाहौर में वे केवल मुझे — 'रेशमा कुरैशी' — को ही क्यों मिलने आये? इस्लामाबाद से ही उनके पीछे जासूस लगा दिये गये थे. उल्टे हम दोनों पर भारत की जासूसी

महेश दवेसर 'दीपक'

जन्म : १४ दिसंबर १९२९ (नयी दिल्ली);

शिक्षा : प्रभाकर, बी. ए., एम. ए. फ़ाइनल (अर्थ-शास्त्र), १९५२.

भारत सरकार की विदेश-सेवा के अंतर्गत जाकार्ता (इंडोनेशिया) में स्थानांतरण के कारण परीक्षा में नहीं बैठे. १९५२ में ही विदेश-सेवा अवधि में इंडोनेशिया सरकार के अनुरोध पर और भारत सरकार की विशेष आज्ञा पर रेडियो रिपब्लिक इंडोनेशिया के हिंदी यूनिट का संस्थापन, संचालन और हिंदी कार्यक्रमों के प्रचार का अतिरिक्त भार संभाला. १९७१ से लंदन में निवास. १९७६ से अंतर्राष्ट्रीय समाचार एज़ेंसी में नियुक्ति और १९९२ में अवकाश ग्रहण. युवाकाल के पश्चात तभी से लेखन कार्य दोबारा शुरू किया. तीन कहानी संग्रह प्रकाशित — 'पहले कहा होता', 'बुझे दीये की आरती', 'अपनी अपनी आग'. इस अंतिम पुस्तक पर वर्ष २०१० में भारतीय उच्चायोग द्वारा लक्ष्मीमल सिंघवी सम्मान और लंदन के हॉउस ऑफ़ कॉमन्स में पद्मानंद साहित्य सम्मान से नवाज़ा गया.

पुरस्कृत कहानी - *'वर्तमान साहित्य' द्वारा नियोजित वार्षिक कहानी प्रतियोगिता के अंतर्गत लेखक की कहानी 'दो पाटन बिच आये के' को कमलेश्वर कहानी पुरस्कार (२०११).*

का इल्ज़ाम थोप दिया गया.

इसी घर में रहता था सरकार का सबसे बढ़िया मोहरा — जावेद! उसे गुप्त हुक्म मिला कि रातों-रात इस 'ख़तरनाक जासूस' को ख़त्म कर डालो. जावेद ने हुक्म का पालन किया और सोये हुए अपने पिता की हत्या कर डाली. उसे अपने 'गुनाहे-अज़ीम' की शिद्दत तब महसूस हुई जब उसने मेरी और बृज की शादी की फ़ोटो देखी जो अब तक छुपाकर रखी गयी थी. अब उसके सिर पीटने से क्या हो जाता? रातों-रात ही मेरी गिरफ़्तारी के वॉरंट भी निकाल दिये गये. ख़ैरियत हुई कि मुझे हथकड़ियां लगाने आया जावेद के बचपन का दोस्त, पुलिस इंस्पेक्टर हमीद! उसका ज़मीर नहीं माना कि वह अपनी मुंहबोली 'ख़ाला' को हथकड़ियां लगाये. उसने हमें तैयार होने के लिए पंद्रह मिनटों की मोहलत दी. हम तो ठीक से बृजेश का मातम भी न कर सके. जावेद के पास पड़े लश्कर के पांच हज़ार डॉलर काम आये और हम मां-बेटा ब्रिटेन के लिए निकल पड़े. क्योंकि जावेद भी मेरे साथ था, उस पर क़त्ल या ग़बन का नहीं जासूसी का लेबल लगा. किसी भी तरह, बड़ी मुश्किल से हम लंदन पहुंच गये — अवैध, ख़ानाबदोश!

बड़ी मुश्किल से एक छोटा-सा कोठरीनुमा कमरा किराए पर मिल सका!

इंग्लैंड में पांव रखते ही हम समझ गये कि पाकिस्तान के मुक़ाबले यह देश दस-बीस गुना महंगा है. पैसा पानी की तरह बहाने की बात सुनी थी. यहां पैसे का बहाव नहीं था, बाढ़ थी और आमदनी का कोई साधन भी नहीं. काम की तलाश में जावेद सुबह-सुबह निकल जाता और मुंह लटकाये घर लौट आता. अब आठवीं फ़ेल अवैध अप्रवासी को कौन काम दे? एक दिन खीझकर मैंने भी डांट लगा दी, ''जाओ कहो उन शैतान मौलवियों को जिन्होंने तुम्हें दहशत के तौर-तरीक़े सिखलाये थे, तुम्हारे रोज़गार का इंतज़ाम करें!''

जावेद शर्मिंदा था. शर्मिंदगी और पछतावे से क्या संवरती ज़िंदगी? बड़ी मुश्किल से उसे एक कंपनी में काम मिला, घर-घर लेटर-बॉक्सों में पर्चे डालने का. कितना तो चलना पड़ता था. जूते फट गये, पैरों में छाले पड़ गये. शाम को जो मज़दूरी लेकर जावेद घर आता उससे तो दो वक़्त की रोटी भी मुश्किल हो रही थी.

मैंने सोचा, ऐसे कब तक चलेगा? मेरा दोष क्या था? स्वेच्छा से नहीं बनी थी मैं पाकिस्तानी! मुझसे छीनी गयी थी मेरी और जन्म पूर्व जावेद की भारतीयता. यदि मैं बृजेश के साथ भारत पहुंच सकती तो ये दिन न देखने पड़ते और हमारा बेटा अनपढ़ आतंकी न होता — पूर्णतया सभ्य, सुशिक्षित और शांतिप्रिय होता! मैं अपनी पिटीशन लेकर भारतीय हाई कमीशन पहुंच गयी और वहां की फ़र्स्ट सेक्रेटरी नीलिमा खरे से मिली. सीधी-सी मांग थी मेरी — हमें हमारी राष्ट्रीयता लौटायी जाये.

मेरा सौतेला बेटा योगेश, नीलिमा का सहयोगी निकला और अच्छा मित्र भी. साउथ ब्लॉक तक ही नहीं थी उनकी दोस्ती. घरों में आना-जाना भी था. बृजेश और कमला उसके 'अंकल', 'आंटी' थे और बृजेश की पहली पत्नी के नाते मैं उसकी 'बड़ी आंटी' हो गयी और विशेष सहानुभूति की पात्र भी. उसने पूरी सहायता का भरोसा दिया और कह दिया, 'सब ठीक हो जायेगा'. फिर पूर्व निर्धारित समय पर हम दोनों मां-बेटे उससे मिलने गये तो उसने हमसे मिलने तक से इंकार कर दिया. रिसेप्शनिस्ट से कहलवा दिया कि मामला विचाराधीन है. हम अपमानित और ज़लील होकर लौट आये.

फिर एक दिन 'ट्रिंग, ट्रिंग, ट्रिंग.' दरवाज़े की घंटी बजी. घर की ऊपरी मंज़िल पर था हमारा कमरा. सड़क पर खुलती खिड़की का पल्ला ज़रा सा खिसकाकर क्षीण-सी दरार में से मैंने झांका. नीलिमा नीचे खड़ी थी.

''तीन महीने बाद, अब क्या लेने आयी हो?'

उधर से कोई जवाब नहीं. मैंने अपना प्रश्न दोहराया— ''इंडिया हॉउस में हमारे तिरस्कार से अभी जी नहीं भरा? अब क्या लेने आयी हो?''

''उस शाम की गुस्ताख़ी के लिए क्षमा-दान!''

''जाओ, माफ़ किया. अब हमें हमारे हाल पर छोड़ दो.''

मैंने कह तो दिया, ''हमारे हाल पर छोड़ दो'', पर किस हाल पर? क्या भूल गयी मैं अपनी बदहाली? फिर उसकी पुकार सुनी — ''आप छोड़ दें, तो छोड़ दें. मुझे अपनी बेटी मानें, न मानें. मैं अपनी बड़ी आंटी को नहीं छोड़ने वाली. दरवाज़ा खोलकर ऊपर आने दें तो अपनी स्थिति समझाऊं.''

इंडिया हॉउस में हमारे तिरस्कार के बाद इतनी आत्मीयता? बहुत विचित्र लगा. फिर भी मैंने दरवाज़ा खोल दिया. बहुत विनम्र थी वह! नीलिमा ने समझाया — बिल्कुल असंभव थी हमारी मांग. ढेरों वर्ष पाकिस्तान की नागरिकता के बाद, पाकिस्तानी पासपोर्ट होते हुए भी अब हमें भारतीय नागरिकता प्रदान की जाये, संविधान में इसकी कोई व्यवस्था नहीं. ''तब मैं समझी थी एक ठप्पे ही की तो बात है. अपने सामने आप दोनों से फ़ॉर्म भरवाती, समीप के किसी स्टूडियो से दोनों की फ़ोटो खिंचवाती, पासपोर्टों पर वीज़ा की मुहर लगवाती और छुट्टी! आपकी पिटीशन पढ़ी और मेरे होश उड़ गये. आपको किस मुंह से मिलती? मैंने आपकी अर्ज़ी भारत भेज दी थी. होना क्या है? अभी तक कोई जवाब नहीं. विदेश, गृह और न्याय मंत्रालयों की परिक्रमा करता होगा वह क़ाग़ज का टुकड़ा!''

उसने अपनी आंखें पोंछीं — ''क्या कहूं, आंटी जी? दो कर्तव्यों के टकराव की स्थिति थी — एक तरफ़ सरकार थी और दूसरी तरफ़ आप.... जैसे प्रेम के आड़े धर्म आ जाये.

हमारी 'सीधी-सी मांग' सचमुच एक टेढ़ी खीर थी! नीलिमा की मज़बूरी मेरी समझ में आने लगी. एक ओर उसकी और संविधान की बंदिनी भारत सरकार की मज़बूरी थी और दूसरी ओर हमारी अपनी! हर नया दिन एक चुनौती था. कौन जाने कब बॉर्डर एजेंसी छापा मार दे या पाकिस्तान के भगोड़े हम 'मुजरिमों' को कोई जिहादी गोली से उड़ा दे?

भयातुर तो मैं थी ही. जाते-जाते नीलिमा मुझे और भी असंतुलित कर गयी — ''तीन साल की मेरी अवधि के बस छः ही महीने रह गये हैं. देखती हूं, मैं आपके लिए क्या कर सकती हूं.''

दो हफ़्ते बाद वह फिर आयी. हम मां-बेटे को जल्दी से तैयार होने को कहा. उसकी कार नीचे खड़ी थी. थोड़ी देर में हम ''फ़िरदौस'' नाम के एक रेस्तोरां में पहुंच गये. वेटर ऑर्डर लेने के लिए आया तो उसे कह दिया, मिस्टर मसीह से कहो मिस चावला आ गयी हैं.

मैंने पूछा, ''नीलिमा...''

उसने टोक दिया, ''नीलिमा नहीं, नीलू. कमला आंटी और योगेश मुझे इसी नाम से पुकारते हैं. बृजेश अंकल भी 'नीलू' कहकर बुलाते थे.'.

''ओके, नीलू. कौन हैं ये मिस्टर मसीह? तुम इन्हें कैसे जानती हो?''

''आप नहीं समझेंगी, आंटी. सब कंप्यूटर के खेल हैं. इस भरोसे कि शायद आपका कोई फ़ायदा हो जाये बस यों ही, अंधेरे में तीर छोड़ा था. कंप्यूटर द्वारा 'ट्विटर' पर एक सार्वजनिक संदेश छोड़ दिया कि लाहौर वाले प्रोफ़ेसर बृजेश चावला से परिचित लोग मुझसे संपर्क स्थापित करें. चमत्कार हो गया और शौकत मसीह का फ़ोन आ गया. कॉलेज के दिनों में वह बृजेश अंकल का शिष्य रह चुका था.

कुछ मिनटों में पेश हुआ वही शौकत मसीह, रेस्तोरां का मालिक. गहन आत्मीय और स्नेहल स्वर था उसका — ''बहन जी, प्रोफ़ेसर चावला हमारे ख़ानदान के लिए एक फ़रिश्ते से कम नहीं थे.''

इस तरह से ब्रिटेन में एक भाई मिल गया. उसने दोहराया वही सब कुछ जिसका शिकार मैं स्वयं रही हूं. उसका परिवार भी वही सब झेल चुका है. वह एक इसाई है. पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की बहनें, बहुएं, बेटियां कितनी असुरक्षित हैं, इसका उदाहरण है उसकी अपनी बेटी, मरियम. अल्पसंख्यकों की गलियों के चक्कर लगाते रहते हैं वहां के गुंडे, लफंगे और अवसर पाते ही किसी बहन, बहू या बेटी का अपहरण हो जाता है. मरियम का अपहरण हो गया था. पुलिस में रिपोर्ट की, अफ़सरों से शिकायत की. ख़ुदकुशी के लिए तैयार थी बेचारी जब बड़ी मुश्किल से वह बरामद हुई और घर लौटी. शौकत को परिवार सहित ब्रिटेन में निवास का वीज़ा मिल गया था. वह पाकिस्तान से भाग खड़ा हुआ.

मरियम की कहानी सुनी और मैं पुकार उठी — ''क़िस्मत ख़राब! मैं ही कंबख़्त बरामद न हो सकी. गोद में जावेद था

और गर्दन पर यूसुफ़ की छुरी. बृजेश ने मुझे ढूंढा भी तो क्या ढूंढा? बीज ने पेड़ ही काट डाला.''

जावेद की आंखें भीग गयीं. उसके शब्दों में पछतावा भी था, शिकायत भी — ''अम्मी, आप मेरी भूल को गुनाह नहीं कह सकतीं. बार–बार सुनता हूं यह क़िस्सा. मेरी ख़ता की आप जो भी सज़ा देंगी, भुगत लूंगा.''

''भूल होती है, जो अनजाने में हो जाये. तुम नहीं जानते थे कि बृजेश तुम्हारे पिता हैं... मेहमान हैं, इंसान हैं, यह तो मालूम था कि नहीं?''

हमारी मेज़ पर उतर आयी मौन उदासी, शौकत ने तोड़ी. उसने बताया कि उसके पिता बर्मा की लड़ाई में मारे गये थे. वो तो फ्रंट पर थे और उनकी ग़ैरहाज़िरी में वह बिगड़ता चला गया. तब वह बस नाम का ही एफ. ए. का विद्यार्थी था. एक ही शग़ल था उसका दिन-रात की आवारगी! बुज़ुर्गों, प्रोफ़ेसरों और अपनी मां तक की अवज्ञा में वह अपनी शान समझता था. एक दिन भूले से कॉलेज क्या गया, ज़िंदगी संवर गयी. बृजेश ने उसकी बांह पकड़ी और स्टाफ़ रूम में घसीट ले गये. ख़ूब फटकार मिली, प्यार मिला और प्रेरणा भी — ''ज़िंदगी से जो हम लेते हैं, उससे ज़्यादा देना होता है. इसी में है समाज का, देश का कल्याण!''

शौकत के शब्दों में 'उपदेशक तो बहुत मिल जाते हैं पर क्या वे स्वयं अपनी कसौटी पर पूरे उतरते हैं? प्रोफ़ेसर साहब ने अपने उपदेश की मर्यादा निभायी — पूरी निष्ठा, शालीनता और सच्चाई के साथ! ढाई वर्ष तक, बिला नाग़ा मुझे मेरे घर में मुफ़्त ट्यूशन देते रहे. उन्हीं के अनुग्रह और आशीर्वाद से मैंने एफ. ए., बी. ए. फ़र्स्ट क्लास में पास किये और यू. के. में बढ़िया नौकरी पायी. अब इस रेस्तोरां का मालिक हूं. प्रोफ़ेसर साहब का उपदेश, अब मेरे जीवन का मूल-मंत्र है.'

शौकत के मुंह से अपने विवाह से पहले की ये बातें सुनकर बृजेश के लिए मेरा सम्मान और मेरी श्रद्धा हज़ार गुना बढ़ गये.

दो दिन बाद शौकत हमारे घर आ गया. उसके रेस्तोरां की ऊपरी मंज़िल पर दो कमरों का फ़्लैट है जो उसने मित्रों, रिश्तेदारों के लिए खाली रख छोड़ा है. वह ज़िद कर बैठा कि हम वहां जाकर रहें. मैंने बहुत कहा कि हम यहीं ठीक हैं, हमसे उसके फ़्लैट का किराया नहीं भरा जायेगा.

उसका जवाब था, एक स्नेहल डांट — ''बहनों से किराया नहीं वसूला जाता. आप मेरी बहन हैं!''

किराए की ही छूट नहीं मिली थी, शौकत ने हमारे भोजन, चाय-पानी का प्रबंध रेस्तोरां में ही कर दिया था. कभी सोचा न था कि मेरे स्वर्गवासी गांधीवादी पति के सुकर्मों का फल उनके बाद विदेश में हमें इस तरह मिलेगा.

जावेद कबाब, बिरियानी आदि कई तरह के पकवान बहुत बढ़िया बना लेता है. उसके अहसानों का बदला तो हम क्या चुकाते, मैंने बिना वेतन जावेद को उनके किचन में काम करने भेज दिया. उसके पकवान पसंद हुए, ग्राहकों को पसंद आये और रेस्तोरां की आय बढ़ने लगी और जावेद की जो थोड़ी सी आमदन थी वह बिल्कुल बंद हो गयी. अब स्थिरता थी मगर बेचैनी भी थी.

इन्हीं दिनों आसपास के कुछ एशियन संस्थानों में छापे पड़ चुके थे और कुछ अवैध लोग पकड़े जा चुके थे. एक धुकधुकी सी लगी रहती थी कि यदि 'फ़िरदौस' में भी छापा पड़ गया तो हम तो फंसे ही फंसे! शौकत कुछ नहीं कहता था क्योंकि उसी के निमंत्रण पर हम वहां गये थे मगर उसके चेहरे से उसकी घबराहट स्पष्ट थी. वह भी मुश्किल में पड़ सकता था और उस पर अवैध लोगों को पनाह देने का इल्ज़ाम लग सकता था.

वही हुआ जिसका डर था.

एक दिन अचानक आ टपके बॉर्डर एजेंसी के लोग. ख़ैरियत हुई कि उस समय न तो जावेद के सिर पर किचन की टोपी थी न ही बदन पर ऐप्रन. शौकत की सुध-बुध और होशियारी काम आ गयी. बस कह दिया कि जावेद उसका भांजा है और हम दोनों, बर्मिंघम से एक शादी के सिलसिले में लंदन आये हुए हैं. ज़िंदगी में पहली बार बालों की सफ़ेदी और मेरे चेहरे की झुर्रियां सहायक सिद्ध हुईं. उन लोगों को विश्वास हो गया कि मैं, एक बुढ़िया अवैध तो हो ही नहीं सकती. मेरे साथ जावेद भी बच गया. उन्होंने 'सॉरी मैडम' कहा और सलाम करके चलते बने.

नीलू हमें बराबर मिलती रही थी. वह विदेश सेवा की उड़ती चिड़िया थी और उसने हमें सावधान किया कि लंदन में उसकी तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने को है और कभी भी उसके ट्रांसफर के ऑर्डर आ सकते हैं.

''बेहतर यही होगा कि मेरे होते हुए आप निश्चय कर लें कि आप...''

मैंने टोका,''मेरी पिटीशन...हमारी राष्ट्रीयता?'

''भूल जाइए, वह सब! रत्ती भर भी चांस नहीं है कि आपकी वह मांग स्वीकार हो. मेरी मानिए, आप भारत चले जाइए. वहीं सुरक्षित रहेंगे.''

फिर उसने हमारे पासपोर्ट मांगे. कहना पड़ा कि रद्द हुए

पासपोर्टों को देखकर वह क्या करेगी? लंदन में प्रवेश के अगले ही दिन जावेद ने यहां से प्रकाशित 'जंग' में पढ़ लिया था कि पाकिस्तान सरकार ने हमें फरार मुजरिम घोषित कर दिया था और हमारे पासपोर्ट रद्द कर दिये थे.

''फिर भी आप पासपोर्ट तो दिखाइए.''

मैंने पासपोर्ट पकड़ा दिये. वह खिलखिलाकर हंस पड़ी — ''वे करते रहें पासपोर्ट रद्द. मेरी नज़रों में ये अभी भी डेढ़ साल तक वैध हैं.''

नीलिमा ने बात आगे बढ़ायी— ''आपके रद्द हुए पासपोर्टों का नोटिस पाकिस्तान सरकार ने दुनिया भर में भेजा होगा. किसी को मिला होगा, किसी को नहीं.''

फिर आंख मारते हुए वह शरारतन मुस्कुरायी — ''हमें वह नोटिस नहीं मिला. मैं अपनी ज़िम्मेवारी पर आप दोनों के पासपोर्ट पर वीज़ा लगवा दूंगी. पाकिस्तान दुश्मनी निभा रहा है .... जान बूझकर भारतीय नागरिकों को दाउदों, शकीलों, इंडियन मुजाहिदों जैसों को पाकिस्तानी पासपोर्ट दे रहा है ताकि वे गद्दार अपने ही देश में आतंक फैलायें, बम विस्फोट करें, गाड़ियों में आग लगायें और पाकिस्तान लौट जायें. क्या यह सब उनके आईन (संविधान) में लिखा है? मैं तो बेगाने हो गये अपने लोगों को अपना रही हूं. उन्हें केवल भारत का वीज़ा दे रही हूं. क्या बुरा कर रही हूं?''

अपनी बात कहते-कहते, वह रुक गयी. फिर ज़रा मुस्करायी और फिर से आंख मारते हुए बोली—''अब मैं जो कहने जा रही हूं, वह हाई कमीशन की फ़र्स्ट सेक्रेटरी नहीं, आपकी अपनी बेटी बोल रही है. हमारे विशाल देश में कहीं भी छुप जाओ, कौन पूछने वाला है? हज़ारों, लाखों बंगलादेशी भी तो वर्षों से बसे हुए हैं. आराम से रह रहे हैं. देर-सवेर अपने आप भारतीय राष्ट्रीयता आपकी झोली में होगी.

नीलू की बातें सुनीं. तसल्ली हुई. मगर अभी भी एक भारी शंका थी — ''ब्रिटेन में अवैध प्रवेश और हमारे रद्द हुए पासपोर्ट. वे तो हमें हीथ्रो एयरपोर्ट पर ही धर दबोचेंगे.''

''अवैध प्रवेश, रद्द पासपोर्ट... नो प्रॉबलम! स्वेच्छा से आप उनका देश छोड़े जा रहे हैं, तो वे क्यों आड़े आयेंगे? वे भी तो यही चाहते हैं. आप उनका काम आसान करेंगे.''

अगले सप्ताह नीलू फिर आयी और ख़बर सुना गयी कि उसे तीन महीने की होम-लीव मिल गयी है. लंदन से निवृत्त होकर वह सीधी दिल्ली जायेगी और अपने लोगों के साथ छुट्टियां मनायेगी. यदि हम चाहें तो अपनी ही फ़्लाइट में वह हमारी भी बुकिंग करवा देगी.

नीलू हमारे रद्द हुए पासपोर्टों को वैध समझेगी, भारत

का वीज़ा लगवा देगी, मगर फ़्लाइट की बुकिंग? उसके लिए पैसा कहां से आयेगा? भारत में ख़र्चा कैसे चलेगा? ये परेशानियां हमारी नींद उड़ाने को बहुत थीं.

अपने फटीचरपन की नुमायश नहीं की जाती मगर जब मैं नीलू से पहली बार इंडिया हॉउस में मिली तो उसे सब कुछ समझाना पड़ा था और लगता है उसने शौकत को भी सब कुछ कह दिया है. अब समझ में आता है क्यों और कैसे हो गया 'फ़िरदौस' में मुफ़्त का रहना-खाना!

एक शाम शौकत ऊपर फ़्लैट में आया. चाय की ट्रे लिये 'फ़िरदौस' का एक वेटर उसके साथ था. चाय हो चुकी तो जाते समय बिना कुछ कहे मेरे नाम का एक मोटा-सा लिफ़ाफ़ा मेज़ पर रख गया. खोला, तो उसमें लंदन से देहली के दो हवाई टिकट थे और पचास-पचास पाउंडों के बंडल. कुल ढाई हज़ार पाउंड थे. इस आर्थिक ऑक्सीजन की हमें सख़्त ज़रूरत थी. फिर भी उससे पूछना तो था कि यह इतना भारी अहसान किस लिये?

हंस दिया शौकत, देवताओं की-सी मधुर हंसी — ''मैंने तो कुछ नहीं किया, कुछ भी नहीं! कंपनी का किया धरा है सब!''

''तुम और तुम्हारी कंपनी, क्या दो हैं?''

''मैं तो बंधा हुआ मासिक वेतन लेता हूं. रक़मों में यह रक़म भी कंपनी के खाते में जुड़ जायेगी.''

''बहुत ज़्यादा हैं, ये पैसे.''

''काम आयेंगे, रख लीजिए... आभार मानूंगा! नहीं तो

प्रोफ़ेसर साहिब के उपदेश की अवमानना होगी.''

विचित्र स्थिति थी. उपकारी की भेंट, उसी पर उपकार! पैसे मैं ना रखती तो क्या करती?

नीलू और उसके परिवार की बुकिंग भी उसी फ़्लाइट में थी. वे लोग फ़र्स्ट क्लास में थे और हम इकॉनॉमी में.

शौकत हमें एयरपोर्ट तक छोड़ने आया. वह मुझे एक सहोदर सगे भाई की तरह गले मिला... वही स्नेह, वही गरिमा! फिर उसने जावेद को गले लगाया — ''तुम बहुत बढ़िया खाना बना लेते हो. वहां जी. टी. रोड पर या किसी एक्सप्रेस-वे पर कोई ढाबा-वाबा खोल लेना. कोई मदद चाहिए होगी, तो मुझे लिखना. मैं उर्दू पढ़ लेता हूं. मदद के लिए आ जाऊंगा. ओके?'

नीलिमा का हर तीर ठीक निशाने पर लगा. हमारे पासपोर्टों पर प्रस्थान की मुहर लग ही गयी. यात्रा के दौरान नीलिमा कई बार हमारा कुशलक्षेम पूछती रही. दिल्ली में हमारा कोई निश्चित ठौर-ठिकाना तो था नहीं. हम कहां रहेंगे? उसी ने सुझाया कि हम कुछ दिन उसके यहां टिके रहें.

ज्यों–ज्यों देहली क़रीब आ रहा था, जावेद की परेशानी बढ़ती जा रही थी. युगल यात्रियों वाली सीटें थीं हमारी. बग़ल में कोई और नहीं था. उसकी मुजरिम घबराहट उसके होंठों पर उतर आयी. वह फुसफुसाया — ''अम्मी, आपकी यह नीलिमा तो बहुत शातिर लगती है. आप यों ही इसकी लल्लो-चप्पो में आ रही हैं. देख लेना, प्लेन से उतरते ही मेरे हाथों में हथकड़ियां होंगी.''

मैंने दिलासा दिया, ''वहम है तुम्हारा.''

''वहम नहीं, हक़ीक़त है. यह सिफ़रती मुलाज़िम बहुत सीखे-सधे होते हैं. ऐसे ही बेमतलब कोई अनजानी औरत बेटी नहीं बन बैठती. पहले हमें इंडिया हॉउस से बेइज़्ज़त करके भगाया. फिर कोई सरकारी हुक्म मिला होगा और यह दोबारा हमसे यों मिलने लगी जैसे कि मेरी सगी बहन हो.''

मैंने समझाने की कोशिश की — ''बेमतलब का ख़ौफ़ है तुम्हारा. किसी पर तो ऐतबार करना होगा.''

''आपका यही ऐतबार बनेगा मेरी जान का जंजाल.'' मुझे भी तैश आ गया. जी में आया कि जावेद के गालों पर तमाचा जड़ दूं, किंतु प्लेन में दूसरे यात्रियों का ख़्याल आ गया — ''जुर्म किया है तो भुगतो. सज़ा से क्यों डरते हो?''

दो-चार पल की थी उसकी आंखों और होंठों पर जमी एक गुनाहगार ख़ामोशी! फिर डरी-सहमी आवाज़ में वह कह गया — ''अम्मी, दिल्ली एयरपोर्ट से मैं कहां जाऊंगा? कहीं भाग भी नहीं सकूंगा.''

मुझसे भी नहीं रहा गया — ''शाबाश! इसी दिन के लिए पैदा किया था तुझे. पहले बाप का क़त्ल किया और जब अपनी जान पर बन आयी तो बुढ़िया मां को छोड़कर भागने की सोचने लगे.... मेरा क्या? जैसे भी होगा, जी लूंगी.''

जावेद का डर सचमुच वहम निकला.

कहते हैं कि शिवजी की तीन आंखें हैं, रावण के दस चेहरे थे! मानना होगा कि आधुनिक मीडिया की अनगिनत आंखें और मुखड़े हैं. हम अभी इंदिरा गांधी एयरपोर्ट पर ही थे कि नये वेश में पेश आयी एक नयी मुश्किल!

मैं तो पाकिस्तान में फंसी बैठी रही. मुझे नहीं मालूम था कि भारत में बृज किस बुलंदी तक पहुंच चुके थे. वे राजनैतिक और आर्थिक मामलों में भारत सरकार के उच्च सलाहकार रहे थे. समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में उनके लेख बड़े उत्साह से पढ़े जाते थे.

लगभग प्रत्येक अख़बार के प्रथम पृष्ठ पर फ़ोटो के साथ प्रोफ़ेसर बृजेश चावला के क़त्ल का समाचार छपा हुआ था. इससे पहले उन्हें ग़ुमशुदा माना जा रहा था. मेरी पिटीशन कोई गुप्त दस्तावेज़ तो थी नहीं. किसी होशियार पत्रकार ने किसी मंत्रालय के किसी क्लर्क या किसी अधिकारी को रिश्वत देकर उसकी फ़ोटोकॉपी निकलवा ली जो अक्षर-अक्षर समाचार पत्रों में छपी. विदेश सेवा की अधिकारी नीलिमा खरे को कहना पड़ा कि इस बदली हुई स्थिति में वह हमें अपने घर में आश्रय नहीं दे पायेगी. उसी ने कुछ दिनों के लिए एक गेस्ट हॉउस में एक कमरा दिलवा दिया.

क्योंकि यह ख़बर मेरे और मेरे स्वर्गीय पति की थी. मैंने तीन विभिन्न अख़बार ख़रीद लिये. सभी मेरे प्रति हमदर्द थे. काफ़ी मात्रा में जावेद की निंदा हुई परंतु सर्वाधिक ज़िम्मेदारी पाकिस्तान सरकार पर लगायी गयी — पाकिस्तान ने गांधीत्व का क़त्ल करवाया!

पाकिस्तान में पीछे छूट गये अल्पसंख्यकों की शोचनीय स्थिति... ज़बरदस्ती धर्म-परिवर्तन, उनकी बहनों, बेटियों, बहुओं के अपहरण और बलात्कार पर रोष प्रकट किया गया. भारत सरकार से आग्रह किया गया कि शिकार हुए ऐसे अल्पसंख्यक परिवारों को हमें शरण देनी चाहिए चाहे क़ानून या संविधान में संशोधन करना पड़े. वर्षों पहले आज की अनहोनी का किसको ख़्याल था? संविधान — क़ागज पर दर्ज़ शर्तें हैं. इन्हें बदला जाता रहा है, फिर बदली जा सकती हैं! ये हमारी जंजीरें, या पत्थर पर लकीरें नहीं हो सकतीं!

अब भी पाकिस्तान में स्थित मुझ जैसी रश्मियों, मरियमों की बदहाली याद आ गयी!

(शेष पृष्ठ १२८ पर देखें....)

कहानी

खिड़की

✍ तेजेंद्र शर्मा

अगले सप्ताह उसका साठवां जन्मदिन है.

आज सुबह भी अलार्म तीन बज कर चालीस मिनट पर ही बज गया. ज़ाहिर है कि उसकी नींद में ख़लल पड़ा होगा. वह स्वयं ही भूल जाता है कि शनिवार की रात उसे अपने ब्लैकबरी फ़ोन से अलार्म की सेटिंग हटा देनी चाहिए. हमेशा ऐसा ही होता है. हर रविवार की सुबह झुंझला कर उठता है और अपने आपको कोसता है. फिर अपने फ़ोन पर अलार्म को 'डिसमिस' करता है और दोबारा सोने का प्रयास करता है.

पिछले दो वर्षों से वह अकेला रह रहा है. उसकी दिनचर्या हमेशा एक–सी ही रहती है. सुबह की शिफ़्ट हो या दोपहर की, पूरा सप्ताह एक-सा ही बीतता है. सुबह की शिफ़्ट में तीन चालीस पर उठता है, ब्रश करता है, टॉयलट से फ़ारिग़ होता है. स्नान करता है, अपने लिए सैंडविच बनाता है जिसे किचन फ़ॉयल में पैक करके; चाय बनाकर एक डाइज़ेस्टिव बिस्कुट के साथ सुड़क लेता है; यूनिफ़ॉर्म पहनता है; अपनी ई-मेल चेक करता है और तब तक टैक्सी के आने का समय हो जाता है. चार बज कर चालीस मिनट पर टैक्सी लेने आ जाती है और वह अपना बैग ले कर टैक्सी में बैठ जाता है.

वह रेलवे में काम करता है. यात्रियों की सेवा उसका धर्म है. क़रीब पंद्रह वर्षों से यही तो कर रहा है. वाटफ़र्ड हाई स्ट्रीट, और बुशी में वर्षों काम करता रहा है. आजकल 'हैच-एंड' स्टेशन की टिकट खिड़की पर बैठा अपनी मुस्कान बिखेरता रहता है. उम्र के बढ़ने ने उसकी मुस्कान में कोई कमी नहीं आने दी है.

वह अपने यात्रियों से कभी भी अक्खड़पन से बात नहीं कर पाता. दरअसल अक्खड़पन उसके व्यक्तित्व में शुमार ही नहीं. उसके साथ यह समस्या रही है कि उसके हंसकर बोलने के अंदाज़ के कारण बहुत-सी महिलाओं को ग़लतफ़हमी हो जाती है कि वह उन्हें पसंद करने लगा है.

उसके यात्रियों में सभी तरह के लोग शामिल हैं यानी कि गोरे, काले, चीनी और दक्षिण एशियाई मूल के लोग. वह विद्यार्थियों के प्रति अधिक कोमल बना रहता. एक–सी यूनिफ़ॉर्म में सजे हुए बच्चे उसे बहुत प्यारे लगते. उसके साथ बहुत बार होता रहा है कि किसी विद्यार्थी ने अपना ऑयस्टर कार्ड गेटलाइन पर छुआया और पाया कि उसके कार्ड में पैसे समाप्त हो चुके हैं. विद्यार्थी छोटा-सा मुंह बना कर उसकी खिड़की के सामने खड़ा हो गया कि वह स्कूल कैसे जाये! मन ही मन वह उस बच्चे के माता-पिता पर झुंझलाता कि वे इतना भी ख़्याल नहीं रखते कि बच्चे के पास स्कूल आने-जाने का किराया भी है या नहीं. ऐसे बहुत से बच्चों के 'ऑयस्टर कार्ड' में वह कई बार एक या दो पाउंड डाल चुका है. वह रेसिस्ट तो कदापि नहीं था. मगर फिर भी सोचने को मज़बूर हो जाता कि भारतीय उप महाद्वीप के किसी विद्यार्थी के पास कभी किराये की कमी नहीं होती थी. यह सवाल उसे हैरान भी करता और भारतीय होने पर गर्व भी महसूस करवाता.

वह रेलवे में होने वाले बदलावों का साक्षी रहा है. जब उसने रेलवे में नौकरी शुरू की थी तो पूरे ब्रिटेन की रेलवे राष्ट्रीयकृत थी. उसका एक ही नाम था — ब्रिटिश रेल. सभी कर्मचारियों को पूरे देश में मुफ़्त यात्रा करने की सुविधा मिलती थी. फिर सब कुछ बदल गया. रेलवे के टुकड़े हो गये. हर टुकड़ा एक निजी कंपनी बन गया. रेलवे की सबसे बड़ी यूनियन

तेजेंद्र शर्मा

जन्म : २१ अक्टूबर १९५२ (जगरांव) पंजाब.

शिक्षा : अंग्रेज़ी में एम. ए. (दिल्ली वि. वि.)

प्रकाशन : *काला सागर, ढिबरी टाइट, देह की क़ीमत, यह क्या हो गया!, बेघर आंखें, सीधी रेखा की परतें, क़ब्र का मुनाफ़ा, दीवार में रास्ता (सभी कहानी संग्रह). ये घर तुम्हारा है... (कविता एवं ग़ज़ल संग्रह). सपने मरते नहीं (क. सं.-प्रकाशनाधीन)*

विशेष : *कहानी 'अभिशप्त' चौधरी चरण सिंह वि. वि. मेरठ के एम. ए. हिंदी के पाठ्यक्रम में शामिल. और कहानी 'पासपोर्ट का रंग' गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, नोयडा हिंदी के पाठ्यक्रम में शामिल.*

पुरस्कार/सम्मान : *केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का डॉ. मोटुरी सत्यनारायण सम्मान (२०११), उ. प्र. हिंदी संस्थान का प्रवासी भारतीय साहित्य भूषण सम्मान (२०१३), हरियाणा राज्य साहित्य अकादमी सम्मान (२०१२), 'ढिबरी टाइट' के लिए महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार, भारतीय उच्चायोग, डॉ. हरिवंशराय बच्चन सम्मान (२००८).*

संप्रति : *ब्रिटिश रेल (लंदन ओवरग्राउंड) में कार्यरत.*

आर. एम. टी. और ड्राइवरों की यूनियन ऐज़लेफ़ ने कड़ी चुनौतियों का सामना करते हुए सभी पुराने कर्मचारियों की सुविधाओं को बचाये रखा. यानी कि उसे आज भी पूरे देश में मुफ़्त यात्रा की सुविधा मिलती है. मिलने को तो उसकी पत्नी और बच्चों को भी मिल सकती है... बस परिवार के बारे में सोचते ही उसके विचारों में दर्द का अहसास शामिल हो जाता है. न जाने उससे कहां क्या ग़लती हो गयी कि सब रिश्ते जीवित होते हुए भी वह अपना परिवार खोज रहा है. उसने अब सोचना बंद कर दिया है कि ग़लती किसकी थी. दो रिश्तों के बीच पैदा हुई दरार के बारे में सच्चाई उन दोनों को ही मालूम होती है. बाक़ी सब तो झूठ ही कहलायेगा.

झूठ सच के मसले भी तो उसके जीवन को मथते रहते हैं. कभी-कभी तो लगता है कि सारे जहां का दर्द बस उसी के दिल में है. उसे इस बात की भी परेशानी है कि रेलवे ने भला 'ऑयस्टर कार्ड' का सिलसिला शुरू ही क्यों किया? अच्छे भले क़ाग़ज के बने टिकट होते थे. जब जी चाहे ख़रीदो और यात्रा के बाद मामला ख़तम. मगर नहीं क़ाग़ज के स्थान पर प्लास्टिक के कार्ड बना दिये हैं. कर्मचारियों की संख्या घटा कर हर स्टेशन पर लाखों रुपये के गेट लगवा दिये. 'ऑयस्टर कार्ड' गेट को छुआया और खुल जा सिमसिम की तर्ज़ पर गेट खुल गया. अरे भाई, जीवन में मशीन पर इतना आश्रित क्यों हुआ जाये. मशीन रोज़ाना तंग करती है, ग़लतियां करती है, फिर उन्हें सुधारा जाता है. यदि गेट खुले हैं तो कभी–कभी यात्री अपना कार्ड छुआना भूल सकता है. ऐसी हालत में मशीन लुटेरे का किरदार निभाती है और एक पाउंड पचास पैंस के स्थान पर चार पाउंड साठ पैंस खा जाती है. बुशी में आज तक गेट नहीं लगे. मगर वहां भी ऑयस्टर रीडर लगा दिये गये हैं. बेचारे यात्री ! भूल ही जाते हैं कि उन्हें ऑयस्टर मशीन पर छुआना है वर्ना धर लिये जायेंगे.

फिर भी उसे लंदन एक मामले में दिल्ली और मुंबई से बेहतर लगता है. यहां यदि यात्री बिना टिकट यात्रा करता भी है तो उसे अपराधी नहीं माना जाता. वह उस स्टेशन पर जा कर भी टिकट ख़रीद सकता है जहां उसे उतरना है. बस सच–सच बता दे कि वह कहां से आ रहा है. यहां वह पाता है कि प्रवासियों ने ब्रिटेन की इस सहृदयता का अनुचित लाभ उठाया है.

हैच-एंड स्टेशन बहुत ही ख़ूबसूरत स्टेशन है. वहां प्लेटफ़ॉर्म नंबर एक पर फूलों की ऊंची–सी दो क्यारियां बना दी गयी हैं. स्टेशन के मुख्य द्वार पर लिखा है कि स्टेशन उन्नीस सौ ग्यारह में बना था. उस समय यह मेन लाइन का स्टेशन था. आजकल केवल लोकल रेल चलती है इस लाइन पर. स्टेशन के ऊपर एक क्लॉक टॉवर भी बना है. दूर से समय दिखाई दे जाता है. कबूतर बहुत आते हैं स्टेशन पर और बैठे-बैठे प्लेटफ़ॉर्म पर अपने होने के निशान अपनी बीट के रूप में छोड़ जाते हैं. रोज़ाना दिन में दो बार ऐसी जगहों को धोया जाता है. फिर सोचता है, क्या भारत में ऐसा हो सकता है.....

वह महसूस करता है कि हैच-एंड स्टेशन पर पेंशन पाने वाले लोगों की संख्या कहीं अधिक है. लंदन में साठ वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को सरकार द्वारा एक फ़्रीडम पास दिया जाता है. इस पास के चलते कोई भी वरिष्ठ नागरिक लंदन में बस या अंडरग्राउंड रेल में मुफ़्त यात्रा कर सकता है. ये फ़्रीडम पास भी मुफ़्त ऑयस्टर का ही एक रूप है. मगर मशीन इनके साथ अधिक ज़्यादती करती है. मुफ़्त के

माल को पहचान नहीं पाती है और उसे ख़ुद उठ कर पेंशन-याफ़्ता लोगों के लिए गेट खोलना पड़ता है.

दोपहर के समय यात्रियों की आवाजाही में कुछ कमी हो जाती है. हैच-एंड मूलत: एक रिहायशी इलाक़ा है. सुबह से दोपहर तक यात्री शहर की तरफ़ निकलते हैं और शाम को वापिस घर की तरफ़ लौटते हैं. केवल दोपहर का ही समय ऐसा होता है जिसमें बुकिंग ऑफ़िस की खिड़की कुछ समय के लिए खाली रहती है. इसी काल के दौरान कुछ ऐसे पेंशन-याफ़्ता यात्री उससे कुछ सूचनाएं मांगने आते हैं. कुछ रटे रटाये से प्रश्न –

''मुझे अगले महीने की बीस तारीख़ को मैनचेस्टर जाना है और पच्चीस को वापिस आना है. टिकट कितने का होगा?''

''वॉटफ़र्ड जंक्शन के लिए कौन सा प्लेटफ़ॉर्म होगा ?''

''आज रेल सर्विस ठीक चल रही है?''

''सीनियर सिटीज़न रेल कार्ड कितने का पड़ता है ? इससे कितना डिस्काउंट मिलता है?''

एक गुजराती महानुभाव तो एक ही बात हर रोज़ पूछते, ''इस सप्ताहांत में रेलगाड़ियां चल रही हैं न? कोई इंज़ीनियरिंग का काम तो नहीं चलने वाले?''

शुरू-शुरू में उसे बहुत हैरानी होती कि ये कुछ जाने पहचाने से चेहरे बस एक-से सवाल पूछ कर चले जाते हैं. उसके साथी कर्मचारी उनका मज़ाक उड़ाते. किंतु उसे उनकी आंखों में एक विचित्र-सा सूनापन महसूस हो जाता. जिस दर्द को वह अपने भीतर छिपाये हुए था, वही दर्द खिड़की की दूसरी ओर उसे झिंझोड़ता दिखायी देता. ऐसा क्या है जो उसे उनके दर्द को अपना दु:ख बना रहा है? ज़ाहिर है कि ये लोग पागल तो हो नहीं सकते! उसने तय कर लिया है कि अब वह उन्हें टालेगा नहीं. उन्हें यही महसूस करवायेगा कि उनकी बात को गंभीरता से सुन रहा है. अब वह बहाने से उनका नाम भी पूछने लगा.

''जी आपको कब यात्रा करनी है?... आपका नाम, टेलिफ़ोन नंबर?''

अब उसके पास क़रीब आठ नाम हो गये हैं. पांच अंग्रेज़, दो भारतीय और एक अश्वेत नाम. उसके भीतर का भारतीय इस बात से परेशान था कि अकेलेपन के इस सफ़र में भारत के लोग क्यों शामिल हैं? फिर अपने भीतर झांकता... अकेलेपन की एक लंबी डगर... दूर दूर तक सन्नाटा... कहीं कोई आवाज़ नहीं... चींटी के सांस लेने की आवाज़ भी उसके भीतर सुनाई दे जाये... पत्नी अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो गयी... पुत्र लंदन के एक हिस्से में ही रहता है... पुत्री भारत में है... और वह अपना भोजन स्वयं बनाने को अभिशप्त है.

अब उसने खिड़की को ही एक घर बना लिया है. उसके मित्रों ने भी आपस में दिन बांट लिये हैं. समय वही रहता है दोपहर के एक बजे से तीन बजे के बीच. उसी समय यात्रियों की भीड़ नहीं होती और उसके पास तुलनात्मक रूप से काम कम रहता है.

अब उन्हें टिकट की झूठी इंक्वायरी करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती. वे सीधे आकर उससे बात करते हैं. वह भी उन महिलाओं को गॉरजियस, ब्यूटीफ़ुल, लवली लेडी कह कर संबोधित करता है. पुरुष उसके लिए यंग मैन होते हैं. दर्द सबका एक ही सा... टीस उठती... हैरानी भी होती है कि सबकी समस्या एक–सी क्यों है? यह अकेलापन किसी मज़हब, किसी जात, किसी समुदाय का मोहताज़ नहीं होता. बस किसी को भी अपने शिकंजे में जकड़ लेता है.

सबरीना इटली से है. यहां आकर बस गयी है. बच्चे बड़े होकर फुर्र से उड़ गये. उसे बस मदर्स-डे पर कार्ड आ जाता है... उसे नहाना तक याद नहीं रहता. जबसे खिड़की पर आकर खड़ी होने लगी है, नहाने के बाद परफ़्यूम भी लगाने लगी है.

जॉन की समस्या है कि उसके तीन-तीन बेटे हैं मगर उसे काउंसिल के भरोसे ओल्ड पीपल्स होम में रहना पड़ रहा है. वह अपने अच्छे दिनों की यादें बांटने के लिए खिड़की पर आ खड़ा होता है.

तीन सप्ताह पहले कार्ल यंग और शैरी यंग उसके सामने आ खड़े हुए. दोनों देखने में पिचहत्तर से कम नहीं लग रहे थे. दोनों यॉर्क में रहते हैं. चालीस वर्ष के बाद कार्ल हैच-एंड स्टेशन पर आया है. बताने लगा, ''मैं यहां हैच-एंड में ही पैदा हुआ, पढ़ाई की. पहले हैच-एंड स्टेशन पर तेज़ गति की गाड़ियों के लिए भी एक प्लेटफ़ॉर्म हुआ करता था. आज के प्लेटफ़ॉर्म नंबर एक के पीछे. क़रीब बियालीस वर्ष पहले मेरे पिता उस प्लेटफ़ॉर्म पर खड़े थे. लोगों का कहना है कि तेज़ गति की गाड़ी वहां से गुज़री और मेरे पिता उसकी गति की लपेट में आ गये...मगर...''

कार्ल की चुप्पी ने घोषणा कर दी थी कि वह इस बात को नहीं मानता. उसके लिए सच्चाई यही है कि उसके पिता ने बियालीस साल पहले हैच-एंड स्टेशन पर आत्महत्या कर ली थी. मृत्यु की ख़ामोशी तीनों के बीच छा गयी थी. वह उन बुज़ुर्ग पति-पत्नी को पुल की सीढ़ियों से चढ़ा कर उस बिंदु तक ले गया जहां से वो पुराना प्लेटफ़ॉर्म साफ़ दिखायी देता

था. कार्ल और उसकी पत्नी ने जैसे ख़ामोश गीली निग़ाहों से अपने पिता की आत्मा की शांति की प्रार्थना की.

संयोग से उसे रेल्वे से उसी दिन एक बॉल पेन उपहार के रूप में मिला था. उसने यंग दंपत्ति को वो पेन भेंट में दे दिया. गीली आंखें लिये कार्ल यंग ने उसका हाथ दबा कर धन्यवाद नहीं कहा... लेकिन प्रेषित कर दिया. फिर उसने अपने बैग में हाथ डाला और इस्तेमाल की हुई कोलोन की अपनी शीशी निकाल ली. मिन्नत भरी निग़ाहों से देखते हुए उसे देने लगा....

वह चाहता तो मना भी कर सकता था... मगर कैसे मना करता... पिता की यादें अचानक उस शीशी की ख़ुशबू का हिस्सा बन गयी थीं.

झुकी पीठ लिये पटेल साहब अफ़्रीका से इदी अमीन द्वारा निकाले गये थे. बच्चों ने भी दिल से निकाल दिया. हर गुरूवार नॉर्थविक पार्क अस्पताल में कम्यूनिटी सर्विस करते हैं. मगर अकेलापन अपना ज़हर उन पर भी उगलता रहता है.

उसकी सबसे प्रिय मित्र बन गयी है कैसी. कैसी सत्तर साल की है. छरहरी है... प्रतिदिन एक्सरसाइज़ करती है... साफ़ सुथरी है... मगर आंखों में खालीपन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं... पहले दिन का प्रश्न था, ''लंदन यूस्टन से १२.५७ पर चलने वाली गाड़ी कितने बजे तक हैच-एंड पहुंचेगी?'' और फिर दूसरे, तीसरे, चौथे दिन वही सवाल. उसे हैरानी हुई. वह सोच में पड़ गया कि इसके पीछे कारण क्या हो सकता है? लगभग गीली आंखों से प्रश्न कर पाना आसान नहीं था. उसका पुत्र उसे बिना बताये ही कहीं चला गया. सात वर्ष हो गये हैं उसे प्रतीक्षा करते. उसे यह भी याद नहीं रहा कि वह लंदन से किस समय की गाड़ी में चढ़ता था. ना जाने कहां से १२.५७ का आंकड़ा उसके दिमाग़ में जम गया था.

''डियर कैसी, तुम अब अपने बॉय की जगह कोई बॉय फ्रेंड ढूंढना शुरू कर दो. अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है... तुम्हें चाहने वाले एक नहीं कई मिल जायेंगे.'' उसने कैसी के मन में एक नयी उमंग भर दी, जीने की चाह!

खिड़की ने अचानक सबके जीवन में जीने की ललक पैदा कर दी है. जी तो वे पहले भी रहे थे मगर अब वापस इंसान बन गये हैं क्योंकि इंसान को जानवर से अलग करने वाली चीज़ है संप्रेषण. यदि आप बातचीत ही नहीं कर सकते तो भला इंसान किस प्रकार के हुए.

अब उस स्टेशन पर उसने अपना एक परिवार खड़ा कर लिया है. अपने मित्रों के लिए चिकन करी बना कर लाता है.

अलग-अलग प्लास्टिक के डिब्बों में डालता है. दोनों भारतीय शाकाहारी हैं. मगर बाक़ी सभी उसकी स्वादिष्ट पाक कला का आनंद उठाते हैं.

अबाना अफ़्रीका से है. वह अपने हाथों से उसके लिए मटन पुलाव बना कर लाती है. उसे जीने का कारण मिल गया है. हैच–एंड स्टेशन की यह खिड़की अचानक स्वर्ग का द्वार बन गयी है. उसे मिला कर नौ लोगों को जीने का कारण मिल गया है.

पिछले सप्ताह भर से सोच रहा है कि अपना साठवां जन्मदिन कैसे मनाये. मनाये भी या नहीं. बस हो गया निर्णय. अब खिड़की को केवल खिड़की नहीं बनी रहने देगा. अब खिड़की से बाहर निकलना होगा. उसने देखा है कि परिवार अपने बच्चों का जन्मदिन मैक्डॉनल्ड रेस्टॉरेंट में ग़ुब्बारे और सजावट के साथ मनाते हैं. उसे अपने भीतर भी एक बच्चा चहकता महसूस हुआ. उसने निर्णय ले लिया था. उसके खिड़की के साथी बच्चे सभी मिल कर मैक्डॉनल्ड में ही उसका जन्मदिन मनायेंगे.

उसने फ़ोन उठाया और मैक्डॉनल्ड का नंबर मिलाने लगा.

33-A, Flat No. 2, Spencer Road,
Harrow & Wealdstone,
HA3 7AN (Middlesex), U.K.
Mobile: 00-44-7400313433.
Email: kahanikar@gmail.com

कहानी

अनचाहे मोड़

✍ डॉ. दामोदर खड़से

आज की रात आशुतोष को बिलकुल नींद नहीं आ रही थी. नौकरी का पहला दिन था उसका. पुणे के उपनगरीय इलाके के एक होटल में वह ठहरा था. यह होटल उसकी कंपनी के बिलकुल क़रीब था. फिर भी २०-२५ मिनट लग ही जाते हैं. वैसे रोज़ सुबह कंपनी की बस यहां आ जायेगी. पहला दिन ज्वाइन करने की औपचारिकता और काम को समझने में ही बीत गया. आशुतोष पुणे की इस सारी चमक-दमक को देखकर मोहित हो गया. सॉफ़्टवेयर की इस कंपनी में काम करना उसके लिए किसी चकाचौंध से कम नहीं था. कंपनी के भीतर प्रवेश करते ही वह जैसे किसी अंतर्राष्ट्रीय कॉर्पोरेट ऑफ़िस-सा महसूस करता. अमरावती जैसे तुलनात्मक रूप से छोटे शहर में पढ़-लिखकर आशुतोष हमेशा ही पुणे में काम करने के सपने संजोता रहा. वह ईमेल के माध्यम से तमाम कंपनियों के संपर्क में रहता और अंततः एक प्रतिष्ठित सॉफ़्टवेयर कंपनी में रोज़गार पाकर वह फूला न समाया. अमरावती और पुणे के बीच की स्वप्निल यात्राओं में वह खो गया और अनायास ही बाबा याद हो आये कि आज यदि वे होते तो उनके चेहरे की ख़ुशी आशुतोष को सातवें आसमान पर पहुंचा देती. आदमी हमेशा जो नहीं मिल पाता उसके पीछे भागता है. अतीत उसका पीछा करता रहता है. पर बाबा होते तो... पता नहीं कब उसकी आंख लग गयी... सारा उहापोह अचेतन में उतर गया!

आशुतोष जल्दी ही नये काम का अभ्यस्त हो गया. सभी अपने-अपने काम से मतलब रखते. आपस में मुलाकात लंच पर होती. सभी अपने-अपने 'क्यूब' में व्यस्त होते. समय कैसे बीतता, पता ही न चलता. पूरी कंपनी अलग-अलग प्रॉजेक्ट का ठेका लेती और काम करवाकर सप्लाई करती. विदेशी कंपनियों के लिए भी वे काम करते. वेतन ठीक था पैंतीस हजार. दूसरे इन्सेंटिव भी मिलते. काम अधिक होता पर मानसिक दबाव नहीं. टीम लीडर के नियंत्रण में सब चलता. बग़ल का ही सुरेश आया और बोला — ''तुमने ब्रेकफास्ट किया?''

''हां''

''कहां लिया?''

''पास के ही होटल में!'

''अरे तुम्हें कूपन नहीं मिले?''

''नहीं, मुझे नहीं मालूम!''

''चलो मैं दिलवाता हूं.'' दोनों एच. आर. के पास गये. आशुतोष को बताया गया कि आज सभी नये आये लोगों को कूपन दिये जाने वाले थे. पर वह आ गया था तो तुरंत इश्यू कर दिया. कोई परेशानी नहीं थी. वे सोडेस्को के कूपन कंपनी के बाहर भी बड़ी दूकानों में चलते. आशुतोष नया था. धीरे-धीरे सब समझ रहा था.

''तुम कहां रहते हो?''

''पास के ही होटल में...'' आशुतोष

डॉ. दामोदर खड़से

जन्म : ११ नवंबर १९४८; शिक्षा : एम. ए., एम. एड., पीएच-डी. (हिंदी).

कार्याध्यक्ष : *महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई.*

उपाध्यक्ष : *उपाध्यक्ष, हिंदी समिति, भारतीय बैंक संघ, मुंबई (१९८८ से २००५).*

प्रकाशित पुस्तकें : *'भटकते कोलंबस', 'पार्टनर', 'आख़िर वह नदी थी', 'जन्मांतर गाथा', 'इस जंगल में' (कहानी संग्रह); निखडलेले चाकं (मराठी संस्करण) अनु. विजया भुसारी, 'उत्तरायण' (मराठी संस्करण) अनु. चंद्रकांत भोंजाल, संपूर्ण कहानियां, 'काला सूरज', 'भगदड़' (उपन्यास), 'खंडित सूर्य' (मराठी संस्करण)- अनु. चंद्रकांत भोंजाल, कोलाहल (मराठी संस्करण)- अनु. चंद्रकांत भोंजाल, 'अब वहां घोंसले हैं', 'जीना चाहता है मेरा समय', 'सन्नाटे में रोशनी, 'तुम लिखो कविता', 'जीवित सपनों का यात्री', 'एक सागर और' (कविता संग्रह).*

राजभाषा विषयक : *राजभाषा प्रबंधन : संदर्भ व आयाम, व्यावहारिक अनुवाद, कार्यालयीन व व्यावहारिक हिंदी, बैंकों में हिंदी : विविध आयाम.*

विदेश यात्रा : *'विश्व हिंदी न्यास' , न्यूयार्क के वार्षिक अधिवेशन में उद्घाटन वक्तव्य एवं संगोष्ठी में सहभाग. वाशिंगटन में आयोजित कवि-सम्मेलन में कविता-पाठ. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विभिन्न भागों की साहित्यिक यात्रा.*

विशेष : *विद्यालयों/ महाविद्यालयों में रचनाओं का पाठ्यक्रमों में समावेश.*

सम्मान : *केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, विश्व हिंदी न्यास, न्यूयार्क; महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई; गुरुकुल सम्मान, पुणे; मध्य प्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल; आचार्य आनंद ऋषि सम्मान, हैदराबाद; हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ; केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा.*

सदस्य : *१. बोर्ड ऑफ स्टडीज़, एस. एन. डी. टी. वि. वि., मुंबई (२००० से २००५), २. बोर्ड ऑफ स्टडीज़, पुणे वि. वि. पुणे (२००५-२०१०), ३. भारतीय रिज़र्व बैंक, के. का. मुंबई शब्दावली समिति (२००५ से २००८); ४. केंद्रीय हिंदी समिति.*

अनुभव : *९ वर्षों तक अध्यापन, ३० वर्षों तक बैंक ऑफ़ महाराष्ट्र में सहायक महाप्रबंधक के रूप में सेवा-अनुभव.*

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन.*

''तुम मेरे साथ क्यों नहीं आ जाते?'' मैं पाषाण इलाके में एक फ़्लैट में रहता हूं. तुम देख लो, तुम्हें ठीक लगे तो हम साथ रह लेंगे. मैं अकेला ही हूं. किराया शेयर कर लेंगे.

''पहले मैं फ़्लैट देखूंगा. फिर देखेंगे.'' आशुतोष ने कहा. नाश्ते का बिल आशुतोष ने ही दिया. कूपन की शुरुआत हो गयी थी.

होटल पहुंच कर आशुतोष ने सोचा कि फ़्लैट का किराया शेयर करना अधिक व्यावहारिक होगा.

आशुतोष और सुरेश की जोड़ी जम गयी. दोनों व्यक्तिगत बातें भी करने लगे थे. सुरेश को कंपनी में एक साल हो गया था. सुरेश मैसूर का रहने वाला था. बेंगलूर में भी उसने कुछ दिन काम किया था.

''बेंगलूर छोड़कर पुणे क्यों आ गये? वह तो मैसूर के क़रीब था.''

''क़रीब रहकर क्या करेंगे. यहां सैलरी ज़्यादा है. आगे का स्कोप अधिक है. यहां जॉब जितना करेंगे उतना नया सीखने की गुंजाइश होगी. सी वी में बढ़ोत्तरी होगी.''

''पर घर के पास रहने से अच्छा रहता है न!''

''कभी-कभी दूर रहने में ठीक रहता है. प्रेम बना रहता है...'' कहकर सुरेश टी. वी. पर ख़बरें देखने लगा. आशुतोष को लगा कि उसने कोई अप्रिय बात छेड़ दी है.

''शादी कब करोगे?'' आशुतोष ने विषय बदलना चाहा.

''इसी झंझट में फंसा हूं...''

''क्यों इसमें झंझट क्या है?''

''मैं पुणे में मराठी लड़की से शादी करना चाहता हूं. घरवालों ने किसी लड़की वालों से बेंगलूर में बात की है. कह रहे थे बहुत पैसेवाले लोग हैं. पर मुझे वहां शादी नहीं करनी है.''

''यहां कौन है भई, जिसने हमारे सुरेश का दिल चुरा लिया है. अपनी ही कंपनी में है क्या?''

''हां, कल मैं लंच के समय मिलवाऊंगा. दरअसल मैं ख़ुद ही तुमसे मिलवाना चाहता था. यहां अपना कौन है? मानसी पुणे की ही है. उसके बारे में मुझे ज़्यादा जानकारी नहीं है. पर मुझे वह अच्छी लगती है. बातों से ऐसा लगता है कि मैं भी उसे अच्छा लगता हूं.''

''शादी की कोई बात की है?''

''नहीं....''

''कोई बात नहीं, अब कर लेंगे.'' आशुतोष ने आश्वस्त किया. हालांकि लड़कियों से बात करने के मामले में वह ख़ुद ही बहुत फिसड्डी था.

एक बड़ी-सी इमारत के टैरेस पर कंपनी का कैफ़ेटेरिया है. इस ऊंचे टॉवर की पांचवीं और सातवीं मंज़िल पर कंपनी का ऑफ़िस है. टैरेस के कैफ़ेटेरिया पर डेढ़ बजे सारे लोग एक साथ ही आ जाते हैं, लगभग जगह पकड़ने की जल्दी सबको होती है. पांच काउंटर थे बुफे के. लंबी-लंबी लाइनें हर काउंटर पर.

इस टैरेस पर दोपहर में चहल-पहल. छोटे-छोटे समूहों में भोजन. पच्चीस से तीस-बत्तीस के बीच के युवा. लगभग सभी जींस में. लड़कियां भी जींस में ही. यहां लगता कि महिलाओं के आरक्षण के बिना ही लगभग आधी संख्या तो लड़कियों की ही है. सब लड़के-लड़कियां नि:संकोच हंसी-ठिठोली के साथ आपस में बतियाते. लड़कियां कसी जींस में. कइयों पर यह बहुत फ़बता. युवा ऊर्जा, उत्साह से लबालब यह चहल-पहल आशुतोष को बहुत लुभाती. वह कभी-कभी बहुत तल्लीन होकर देखता. सुरेश की चुटकी से उसका ध्यान टूटता. आशुतोष को लगता कि देश की यह ताकत ही दुनिया में अपना लोहा मनवायेगी. कितना अच्छा माहौल है. सब भोजन के समय केवल काम की बातें करते. न कोई राजनीति न कोई उठा-पटक. यह एक नयी तस्वीर थी. इसी भीड़ में से सुरेश किसी के साथ आशुतोष की ओर बढ़ रहा था. मानसी होगी...

''मानसी ये है — आशुतोष, मेरा रूम पार्टनर.''

''हॅलो,... हाउ आर यू?'' मानसी ने हाथ बढ़ा दिया.

''आई एम फ़ाइन'' आशुतोष ने कहा और आनन-फानन में मानसी का हाथ थाम लिया. आशुतोष ने महसूस किया कि मानसी की तुलना में उसका अंग्रेज़ी उच्चारण कम प्रभावी है और संवादों में आशुतोष कुछ-कुछ दब्बू की तरह साबित तो नहीं हो रहा है.

तीनों बुफ़े की लाइन में लग गये. अपनी-अपनी पसंद की चीज़ें लेकर एक टेबल पर तीनों बैठ गये. आशुतोष सोचने लगा कि सुरेश की तुलना में हर दृष्टि से मानसी बीसा है. दिखने में, बातों में और व्यवहार में भी अधिक आगे. यह कैसे पसंद करेगी सुरेश को...?

रात को कमरे पर आने के बाद सुरेश ने बताया कि मानसी ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है. उसके घर के लोग

भी इसके लिए राजी हैं. रजिस्टर्ड शादी होगी और मित्रों के बीच एक पार्टी या रिसेप्शन जैसा कुछ हो जायेगा. यह सब मानसी के घर से पहले से तय था.

''तब तो मुझे यह कमरा छोड़ूंगा पड़ेगा.''

''नहीं, कमरा मैं छोड़ूंगा. हमें थोड़ा बड़ा फ़्लैट चाहिए.'

आशुतोष स्तब्ध था. न सुरेश के घर के लोगों की सहमति, न ही मानसी और सुरेश के बीच जाति, भाषा, प्रदेश परिचय-अपरिचय की कोई समस्या, न कुछ लेन-देन, न बारात, न रिश्तेदारी... बस चट मंगनी, पट विवाह...!

सुरेश ने नया फ़्लैट किराये से ले लिया. उसकी शादी हो गयी और एक अच्छे पार्टनर से दोनों बिछुड़ गये. इसी बीच अमरावती में आशुतोष की मां का अचानक देहांत हो गया. बहन ज्योति अकेली रह गयी. वह भी कंप्यूटर साइंस में ग्रेज्युएट हो गयी थी लेकिन अमरावती और मां को छोड़ना नहीं चाहती थी. मां के अचानक चले जाने पर अमरावती में उसका मन न लगता. वह आशुतोष के साथ पुणे आ गयी. मां की इच्छा अधूरी ही रह गयी थी क्योंकि, ज्योति की शादी नहीं हो पायी थी. मां के अचानक देहांत से ज्योति में पता नहीं कहां से भीतरी मज़बूती आ गयी थी. शादी के बाद घर-गृहस्थी तक सीमित सपनों वाली ज्योति अब एक कंपनी में नौकरी करने लगी और जल्दी ही क़स्बाई सीमाओं को झटककर पुणे के तौर-तरीक़ों में ढल गयी.

दोनों भाई-बहन किराये के फ़्लैट में धीरे-धीरे ज़रूरी छोटे-छोटे सामान हर महीने ख़रीदने लगे. कभी टी. वी. तो कभी माइक्रोवेव... हां माइक्रोवेव तो बहुत ज़रूरी था. एक समय खाना बनाकर वे दोनों टाइम खाते. शाम को माइक्रोवेव

में गरम करके वे अपना समय और कामों में गुज़ारते.

एक दिन ज्योति देर से घर पहुंची. आशुतोष ने कुछ नहीं पूछा. पर लग रहा था कि वह कुछ कहना चाहती है.

''क्या बात है? ऑफ़िस में सब ठीक है न?''

''हां सब ठीक है.''

''अब तो लगभग साल होता आ रहा है... तुम्हें सारा कामकाज तो अब मालूम ही हो गया होगा.''

''हां, ऑफ़िस का कोई झंझट नहीं...'' ज्योति ने कुछ इस तरह देखा कि आशुतोष समझ गया कि बात कुछ और है.

''फिर क्या बात है?''

ज्योति बहुत संकोची लड़की रही है. पर अब साहस आ गया है. आशुतोष उसका बड़ा भाई है. अब तो मां और पिता दोनों है. मन की बात तो उसे बतानी ही होगी. ख़ासकर वैसी जो बहुत ज़रूरी है. उसने काफ़ी विचार किया इस विषय पर और कह दिया, ''भैया, कल शनिवार है. छुट्टी का दिन. कोणार्क आपसे मिलना चाहता है.''

''कोणार्क. कौन कोणार्क?''

''मेरे साथ काम करता है.'' आशुतोष सब समझ गया. फिर भी पूछता रहा कि कहां से है, कबसे है, पुणे में कहां रहता है, उसके माता-पिता कहां हैं, क्या करते हैं? आशुतोष को अपने कुछ प्रश्नों के उत्तर तो मिले पर माता-पिता की जानकारी पूछकर बताने की बात ज्योति ने कही.

पूरी रात आशुतोष मन पर एक खलबली का बोझ लिये करवटें बदलता रहा. कोई उत्तर न मिलता, हां कहने के अलावा. फिर भी माता-पिता का दायित्व निबाहना है. ज्योति के भविष्य का सवाल था. ख़ैर! कल सुबह जब कोणार्क आयेगा, तब बात करेंगे, सोचेंगे और अंतिम निर्णय लेंगे.

आशुतोष सोचता रहा. एक नया समाज बन रहा है. घर से बाहर निकल युवा अपने जीवन का निर्णय स्वयं ले रहे हैं. मां-बाप हैं तब भी शादी-ब्याह के मामलों में माता-पिता बच्चों की ज़िंदगी से छिटक जाते हैं. अधिकांश मामलों में समझौते हो जाते हैं. कुछेक मामले ऐसे भी होते हैं, जो स्थितियों के निर्णय के रूप में स्वीकार कर लिये जाते हैं, जिनमें रिश्तों का भविष्य आने वाला कल तय करता रहता है. ज्योति-कोणार्क का रिश्ता आशुतोष ने मान लिया. कोणार्क, भुवनेश्वर का रहने वाला था. शादी में माता-पिता और क़रीबी रिश्तेदार आये तो पर एक बुझी-बुझी–सी बाती लेकर. ज्योति शादी के बाद कोणार्क के साथ चली गयी. कोणार्क का किराये का फ़्लैट था. आशुतोष फिर अकेला हो गया.

आशुतोष अब अपने बारे में सोचने लगा था. उसके सपने दस्तक देने लगे थे. सुरेश की गृहस्थी उसे बहुत अच्छी लगती. उन्होंने कई बार आशुतोष को घर पर खाने पर बुलाया था. सुरेश ने नया फ़्लैट ख़रीदा है. सुरेश फ़्लैट दिखा रहा था. आशुतोष किचन में अटक गया,

''भई सुरेश किचन का डिज़ाइन बहुत अच्छा लगा मुझे.''

''मानसी की पसंद है. हमने पसंद आपस में बांट ली थी. किचन मानसी का और ड्राइंग रूम मेरा... और... और ये बेडरूम हम दोनों की पसंद का...''

आशुतोष को बेडरूम में ज़्यादा निहारना अच्छा नहीं लगा... ''अच्छा है'' कहकर वह ड्राइंग रूम में आ गया और नये डेक पर पुराने गाने की सीडी पर वह मंत्र-मुग्ध हो गया था. 'सौ बार जन्म लेंगे...' मोहम्मद रफ़ी की इस आवाज़ पर आशुतोष के सपने हिचकोले ले रहे थे...''

''कहां हो आशुतोष.... चलो खाना खाते हैं.'' दोनों खाने की टेबल पर थे. मानसी भी ज्वाइन हो गयी.

''बहुत अच्छा लगा, तुम्हारी गृहस्थी और नया फ़्लैट देखकर.'' आशुतोष ने भीतर से कहा.

''अब तुम्हारी बारी है आशुतोष... अब तक किसी से कोई वादा लिया या दिया नहीं क्या? जल्दी करो. फ़्लैटों के भाव रोज़ चढ़ रहे हैं और अच्छी लड़कियां ज़्यादा दिन अकेले नहीं रह पातीं.''

''बस भी करो भई. फ़्लैट लेना तो पुणे में आसान नहीं लगता....''

''फिर शादी कर लो. दोनों कमायेंगे तो आसान हो जायेगा...'' सुरेश ने मानसी की ओर देखा. मानसी मुस्कुरा दी. आशुतोष को दोनों का तालमेल बहुत अच्छा लगा. मानसी ने वाकई बहुत तल्लीनता से सब कुछ संभाल लिया था. आशुतोष किसी मानसी के संयोग को मन में उतारकर कमरे पर लौट आया था. आज तक उसने किसी की ओर ऐसी नज़र से नहीं देखा था. पर अब वह अपने आपके प्रति अधिक सजग हो गया था. कपड़ों के रंग, जूतों की पॉलिश, डियोडंट, बाल काढ़ने की स्टाइल पर वह सजग रहने लगा. अपने बोलचाल और व्यवहार को भी उसने सुधार लिया था. पर सब कुछ सहज और स्वाभाविक. बहुत एग्रेसिव वह कभी नहीं था. सुरेश की बात उसे हमेशा याद रहती कि अति एग्रेसिव लड़कों से लड़कियां बिदकती हैं. लड़कियां सौम्य व्यक्तित्व ही पसंद करती हैं. आशुतोष न सिर्फ़ सौम्य है, बल्कि वह आकर्षक व्यक्तित्व का धनी भी है.

लंच के समय आज टैरेस पर एक लड़की के साथ आशुतोष को आता देखकर सुरेश बहुत ख़ुश हुआ. तेज़ी से आगे बढ़ता हुआ उन तक पहुंचा. पहले तो आशुतोष कुछ अचकचाया, फिर परिचय कराया,

''ये है मेरा दोस्त और पुराना रूम पार्टनर सुरेश... और सुरेश ये है सुधा...''

''तुम्हारी नयी पार्टनर मतलब नयी दोस्त... मुबारक हो...'' सुरेश ने दोनों को बारी-बारी से निहारा और खाने की प्लेट उठाने का इशारा किया.

फिर लंबे समय तक सुरेश ने आशुतोष और सुधा को साथ-साथ देखा. वे दोनों खाना खाने अक्सर साथ आते. दोनों की केमिस्ट्री सुरेश को अच्छी लगती. आशुतोष की आंखों में एक नयी चमक उभर आयी थी. उसका चेहरा खिल उठा था. खाने-पीने और कपड़ों पर उसका ध्यान पहले से अधिक रमने लगा था. सुधा भी उसके साथ ख़ुश लगती. छरहरे बदन की सुधा अक्सर ही जींस में होती. उसके कपड़े बहुत महंगे होते. उसके पिता पुणे में एक मल्टीनेशनल कंपनी में रीजनल डाइरेक्टर हैं. क्लब संस्कृति में पली-बढ़ी सुधा बिंदास लड़की थी. शाम को बियर पीने में भी उसे कोई परहेज़ नहीं था. सिगरेट पीना उसके लिए आम बात थी. आशुतोष को यह सब धीरे-धीरे मालूम हुआ. पर जब मालूम हुआ तब तक बात शादी तक पहुंच चुकी थी. सुधा को शादी से पहले भी दैहिक-सुख ग़लत बात न लगती, परंतु आशुतोष इसके पक्ष में नहीं था. उसके संस्कार इसकी इज़ाज़त न देते. उसे लगता था कि शादी के बाद सुधा को वह अपनी तरह ढाल लेगा. मानसी की तरह क्यों नहीं मिली सुधा उसे...

सुधा लंबे समय तक कंपनी से ग़ायब रही. मोबाइल भी न उठाती उसका. फिर पता चला कि उसके पिता इस शादी के लिए राज़ी नहीं थे. उन्होंने सुधा से संबंध तोड़ने की धमकी दी और बाद में सुधा को अपनी तरह मनाने में राज़ी हो गये... अच्छा ही हुआ. आशुतोष को दोस्तों ने समझाया कि उसकी सारी तनख़्वाह तो क्लब, कपड़ों में ही ख़प जाती है. वह रईसज़ादी है. पर आशुतोष के सपनों को कोई क्या समझाये. पहली बार उसने सपने देखे और अब उसकी धज्जियां.... वह बिखर गया. उसकी चाल में उसकी अव्यवस्था देखी जा सकती थी. कपड़े फिर पहले जैसे थे, कभी-कभी तो वह बिना शेव किये ही ऑफ़िस आने लगा. उसके बाल उसके जीवन की बेचैनी बयान करते. वह उखड़ा-उखड़ा रहने लगा. सुरेश का ढाढ़स बंधाना भी उसे सहारा न देता.

रविवार की शाम थी. आज कहीं नहीं गया था बाहर

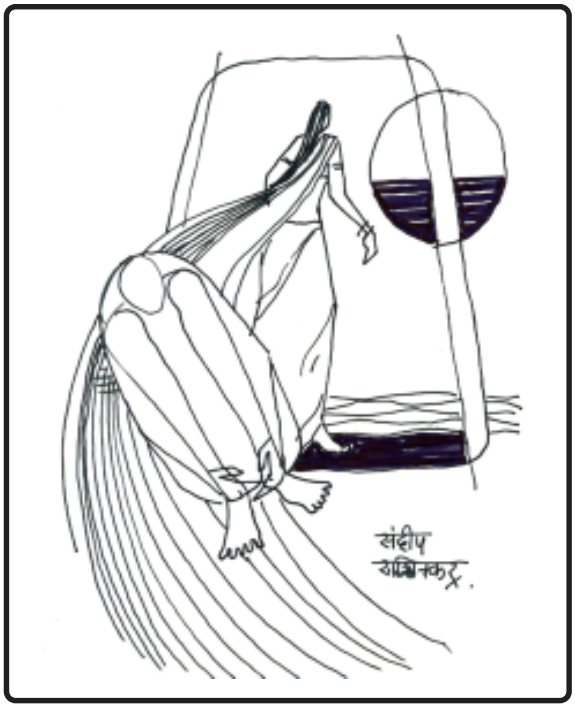

आशुतोष. कल रात को उसने काफी पी ली थी. अभी शाम तक उसका असर था. बेचैनी, उकताहट और खीझ से भरा उसका दिन किसी तरह ढल चुका था. वह कपड़े बदल कर कहीं बाहर जाना चाहता था. फिर विचार बदला... बाहर कहां जाऊं... मॉल... मल्टीप्लेक्स, होटल... सुधा का साथ पीछा करता... उसका चेहरा उसे हर किसी लड़की में दिखता... कहीं नहीं गया वह. टी. वी. पर कोई फ़िल्म आ रही थी, उसे देखता रहा. कौन कलाकार है, फ़िल्म का क्या नाम है, उसे कुछ मालूम न था. तभी दरवाज़े की बेल बजी, सुधा होगी... पल भर में वह कमरे की अस्त-व्यस्तता, अपनी त्रस्तता आईने तक जाकर ठीक कर दरवाज़े की ओर बढ़ा ही था कि फिर बेल बजी. वह संभल गया. कमाल है सुधा... उसने एक झटके में लैच खींचा... ज्योति? अपने बच्चे के साथ. बड़ा-सा सूटकेस और एक एयर बैग... क्या बात है....

''ज्योति, इस तरह... क्या बात है? मुझे फ़ोन तो किया होता.''

''मैंने बहुत कोशिश की. आपका फ़ोन आउट ऑफ रीच ही रहा...''

''ऑफ... कल से बैटरी चार्ज़ करना ही भूल गया. ख़ैर, क्या फिर कोई बखेड़ा है. इस तरह कितनी बार घर छोड़कर आओगी. तुम दोनों ने अपनी मर्जी से शादी की है. और अब तो यह बच्चा?''

''बहुत हो गया भैया. मैंने बहुत-सी बातें आपसे छिपा रखी थीं. अब तो हद ही कर दी कोणार्क ने... आज उसने मुझ पर हाथ उठाया. हर शनिवार-रविवार को वह होटलों में पैसे लुटाता है और नयी-नयी लड़कियों के साथ गुलछर्रे उड़ाता है. कल मैंने टोका तो उसने बात नहीं की और सीधे सो गया. आज सुबह से मुझसे पैसे मांगता रहा. मना करने पर मारने पर उतारू हो गया. बच्चे से भी उसका कोई लगाव नहीं...''

''.....''

''बस दो महीने की बात है भइया! वो तो अच्छा हुआ मैंने अलग वन बेड रूम का फ़्लैट बुक कर लिया है. दो महीने में पजेशन मिल जायेगा.''

''सवाल दो महीने का नहीं है. सवाल तुम्हारी ज़िंदगी का है.''

''मेरे लिए अब यह सवाल ख़त्म हुआ. मैं अपने बच्चे के लिए जिऊंगी. मैं उसके साथ एक छत के नीचे नहीं रह सकती.''

''क्या हो गया ज्योति...?''

''बस नसीब है भइया... देखो न, तुम्हारे साथ भी क्या हो गया....''

''मेरी छोड़....'' आशुतोष ने बच्चे को उठा लिया. वह अपनी मुट्ठियां ज़ोर से हवा में उछाल रहा था और अपनी दूधिया हंसी बिखेर रहा था. उसे देखते ही ज्योति फूट-फूटकर रोने लगी.

आशुतोष अपनी समस्या से उबरा भी नहीं कि ज्योति की ज़िंदगी ने उसे छलनी कर दिया. एक अजीब से वातावरण में ज़िंदगी लुढ़क गयी. दो महीने बाद वास्तव में ज्योति अपने फ़्लैट में चली गयी. कुछ ही दिनों में कोणार्क से तलाक हो गया. फ़ैमिली कोर्ट में आशुतोष भी गया था. कितने सारे लोग तलाक की कतार में हैं... पर लगा अच्छा ही हुआ सुधा से शादी नहीं हुई, नहीं तो वह भी इन्हीं लोगों में से एक होता.

एक उदास-उदास-सी ज़िंदगी आशुतोष और ज्योति को दुहराती रही. ज्योति का बेटा अब स्कूल जाने लगा था. आशुतोष छत्तीस की उम्र पार कर गया. शादी की उम्र फिसलती जा रही थी. बीच में ज्योति को लगा कि भाई की गृहस्थी बस जाने की संभावना है. आशुतोष ने ऐसे कुछ संकेत दिये थे. मिलाने की बात भी हुई. पर संयोग नहीं बन पाया. इसलिए ज्योति ने तय किया कि इस शनिवार-रविवार वह आशुतोष के साथ बितायेगी.

शनिवार की सुबह उसने फ़ोन मिलाया. काफ़ी दिन हो गये मुलाकात को. पर फ़ोन नहीं उठाया आशुतोष ने. अंततः ज्योति आशुतोष के घर गयी. फ़्लैट अंदर से बंद था. बहुत बार बेल बज़ाने के बाद भी कोई हलचल नहीं. ज्योति की धड़कनें बढ़ी. पड़ोसियों से बात की और अंततः पुलिस से संपर्क. दरवाज़ा तोड़ा गया. बाथरूम के पास आशुतोष की लाश....

ज्योति को लगा, आशुतोष के जीवन में फिर कोई और सुधा आयी और निकल गयी.

''आत्महत्या का मामला है....'' पुलिसवाला बोला.

''.....''

''हां, आत्महत्या ही है. पोस्टमार्टम करना होगा. पंचनामे के बाद पुलिस स्टेशन आइए....''

ज्योति पूरी तरह ध्वस्त हो गयी. पुलिस स्टेशन, सरकारी अस्पताल के चक्कर शुरू हो गये. भाई की मौत छोटी हो गयी, पुलिस का आतंक भयंकर हो गया. भाई गया और पुलिस गले में अटक गयी. आत्महत्या का केस बनने पर तमाम तरह की तहकाक़ात.... केस रफ़ा-दफ़ा करने के पुलिस ने ढाई लाख लिये और पोस्टमार्टम को सामान्य करने के डॉक्टरों को पचास हज़ार देने पड़े. तब कहीं भाई का अंतिम संस्कार वह कर पायी. महानगरों में अंतिम संस्कार करना कितना जानलेवा हो जाता है, यह तो जो पीछे रह गये वे ही जानते हैं. ख़ासकर तब जब कोई बाहर से उस शहर में आया हो. केवल सुरेश का साथ बहुत मददगार साबित हुआ.

आठ-दस दिन तक ज्योति आशुतोष के फ़्लैट में ही रुकी. छोटी बच्ची को संभालना कितना भारी था. तेरहवें दिन पूजा-पाठ करके वह फ़्लैट छोड़ देना चाहती थी. तभी बेल बजी, कौन होगा?

''साहब हैं घर पर....''

''नहीं, आप कौन है?''

''हम फर्नीचरवाले हैं. साहब ने फर्नीचर बुक किया था. आधा एडवांस भी दिया था. कहा था कि उनकी शादी होने वाली है... बहुत पसंद से फर्नीचर बनवाया है.... उसकी डिलीवरी देने हम आये हैं. हमको २० दिन देर हो गयी... मैडम हम कहां रखें फर्नीचर....?''

''अब फर्नीचर नहीं चाहिए. आप वापस ले जाइए...''

दरवाज़ा खुला ही छोड़कर ज्योति भीतर जाकर फफक-फफककर रोने लगी.

बी-५०३-५०४, 'हाई ब्लिस', कैलाश जीवन के पास, नरहे रोड, धायरी, पुणे-४११०४१.
मो.:९८५००८८४९६
E-mail :damodarkhadse@gmail.coms

कहानी

एक विधवा और एक चांद

✍ नीला प्रसाद

आज यहां आख़िरी रात है. फ़ैसले की यह रात मान्या के दिल पर बहुत भारी है — अपनी कह और अजीत की सुन सकने वाली आख़िरी रात! 'आज का दिन मेरी उम्मीद का है आख़िरी दिन', नहीं, 'आज की रात मेरी उम्मीद की है आख़िरी रात'... कल सुबह तो इस ट्रेनिंग हॉस्टल में दूर-दूर से इकट्ठा हुए सारे पंछी अपने-अपने बसेरे से उड़, बिछुड़ जायेंगे! इसीलिए तो कह रही है ज़िंदगी — 'तुरंत फ़ैसला लो या उमर भर पछताओ.'

वक़्त की उफनती आयी लहर जब ऐन आंखों के सामने एक चमकदार, क़ीमती मोती डाल गयी है तो उसे मान देकर उठा लेना चाहिए, वरना नियति की दूसरी लहर उसे वापस भी तो ले जा सकती है! दिल के दरवाज़े पर हौले-से दस्तक देते आकर खड़े हो गये को अबकी अंदर बुला ले या हमेशा की तरह दरवाज़ा मज़बूती से बंद किये रहे? प्यार उसकी ज़िंदगी में हमेशा एक आहट की तरह आता और चला जाता रहा है. उस आहट को सुन आगे आने, उसे अपना लेने या उसमें डूब जाने की ख्वाहिश कभी पूरी नहीं हो पायी.

'पर अब तो मैं विधवा हूं — दिल से खाली!' मान्या ने सोचा.

डिनर हो चुका. ट्रेनिंग हॉस्टल के विशाल दस मंज़िले भवन के सामने बड़े से लॉन में रात के अंधेरे में एक कुर्सी पर अकेली बैठी थी, अब बेचैनी में उठकर टहलने लगी. हल्की रोशनी का सुंदर संयोजन और घास के अंदर फिट छोटे-छोटे माइक! आत्मा को शांति पहुंचाती कोई मीठी धुन बज रही है पर वह रोना चाहती है. चाहती है कि प्रेम-भंग के गीत बजें. सारी दुनिया जान जाये कि उसकी ज़िंदगी न कभी महकी, न सुगंध में सराबार हुई.

नहीं, वह चाहती है कि कोई प्रेम गीत बजे. एज इज़ जस्ट अ नंबर. ज़िंदगी अभी बाक़ी है. बाक़ी है सुगंध में सराबोर, किसी में डूबकर इतराना! क्या अजीत अभी आयेगा, सीने से लगायेगा? ज़रूर अब भी कुछ है उसमें, तभी तो अजीत उसे चाहता है. उसकी आंखों में उमड़ते दर्द के समंदर को पी जाना, उसे भरोसा दिलाना चाहता है कि वह अब भी ज़िंदा है, प्यार कर-करके लबालब भिगो दिये जाने के काबिल!

वह सीढ़ियां चढ़ तीसरी मंज़िल पर अपने कमरे में चली गयी. कतार में बने कमरे ट्रेनिंग के लिए आये ऑफ़िसरों को अलॉट कर दिये गये हैं. डेढ़ दशकों से नौकरी कर रहे शादीशुदा, व्यस्त ज़िंदगी जी रहे ज़िम्मेदार लोग हैं सब-के-सब, तो इस सावधानी की कोई ज़रूरत नहीं कि सुरक्षा के लिहाज से महिला अधिकारियों को दूसरे विंग में फैकल्टीज़ के बगल वाले कमरे दिये जायें. यह सब तब होता था जब वह कुंवारी थी.

इसी कतार में पांच कमरों के अंतराल पर दो प्राणियों के दिल कल बिछुड़ जाने के ख़याल से कसक में डूबे हैं. वे धड़क रहे हैं किसी बार-बार महसूसी, फिर भी अनसमझी अनभूति से!

सजे-धजे सुगंधित कमरे में, बिस्तर पर औंधे मुंह लेटी, सुबक-सुबक रोती मान्या यहां आने के बाद के दिनों को एक-

नीला प्रसाद

जन्म : १० दिसंबर १९६१ (रांची).

शिक्षा : फिजिक्स ऑनर्स के साथ बी. एससी.; पर्सनेल मैनेजमेंट और इंडस्ट्रियल रिलेशन में पी. जी. डिप्लोमा.

लेखन : *बारह साल की उम्र से लिखना शुरू किया था. पहली रचना सोलह की उम्र में 'युवा कवि' दिल्ली में प्रकाशित हुई. उसके बाद कविताएं, लेख तथा कहानिया अख़बारों, पत्रिकाओं वग़ैरह में समय-समय पर प्रकाशित और आकाशवाणी से प्रसारित होती रहीं. आकाशवाणी रांची के लिए कई रेडियो नाटक भी लिखे. फिर एक लंबा मौन छा गया.*

लेखन की दूसरी पारी की शुरूआत कविताओं से किनारा करके, सिर्फ़ कहानियां और लेख लिखने से सन २००० के आसपास शुरू हुई. जनसत्ता, दिल्ली के साहित्यिक परिशिष्ट के अलावा 'कथादेश' के प्रेमकथा विशेषांक, २००६ में प्रकाशित कहानी किसी भी राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका में प्रकाशित पहली कहानी थी. उसके बाद अंतरालों के साथ कहानियां हंस, पाखी, परिकथा, कथाक्रम, कथन, इरावती आदि में प्रकाशित होती रही हैं. कहानी के अलावा मुद्दों पर लेख लिखना भी पसंद है. करियर की व्यस्तता और चुनौतियां लगातार लेखन में आड़े आती रहती हैं. एक कहानी संग्रह 'सातवीं औरत का घर' (२०११) प्रकाशित. इसी संग्रह पर २०११ का विजय वर्मा कथा सम्मान.

संप्रति : *कोल इंडिया लिमिटेड में चीफ़ मैनेजर-एच. आर.*

एक कर खंगाल रही है.

ट्रेनिंग का पहला दिन :

आसमान में चांद दिखने का आभास

ट्रेनिंग का पहला दिन था. पूछे गये चार सवालों के दनादन जवाब क्या दे दिये, सबकी नज़रों में चढ़ गयी. वह पीछे ही बैठा था. टी ब्रेक में आया और गपशप करने लगा.

'तुमने तो मुझे पहचाना नहीं होगा?' से बात शुरू हुई. मान्या पहचानती थी. फिर तो आराम से बातें शुरू हो गयीं — पिछले शहर में पोस्टिंग की, दफ़्तर और कॉन्फरेंसों में कभी-कभार हुई चंद मिनटों की मुलाकातों की...उन बातों की बातें, जो कच्ची उमर में संकोचवश कह नहीं पाते थे. फिर आहिस्ता से दिल की बातें!

''बढ़ती उमर के साथ तुम ज़्यादा आकर्षक लगने लगी हो. कैसी चल रही है ज़िंदगी?'' अजीत ने पूछा तो मान्या अंदर से रो पड़ी. 'मन के उजड़े चमन में आह का दिया जलता है', पर प्रकट बोली — ''विधवा बनी जीती हूं. घर से विद्रोह करके चली आयी थी अपने एक घर की तलाश में, पर न घर बना, न बसा.'' उसका गला रुंध गया.

''ओह! आई ऐम सॉरी.'' अजीत ने कहा.

अजीत सुंदर है. गठीला, सांवला बदन, तीखे नाक-नक्श, लंबा कद, मेधावी, आकर्षक व्यक्तित्व. वह मान्या का घोर प्रशंसक है, उसे सातवें आसमान पर चढ़ा देता है, तो स्वाभाविक है — मान्या को बहुत अच्छा लगता है. मान्या ने टुकड़े-टुकड़े हो चुके अपने दिल का एक टुकड़ा प्यार का झरना बरसा रहे अजीत को दे दिया.

दूसरा दिन :

दूसरे दिन खिला मन में दूज का चांद

''क्या तुम्हें पता है, मैं मन-ही-मन तुम्हें साल-दर-साल कितना चाहता रहा? ऑफ़िस के तुम्हारे कमरे में जाता, तुम्हें एक नज़र देखता और वहीं बगल की मेज़ पर बैठे तुम्हारे इमीडिएट बॉस से कोई फ़ालतू की बात करके लौट जाता था. जिस दिन तुमसे भी दो बातें हो जाती थीं, दिनभर इतराता फिरता था.''

''क्या तुम्हें पता है कि मैं भी मन-ही-मन तुम्हें कितना चाहती और इंतज़ार करती रहती थी कि तुम कमरे में आओ तो सिर्फ़ मुझसे बातें करो. अपनी उन नज़रों को बखानो जो मुझे इतना परेशान करतीं और गुदगुदाती रहती हैं — प्यार है कि नहीं है, के ज्वार-भाटे में झुलाती रहती हैं.''

''हर प्यार कह देने या पा लेने को नहीं किया जाता पगली! कभी-कभी प्यार को सारी तीव्रता समेत मन में रख लेना ही असली प्यार है. जता दिया जाकर अपनाया नहीं जायेगा, तो दिलों में धुंआता, ज़िंदगी में दूषण फैलाता रहेगा. तुम्हारा एक ऑरा था — इंटेलिजेंट, सिंसियर, सलीकेदार इंज़ीनियर का. ऑफ़िस के सबसे पॉपुलर ऑफ़िसरों में थीं, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में जमकर हिस्सेदारी करती थीं, इतनी अच्छी ऐक्टिंग भी करती थीं... मंच पर तुम्हें देख मेरी धड़कनें रुक जाती थीं. तुम्हें सराहता, साथ की इच्छा तो करता था पर लगता था कि भागदौड़ और तमाम ज़िम्मेदारियों भरी अपनी ज़िंदगी में अगर तुम्हें ले आऊंगा, अपनाऊंगा तो बर्बाद भले कर दूं, आबाद नहीं कर पाऊंगा. तुम्हें लगातार विकसित होते रहने को जो वातावरण चाहिए, वो मैं दे नहीं

पाऊंगा. इसीलिए यही ठीक है — प्यार करना पर मन में ही रखना.. और फिर जो कहा नहीं गया, वो प्यार क्या प्यार नहीं होता?'' वह मुस्कुराती आंखों के साथ कह रहा है.

''बोल देते तो दो कुंवारे, जो तब तक किसी से कमिटेड नहीं थे, साथ-साथ घूमते-भटकते-लिखते-पढ़ते... पहाड़ पर बैठकर सूरज का उगना-डूबना देखते, गाने सुनते.. क्या पता प्रेम-पत्र भी लिखते!'' मान्या हंस रही है, अजीत भी हंस रहा है.

''मेरे पति को यही शिकायत रही कि मैंने कभी कहा ही नहीं कि मुझे उनसे प्यार है, तो वे जानते कैसे? इसीलिए वे किसी न किसी और से प्यार करते रहे — उनसे, जो दिन में कई-कई बार कहतीं, लिखकर जताती रहीं कि प्यार है, प्यार है, प्यार है...मैंने कभी जताया नहीं कि वे कितने अच्छे हैं तो उन्हें लगा, मैं मन में उन्हें बुरा समझती हूं.'' वह आंखों में भर आये आंसुओं के बावजूद मुस्कुराकर बोली, ''अब सोचो कि शब्द ही सब कुछ हैं? क्या प्यार का बार-बार उच्चार ही अंदर से समृद्ध कर सकता है? ख़ुद को पूरे-का-पूरा दे देना, भावों से, कर्मों से, बिन शब्दों के समझा देना कुछ नहीं? क्या बिन-बोला इज़हार अर्थहीन है?''

अजीत यह सुनकर हंसने लगा. मान्या रोने लगी.

उसे रोती देख वह एकदम से सीरियस हो गया.

तीसरा दिन :

अतीत के काले बादलों को पछाड़कर बाहर निकल आया चांद!

''हां, अजीत, शादी तो की, पर जल्द ही विधवा हो गयी. और वो भी ऐसे कि विधवा हुई तो साथ रोने तक को कोई नहीं था — दोस्त, न परिवार, न समाज! किसी को पता जो न चला कि मैं विधवा हो चुकी हूं. मेरा सब कुछ बे-आवाज़ टूटा और मैं आज तक अपने घर के बिखरे टुकड़े चुनती जीती हूं.... कि जैसे नियति ने कहा कि तुमने अपने चाहने वालों का दिल, मज़बूरन ही सही, बार-बार तोड़ा है, उन्हें अपनाने से भारी मन से, मज़बूरी में सही —इनकार किया है, तो अब टूटे दिल से जीना तुम्हारी नियति होगी. तुम्हारी ज़िंदगी एक ऐसी ज़िंदगी होगी जिसमें प्यार की खोज होगी, तड़पन होगी और होगी प्यार के अहसास को पकड़ने की अनवरत कोशिश. इसी कोशिश में तुम बूढ़ी होकर मर जाओगी, पर उफनते-बरसते प्यार में कभी नहा न पाओगी. प्यार तुम्हें अंत तक छकाता रहेगा. क्या तुम समझ सकते हो ऐसे जीना कितना मुश्किल है? कि आप अंदर से दुख

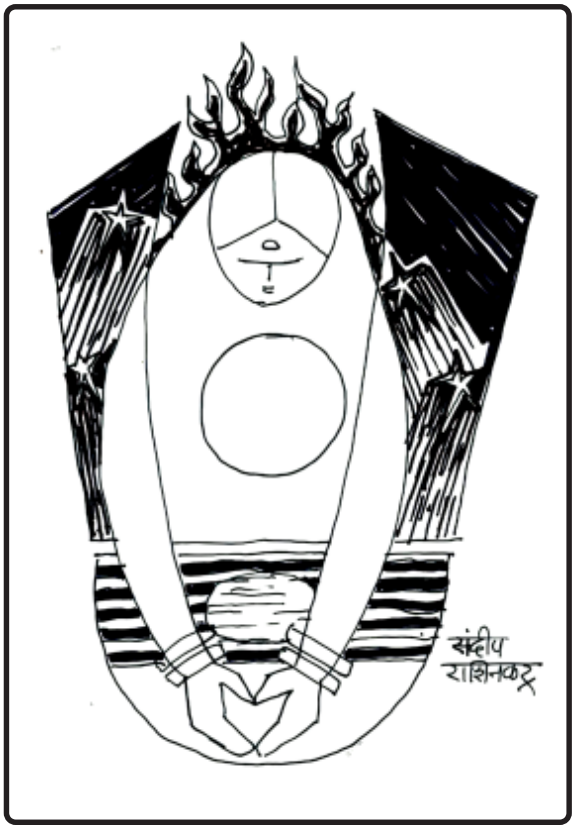

में डूबे हों पर आपको सुख का अभिनय करते जीना पड़े, अंदर रेगिस्तान में अंधड़ चलता हो पर बाहर वासंती बयार दिखानी पड़े, दिमाग़ की नसें तनती हों पर मुस्कुराना पड़े, कि आप..''

मान्या की आंखों में आंसू देख, अजीत की आंखें भी भींग गयीं. वह उठा और चला गया.

मान्या को अपने आंसू दिखाना नहीं चाहता.

नि:शब्द सहानुभूति भी प्यार है — मान्या ने सोचा.

पांचवां दिन :

चांद अंदर चमकता है!

पता नहीं किस दोस्त की कार उठा लाया था अजीत! ख़ूब घुमाया, तेज़-तेज़ गाने सुनाये — गाकर, तो सी. डी. से भी. मसखरा बना हंसाता रहा. फिर अचानक से मान्या को छेड़ता-सा बोला, ''मैं पिघला हुआ चांद हूं — मुझे पी लो.''

''मैं फटा हुआ दिल हूं, मुझे सी लो'', मान्या ने चुहल लौटाया.

''मैं सुबह की ओर बढ़ती रात हूं'', अजीत ने कहा तो मान्या ने जड़ दिया,

''मैं ख़त्म हो चुकी बात हूं.''

''नहीं, बात अभी बाक़ी है,'' मान्या के कहे को अजित ने उलट दिया.

''रात अभी बाक़ी है'' अजीत की ओर मुड़कर हंसती हुई मान्या ने भी फ़िल्मी लाइन उचार दी.

दो जोड़ी होंठ एक-साथ मुस्कुराते, एक दिल में बदल जाते हैं.

टी ब्रेक, लंच ब्रेक से शुरू करके अब शामें भी साथ गुज़रने लगी हैं. बीच के पंद्रह सालों को सारे अनुभव बांटकर पाट लिया गया. एक हल्केपन ने मान्या को घेर लिया — जैसे न किसी अतीत का बोझ हो, न भविष्य की चिंता! न विधवापन किसी लाश-सा कंधे पर लदा हो, जिसे उठाकर चलने की मज़बूरी हो, न ही परंपरा का कोई अदृश्य परदा सिर पर डला हो.

''मैं कोई भ्रम नहीं हूं. मैं सचमुच सामने हूं. तुम्हें प्यार करता हूं, तुम्हें अपना सकता हूं.'' अजीत ने कहा, तो सीढ़ियां चढ़ती मान्या ठिठक गयी, फिर मुस्कुरा दी.

अजीत ने धीमे से पूछा, — ''क्या मैं तुम्हें चूम सकता हूं?''

''नहीं'', दृढ़ता से बोल कर मान्या झटके से कमरे में घुस गयी.

बिस्तर पर लेटी तो उसके होठों पर अजीत के होंठ चिपके हुए थे. वह मसल रहा था, चूस रहा था, निशान बना रहा था गालों पर. अभ्यास बहुत पुराना है, पर संकोच नया. नहीं, संकोच बहुत पुराना है, अभ्यास नया... बेशर्मी की आदत जो नहीं ठहरी! इस आलिंगन में बाहुपाश कुछ ज़्यादा कसे हैं, ताकत के इस्तेमाल की तरह! इसमें वो कोमलता नहीं जिसकी वह आदी रही है, पर होंठ फिर भी थरथरा रहे हैं. शरीर में कोई लहर दौड़ती है जैसे, और बिजली होंठों से शुरू होकर पांवों के तलवों में समा जाती है. वह होठों पर पिला हुआ है — मानो अभी, इसी क्षण, उसके सारे वजूद को होठों की मार्फत पी लेगा. वह प्रतिदान नहीं दे पाती. उसके लिए चुंबन लेने-देने की इच्छा, दुलार में सने नाजुक-नाजुक होठों की छुअन है, जैसे कोई संगीत बजाता हो आत्मा में! शरीर के तारों को इस उम्मीद के साथ हौले-हौले छेड़ा जाता हो कि उनमें से राग-रागिनियां निकलेंगी.

अगले दिन उसे देख अजीत स्वाभाविक तरीक़े से मुस्कुराया तो मान्या एकदम से शर्मा गयी. फिर अचकचाकर महसूसा कि अजीत ने असल में चूमा थोड़े था, वह तो इनकार सुनकर दरवाज़े पर से ही चला गया था!

आठवां दिन :

अंदर चांद पूर्णिमा में बदलता हुआ!

वे टहल रहे हैं. पेड़ों की छांह भरे घुमावदार, साफ़-सुथरे रास्तों पर, जहां पेड़ों से झरे पीले पत्ते बिछे हैं. अतीत सूख-झरकर नीचे बिछ गया है? मान्या पूछना चाहती है. अगले सेशन का समय हो रहा है. अजीत कह रहा है — ''हम अलग रास्तों पर निकल गये थे, पर नियति ने हमें फिर से मिला दिया. एक तुम-लहूलुहान दिल की विधवा; एक मैं — बिना विवाह, लंबे रिश्ते से गुज़र, प्रेमिका से अलग हो चुका कुंवारा. तो वीराना झेल रहे, आधे-अधूरे जी रहे दो दिल अब मिलकर एक हो सकते हैं. हमारे दिल में फिर से फूल खिल सकते हैं... अंदर उदास-उदास सोया, मर-सा गया है जो, वह जी सकता है.''

मान्या की आंखों में सपने भरने लगे. उसे अपलक देखता अजीत ठिठक कर रुक गया और पूछा — ''क्या मैं तुम्हें बाहों में ले सकता हूं?''

''नहीं'', वह फिर से दृढ़ता से बोलकर क्लास रूम की ओर मुड़ने लगी. उसकी आंखों में आंसू देख अजीत ने रुमाल बढ़ाया, तो मान्या ने उससे रुमाल लेकर आंसू पोंछ लिये.

उस रात मान्या को लगा कि किसी ने उसे बाहों में कस रखा है. जोर आज़माइश करने पर भी वह निकल नहीं पाती. मर्दानी ताकत का यह इस्तेमाल बहुत लुभाता है. वह निकलने को जोर लगाती, अपेक्षा में हंसती है... वह ले लिये जाने के खेल में हार जाना चाहती है. उसने अचानक पाया कि वह तो ट्रेनिंग हॉस्टल के अपने कमरे में, बिस्तर पर अकेली आहें भरती रो रही है. फिर उसने आंसू पोंछकर घड़ी देखी. सिर्फ़ साढ़े नौ बजे थे. उसने घर फ़ोन मिलाया.

बेटे ने छेड़ा, ''ठीक से पढ़ रही हो न ममा?''

वह हंस दी. बेटे और बेटी से बात करके कुछ क्षणों के लिए दिल हल्का हो गया.

नवां दिन :

चांद पिघलकर वजूद में समाता हुआ

अजीत कुछ से कुछ होता जा रहा था मन में.

वह उसका पिता था — उसके आंसुओं के प्रवाह को देखता, उसका दुख महसूसता, निदान खोजता.

वह उसका पति था — बांहों में लेकर शब्दों, स्पर्शों और आश्वस्ति भरी थपकियों से दुख पर मलहम लगाता.

वह उसका पुत्र था — गुदगुदाकर हंसाने की भोली

कोशिश करता, मानो हंसते ही दुख गल जायेगा.

''मैं तुम्हारा पति नहीं हूं'', वह फुसफुसाया,''इसीलिए चूमने तक नहीं देती — जैसे जूठी हो जाओगी!''

''हां शायद.'' मान्या खोयी-खोयी-सी बोल रही है. ''मैं स्त्री-पुरुष के रिश्ते को बहुत नाजुक, पवित्र समझती जीती रही हूं. भावनाओं से जुड़ा कोई रेशमी अहसास, नाजुक डोर या पारदर्शी भंगुर-सा कांच, जिससे छेड़छाड़ उसे तोड़ सकता है. एक बार टूट गया तो फिर जोड़ने की कोशिश ही बेमानी है क्योंकि टूटी किरचों को जोड़ने की कोशिश बस हाथों को लहूलुहान करेगी, टूटा रिश्ता या टूटा दिल जोड़ न सकेगी.''

अजीत सहमति में मुस्कुराया है.

न पिता, न पति, न पुत्र — मान्या ने सोचा — अजीत, तुम सिर्फ़ और सिर्फ़ एक पुरुष हो, जिसने मेरे अंदर सोयी स्त्री को फिर से जगा दिया है. अपने ज़िंदा होने को भूल चुकी एक विधवा को याद दिला दिया है कि उसका भी एक दिल है — धड़कता, प्यार पाने को तड़पता, मचलता!! दिल पर पड़ी दुख की तमाम परतों को उघाड़कर रख देते वो पुरुष हो तुम, जो एक औरत के दिल की नंगी चाहतों का जश्न मना रहे हो!

दसवां दिन :

अंदर बस चुकी चांदनी में एकाकार है दिल!

मान्या के दिल के अंदर बसे घर के पांव निकल आये और घर दीवारों समेत दूर चला जाकर, एकदम से खो-बिला गया कहीं! घर में पति पहले से अनुपस्थित थे, अब वहां उपस्थित बच्चों का लिहाज़ भी नहीं रहा.

घर की दीवारों के गल जाने और हवा हो जाने का जश्न मान्या मना रही थी. घर के हवा हो जाने से उसे बाहर की सुगंधित हवा सूंघने, उनमें सांसें लेने और दौड़ लगाने की पूरी आज़ादी मिल गयी थी. अंदर-अंदर मन के बंधन टूट गये. लगा, वही हमेशा मन को बांधे क्यों रहे, जब साथ रहते भी पति ने कभी नहीं बांधा था!

जब निकल ही आये उन दीवारों के पांव, जिन्हें घर कहती थी तो बे-आवाज़ ग़ायब हो चुके घर से ख़ुद को बाहर निकाल ले जाने का इंतज़ार कब तक करूं? दीवारों के फिर से वापस आने, घर बन जाने के इंतज़ार में क्या एक ही जगह खड़ी रहूं? कब तक एकाकी, नियति से लड़ती-जूझती विधवा बनी जीती रहूं? क्यों न कह दूं अजीत से मन की बात? उसने मेरे दिल की मसली कली को जाने किस जादू से फिर से खिला दिया है. अब महकी-महकी जीती हूं मैं! शादी से पहले ज़िंदगी में आये हर प्यार को, अपनाने की स्थिति नहीं बनती देख, अजीत की तरह ही दिल पर पत्थर रख मैंने भी ठुकराया था. शादी के बाद मैंने अपना सारा प्यार पति पर लुटाया और बदले में उनसे धोखा ही धोखा पाया. वे प्यार के बदले सौंपते रहे सर पर अपनी नयी-नयी प्रेमिकाएं! नये, अनूठे लगते हर सुगंधित फूल को सूंघा, फिर चल दिये आगे. क़िस्मत कि उन्हें नये-नये फूलों की कभी कमी नहीं रही. पत्नी थी तो घर की हर सुविधा-सुरक्षा थी, साथ ही बाहर नये फूलों की आसानी से आमद भी! फूल — जिनके बारे में वे जानते थे कि इनकी सुगंध स्थायी नहीं हो सकती, इतनी घनीभूत भी नहीं हो सकती कि घर में बदल जाये!!

अजीत, मैं तुम्हें बहुत-बहुत चाहने लगी हूं.

एक मेरे पति, जो कभी मेरे नहीं हो सके और एक तुम, इतने मेरे कि सालों तक किसी और को चाहने, उसी का हो जाने की कोशिश करके हार चुके, मुझे अपना लेने को इतने व्यग्र-उत्सुक!

मुझे प्यार करने का हक़ है क्योंकि मैं एक विधवा का अभिशप्त जीवन जीना नहीं चाहती.

सच्चा प्रेम लगातार प्रेम में बने रहने की एकरस अनुभूति है. उफान, इन्फैचुएशन और आकर्षण की लहर तो आती-जाती, लीलती, फिर पटक देती है. ऐसे भंगुर प्रेम की बजाय किसी शांत पानी की सतह पर आंखें मूंदे लेटे-लेटे क्यों न गुज़ार दें जीवन!.. और वो शांत पानी, जिसमें भरोसे और विश्वास के कमल खिलते हैं, तुम हो सकते हो.

ग्यारहवां दिन :

चांदनी से पूरा जगमगा गया अंतस् !

अजीत, तुमने मरे हुए को जिला दिया. होठों पर अमृत की बूंदें धर दीं — थैंक्यू!

सुबह सब के साथ हॉस्टल से क्लास के लिए बाहर निकलते उसने कहना चाहा — प्रेम कभी बर्बाद नहीं करता, आबाद करता है. वह विध्वंस नहीं, सृजन है.

लव इज़ कन्स्ट्रक्शन, नॉट डिस्ट्रक्शन.

वो कहते हैं न कि प्यार किसी के साथ से ख़ुद को पूरा महसूसने का नाम नहीं, अपना पूरापन किसी और के साथ बांटने का नाम है. पति प्यार के नाम पर भावनाओं की उन लहरों में समाये रहे, जिनके बिखरने पर टूटे भरोसे का कीचड़, टूटे विश्वास की सीपियां बिखरी मिलीं. वे प्यार के नाम पर ज़हरीले रिश्तों में उलझे मुझे लगातार तोड़ते रहे. अजीत तुम

भरोसे-विश्वास की जड़ जमाकर उस टूटे हुए को फिर से जोड़ोगे?

बारहवां दिन :

अंदर उगे चांद को सवालों के काले बादलों ने ढक लिया.

शाम है. सब बाज़ार में भीड़ किये खड़े हैं. इस शहर आये हैं तो पत्नी-बच्चों के लिए कुछ लेकर ही वापस जायेंगे.

''तुम कुछ लोगी?'' अजीत पूछ रहा है.

मान्या वहां है ही कहां! वह तो अजित से सटी-सटी किसी दूसरी दुनिया की सैर पर है.

अजीत अब बच्चों की बात पूछ रहा है.

मान्या बताकर ख़ुश हो जा रही है.

पूरी तरह ख़ुद पर निर्भर, नन्हीं-सी जानों को बढ़ते, विकसित होते, खिलते-हंसते देखने का सुख, सिर्फ़ निज के सुख में डूबा, पत्नी-बच्चों को भाड़ में झोंककर बाहर प्यार कर रहा कोई स्वार्थी पति क्या जाने? क्या जाने किसी से भरोसा और विश्वास नहीं तोड़ने का सुख! बच्चों ने उसे बचा लिया, वरना....

वह विस्तार से बता रही है — बेटे और बेटी की बातें, उनके सपने, कारस्तानियां, मां पर भरोसा... मां से दोस्ताना रिश्ता. कैसे वे मां को जब-तब दुख से उबार हंसा देते हैं. वे झिलमिलाता भविष्य हैं, जो मान्या को बांधे रखते हैं.

अजीत बहुत दिलचस्पी से सुन रहा है. अजीत की दिलचस्पी उसे अपना लेने की बात पर मुहर लगाने की बजाय मान्या के मन में दुविधा जगा रही है. क्यों? वह समझ नहीं पाती! क्या वह बच्चों को किसी से बांटना नहीं चाहती? वह बच्चों और अपने बीच किसी को आने देना नहीं चाहती — इतना प्यार करने वाले अजीत को भी नहीं?

मान्या की वो दुनिया जिसमें अजीत पूरी तरह समाया हुआ था, अनचाहे दरकने लगी. खोना, छोड़ देना ही कई बार असली प्यार है — क्या अजीत सच कह रहा था?

आगा-पीछा सोचने को मज़बूर करने, चेतावनियां देने वाला प्रेम, क्या ओछा-छोटा प्रेम होता है?

तेरहवां दिन :

चले मत जाना मेरे चांद!

साथ के बस दो दिन और... एक आज और एक कल.

सपनों को जीने-पीने के बस दो दिन और.. अड़तालीस घंटे. कितने सेकंड?

अजीत एक झिलमिल, झिलमिल जादू है! दे दिया उसने ख़ुद को पूरे का पूरा, साथ की कामना जता दी और करता जा रहा है मेरे जवाब का इंतज़ार.

हताश हाल विधवा बने जीते लगता है कि जब मैंने जी ही नहीं, तो ज़िंदगी के इतने साल ख़त्म कैसे हो गये!

मानो धन था कोई, जिसे नहीं ख़र्चे जाने की स्थिति में, जस-का-तस बने रहना चाहिए था. बढ़ना नहीं, तो घटना भी नहीं चाहिए था, पर वह अनजाने में बिन ख़र्चे ही ख़त्म हो गया.

अजीत, मुझे एक बार बाहों में लेकर चूम लो — गहरे, गहरे!

बस एक बार, बस एक बार...पर अजीत कहेगा — बस एक बार क्यों, बार-बार क्यों नहीं? सिर्फ़ आज क्यों, हर रोज़ क्यों नहीं?

चौदहवां दिन :

दुविधा के जल में डूबता, ग़ायब होता जाता है चांद!

मान्या के मन की दुविधा गहरी होती जा रही है. रिश्तों की कई डोरों से गोल-गोल, ऊपर से नीचे तक बंधी जीती रही है वह! डोरों के जाने कितने सिरे बाहर हैं, जिन्हें कई-कई हाथ पकड़े खड़े हैं — दो सिरे दोनों बच्चों के हाथों में, एक सिरा मां, कई सिरे मित्रों-रिश्तेदारों-पड़ोसियों-पहचान के लोगों के हाथों में. तो एक सिरा जैसे किसी जादू से अदृश्य पति के हाथों में भी! वे सब जो उसे प्यार करते हैं, उसे रिश्तों की डोर तोड़ डालने से रोक रहे हैं. प्यार नहीं करने वाले पति भी? मैं इतनी सारी मोटी-मोटी रस्सियां कैसे काटूं?— मान्या सोचती है. क्या अजीत मुझे लहूलुहान किये बिना, उन रस्सियों से अलग कर पायेगा जो अंदर-अंदर मेरे पूरे वजूद, मेरे मन को बांधे हैं? क्या मैं अपने पूरे वजूद में रचे-बसे एक घर से अलग हो, कोई नया घर रच भी पाऊंगी?

पंद्रहवां दिन :

ग़ायब होते, अमावस्या में बदलते चांद को पकड़कर रोक लो कोई!

सुबह से उलझी थी. अजीत से बात करने तक से बचती रही.

अब रात हो गयी.

अब कहना होगा.

कोई फ़ैसला लेना होगा.

आज रात आख़िरी बार मिलेंगे या कि अब हर रात

मिलेंगे?

कल सुबह उड़ जाना है तो अजीत दरवाज़ा खटखटाकर उसे थोड़ी देर नीचे लॉन में पड़ी कुर्सियों पर चल बैठने का निमंत्रण दे रहा है. वह वहीं तो थी — कुछ देर पहले तक!

जागी हुई है तो इनकार क्या करना!

ट्रेनिंग हॉस्टल की ये आख़िरी यादगार रात, साथ-साथ जीते हुए, कर लेते हैं दिल की अनकही बात! सब कुछ छोड़, हर बंधन तोड़ इस चांद को अपना लेने, अपना जीवन सजा लेने की चाहत की बात? प्रेम क्या हमेशा नियति के विरुद्ध एक हारी हुई लड़ाई है?

पा लिया, तो भी किसी अधूरेपन से जूझते, और-और मांगते रहे; नहीं पाया तो अधूरापन लिये, पूरेपन की चाह में भटकते रहे, भटकते रहे?

क्या पति का कहना सही था कि मैं उन रद्दी लोगों में से हूं, जो प्रेम कर ही नहीं सकते? सचमुच?

नहीं मैं तो प्रेम करने और अपनाकर आगे बढ़ जाने की हिम्मत जुटा सकती हूं! कुछ चमकीली चाहते हैं जो आगे खींचती हैं.

कोई डोर है जो पीछे खींचती है.

कुछ सवाल उग रहे हैं मन में.

अजीत से प्रेम सृजन के साथ विध्वंस भी ला सकता है — मान्या को सुख देकर, उसकी ज़िंदगी से जुड़े, उसको प्रिय कइयों को दुख दे सकता है, तब भी वह अपनाने लायक है क्या?

किसी ने उसे अपने अंदर ही थप्पड़ मार दिया. क्यों नहीं, क्यों नहीं आख़िर? पति ने कभी सोचा था यह? हर बार बिना गिल्ट, पत्नी-बच्चों की भावनाओं, सुविधा-असुविधा, मान-अपमान का ख़याल किये बिना चल पड़ता रहा न निज सुख की खोज में?

आख़िर कब तक अपनी ही लाश उठाये जीते रहें अभिशप्त जीवन?

ये चांद कोई भ्रम तो नहीं!

अजीत और मान्या कुर्सियों पर बैठ गये. आमने-सामने.

ओह! अजीत उसके ठीक बग़ल में उसका हाथ अपने हाथों में लेकर क्यों नहीं बैठता?

कुछ पलों की चुप्पी जब सीने पर रखा पहाड़ बन जाये तो बोलना पड़ता है.

मान्या की आवाज़ किसी दूसरी दुनिया से जबरन खींच लायी गयी, अब भी खोयी-सी आवाज़ थी.

''कुछ कहना चाहती हूं अजीत!''

अजीत की मुस्कुराहट ने हामी का संकेत दिया, तो मान्या ने हिम्मत जुटायी.

दो आत्मनिर्भर लोगों के साथ में, मेरे जाने सिर्फ़ और सिर्फ़ दिल का रिश्ता होता है, जो उन्हें बांधे रख सकता है. अगर पति का दिल कहीं और उलझा हो, जानते-बूझते पत्नी का दिल तोड़ता, उसका मान नहीं रखता हो, तो विवाह का रिश्ता मर जाता है और पत्नी पति के जीवित रहते भी अहसासों में विधवा हो जाती – जैसे मैं हो गयी हूं.''

वह एक पल रुकी कि अजीत कहीं चौंका तो नहीं! पर वह चौंके बिना, सिर्फ़ कानों से नहीं, आंखों-अहसासों-सांसों-रोमछिद्रों तक से सुन रहा था — एकाग्र!

मान्या आश्वस्त होकर आगे बोली — ''ऐसे घर में रहती हूं जहां पति होते हुए भी नहीं है — मानो वह मर चुका है पत्नी के लिए... और पत्नी की नियति कि वह मरे हुए रिश्ते की लाश सर पर उठाये विधवा बनी जीती रहे! आदित्य से विवाह मेरा फ़ैसला था तो विवाह की कठिनाइयां, उलझनें, तमाम सुख-दुख, मुझ अकेली के ही तो हुए! अब ऐसे विधवापने की बात किससे कैसे कहती, कौन समझता? और जब कहा ही नहीं, तो साथ रोता कौन? तुम मेरे सखा, तुम वो जो सोच में मेरा ही आईना — इसीलिए कह पायी तुमसे... तुम समझ रहे हो न! आदित्य जाने शैतान है या देवता कि अपनी किसी भी करनी का उस पर कोई असर नहीं होता. वह मेरी भावनाओं का ख़ून भी करता है तो बिना किसी पछतावे के उनका चेहरा हरदम मुस्कुराता रहता है. उसे मेरा कुछ नहीं छूता — दुख-दर्द, मान-अपमान, शारीरिक-मानसिक-भावनात्मक तकलीफ़ें. कुछ भी नहीं! इसके उलट प्रेमिका के दुखों की आशंका तक उसकी आंखें नम कर देती है. प्रेमिका के आंसू उसे सोने नहीं देते. उसके प्यार की प्रतीक्षा मेरी, पर उसका प्यार किसी और का.... मेरे हिस्से घर-गृहस्थी और उसके हिस्से प्रेमिकाओं के प्रेम-पत्र... रातों का इंतज़ार मेरा और उसकी रातें किसी और के ख़यालों को समर्पित! मैं उसके साथ रहती हूं, पर न उससे प्यार कर पाती हूं, न घृणा. झूलती रहती हूं प्यार और घृणा के बीच. ये विधवापन मेरे व्यक्तित्व में ऐसे समा गया है कि मैं...

इसीलिए जब तुम मिले और तुमने उड़ेल दिया इतना सारा प्यार मुझ पर, तो मैं कुछ से कुछ हो गयी. मैं पूरी तरह तुम्हारी ही हो जाना चाहती हूं, मैं बच्चों और तुम्हारे साथ फिर से ज़िंदगी जीना शुरू करना चाहती हूं, पर अंदर कुछ है जो

बाधा बन रहा है. पहले लगता था कि अपनाये जाने के इंतज़ार में खड़ा एक दिल हूं, फिर से सधवा होने के इंतज़ार में खड़ी विधवा, पर अब जब तुम मिल चुके तो मन में ऐसे सवालों से घिर रही हूं, जिनके जवाब मुझे मालूम नहीं.

क्या घर छोड़ दूंगी तो कल को बच्चे मुझसे ये पूछेंगे कि मैंने अपने, सिर्फ़ अपने सुख के लिए घर क्यों छोड़ दिया? या नहीं छोड़ूंगी तो यह कि क्यों सहती रहीं सब कुछ और तब भी घर छोड़ क्यों नहीं दिया?

अजीत, मैं सारे बंधन तोड़कर तुम तक आना चाहती हूं, मैं तुम्हें अपना लेना चाहती हूं...'

लगातार बोल रही मान्या अचानक से चुप हो गयी, तो अजीत उठकर खड़ा हो गया. बेचैनी में टहलने लगा. नम आंखें लिये, बिना कुछ बोले सीढ़ियों की ओर बढ़ चला.

अजीत अब सीढ़ियां चढ़ रहा है. जवाब दिये बिना लौटकर जा रहा है. मान्या की सांसें रुक गयीं.

चांद भ्रम नहीं, हकीकत था!

अजीत मुड़ा. वह सीढ़ियां उतरता वापस आ रहा है. वह आंसू पोंछकर ठंडी सांसें लेता मुस्कुराया है. मान्या की सांसें वापस आ रही हैं.

अजीत की मुस्कान पारदर्शी है.

''तुम संकोच में हो जैसे तुमने कोई तथ्य छुपाया और अब मज़बूरी में उस रहस्य का खुलासा कर रही हो... पर नहीं मान्या, मैं तो पहले दिन से संदेह में था और वह संदेह दिनों-दिन पुख़्ता होता जा रहा था. बिना किसी विवाह चिन्ह, सादी साज-सज्जा तो तुम्हारी पुरानी धज है पर पिछले पंद्रह दिनों से तुम्हारा हर आचरण चीख़-चीख़कर कह रहा था कि तुम्हारा मन कहीं बंधा है, तुम लड़ रही हो ख़ुद से उस बंधन से बाहर आ पाने को... अपनी सारी रूमानियत, मुझे पाने-छूने की इतनी सारी अनकही कोशिशों के बावजूद सफल नहीं हो पा रही हो, कोई है जो आड़ बनकर सामने आ खड़ा हो जाता है और तुम अपनी चाहतों को परदे के पीछे कर लेने को मज़बूर हो जाती हो. पर सोचो कि तुम्हारा मन अगर तुम्हें अपनी एकनिष्ठता बनाये रखने को उकसाता है तो इस नैसर्गिक गुण पर शर्मिंदा क्यों होना चाहिए तुम्हें? तुम तो किसी भी पुरुष के लिए प्राइज़ कैच हो मान्या... आश्चर्य कि तुम्हारे पति ने तुम्हें मान देने की बजाय धोखा दिया.

.... और रही मेरी बात, तो मैं इस हारी हुई, परिस्थितियों के आगे समर्पण कर चुकी मान्या को नहीं अपना सकता. इस मान्या को तो मैं पहचानता तक नहीं! मैं तो उस मान्या को प्यार करता हूं, जो परिस्थितियों के आगे घुटने टेक बैठ नहीं जाती, अपनी ज़िंदगी पर अपना अधिकार छोड़ती नहीं. आश्चर्य कि तुम सालों से चुपचाप सहती रहीं! तुमने आदित्य को उसकी जगह दिखा क्यों नहीं दी? कह क्यों नहीं दिया कि वह शादी में बना रह कर यह नहीं कर सकता — उसे चुनना ही होगा, शादी में पत्नी का प्यार या शादी छोड़कर बाहर कहीं प्यार... या तो तुम्हारा सही अर्थों में साथ या अलगाव! जता क्यों नहीं दिया कि बेवफाई सहते, साथ रह जाने वालों में तुम नहीं!

तुम अब भी मुझ तक आ सकती हो. तुम्हारा मेरी ज़िंदगी में हमेशा स्वागत है, पर शादी के रिश्ते को सुलझाकर सही परिणति तक ले आने के बाद!... अगर तुम आदित्य को उसकी सही जगह दिखा देतीं, उसे छोड़ने का फ़ैसला मुंह पर सुना चुकी होतीं, तो बाहें पसारकर बच्चों समेत तुम्हें अपना लेता! पर एक उलझी स्थिति नहीं सुलझा पाने के कारण दुविधाग्रस्त मन से, जाने कितने उलझे तार मन-ही-मन आदित्य और अतीत से जोड़े-जोड़े तुम मुझ तक आओगी तो पूरे मन से नया रिश्ता कैसे बनाओगी? और ऐसी कोशिश तुम्हें करनी ही क्यों चाहिए?

प्यार छीनकर नहीं लिया जा सकता पर न्याय लिया जा सकता है.

आज रिश्तों के फ़ैसले की रात नहीं, आज ताकत बटोरने, फ़ैसला करने का निर्णय ले लेने की रात है. मैं तुम्हें ताकतवर देखना चाहता हूं, जैसी कि तुम अतीत में रही हो. इस दुर्बल निर्णय, भावनात्मक रूप से कमज़ोर मान्या से मेरा कोई परिचय नहीं है. तुम फिर से वही मान्या बनकर मेरे सामने आओ, जो मुझे अपील करती रही है? वो मान्या कोई अन्याय नहीं सहती.. वह अपने फ़ैसले बिना दुविधा लेती है.

मान्या, अब बंद करो ये रोना-धोना... यह आत्मदया और प्रताड़ित जीवन वाली स्क्रिप्ट बदल डालो यार! एक बार मज़बूत बनकर आदित्य को उसकी सही जगह दिखा दो. लिव टु योर सेल्फ... तुम यह कर सकती हो. उसे खींचकर सही राह पर वापस ले आओ या फिर धक्के देकर बाहर का रास्ता दिखाओ, भाड़ में जाने दो. अपनी ज़िंदगी अपने तरीक़े से जिओ, छोड़ो इस स्यापे को... और फिर पति के प्यार के सिवा भी तुम्हारी ज़िंदगी में इतना कुछ तो है जो तुम्हें ख़ुशी दे सकता है! तुम बहुत सारे गुणों से भरपूर महिला हो. आश्चर्य, कि तुम्हें कुछ नज़र ही नहीं आता? सुना नहीं है तुमने — 'और भी ग़म हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा..'

अजीत ने कुछ क्षणों के मौन के बाद पास आकर

मान्या का कंधा थपथपाते मुस्कुराकर कहा.

''पगली, तुम्हारी दुविधा मैं समझता हूं. जो किसी और का हो, उसे छल से छीनकर अपनाने या हड़पने की नीयत नहीं रखता. बंटे मन से पास आने वाले का स्वागत भी नहीं कर पाता... पर मैं इंतज़ार को तैयार हूं. अगर आदित्य ने अलग होना ही उचित समझा तो रोकना मत, बिना किसी दुविधा मेरे पास चली आना; पर अगर उसने सब कुछ छोड़-छाड़कर तुम्हारे पास लौटने, तुम्हें फिर से सही अर्थों में अपना लेने का फ़ैसला किया तो सिर्फ़ इस कारण मेरे पास मत चली आना कि मैं इंतज़ार में हूं. उस स्थिति में तुम्हारी ख़ुशी ही मुझे सुख में इतना सराबोर कर देगी कि मैं यह सोचूंगा तक नहीं कि तुम मेरी क्यों नहीं हो पायी!''

चलो, वादा करो कि जिस काबिलियत से ऑफ़िस के काम करती हो, उसी काबिलियत से अपनी ज़िंदगी भी मैनेज़ कर लोगी. फिर से लिखोगी अपनी ज़िंदगी की कहानी और अगली बार जब हम मिलेंगे तो आंसुओं की धार की जगह अपनी हंसी के फव्वारों से मुझे नहलाओगी. अभी घर जाओ और अच्छी तरह सोचो. ट्रीट योरसेल्फ वाइज़ली, यू डिज़र्व इट. ये रोने-धोने, ज़िंदगी को स्यापे की तरह जीने की स्क्रिप्ट अगर ख़ुद या बच्चों के लिए नहीं बदल सकती, तो मेरे लिए बदलो यार! मैं तुम्हें तुम्हारी सारी दुनिया, सारे दुखों-सपनों समेत अपना सकता हूं, पर तुम्हारे सुखों की ख़ातिर तुम्हें अपनी ही दुनिया में छोड़ देने को तैयार भी हूं — देअरफोर आई डिज़र्व दिस ऑनर... वह गहरी आंखों से मुस्कुराता उसे देख रहा है.

चांद लुभाता है!

''चलो उठो, आंसू पोंछो और मेरे पास आओ'', अजीत ने कहा और मान्या को उठाकर एक पेड़ की छांह में बाहों के घेरे में ले लिया.

मान्या खुले दिल से उससे लिपट गयी. फिर कुछ क्षणों के बाद मुस्कुराकर बोली — ''तुम्हारी परफ़्यूम मुझे बहुत पसंद है. आदित्य को पता है कि मैं सुगंध की दीवानी हूं, पर कभी परफ़्यूम नहीं लगाता. अब तो ख़ैर कभी मुझसे बात करता या मुझे छूता तक नहीं. आदित्य के साथ रहती बूढ़ी हो जाना मेरी ख़्वाहिश रही पर उसने...और एक तुम मिले, जो मुझे ले लेने की बजाय कहते हो कि...'' अजीत भी मुस्कुरा रहा है. मान्या ने फुसफुसाकर कहा — ''क्या तुम्हें पता है कि तुम कितने ख़ूबसूरत हो? तुम्हारा सांवला-बलिष्ठ शरीर, साफ़ दिल, सोच, समझदारी... सब कॉम्प्लिमेंट देने के काबिल हैं अजीत!''

अजीत ने अपने होंठ उसके होठों पर रख दिये तो मान्या ने मना नहीं किया. यह चुंबन, रिश्तों के किसी घालमेल के बिना लिया-दिया जा रहा था. इसका स्वाद, इसकी थरथराहट मान्या की ज़िंदगी में बस जाने वाली थी. अजीत से यह मुलाकात, उसका प्यार, उसकी बातें मान्या का विवाहित जीवन बदल पायें या नहीं, भविष्य में कुछ कर गुज़रने, अलग ढंग से सोचने-जीने को उसे उकसा ज़रूर रहे थे. ज़िंदगी अपने हाथों में ले लेने की चाह मन में फिर से उगने लगी थी. क्या सचमुच अजीत से अगली मुलाकात तक वह मन से विधवा नहीं होगी? आदित्य को बदल नहीं भी पाये, तो ख़ुद को बदल डाल अलग ढंग से ख़ुशी खोजती, सुखी ज़िंदगी जी रही होगी?

एक-दूसरे को स्पर्शों से सांत्वना देते वे बहुत देर तक उस पेड़ की अंधेरी छांह में एक-दूसरे से लिपटे खड़े रहे — दिल और जीवन संभालने के नुस्ख़े पीठ पर हाथ फेरकर एक-दूसरे को थमाते, आंखों से मुस्कुराते, चुप होठों से बोलते!

आख़िरकार अजीत ने बहुत सावधानी से उसे ख़ुद से अलग कर दिया — मानो वह इतनी नाजुक है कि ताकत का थोड़ा भी इस्तेमाल उसे तोड़ दे सकता है.

ख़ुद से कुछ इंचों की दूरी पर खड़ा करके उसकी आंखों में झांकते अजीत ने पूछा — ''क्या तुम इस चुंबन की बात किसी को बताओगी?''

''हां, अगर रिश्ते सुधर गये, तो आदित्य को शायद..'' वह दुविधा के गलियारों से बाहर निकल, फिर से वहीं घुस जाती बोली.

अजीत हंसा और बिना कुछ बोले मुड़ गया.

चांद चला जा रहा है? नहीं, चांद तो अपने अंदर है!

लगातार सीढ़ियां चढ़ते, नज़रों से ग़ायब होते जाते उस चांद को मान्या ने देखा और एक नयी कसक से घिर आयी. पूर्णिमा में बदल चुके इस चांद को फिर से दूज का चांद हो जाना था, पर अचानक किसी आश्वस्ति से घिर आयी. चांद तो पूरे का पूरा अंदर समा चुका था. धीमे क़दमों से अपने कमरे की सीढ़ियां चढ़ती मान्या को लगा, कल सुबह हॉस्टल छोड़ते समय अजीत से मिलना अब उससे हो नहीं पायेगा.

एफ-१०३, साकेत धाम,
सेक्टर-६१, नोएडा-२०१३०७.
ई-मेल : p.neela1@gmail.com

बंदिशें !

(पृष्ठ १०९ का शेष....)

एक पत्रकार ने तो यहां तक लिख डाला — ''एक था कोई जवाहरलाल नेहरू. जिसने कहा था, 'महान कार्य सिद्ध होते हैं जब इंसान पर्वतों से टकराते हैं, सड़कों पर हुल्लड़ से नहीं!' अब कहां रहे वे इंसान, पहाड़ों से टकराने वाला वह पौरूष? सड़कों का हुल्लड़ बढ़ता-बढ़ता अब हमारे सदनों में पहुंच गया है. क़ानून में बदलाव, संविधान में संशोधन सब दूर की बातें हैं. साधारण से बिल भी पास नहीं हो पाते. सत्रों के बाद सत्र गुज़र जाते हैं और प्रस्तावित बिल पारित हुए बिना किन्हीं बिलों में छुपे रह जाते हैं.''

बृजेश को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए अगले रविवार को जंतर–मंतर में एक मीटिंग आयोजित की गयी थी. मैंने जावेद से पूछा — ''तुम्हारे मरहूम अब्बू को याद किया जा रहा है. उनकी इज़्ज़त में जलसा हो रहा है. चलोगे?''

''क्या उस भीड़ में सबके सामने हथकड़ियां लगवाने का इरादा है? मैं नहीं जाऊंगा.''

''तुम्हारे चेहरे पर लिखा है कि तुम अपने अब्बू के बेटे हो.''

''नहीं, मैं नहीं जाऊंगा.''

जावेद नहीं गया. पति को श्रद्धांजलि का अवसर था. मुझे तो जाना ही था. पहली बार मंच पर देखा बृज का दूसरा परिवार — कमला, योगेश और उसकी पत्नी. नीलिमा बृज को अपना अंकल मानती थी. भारत सरकार के दो मंत्रियों के अतिरिक्त, वह भी स्टेज़ पर थी. बृज के बड़े सारे फ़ोटो पर फूलों के हार चढ़ाये गये थे. उनकी तस्वीर के आगे भी फूल ही फूल थे. मैं ही नहीं थी वहां. परिस्थितियों का यह कैसा षडयंत्र था कि न मैं लाहौर में बृजेश की मौत का मातम कर सकी, न आज श्रद्धांजलि के समय इस दूसरे परिवार के साथ मंच पर बैठ सकी या उनके चित्र पर श्रद्धा के फूल चढ़ा सकी! बहुत तमन्ना हुई कि मंच पर जाकर फूलों के हार बृज की फ़ोटो पर चढ़ाऊं, कमला से गले मिलूं और समझाऊं कि हमारा दुख सांझा है. लेकिन यह कैसे हो? वह तो मुझे पाकिस्तानी सौत और क़ातिल की मां समझेगी, नफ़रत से दुतकार देगी. मैं मन मसोस कर रह गयी.

मंच पर से सभी महानुभावों ने बृज की हार्दिक प्रशंसा की. देश और समाज की निष्काम सेवा पर हृदय से आभार प्रकट किया. यह भी कहा गया कि बेशक़ वे गांधी नहीं थे, किंतु गांधीत्व उनके रोम-रोम में रचा-बसा था. किसी भी अनजान की सहायता के लिए वे आधी रात को चल निकलते. उनकी निष्काम और निस्स्वार्थ सेवा के उदाहरण सुनकर मैं भी अत्यंत गौरवान्वित थी.

कमला ने भी उनके साथ बिताये अपने जीवन की सुखद, स्नेहल, स्वर्णिम घड़ियों की भरपूर प्रशंसा की. बंद आंखों से नमन किया और बृज का गुरू-मंत्र दोहरा दिया — ''ज़िंदगी से जो हमें मिलता है, उससे ज़्यादा देना होता है.''

मैं कोई ऐसी तंगदिल नहीं हूं. फिर भी ऐसा लगा कि मुझसे छीनी हुई, चोरी की थीं वे स्वर्णिम घड़ियां जो कमला ने बृज के साथ बितायीं. उस पवित्र नमन पर केवल मेरा अधिकार था.

कुछ ऐसा लगा मानो मंदिर में मेरी पूजा की थाली छीन ली गयी हो!

अंधेरा हो गया है. ख़ाली ख़ाली-सी अपने ठिकाने पर लौट आयी हूं. मगर बृजेश, तुम तो कहा करते थे कि ज़िंदगी से जो पाओ, उससे अधिक बांटो. मेरे पास बांटने को क्या है अपने ही देश का बेगानापन, गुमनामी, नाकामी?

70 Purley Downs Road, South Croydon,
Surrey, UK, CR2 ORB.
Phone: (0044) 020 8660 4750.
E-mail : mpdwesar@yahoo.co.uk

ग़ज़ल

✍ 'शाद' बागलकोटी

किसने सोचों के उजालों को छिपा रखा है,
मेरी हस्ती को अंधेरों पे उठा रखा है ।

उनके पापों की सज़ा पाऊं मैं लम्हा-लम्हा,
क्या यही सोच के अपनों ने बचा रखा है ।

बीन ख़्वाहिश की बजाकर ये मदारी दिल का,
मेरी हस्ती को भी इक नाग बना रखा है ।

रात पीती रही हर एक तमन्ना का लहू,
दिन के सूरज ने उम्मीदों को जला रखा है ।

मैं तो इस दौर का ईसा भी नहीं था लेकिन,
मुझको लोगों ने सलीबों पे चढ़ा रखा है ।

बर्क़-रफ़्तार हुई जाती है ख़्वाहिश मेरी,
नब्ज़ पर उसने मेरी दस्ते-हिना रखा है ।

'शाद' मालूम है अंदाज़े-तख़ातुब तेरा,
तूने दुश्मन को भी दीवाना बना रखा है ।

ओल्ड टाउन, जि. शिमोगा,
कर्नाटक, शिरालकोप्पा-५७७४२८.
मो. : ९९८०१९८०२७

कहानी

बैतरणी पार

✍ रणीराम गढ़वाली

पिता के आख़िरी दर्शनों के लिए वह गांव नहीं पहुंच सका था जबकि गांव से उसके छोटे भाई के उसके लिए लगातार फ़ोन आते रहे कि पिता बहुत सख़्त बीमार हैं. वे एक बार आपको देखना चाहते हैं. कब क्या हो? कुछ पता नहीं. इसलिए आप जैसे भी हो तुरंत घर पहुंचने की कोशिश करो. कई बार जब उसे फ़ोन पर अपनी मां की सिसकियां सुनाई देतीं तो उस वक़्त वह फ़ोन पर अपनी मां को दिलासा देते हुए कहता कि छुट्टी मिलते ही वह गांव आकर पिता को अपने साथ दिल्ली लाकर सफदरजंग अस्पताल में उनका इलाज़ करवायेगा.

गांव से जब भी उसके लिए पिता की बीमारी को लेकर फ़ोन आया उसने गांव जाने के लिए अपने मालिक से छुट्टी के लिए कहा. लेकिन मालिक का एक ही जवाब होता कि यही तो एक मात्र कमाई का सीज़न है सोहना. सालभर से हम आस लगाये रहते हैं कि कब शादी-ब्याह का सीज़न आये और हमारी सालभर की कमाई पूरी हो.

मालिक के शब्दों को सुनकर कई बार उसके मन में आया कि वह नौकरी छोड़ कर गांव अपने बीमार पिता के पास चला जाये, लेकिन तभी मन में ख़्याल आता कि नौकरी छोड़ने के बाद वह गांव में खाली रहकर क्या करेगा? जब वह इस दुकान पर लगा था तब उसे सोलह सौ रुपये तनख़ा मिलती थी. लेकिन अब उसकी तनख़ा चार हज़ार पर पहुंच गयी है.

पिता की बीमारी को लेकर वह बहुत बेचैन रहने लगा था. वह रोज़ ही दुकान पर बातों ही बातों में मालिक से छुट्टी की बातें करता. लेकिन मालिक उसी के सामने रामलला को उसके गांव फ़ोन करते हुए कहता, ''जल्दी आजा रे रामलला. सोहन के पिता की तबियत ख़राब हो गयी है. उसे गांव जाना है. अगर वह भी चला जायेगा तो दुकान कौन संभालेगा?''

फ़ोन पर बात समाप्त होते ही वह सोहन से कहता, ''तुझे पता है न सोहना कि मैं दूसरी दुकान भी खोलने वाला हूं. उसे तुझे ही तो संभालना है. रामलला के बस की बात नहीं है. तेरी तनख़ा फिर मैं पांच हज़ार रुपये कर दूंगा. तुझसे ज़्यादा भरोसा तो मेरे को किसी और पर है ही नहीं. बस्स...रामलला आ जाय तो तू दस-पंद्रह दिनों के लिए गांव चले जाना.''

मालिक की बातें सुनकर सोहन कसमसाकर रह जाता. लेकिन जब रामलला लौटा, सोहन के पिता का देहांत हो चुका था. पिता की मौत की ख़बर सुनकर सोहन तड़प कर रह गया था. वह जैसे-तैसे घर पहुंचा तो गांव वाले उसके पास आकर उससे तरह-तरह के सवाल पूछने लगे थे.

वह चुपचाप गांव वालों की बातें सुनता रहा. मां ने उसके पास आकर रोते हुए कहा, ''कैसी नौकरी है तेरी? जो कि तू अपने पिता की बीमारी के बारे में सुनकर भी गांव नहीं आ सका. तेरे पिता की आंखें तुझे देखने के लिए तरस गयी थीं. अंतिम समय में भी उन्होंने यही कहा कि सोनू नहीं आया न? अगर तू उनके जीते जी आ जाता तो वे तुझे जी भरकर देख तो लेते.''

मां के शब्दों को सुनकर वह धीमे स्वर में बोला, ''क्या करूं मां? बनिये की नौकरी है. कई बार मन में आया कि नौकरी छोड़ दूं. लेकिन फिर बच्चों को कैसे पालता? हमारा गुज़ारा अगर गांव में ही हो जाता तो फिर मैं बनिये की नौकरी ही क्यों

करता? क्यों उसकी बातें सुनता?''

उसके शब्दों को सुनकर मां ख़ामोश हो गयी थी. लेकिन नत्थी उसके पास सरकते हुए बोला, ''भाई पिता की तेरहवीं के लिए सामान ख़रीदना है.''

नत्थी की बातें सुनकर उसका हाथ एकाएक अपनी जेब पर चला गया था. जेब दबाते ही वह सोचने लगा था कि पिता की तेरहवीं पर जितना कम से कम ख़र्चा हो उतना ही अच्छा रहेगा. उसे वापस अपनी नौकरी पर जाने के लिए भी बस का किराया बचाना है. बल्कि दिल्ली जाते समय मां को भी दो-चार सौ रुपये देने हैं.

कुछ देर तक सोचने के बाद उसने नत्थी से कहा — ''नत्थी यहां कुर्ता-पज़ामा कितने का होगा? तेरहवीं के दिन कुर्ता-पज़ामा भी तो दान में देना होगा न?''

''दद्दा यहां तो तीन सौ से ऊपर का ही मिलेगा. दिल्ली से ही कोई सस्ता-सा ले आते तो ठीक रहता.''

''सौ-डेढ़ सौ तक का नहीं मिलेगा क्या?''

''नहीं...डेढ़ सौ का नहीं मिलेगा. क्योंकि यहां सारा सामान दिल्ली से ही आता है. इसलिए हर चीज़ महंगी मिलती है.''

''पता नहीं पंडत भी न जाने कितने रुपये लेगा?''

''आप तो जानते ही हैं दद्दा कि पंडत किसी के घर गया तो कहता है कि क्या दोगे और कोई पंडत के घर गया तो कहेगा कि क्या लाये हो? कल पंडत सामान लिखवाने आयेगा आप ही पूछ लेना. लेकिन पंडत कह रहा था कि सात नंबर का जूता भी लाना.''

''सात नंबर का जूता क्यों? पिताजी तो नौ नंबर का जूता पहनते थे न नत्थी? फिर वह सात नंबर का जूता क्यों मंगा रहा है?''

कहते हुए सोहन वहीं ज़मीन पर लेट गया था. लेकिन सुबह उठते ही पंडित हरीराम की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ा था, ''अरे जजमान जी सो रहे हो या जाग रहे हो?''

''प्रणाम पंडत जी.'' हरीराम के सामने कुर्सी रखते हुए सोहन ने कहा.

''चिरंजीवी रहो. कब आये जजमान?''

''बस्स... कल ही आया हूं पंडत जी.''

''क्या बात है जजमान? पिता के शरीर को अग्नि देने नहीं आये?''

''छुट्टी ही नहीं मिली पंडत जी. वैसे भी पिताजी के शरीर को नत्थी ने अग्नि दी या फिर मैंने दी बात तो एक ही है.''

''वाह जजमान वाह! कैसी बातें करते हो? बड़े बेटे के द्वारा पिता को अग्नि देने से मृत आत्मा को शांति मिलती है. बैतरणी पार करते समय ख़ूनी मगरमच्छ से सामना नहीं होता है.''

''लेकिन पंडत जी अगर किसी आदमी की कोई संतान नहीं होती है या जो सन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं तो उन्हें भी तो अग्नि दी जाती है न?''

सोहन के शब्दों को सुनकर पंडित हरीराम चौंक पड़ा था. उसके शरीर में इस तरह से बिजली दौड़ने लगी जैसे कि काले बादलों के बीच में बिजली सरकती हुई दिखाई देती है. उसके चेहरे पर कई भाव उभरे और उभर कर चले गये. गांव में कोई भी उसकी बात को नहीं काटता है. लेकिन यह तो प्रश्न पर प्रश्न किये जा रहा है. ऐसे प्रश्न जो कि कभी किसी ने आज तक उससे किये ही नहीं. लेकिन यह सोहन तो शहर जाकर चालाक बन गया है.

हरीराम ने एक बार सोहन की ओर देखा और फिर वह अपने चेहरे पर मुस्कान लाने का प्रयत्न करते हुए बोला, ''कल तुम्हारे पिता मेरे सपने में आकर कहने लगे थे, कि पंडित जी मेरे बच्चों से रजाई-गद्दा भिजवा दो. क्योंकि बैतरणी पार करने के लिए उनका नंबर अभी नहीं आया है. इसलिए जब तक उनका नंबर नहीं आता है तब तक वे भी अन्य लोगों के साथ अपनी बारी का इंतज़ार करते हुए चैन से सोना चाहते हैं.''

''यह तो कमाल हो गया पंडत जी. वे पिता मेरे थे और सपने में आये आपके. रजाई-गद्दा मांगना ही था तो हमसे मांगते. हमारे सपने में आते. कमाल है...'' चौंकते हुए सोहन ने कहा.

''सीधी सी बात है जजमान. अगर तुमने अपने पिता को अग्नि दी होती तो न वे मेरे सपने में आते और न ही बिस्तर मांगते. बल्कि वे अब तक बैतरणी पार कर सीधे स्वर्ग चले गये होते.''

रणीराम गढ़वाली

जन्म : *६ जून १९५७, ग्राम मटेला पौड़ी गढ़वाल (उ. खं.)*

प्रकाशित कृतियां : *खंडहर, बुरांस के फूल, देवदासी व शिखरों के बीच (कहानी संग्रह); आधा हिस्सा (लघुकथा संग्रह); तथा एक बाल कहानी संग्रह प्रकाशित. एक उपन्यास व एक बाल कहानी संग्रह प्रकाशन पथ पर.*

अनुवाद : *कन्नड़, तेलगू व असमिया भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद.*

सम्मान : *उत्तरांचल जनमंच पुरस्कार व साहित्यालंकार की उपाधि से सम्मानित.*

संपादन : *काव्य संग्रह 'हस्ताक्षर' का संपादन.*

''तो क्या अभी तक हमारे पिता बैतरणी पार नहीं कर पाये?'' नत्थी ने अपना सिर खुजाते हुए कहा.

''नहीं जजमान, सारी समस्या तो इसी बैतरणी पार ने खड़ी कर रखी है. अपने पिता की तेरहवीं में जो सामान तुम दान करोगे वही सामान तो वे गाय की पूंछ पर बांध कर बैतरणी पार करेंगे. तो अब मैं सामान लिखवाऊं जजमान?''

सोहन ने क़ाग़ज-पेन हाथ में लिया तो हरीराम ने कहा, ''लिखो जजमान, धोती, कुर्ता-पज़ामा (बैतरणी पार करते वक्त तुम्हारे पिता इन्हीं कपड़ों को पहनेंगे.) सात नंबर का जूता, एक लैंदी गाय, एक दम चिट सफ़ेद (सफ़ेद गाय को देखते ही देवता हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं और आदमी गाय की पूंछ पकड़ कर सीधे स्वर्ग लोक चला जाता है.) पटड़ा, रजाई-गद्दा, कंबल बढ़िया वाला सिगनेचर कंपनी का, कम से कम पांच किलो देसी घी, सोना-चांदी (पुरानी कान की बालियां भी हों तो चलेगा. क्योंकि मरते वक़्त तुमने अपने पिता के मुंह में सोना नहीं रखा था.) पांच कांसी की थालियां, पांच लोटे, पांच गिलास, और एक तांबे की गागर. इन सभी के साथ कम से कम इक्यावन-इक्यावन रुपये अलग से. वैसे अपने पिता को बैतरणी पार करवाने के लिए तुम जितने रुपये अधिक रख सको वे भी कम ही हैं. इससे मृतक की आत्मा को शांति मिलती है. जो भी रुपये तुम चढ़ावे में चढ़ाओगे वे सब कुबेर के ख़जाने में जमा होते हैं. अगर तुम ये सब चीज़ें नहीं दोगे तो तुम्हारे पिता के लिए प्रेतयोनि का द्वार खुल जायेगा.''

हरीराम के मुंह से एकाएक प्रेतयोनि का नाम सुनकर सोहन अचानक ही तिलमिला उठा था. उसके चेहरे का रंग फ़ीका पड़ गया था. सोहन के चेहरे को देखकर हरीराम ने कहा, ''कुछ परेशान से लग रहे हो जजमान. क्या बात है?''

''ऐसा कुछ नहीं है पंडत जी. बस्स...पिता जी की याद आ गयी थी.''

''अच्छा जजमान चलता हूं. अभी अन्य गांवों में भी जाना है. इसलिए मैं अब तेरहवीं के ही दिन आऊंगा. हां, एक बात का ध्यान रखना, जूता सात नंबर का ही लाना. अगर कुछ सामान रह भी जायेगा तो फिर मंगवा लेंगे.''

कहकर हरीराम चला गया तो सोहन ने उसके पैरों की ओर देखा, उसके दायें पैर का जूता कई जगहों से सिला हुआ था. लेकिन उंगलियों के बीच में फंसी सामान की लिस्ट को देखकर उसका सिर चकराने लगा था. अचानक ही उसका हाथ अपनी जेब पर चला गया था. कुछ देर तक वह अपनी जेब को टटोलता रहा और फिर वह सोच में डूब गया था. किस तरह से, और कैसे वह इतना सारा सामान ख़रीदेगा? उसके पास तो इतने रुपये हैं ही नहीं.

अगर उसने गांव में किसी से कर्ज़े के लिए कहा और उसने यह कह दिया कि अपने पिता की तेरहवीं पर तुम खाली हाथ तमाशा देखने आये हो तब वह उसे क्या उत्तर देगा? वैसे भी लोग सोच रहे होंगे की सोहन गांव आया है तो वह ढेर सारे रुपये लेकर आया होगा. लेकिन वह तो दिल्ली में महीने के मात्र चार हज़ार रुपये कमाने वाला नौकर है. पिता की तेरहवीं के लिए पंडत इतना सारा सामान मंगवा लेगा यह तो उसने सोचा ही नहीं था. मालिक भी इतना लीचड़ (कंजूस) निकला कि बार-बार कहने के बाद भी उसने तीन हज़ार रुपयों से ऊपर एक भी रुपया नहीं दिया. बल्कि रुपये देते हुए वह कहने लगा कि, ''बेटा सोहना, जिसे मरना था वह तो मर गया. लेकिन मेरा धंधा चौपट मत होने देना. मेरी दुकान तेरे ही भरोसे चल रही है. तेरे गांव से आते ही मैं तेरी तनखा पांच हज़ार रुपये कर दूंगा.''

अपने हाथों में पंडत द्वारा लिखायी गयी लिस्ट को देखते हुए सोहन तरह-तरह की बातें सोच रहा था. लेकिन एक बात अब भी उसकी समझ में नहीं आ रही थी कि उसके पिता नौ नंबर का जूता पहनते थे. फिर हरीराम उससे सात नंबर का जूता क्यों मंगवा रहा है? क्या बैतरणी पार करने के लिए उसके पिता का पैर कुछ घट गया है. उसे खयालों में डूबे देखकर नत्थी ने कहा, ''क्या सोच रहे हो दद्दा?''

''नत्थी मैं सोच रहा था कि पिता की तेरहवीं पर लोगों को खाना खिलाने व इतना सारा सामान लेने के लिए हमारे पास इतने रुपये नहीं हैं. मुझे लगता है कि पंडत ने ज़रूरत से ज़्यादा सामान मंगवा लिया है.''

''आपके पास कितने रुपये हैं दद्दा?'' कहते हुए नत्थी की नज़रें सोहन के चेहरे पर इस तरह से टिक गयी थीं जैसे किसी बाज की नज़रें आकाश से ज़मीन पर दाना चुगते हुए किसी चिड़िया पर टिक जाती हैं.

''तू तो जानता ही है नत्थी कि मुझे कितनी तनख़ा मिलती है. मैंने तो मालिक से दस हज़ार रुपये मांगे थे. लेकिन उस लीचड़ आदमी ने तीन हज़ार से ज़्यादा मुझे कुछ भी नहीं दिया. उन तीन हज़ार में से तो मेरा आने का किराया भी लग गया है.''

कहते हुए सोहन जेब में से रुपये निकाल कर गिनने लगा तो नत्थी को लगा कि दद्दा के पास रुपये तो हैं लेकिन दद्दा बताना नहीं चाहते.

रुपये गिनकर अपनी जेब में रखते हुए सोहन ने कहा,

''गुला नत्थी इन पच्चीस सौ रुपयों में अब क्या होगा? सबसे ज़्यादा रुपये तो गाय व बिस्तर बनाने पर लगेंगे. तू मामा के पास चला जा. शायद मामा इस समय हमारी कुछ मदद कर दें.''

''आप ठीक कह रहे हैं दद्दा. लेकिन मामा हमारी कोई मदद नहीं करेगा. क्योंकि पिता की बीमारी के समय मां मामा से कुछ रुपये लायी थी जो कि हम अभी तक वापस नहीं कर सके. लेकिन मामा ने शमशान में मुझे धीरज देने की बजाय मुझसे कहा कि. 'मरने वाला तो मर गया नत्थी, लेकिन मेरे रुपये जल्दी लौटा देना. लेन-देन के बिगड़ते ही रिश्तों में दरार पड़ जाती है.' मामा के शब्दों को सुनकर उस वक़्त मुझे लगा कि वे मुझसे रुपयों के लिए नहीं कह रहे हैं, बल्कि वे चिता में रखे पिता के शरीर से उनका कलेजा झंझोड़ रहे हैं.''

''तो फिर हम पंचायत से कर्ज़ा ले लेते हैं?''

''पंचायत से भी कर्ज़ा नहीं मिलेगा दद्दा. पंचायत के खजाने से एक ही बार रुपये मिलते हैं. जो कि मैंने पिता के मरने पर ले लिये थे. और अब वे रुपये मुझे पिता की तेरहवीं के बाद लौटाने हैं. मैं तो सोच रहा था कि दद्दा के गांव आने पर सब ठीक हो जायेगा. लेकिन मुझे यह पता नहीं था कि दद्दा खाली हाथ ही गांव चले आयेंगे.''

''वहां कोई पेड़ पर रुपये नहीं लगते नत्थी. अरे वहां के ख़र्चे कितने हैं? यह तू नहीं जानता. महंगाई ने सबकी ऐसी-तैसी फेर रखी है. फिर चार हज़ार में होता ही क्या है? हर महीने यहां भी कुछ न कुछ भेजता ही रहता हूं.''

''कितना भेजा है आपने आज तक हमारे लिए? यही कभी दो सौ तो कभी मुश्किल से पांच सौ. इतने में घर का ख़र्चा चलता है क्या?''

''तू नहीं समझेगा नत्थी. शहर की अपेक्षा यहां गांव में इतना ख़र्चा नहीं होता. रहने के लिए किराया नहीं देना पड़ता. खाने के लिए ज़मीन में भी कुछ फ़सल हो ही जाती है. चार हज़ार रुपयों में कहां-कहां देखूंगा मैं?''

''आप भूल कर रहे हैं दद्दा. गांवों में बहुत कुछ देखना पड़ता है. शहर में तो आदमी अपने तक ही सीमित हो जाता है. लेकिन गांव में नाते-रिश्तेदारी सब देखनी पड़ती है. शादी-ब्याह, जीना-मरना सब देखना पड़ता है. शादी के सीज़न में न्योता देते-देते ही हालात ख़राब हो जाते हैं.''

''तू तो बहस पर उतर आया है नत्थी. अरे...मैं जानबूझकर रुपये नहीं लाया क्या?''

''दद्दा आप पिता के मरने के बाद आ रहे हो, इतना तो सोचते कि पिता की तेरहवीं पर कितना ख़र्चा आयेगा. कहीं से और जुगाड़ कर लेते. कर्ज़ा तो दिया ही जायेगा. लेकिन अभी तो इज़्ज़त बचानी मुश्किल हो रही है. पता नहीं क्यों पिता को भी इसी समय मरना था?''

''मैंने बहुत कोशिश की नत्थी लेकिन कहीं से कर्ज़ा नहीं मिला.''

''तो फिर आप भी मेरी ही तरह गांव में आकर क्यों नहीं रह लेते दद्दा. दोनों भाई यहीं गांव में रह लेंगे. पिता के मरने के बाद तो अब मैं भी बिल्कुल अकेला हो गया हूं. मां की दोनों आंखों में मोतियाबिंद पड़ चुका है. उसका इलाज़ भी करवाना है. गांव में रहकर मैं तो पछता रहा हूं दद्दा. आप दो-चार दिन बाद चले जायेंगे और लोगों की बातों को सुनने के लिए रह जाऊंगा मैं. पंचायत जब कर्ज़ा मांगेगी तो कहां से दूंगा मैं?''

नत्थी के शब्दों को सुनकर सोहन कसमसा कर रह गया था. मन में विचार आया कि वह अभी इसी वक़्त नत्थी को दो-चार धर दे. बहुत चक-चक करने लगा है. साले को तमीज़ नहीं है अपने से बड़ों से बात करने की. लेकिन तभी ख़्याल आया कि इसमें नत्थी का क्या दोष? वह जो कह रहा है ठीक ही कह रहा है. पिता अकेले उसी के तो नहीं थे. अगर वह दिल्ली में न रहकर गांव में ही रहता तो जो कुछ पिता के मरने पर नत्थी ने किया है वह सब उसी को करना पड़ता. उसने बहुत बड़ी ग़लती कर दी जो कि वह पिता की तेरहवीं से पहले ही गांव आ गया. अगर वह तेरहवीं के बाद आता तो वह इन सारी मुसीबतों में तो न पड़ता. नत्थी ने पिता की बीमारी से लेकर अब तक जैसे निभाया है आगे भी निभा लेता.

''अब हम क्या करें दद्दा?''

''मां के पास कोई जेवर हैं क्या?''

''नहीं दद्दा. मां कह रही थी कि कुछ जेवर आपकी शादी के समय बेच दिये थे. और बचे-खुचे जेवर मेरी शादी में बिक गये थे.''

''नत्थी के शब्दों को सुनकर सोहन सिर से लेकर पैरों तक हिल गया था. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब वह क्या करे? फिर भी उसने नत्थी को दूसरे गांवों में भी भेजा लेकिन उसे कहीं से भी रुपये नहीं मिले. काफ़ी देर तक सोचने के बाद वह गांव से कुछ दूर सड़क पर काम करने वाले नेपालियों की बस्ती में चला गया था. कभी उस बस्ती में उसके पिता का नेपालियों के साथ उठना-बैठना था. घर में कोई भी त्योहार मनाया जाता या फिर कोई भी ख़ुशी का काम होता तो उसके पिता नेपालियों को भी बुलावा भेजते. अगर किसी कारण वश वे भूल जाते तो उनके लिए खाना उन्हीं के घरों में पहुंचा दिया जाता था. जिस दिन उसके पिता मरे

उस दिन सभी नेपाली मज़दूरों ने काम करना बंद कर दिया था. शाम को किसी का भी चूल्हा नहीं जला था.

वह बड़ी देर तक उनके साथ बातें करता रहा. जो भी नेपाली उसे मिला वही उसके पिता की बढ़–चढ़ कर तारीफ़ करने लगता.

अपने पिता के होते हुए जब कभी वह गांव आता तो वह भी उनकी झुग्गी बस्ती की ओर चला जाता था. उन्हें दारू पीते हुए व नाचते गाते देखकर वह सोचता कि सड़क पर काम करते हुए भी जितने वे लोग ख़ुश हैं शायद ही दुनियां में कोई इतना ख़ुश होगा. कभी-कभी वह भी उनके साथ बैठकर सीप खेलने लगता था. उसे देखकर वे सभी उसे पहचान गये थे. जो लोग उसके साथ सीप खेला करते थे वे आज भी उसे पहले की ही तरह गले मिल रहे थे. तभी उसे भोर बहादुर आता दिखाई दिया. वह अपने गले में लाल गमछा डाले उसी की ओर आ रहा था.

''अरे कैसे हो बहादुर?''

''ठीक हूं.''

''कहां से आ रहे हो? तुम्हारे माथे पर तिलक देख कर तो लग रहा है जैसे कि तुम कोई शुभ काम करके आ रहे हो?''

''हां रे सोहना, वो बमराड़ी खुस्सा की बहू सूली हो रखी है. आज उसे पानी पर लगा आया हूं. तीन लड़कों के बाद लड़की हुई है.''

''तू यह पंडत का काम कब से करने लगा है? तुम्हारा वह नेपाली पंडत तो कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा है.''

''हर किसी को एक न एक दिन भगवान के पास जाना होता है सोहना. जैसे तेरे पिता गये वैसे ही पंडत भी चला गया. पंडत का यहां कोई नहीं था. उसके बाद मंदिर सूना हो गया तो मैं उसकी देखा-देखी मंदिर का काम करने लगा. उसकी क़िताबों को पढ़ने लगा. जब लोग उसे जीने में, मरने में, बुलाते थे. तब मैं ही उसके साथ होता था. उसके बाद लोग मुझे पंडत कहकर बुलाने लगे. लेकिन मैं पंडत नहीं हूं.'' कहकर वह ही...ही करके हंसते हुए बोला, ''जब किसी को कोई पंडत नहीं मिलता न सोहना तो लोग मुझे बुलाकर ले जाते हैं. थोड़ा-बहुत क़िताब को पढ़ते हुए मैं लोगों का काम चला ही लेता हूं.''

सोहन उसके साथ बड़ी देर तक बैठे बातें करता रहा. इसी बीच भोर बहादुर ने दारू का पउआ तथा कांच के दो गिलास निकाल कर उसके सामने रखते हुए कहा, ''बहुत दिनों बाद आया है तू, ले गला तर कर ले.''

''नहीं बहादुर. अभी तो पिता की तेरहवीं भी नहीं हुई है.''

''बुरा मत मानना सोहना. मरने वाला तो मर गया. लेकिन जीने वाले तो उसके साथ नहीं मर सकते न? इन पहाड़ों की ठंड अगर तुझे पकड़ गयी न तो फिर जीना मुश्किल हो जायेगा. पियेगा तो ताऊ को कुछ पलों के लिए भूल जायेगा.''

सोहन कुछ देर तक तो सोचता रहा और फिर वह बहादुर के साथ पीने लगा था. जब वह वापस आने लगा तो बहादुर ने कहा, ''रुपयों को छोड़कर मेरे लायक कोई सेवा हो तो बताना सोहना.''

उस रात सोहन को बहुत अच्छी नींद आयी. वह भूल गया था कि पिता को बैतरणी पार लगाने के लिए उसको एक सफ़ेद गाय भी लेनी है.

लेकिन जब तेरहवीं का एक दिन शेष रह गया तो सुबह-सुबह पंडत ने उसका दरवाज़ा खटखटाते हुए कहा, ''जजमान कल तुम्हारे पिता बैतरणी पार करते हुए स्वर्ग जायेंगे. सामान ले आये न? याद रखना गाय, बिस्तर, जूता, कोई भी सामान रहने न पाये.''

''पंडत जी अच्छा ही हुआ जो कि आप आ गये हैं. अन्यथा मैं आपके पास आने वाला था. पंडत जी आपने जो लिस्ट मुझे दी है वह कुछ कम नहीं हो सकती. या फिर पिता के बैतरणी पार करने का कोई दूसरा सस्ता उपाय नहीं है?''

''है न जजमान...है... दूसरा उपाय भी है. पांच ब्राह्मणों को भोजन करवाकर उन्हें एक-एक लैंदी गाय दान करने से तुम्हारे पिता का बैतरणी पार का रास्ता और भी आसान हो जायेगा. वे सीधे स्वर्गलोक से होते हुए ब्रह्म लोक को चले जायेंगे.''

पंडित की बातें सुनकर सोहन के माथे पर पसीना छलकने लगा था. उसने अपने माथे पर हाथ फेरा तो हाथ की उगलियों पर गीलापन स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगा था.

''क्या हुआ जजमान? क्या सोचने लगे?''

''पंडित जी अगर इस लिस्ट में से कुछ सामान जैसे गाय, बिस्तर, गागर कुछ कम हो जाता तो...तो...मैं..''

''वाह! जजमान वाह! पिता को बैतरणी पार करवाने के लिए दिल्ली से गांव आये हो और सामान कम करवा रहे हो? क्यों अपने पिता को नरक में भेज रहे हो? बिना गाय के तो तुम्हारे पिता बैतरणी पार नहीं कर सकते. अगर वे करने की कोशिश भी करेंगे तो उन्हें मगरमच्छ बीच में ही खा जायेगा. फिर तुम्हारे पिता प्रेत बनकर तुम्हारे घर में तुम्हें ही चैन से नहीं रहने देंगे. अगर तुमने अपने हाथों से अपने पिता को अग्नि दी होती तो कई सामान कम हो जाता. पिता को बैतरणी पार करवा देने से तुम्हारी सात पीढ़ियां पाप मुक्त हो जायेंगी.''

''लेकिन पंडत जी मैं इतना सारा सामान नहीं ला सकता.''

''अरे...कैसे जजमान हो तुम? लोगों ने तो अपने माता-पिता को बैतरणी पार करवाने के लिए अपने घर तक गिरवी रख दिये हैं.''

पंडित की बातों को सुनकर सोहन का माथा झनझना गया था. फिर भी उसने शांत स्वर में कहा, — ''लेकिन मैं फूंक झोपड़ी देख तमाशा वाली कहावत चरितार्थ नहीं कर सकता.''

''तो मत करो न.'' हरीराम ने तैश में आकर कहा, ''तुम्हारे पिता स्वर्ग जायें या नरक, भूत बनें या प्रेत, मेरी सेहत पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता. एक बात और बता देता हूं जजमान कि गांव वाले तुम्हारे पिता की तेरहवीं का भोजन ग्रहण नहीं करेंगे.''

''क्यों पंडत जी?'' सुनकर सोहन सन्न रह गया था.

''क्योंकि जिस घर में बड़े बेटे के द्वारा पिता की चिता को अग्नि नहीं दी जाती है तो वह घर हमेशा अछूत ही रहता है. उसमें रहने वाले लोग अछूत होते हैं, और वे तब तक अछूत रहेंगे जब तक वे अपनी शुद्धि के लिए इक्कीस ब्राह्मणों को इक्कीस गायों के साथ सोना-चांदी दान नहीं करते. तुम्हारे पिता को बैतरणी पार करवाने के चक्कर में मैं अपना ब्रह्म लोक ख़राब नहीं कर सकता. अपने पिता को बैतरणी पार करवाने के लिए किसी दूसरे पंडत का बंदोबस्त कर लेना. जै राम जी की जजमान जी.''

कहते हुए पंडत अपने पैर पटकते हुए चला गया था. जबकि सोहन की आंखों के आगे अंधेरा छा गया था. वह मन ही मन में बड़बड़ाया था कि कल तेरहवीं का दिन है. समझ में नहीं आता कि वह पिता को कैसे बैतरणी पार करवाये.

वह बड़ी देर तक सोच में डूबा रहा. उसे लगा कि अगर वह यहां इसी तरह से बैठा रहा तो उसे सिर दर्द हो जायेगा. उसने नत्थी को अपने पास बुलाकर कहा, ''पंडत तो आने को मना कर गया नत्थी.''

''क्यों...? क्या बात हो गयी दद्दा?''

''मैंने उसे कुछ सामान कम करने के लिए कहा बस्स... लेकिन वह एक भी चीज़ कम करने को राज़ी नहीं था. क्या कोई और पंडत मिल जायेगा नत्थी?''

''नहीं दद्दा. एक पंडत और है लेकिन वह तो बहुत ज़्यादा बीमार है. मेरे ख़याल से तो बहादुर से बात करके देखो न?''

''लेकिन वह पंडत नहीं है नत्थी.''

''अगर यही सोचते रहोगे दद्दा तो पिता की तेरहवीं नहीं हो पायेगी. कल पिता की तेरहवीं है. उसे बुलाकर पिता की तेरहवीं करवा कर घर का शुद्धिकरण करवा लेते हैं. सभी जानते हैं कि वह पंडत नहीं है लेकिन लोग अपना काम तो उससे करवा ही रहे हैं न?''

''अगर गांव वालों ने कोई एतराज़ किया तो फिर क्या होगा?''

''जो होगा देखा जायेगा.''

नत्थी की बातें सुनकर सोहन ने बहादुर के पास जाकर जब यह कहा कि उसे उसके पिता की तेरहवीं के लिए कल हवन करना है तो वह सहर्ष ही तैयार हो गया था. सोहन ने जब उसे सामान के लिए कहा तो बहादुर ने कहा, ''एक कुर्ता-पज़ामा और पांच बर्तन, एक थाली, एक गिलास, एक कटोरी, एक चम्मच व एक लोटा. हवन सामग्री व थोड़ा घी. घर में मीठा ज़रूर बनवा देना.''

बहादुर के शब्दों को सुनकर सोहन चौंक पड़ा था. कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद वह बोला, ''और कोई चीज़ तो नहीं चाहिए बहादुर...?''

''नहीं...सोहना नहीं... जो आदमी जलकर राख हो गया. जिसे शमशान में मोटी-मोटी लकड़ियों में रखते हुए बिस्तर की ज़रूरत नहीं पड़ी तो अब उसे बिस्तर किस लिए?

पैर जलकर राख़ हो गये तो जूते किसलिए? ये सब चीज़ें तो शरीर को आराम देने वाली वस्तुएं हैं. जो जिस दिन मर गया वह उसी दिन बैतरणी पार हो गया. अगर अपने दिल की तसल्ली के लिए तुम कुछ लोगों को भोजन करवा सको तो करवा देना. क्योंकि तुम्हारे मन को यह संतुष्टि मिल जायेगी कि तुमने अपने पिता की तेरहवीं के दिन कुछ दान किया है. मेरे हिसाब से तो ये जो सामने पीपल का पेड़ है न इसे हाथ जोड़ो. इसके पत्तों को छुओ तो तुम्हारे पिता अपने आप ही बैतरणी पार लग जायेंगे.''

बहादुर की बातें सुनकर सोहन उसी वक़्त बाज़ार से पांच बर्तन, हवन सामग्री लेकर आ गया था. लेकिन दूसरे दिन बहादुर को सोहन के घर में हवन करते देख गांव वालों में खुसर-फुसर होने लगी थी. अगर पंडत ने हवन नहीं किया तो सोहन के पिता की आत्मा को शांति नहीं मिलेगी. न उसे स्वर्ग ही मिलेगा और न ही नरक. बल्कि वह भूत बनकर गांव वालों को डराता रहेगा. अगर हरीराम ने मना कर दिया था तो ईड़ा के रामरत्न शर्मा को ही बुलाकर ले आता. पागल है तो क्या हुआ? है तो पंडत ही न. उसे तो ढूंढने की ज़रूरत भी नहीं थी. यहीं बाज़ार में कहीं न कहीं लेफ़्ट-राइट करते हुए या फिर कहीं सड़क के किनारे पड़ा हुआ मिल जायेगा. उसका हाथ पकड़कर हवन में कुछ आहुतियां डलवा देता तो हवन भी हो जाता और उसके पिता बैतरणी पार भी हो जाते. पता नहीं बहादुर कौन सी जात है?

गांव वालों में तरह-तरह की बातें होने लगी थीं. जबकि बहादुर क़िताब खोल एक-एक अक्षर को दो-दो बार पढ़ते हुए हवन करने लगा था. हवन करते हुए वह कई बार अक्षर मिला-मिला कर पढ़ने लगता. लेकिन गांव का कोई भी आदमी हवन में शामिल नहीं हुआ. और जब भोजन करने की बारी आयी तो गांव वाले अपने-अपने घरों में दुबक गये थे.

''गांव वाले कहने पर भी नहीं आये नत्थी. तू जा और नेपाली बस्ती में से सबको भोजन के लिए बुला ला.''

''हमें गांव वालों को ज़रूर बुलाना होगा दद्दा. अन्यथा ये लोग हम पर कोई भी जुर्माना लगा सकते हैं.''

''लेकिन वे आयेंगे कैसे...?''

''तुम इसकी चिंता मत करो दद्दा. यहां क्या होता है और क्या नहीं. मैंने इसका भी इंतज़ाम कर लिया है. जो लोग बहादुर को देखकर ख़ुश नहीं हैं वे ही अब बहादुर की तारीफ़ करते हुए नज़र आयेंगे.'' कहते हुए नत्थी लाटा के घर गया और उसे बुलाकर ले आया था. सोहन की समझ में नहीं आ रहा था कि नत्थी क्या करना चाहता है? लेकिन जब नत्थी ने लाटा के हाथ में गिलास पकड़ाया तो सोहन ने चौंकते हुए कहा, ''आज पिता की तेरहवीं के दिन यह तू क्या कर रहा है नत्थी?''

''मैं जो कर रहा हूं दद्दा वह ठीक ही कर रहा हूं. इन पहाड़ी गांवों में कोई जिये या कोई मरे उससे किसी को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. सुबह-शाम, सोते-जागते, यहां हर किसी को दारू चाहिए. अपना काम करवाना हो तो बोतल पहले चाहिए. जो लोग बहादुर को देखकर अपने घरों में दुबक गये हैं वे ही दारू की गंध सूंघते हुए यहां नज़र आयेंगे. पिता तो चले गये. लेकिन हमें तो इन्हीं गांव वालों के साथ रहना है, और अगर इनके साथ रहना है तो घर में कोई जिये या मरे दारू ज़रूर चाहिए. शादी-ब्याह, पूजा-पाठ और शमशान में भी.

नत्थी के शब्दों को सुनकर सोहन ख़ामोश हो गया था. लेकिन नत्थी लाटा को तब तक पिलाता रहा. जब तक दारू उसे चढ़ नहीं गयी थी. बस्स...फिर क्या था...वह उन सभी लोगों को बुला लाया था जो बिना पिये भोजन नहीं कर सकते थे. जब लोगों को पता चला कि सोहन दारू पिला रहा है तो एक-एक कर सभी गांव वाले आकर दारू पीने लगे थे. नशे ही नशे में वे खाना खाने लगे.

एच-७८, नानकपुरा,
नयी दिल्ली-११००२१
मो : ९९५३८७४२६

लघुकथा

भूख

फ़ारुख हुसैन

वह बारह या तेरह वर्ष की लड़की थी. फटे-पुराने कपड़े पहने हुए. चेहरा भूख की वजह से कुंभलाया हुआ. दो दिन से भूखी थी इसलिए उससे चला नहीं जा रहा था. सामने होटल था. वह सकुचाते हुए होटल में चली गयी.

होटल के मालिक से उसने खाना मांगा. मालिक ने उसे देखा और मुस्कुरा दिया. होटल का मालिक उसे अंदर ले गया और उसे खाना खिलाया. लड़की को लगा की होटल का मालिक बहुत ही दयालू है.

परंतु कुछ ही देर के बाद कमरे में लड़की के चीख़ने चिल्लाने की आवाज़ें गूंजने लगी.

'अभिव्यक्ति'
पलिया कलां (खीरी)-२६२९०२.
मो. ९४५५३६८५०१

सुशांत सुप्रिय की कवितायें

इंस्पेक्टर मातादीन के राज में

(हरिशंकर परसाई को समर्पित)

जिस दसवें व्यक्ति को फांसी हुई
वह निर्दोष था
उसका नाम उस नौवें व्यक्ति से मिलता था
जिस पर मुकदमा चला था
निर्दोष तो वह नौवां व्यक्ति भी था
जिसे आठवें व्यक्ति की शिनाख़्त पर
पकड़ा गया था
जिसे एक सातवें ने फंसाया था
जो ख़ुद छठे की गवाही की वजह से
मुसीबत में आया था.

छठा भी क्या करता
उसके ऊपर उस पांचवें का दबाव था
जो ख़ुद चौथे का मित्र था
चौथा भी निर्दोष था,
तीसरा उसका रिश्तेदार था
जिसकी बात वह टाल नहीं पाया था
दूसरा तीसरे का बॉस था
लिहाज़ा वह भी उसे 'ना' नहीं कह सका था
निर्दोष तो दूसरा भी था
वह उस हत्या का चश्मदीद गवाह था
किंतु उसे पहले ने धमकाया था

पहला व्यक्ति ही असल हत्यारा था
किंतु पहले के विरुद्ध
न कोई गवाह था, न सबूत
इसलिए वह कांड करने के बाद भी
मदमस्त सांड-सा
खुला घूम रहा था
स्वतंत्र भारत में...

थोड़ा साथ, थोड़ा हट कर

ओ प्रिये!
अपनी निजता में भी
मैं होता हूं
तुम्हारे थोड़ा साथ
और थोड़ा तुम से हट कर.

जैसे ढलते सूरज की इस बेला में
खड़ी है मेरी परछाईं
थोड़ी मेरे साथ
और थोड़ी मुझ से हट कर.

जैसे अपनी आकाशगंगा में
है हमारी पृथ्वी
थोड़ी अपने सूर्य के साथ
और थोड़ी उससे हटकर.

हां प्रिये!
कभी-कभी
मैं होता हूं तुम्हारे थोड़ा साथ
और थोड़ा तुम से हट कर
जैसे स्वर्ग से निष्कासन
के बाद आदम था
थोड़ा हव्वा के साथ
और थोड़ा उससे हटकर.

✉ द्वारा श्री एच. बी. सिन्हा
५१७४, श्यामलाल बिल्डिंग, बसंत रोड,
(निकट पहाड़गंज), नयी दिल्ली-११००५५
मो. ९८६८५११२८२/८५१२०७००८६.
ई-मेल : sushant1968@gmail.com

कहानी

रामलखन दुःखी नहीं हो पा रहा

✍ डॉ. रमाकांत शर्मा

रामलखन की मां अपने भगवान की पूजा करने के बाद झोली फैला कर उनसे बस यही मांगती रहती थी कि उसके बेटे को किसी सरकारी दफ़्तर में साहब की कुर्सी पर बैठा दे. उसे पता था कि एक बार उसका बेटा साहब बन गया तो सारे दरिद्र धुल जायेंगे. पर, रामलखन के भाग्य में तो चपरासी बनना लिखा था, इसलिए वह एक सरकारी कार्यालय में चपरासी लग गया. उसकी मां बहुत उदास हो गयी थी. लेकिन, उसे विश्वास था कि वह एक न एक दिन साहब बेटे की मां ज़रूर कहलायेगी.

रामलखन को नौकरी करते कई वर्ष हो चुके थे. इस दौरान उसका कई साहबों से पाला पड़ा था. जब भी पुराने साहब की बदली होती और नये साहब आने को होते तो वह सोचता शायद ये साहब उससे इंसानों की तरह बर्ताव करेंगे. पर, हर बार उसे निराशा ही हाथ लगती. उसकी क़िस्मत में तो बस यही लिखा था कि सुबह से लेकर रात तक खटते रहो, फिर भी बात-बेबात झिड़कियां और फटकार खाते रहो. कभी-कभी वह इतना परेशान हो उठता कि नौकरी छोड़ कर घर बैठने का मन बना लेता, पर सत्तर को पार कर चली मां की बीमारी और बीवी-बच्चों की ज़िम्मेदारी उसे ऐसा क़दम उठाने से रोक लेती.

कई बार उसके जेहन में यह सवाल उठता कि क्या इन साहबों की गुलामी करते-करते ही उसकी उम्र बीत जायेगी. सच पूछो तो उसकी ख़ुद की तो कोई ज़िंदगी ही नहीं रह गयी थी. साहब के दफ़्तर पहुंचने से पहले दफ़्तर पहुंचो, साफ़-सफ़ाई करो और उनकी घंटी की आवाज़ पर बंदर की तरह नाचते रहो. फ़ाइलें इधर-उधर लाने ले-जाने और साहब के सारे क़ायदे-बेक़ायदे वाले हुक्म बजाते-बजाते पूरे शरीर का सत निचुड़ जाता है, पर क्या मज़ाल कि साहब के मुंह से शाबासी का एक शब्द भी निकले. हां, ज़रा-ज़रा सी बात पर डांटने के लिए हमेशा तैयार. उसे लगता, वह ऐसा कुत्ता बना गया है जो अन्याय करने वाले पर झपटना तो दूर गुर्रा भी नहीं सकता, बस उसे तो गर्दन झुका कर हमेशा पूंछ ही हिलानी है.

उसे याद है, उसके नौकरी से लगने के कुछ दिन बाद ही कपूर साहब का तबादला हो गया था और उनकी जगह सिंह साहब आये थे. उनकी घर-गृहस्थी का सामान एक बड़े ट्रक में भर कर उनके सरकारी बंगले में आया था. ट्रक से उतारे सामान को घर में लगाने में सहायता के लिए उसे जब सिंह साहब के घर जाने के लिए कहा गया तो उसने यह कहते हुए साफ़ मना कर दिया था कि वह सरकारी नौकर है. किसी का घरेलू नौकर नहीं. साहब तक जैसे ही यह बात पहुंची वे बिफर गये थे. उन्होंने उसे बुलाकर बुरी तरह डांटते हुए कहा था — ''क्या समझता है तू अपने-आपको? याद रखना अभी कुछ ही दिन हुए हैं तुझे नौकरी से लगे. पूरी तरह टेम्परेरी नौकरी है तेरी. अगर कल सुबह ठीक दस बजे तक घर नहीं पहुंचा तो बर्ख़ास्त कर दूंगा, समझे.''

सिंह साहब की तू-तड़ाक से और सुबह घर आने का फरमान ज़ारी कर देने से उसका ख़ून खौल उठा था. उसे लगा था, वह फट पड़ेगा. पर उसके परिणाम की कल्पना से उसकी जबान तालू से चिपक कर रह गयी थी और दूसरे दिन सुबह दस बजने से पहले ही वह साहब के बंगले पर पहुंच गया था.

डॉ. रमाकांत शर्मा

१० मई १९५०, भरतपुर (राजस्थान), एम. ए. (अर्थशास्त्र), एम. कॉम (वित्तीय प्रबंध), एल एल बी, पीएच-डी (वाणिज्य)

लेखन : *विगत ३० वर्ष से लेखन कार्य से संबद्ध. लेख, कहानियां और कविताएं लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. बैंकिंग विषयों पर 'कार्ड बैंकिंग', 'वित्तीय समावेशन', 'बैंकिंग विविध आयाम' और 'ब्याज मुक्त बैंकिंग' (इस्लामी बैंकिंग) पुस्तकें प्रकाशित. व्यावसायिक संप्रेषण विषय पर पुस्तक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स (इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकिंग एंड फाइनेंस) के पाठ्यक्रम में शामिल.*

प्रकाशन : *बैंकिंग विषयों पर मूल रूप से हिंदी में उत्कृष्ट लेखन के लिए भारत सरकार के वित्त मंत्रालय से पुरस्कृत.*

अन्य : *कई कहानियां और कविताएं अखिल भारतीय स्तर पर पुरस्कृत, राजस्थान स्टेट एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन जयपुर में कार्यालय अधीक्षक और प्रशासनिक अधिकारी के रूप में लगभग ९ वर्ष तक कार्य. १९८० से भारतीय रिज़र्व बैंक के राजभाषा विभाग में विभिन्न पदों पर कार्य. बैंक के शीर्ष प्रशिक्षण संस्थान 'बैंकर्स प्रशिक्षण महाविद्यालय' में लगभग १२ वर्ष तक कार्य करते हुए बैंकिंग क्षेत्र के वरिष्ठ अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के अलावा बैंकिंग क्षेत्र की बैंकिंग विषयों पर एकमात्र प्रोफ़ेशनल तिमाही पत्रिका 'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' के प्रवेशांक से लेकर ७ वर्ष तक संपादन-मंडल के सदस्य सचिव के रूप में कार्य.*

संप्रति : *स्वतंत्र-लेखन.*

उस दिन के बाद तो उसे किसी न किसी काम के लिए साहब के घर लगभग रोज़ाना भेज दिया जाता. उसे सबसे बड़ी कोफ़्त तो तब होती जब दफ़्तर छूटने के बाद या छुट्टी के दिन उसे साहब के घरेलू कामों के लिए जाना पड़ता. वह मन मसोस कर रह जाता और मन ही मन कुढ़ता हुआ सारे काम निपटाता रहता.

सिंह साहब के जाने के बाद भी उसे ज़रा-सी भी रियायत नहीं मिली थी और हर नये साहब के साथ यही सिलसिला ज़ारी रहता आया. कई बार वह सोचता, क्या आदमी के नाम के साथ साहब का पुछल्ला लगते ही, उसके शरीर से दिल ग़ायब हो जाता है और दया, ममता, सहानुभूति और करुणा जैसी कोमल भावनाएं मर जाती हैं. पता नहीं, मां क्यों उसे साहब बनते देखना चाहती है. उसे शायद पता नहीं है कि साहब बनने के साथ आदमी की आदमीयत कहीं खो जाती है. साहब तो साहब उनकी मेमसाहब भी उनसे दो हाथ आगे निकल जाती हैं और अपने को खुदा से कम नहीं समझतीं. कमरतोड़ काम करने पर भी ज़रा-ज़रा सी बात पर फटकारना और साहब से शिकायत करके डांट पड़वाना उनका सबसे बड़ा शगल बन जाता है.

उसे याद है, पिछले रविवार को उसे सुबह से ही साहब के घर जाना था. लेकिन, रात से ही बारिश हो रही थी. उसने सोचा था कि सुबह उसके जाने तक बारिश रुक जायेगी, पर वह तो और भी तेज़ हो गयी. पूरे घर में सिर्फ़ एक ही छाता था जिसकी दो तानें टूटी हुई थीं और उसमें कई छेद हो गये थे. उसे पता था कि इतनी तेज़ बारिश में उस छाते को ले जाने का कोई मतलब नहीं था, वह लगभग पूरा भीग जायेगा. इसलिए बारिश रुकने या कम होने का इंतज़ार करता रहा. बारिश जब कुछ धीमी हुई तो वह तुरंत ही घर से निकल पड़ा. छाते के छेदों से टपकता पानी उसके बालों से गुज़र कर आंख, कान और नाक का ज़ायजा लेता हुआ उसके कपड़ों को यहां-वहां से भिगोने में मस्त था. इधर, रास्ते में जगह-जगह भरे हुए पानी में उसके पैर पड़ते तो फटे जूतों में पानी भर जाता और उसका चलना दूभर हो जाता. जितना ही उसके चलने में रुकावट आती, उसके क़दम कांपने लगते. उसे पता था, वह पहले ही काफ़ी लेट हो गया है, उस पर उसकी यह शिथिल होती चाल उसे और भी ले डूबेगी.

वह डरते-डरते बंगले पर पहुंचा तो बाहर काम करते माली ने उसे पहले ही आगाह कर दिया कि साहब और मेमसाहब कितनी ही बार उसे पूछ चुके हैं और ग़ुस्से में भरे बैठे हैं. अपना छाता और जूते बरामदे में रख कर वह धड़कते दिल से अंदर जाने की सोच ही रहा था कि तभी मेमसाहब और साहब दोनों ही दरवाज़े से बाहर निकलते नज़र आये. जैसे ही उनकी नज़र उस पर पड़ी वे दोनों एकसाथ भड़क उठे — ''तुम्हें बोला था न आज जल्दी आने को. पता है, घर में मेहमान आने वाले हैं. हज़ारों काम पड़े हैं, पर तुम्हें इससे क्या. अरे, थोड़ा जल्दी नहीं निकल सकते थे घर से? क्या बिल्ली रास्ता काट गयी थी? चुप क्यों खड़े हो? कुछ मुंह से फूटो भी.'' उसके अंदर आक्रोश पनपने लगा था, पर वह

इतना ही कह पाया — ''साहब, वो बारिश बहुत तेज़ थी...''

उसकी बात पूरी होने से पहले ही वे बोले थे — ''बारिश ही तो हो रही थी, ओले तो नहीं पड़ रहे थे शहर में. तुम्हें तो बस काम से बचने का बहाना चाहिए. यह भी नहीं सोचते कि आज मेहमान आने वाले हैं. चलो, अब ये बहाने छोड़ो और काम से लग जाओ.'' फिर, मेमसाहब की तरफ़ देखते हुए उन्होंने कहा था — ''जाओ, इसे काम बताओ, पहले ही बहुत देर हो चुकी है.'' मुंह फुलाये मेमसाहब अंदर की ओर मुड़ गयी थीं और वह मुंह लटकाये उनके पीछे चल दिया था.

भीगे कपड़ों में काम करते हुए उसे दिक़्क़त हो रही थी और ठंड भी लग रही थी. पर, वह जल्दी-जल्दी काम निपटाता रहा. वह चाहता था कि दोपहर तक काम निपटा कर घर पहुंच जाये और रविवार की छुट्टी का कुछ हिस्सा अपने परिवार के साथ बिताये, लेकिन, बारिश पूरे दिन अपनी तेज़ी दिखाती रही. मेहमान भी दो-ढाई घंटे लेट पहुंचे. खाने-पीने और हंसी-ठट्टे में कब शाम हुई पता ही नहीं चला. जब अंधेरा गहराने लगा तो उसने मेमसाहब से कहा था — ''बहुत देर हो गयी है. बारिश भी रुकने का नाम नहीं ले रही है, आप कहें तो मैं निकल लूं.'' मेमसाहब ने उसे अजीब सी नज़रों से देखा था और कहा था — ''कैसे आदमी हो तुम, मेहमानों को तो चले जाने दो.'' यह कह कर वह मुंह बनाती हुई ड्राइंग रूम में घुस गयी थीं.

ड्राइंग रूम से आती हंसी की आवाज़ उसके कानों में पिघले शीशे सी उतरती रही थी. आख़िर, रात को नौ बजे मेहमान अपनी-अपनी कारों में बैठ कर चले गये. उन्हें छोड़ कर लौटे साहब ने उससे कहा था — ''चलो मेहमान गये, अब तुम भी निकल लो, बाक़ी काम सुबह जल्दी आकर निपटा लेना.''

वह जेल से निकले क़ैदी की तरह तुरंत बाहर निकल पड़ा था. बारिश बदस्तूर ज़ारी थी. टूटे छाते को कस कर पकड़े वह लगभग वीरान सड़क पर चला जा रहा था. उसकी बेबसी उसके गले से होती हुई उसकी आंखों में उतर आयी थी. सिंह साहब से लेकर आज तक के साहबों ने उसकी मज़बूरी और अपनी ताक़त का जो फ़ायदा उठाया था, उसके दृश्य उसकी आंसू भरी आंखों में डूबने-उतराने लगे थे. उसका मन किया कि उन सभी को लाइन में खड़ा कर वह अपने छाते की लाठी से उनकी जम कर धुनाई कर दे और अपना सारा आक्रोश निकाल बाहर करे. पर, उसे पता है, वह सिर्फ़ सोच सकता है, कुछ करने की हिम्मत नहीं है उसकी. लेकिन, भगवान को क्या हुआ है. वह तो सर्वशक्तिमान है, इन ख़ून चूसनेवालों को वह कोई सबक क्यों नहीं सिखाता? उसे अपनी मज़बूरी और बेबसी का शिद्दत से अहसास हो आया था और वह ठंड से या भीतर उपजे क्रोध से कांपने लगा था. फिर, अपने जड़ हो आये क़दमों में गति भरने के लिए उसने अपने सारे आक्रोश को पैरों में उतर जाने दिया था.

ऐसा बहुत कम होता था जब साहब सपरिवार शहर से कहीं बाहर चले जाते हों. ऐसे दिन रामलखन के जीवन के सबसे अच्छे दिन होते थे. दफ़्तर में तो उसे आराम मिलता ही था, साहब के बंगले पर हाज़िरी बजाने भी उसे नहीं जाना होता था. वह समय पर घर पहुंचता और इन बेशक़ीमती क्षणों में अपनी तरह से ज़िंदगी जीने की कोशिश करता. ऐसे समय उसके अंदर का खिलंदड़ापन खुल कर बाहर आ जाता. वह अपनी पत्नी से पुराने प्रेमी की तरह व्यवहार करता और बच्चों के साथ हंसता-खेलता. इतने दिनों की शारीरिक और मानसिक थकान उतारने के लिए उसे आंगन में बिछी खाट पर लेट जाना और तारों भरे आसमान को निहारना बहुत अच्छा लगता. नीम के पेड़ के पत्तों को छूकर आयी ठंडी हवाओं को वह बेरोकटोक अपने बदन से अठखेलियां करने देता. पर, जैसे ही उसे याद आता कि साहब कल लौटने वाले हैं, वह हड़बड़ा कर उठ बैठता. उसे ऐसा लगने लगता जैसे उसकी पैरोल की अवधि ख़त्म होनेवाली है और उसे फिर से बामशक्कत सज़ा काटने के लिए जेल की सलाखों के पीछे चला जाना है.

इस महीने के तीसरे सप्ताह में सिर्फ़ एक दिन का अवकाश लेकर लगातार छह दिन की छुट्टियां बन रही थीं. साहब ने ऐलान कर दिया था कि इन छुट्टियों में वे परिवार सहित अपने गांव जायेंगे. रामलखन के लिए तो यह मनमांगी मुराद जैसी थी. वह एक-एक दिन गिन रहा था कि कब छुट्टियां शुरू हों और कब साहब अपने गांव जायें. जैसे-जैसे छुट्टियों के दिन नज़दीक आते जा रहे थे, उसकी चाल में चुस्ती, काम में फुर्ती और हर बात में मस्ती नज़र आने लगी थी. लेकिन, रामलखन की ये ख़ुशियां छुट्टियां शुरू होने से पहले की ख़त्म हो गयीं. हुआ यूं कि हैड ऑफ़िस से अचानक यह सूचना मिली कि छुट्टी होने से एक दिन पहले चेयरमैन साहब ख़ुद उनके कार्यालय का निरीक्षण करने आ रहे हैं. उनके साथ उनका परिवार भी आ रहा है. निरीक्षण के बाद वे शहर में ही रुक कर छुट्टियां बितायेंगे.

इस ख़बर के मिलते ही साहब ने अपनी छुट्टियां रद्द कर दीं और वे अपने ख़ास सलाहकारों के साथ मिलकर चेयरमैन

साहब के निरीक्षण और छुट्टियों में उन्हें शहर के दर्शनीय स्थल घुमाने का कार्यक्रम तैयार करने में बुरी तरह व्यस्त हो गये. जब रामलखन को यह बताया गया कि उसे छुट्टियों के दिनों में भी चेयरमैन साहब और उनकी टीम की ख़िदमत के लिए हर दिन उपस्थित रहना होगा तो उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने उससे उसकी आज़ादी और चैन दोनों ही छीन लिये हों. उसे समझ नहीं आ रहा था कि इन छुट्टी के दिनों से ठीक एक दिन पहले चेयरमैन साहब को उनके कार्यालय का निरीक्षण करने और फिर उसके बाद यहीं छुट्टियां बिताने की क्या सूझी थी. यह काम कभी बाद में भी किया जा सकता था. साहब सहित कितने सारे लोग इन छुट्टियों में अपने गांव जाने वाले थे, क्या उन्हें भी यह बुरा नहीं लगा होगा? बहुत सारे प्रश्न थे उसके दिमाग़ में, पर सबसे बड़ा प्रश्न यही था कि उसकी छोटी-छोटी ख़ुशियों पर यह ग्रहण क्यों लग जाता है?

धीरे-धीरे उसे प्रश्नों के उत्तर मिलने शुरू हो गये थे. निरीक्षण तो सिर्फ़ एक बहाना था, चेयरमैन साहब वास्तव में इस शहर के विश्वविख्यात दर्शनीय स्थलों का सपरिवार आनंद उठाना चाहते थे. उनके इस आमोद-प्रमोद का सारा इंतज़ाम और ख़र्च सरकार के सिर डालने का इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता था. उसके साहब तो कब से ऐसे मौक़े की ताक में थे जब वे चेयरमैन साहब के नज़दीक आ सकें और उन्हें उपकृत कर सकें. उनका प्रमोशन होने और चेयरमैन साहब के ख़ुश होने के बीच गहरा संबंध जो था. इस सबके बीच रामलखन यह नहीं समझ पा रहा था कि उसे क्या मिलने वाला था. वह जितना ही सोचता, उतना ही उसके भीतर अंगारों में लिपटा आक्रोश दहकने लगता. इन साहब लोगों की मौज़-मस्ती और प्रमोशन की रणनीति के लिए उसकी छुट्टियां क्यों क़ुर्बान की जा रही हैं? पर, वह उनके हाथों अपनी ख़ुशियां लुटते देखने के अलावा और कर ही क्या सकता था? उसके भीतर का लावा फट पड़ने के लिए रास्ता तलाशने लगा.

चेयरमैन साहब और उनके परिवार की ख़िदमत में उसे सामान्य दिनों से भी ज़्यादा ड्यूटी निभानी पड़ रही थी. दिन निकलने से पहले वह घर से निकलता और देर रात गये घर लौटता. चेयरमैन साहब और उनके परिवार को दर्शनीय स्थलों की सैर कराने के लिए पूरा लाव-लश्कर साथ रहता. रामलखन के साहब और कई अधिकारी तो साथ होते ही, एक जीप में उनके खाने-पीने का सामान भी साथ चलता. जीप में सामान रखते-उतारते और साहब लोगों के आदेश पर इधर-उधर भागते रामलखन खीज उठता.

उस दिन शहर से क़रीब बीस किलोमीटर दूर स्थित एक विख्यात रमणीक स्थल पर पिकनिक का कार्यक्रम था. सभी लोग सुबह से ही निकल गये थे ताकि पिकनिक का ज़्यादा से ज़्यादा आनंद उठाया जा सके. जगह वास्तव में बहुत सुंदर थी. चारों ओर पहाड़, उनके बीच से बहते झरने, छोटी-सी लेकिन सुरम्य झील, आकाश पर उड़ते बादल और उनके बीच आंख-मिचौनी खेलते पक्षी. दूर-दूर तक नज़र आती हरियाली और उनके बीच मांग सी निकली छोटी-छोटी पगडंडियां. कुल मिलाकर ऐसा समां कि बस लुट जाने को मन करने लगे.

साहब लोगों का परिवार क़रीब एक मील की दूरी पर बने पक्षी-विहार का आनंद लेने के लिए निकल गया था. रामलखन ने साहब लोगों के लिए एक घने पेड़ के नीचे फ़ोल्डिंग कुर्सियां लगा दी थीं और वैसी ही एक तिपाई पर बियर की बोतलें, गिलास, बर्फ़ और भुने काजू-बादाम रख दिये थे. उनके गिलास भर कर वह ख़ुद सामने बहती झील के किनारे पड़े एक बड़े से पत्थर पर जा बैठा था. उतनी दूर से उसे दिखाई दे रहा था कि सभी ने बियर भरे गिलास उठा लिये थे और आपस में टकरा कर उन्हें होठों से लगा लिया था. प्लेटों में से काजू-बादाम कम होने लगे थे और उनके ठहाके रामलखन के कानों तक पहुंचने लगे थे.

हर ठहाके के साथ रामलखन की कुढ़न बढ़ती जा रही थी. प्रकृति का यह सौंदर्य उसमें ताज़गी और प्रसन्नता भरने की जगह कड़वाहट घोल रहा था. सामने पेड़ के नीचे बैठे जो लोग ख़ुशियों में मगन थे, वे ही उसकी और उसके परिवार की ख़ुशियां छीन लेने के गुनहगार थे. उसे यह सोच कर खीझ हो आयी कि वह इस पिकनिक में शामिल नहीं है, सिर्फ़ इन साहब लोगों की चाकरी बजाने के लिए यहां है. इन लोगों की वजह से ही, इतनी सारी छुट्टियों में उसे अपने परिवार से दूर रहना पड़ रहा है. उसके मुंह में कुछ कड़वा सा घुल गया और उसने उसे पिच्च से थूक दिया.

ठहाके फिर से उसके कानों से टकराये तो वह चिंहुक उठा. उससे बैठा नहीं गया और वह उठकर बेचैनी से टहलने लगा. तभी एक मिनी बस वहां आकर रुकी और पिकनिक मनाने आये लोग हंसते-खिलखिलाते उसमें से बाहर निकलने लगे. क़रीब बीस लोग थे जिनमें आधे से ज़्यादा दस से लेकर पंद्रह वर्ष की उम्र के बच्चे थे. जहां रामलखन के साहब लोग बैठे थे, उससे थोड़ी ही दूरी पर उन लोगों ने अपना अड्डा जमा लिया. औरतें और बड़े लोग गाड़ी से सामान निकालने और उसे ज़मीन पर बिछा दी गयी दरी के आसपास रखने में व्यस्त

हो गये. उधर बच्चों ने अपने साथ लाये क्रिकेट के सामान को वहीं पास की समतल ज़मीन पर रख कर दो टीमों का गठन शुरू कर दिया. थोड़ी ही देर में विकेट गाड़ दिये गये और काली टोपी लगाये अंपायर की निगरानी में खेल शुरू हो गया.

उत्साह से खेलते और जम कर आनंद लेते उन बच्चों को देखकर रामलखन की नज़रों में अपने बच्चों का चेहरा घूम गया. पता नहीं उसके बीवी-बच्चे इस समय क्या कर रहे होंगे. इन साहब लोगों ने उसके साथ-साथ उसके पूरे परिवार की छुट्टियां बिगाड़ दी थीं. कहां इन छुट्टियों में आराम करने और परिवार के साथ समय बिताने का वह बेसब्री से इंतज़ार करता रहा था और कहां वह उनसे इतनी दूर बैठा इन साहब लोगों की और उनके परिवारों की ग़ुलामी कर रहा था. वास्तव में, पिछले दो-तीन दिनों से तो वह अपने बीवी-बच्चों की शक़्ल भी देखने को तरस गया था. उसकी बेचारगी फिर से उफान लेने लगी और अपने सिर की तन आयी नसों को ढीला करने के लिए उसने घुटनों पर टिकाये अपने हाथों से सिर को कस कर पकड़ लिया.

कुछ संयत होने पर एक लंबी सांस छोड़ते हुए उसने अपना सिर उठाया. सामने उस घने वृक्ष की छाया में बैठे साहब लोगों पर बियर की मस्ती छाने लगी थी. वे गिलास हाथ में लिये औपचारिकता से बाहर निकल आये थे और उनके बीच हंसी-मज़ाक चल रहा था. रामलखन को लगा, वह एक बार उनके पास जाकर यह पूछ आये कि उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है. पर, वह यह सोच कर वहीं बैठा रहा कि कोई ज़रूरत होगी तो वे उसे आवाज़ लगा ही लेंगे.

ठीक उसी समय वह अप्रत्याशित घटना घटी. क्रिकेट खेलते बच्चों में से किसी ने एक ज़ोरदार शॉट लगाया और पत्थर जैसी गेंद बंदूक से निकली गोली की तरह उस घने वृक्ष के ऊपरी हिस्से को चीरती हुई पत्तियों में समा गयी. बच्चे अपराध बोध लिये ठगे से अपनी जगह खड़े रह गये. उधर पेड़ के नीचे बैठे लोग अपने हाथों के गिलास फेंक कर चीख़ते हुए भागने लगे. रामलखन समझ नहीं पा रहा था कि जब गेंद पेड़ से नीचे टपकी ही नहीं तो फिर साहब लोग ऐसे क्यों भाग रहे थे. वह उनकी तरफ़ जाने ही लगा था कि उसने जो कुछ देखा उससे उसकी भी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी और उसने अपने कंधे पर पड़ा बड़ा सा गमछा सिर से लेकर पूरे मुंह तक लपेट लिया.

लगता था, क्रिकेट की गेंद उन पत्तियों के बीच छुपे मधुमक्खियों के किसी बड़े छत्ते से जा टकरायी थी. क्रोधित मधुमक्खियों का बड़ा झुंड साहब लोगों पर टूट पड़ा था. साहब लोग चीख़ते-चिल्लाते और अपनी जान बचाते झील की तरफ़ गिरते-पड़ते भाग रहे थे. उनके बदन के तमाम खुले हिस्सों पर मधुमक्खियां चिपक गयी थीं और उन्हें बख़्शने के मूड में बिलकुल नज़र नहीं आ रही थीं. कोई और चारा न देखकर साहब लोग झील में कूद गये थे. थोड़ी ही देर में सारी मधुमक्खियां न जाने कहां ग़ायब हो गयीं. हैरत की बात थी कि क्रिकेट खेलते बच्चों और उनके परिवार की तरफ़ किसी भी

कविता

मृत्यु में तुम

✍ तेज राम शर्मा

मृत्यु के बाद भी
क्या रहोगी मृत्यु में तुम.
मृत्यु के बाद भी
क्या होता है मृत्यु का ही साम्राज्य
कि तस्वीर में तुम
बंद आंखों में तुम
घाव की खरोंच में तुम
घाव भरने के बाद भी तुम.
चिता का धुआं
ताप, हवा और आकाश बना
गुम हो जाता है कहीं.
राख जल में बह
मिट्टी बन जाती होगी कहीं
इतना सब कुछ होने के बाद भी
कैसे रह जाती हो,
जस-की-तस तुम !
तुम्हारी ओर बढ़ा मेरा हाथ
झुलसने से बचा लेती हो
ज्वालामुखी की शीतलता में तुम
क्या कोई कोना
बचा भी रहता है
जहां नहीं होती हो तुम?

✍ श्री राम कृष्ण भवन, अनाडेल,
शिमला-१७१००३.
फोन : ०१७७-२८१२०२०

मधुमक्खी ने कोई रुख नहीं किया था. फिर भी वे यह दृश्य देखकर विपरीत दिशा में भाग लिये थे.

झील में नाव चलाने वाले लोगों और चीख़ पुकार सुन कर वहां जमा हो आये स्थानीय लोगों की मदद से साहब लोगों को पानी से बाहर निकाला गया. उन सभी की हालत बहुत ख़राब थी. मुंह और हाथ-पैर अनार जैसे लाल हो रहे थे और पके फोड़े से सूज रहे थे. वे सभी जलन के मारे बुरी तरह तड़प रहे थे. चेयरमैन साहब तो बेहोश ही हो गये थे. तभी साहब लोगों के परिवार पक्षी-विहार देखकर वापस लौट आये थे. यहां की हालत देख उनका पिकनिक का सारा नशा उतर गया था और वे मदद के लिए गुहार लगाने लगे थे. स्थानीय लोगों ने किसी पेड़ की जड़ें पीस कर उनके शरीरों पर मल दी थीं. पर, उनकी तड़प में कोई कमी नहीं आयी थी. तय हुआ कि उन्हें तुरंत शहर वापस ले जाया जाये और अस्पताल में दाख़िल कर दिया जाये.

साहब लोगों को अपनी छुट्टियों के शेष दिन शहर के अस्पताल में गुज़ारने पड़ रहे हैं. उनसे मिलने आनेवालों का तांता लगा हुआ है. सभी इस घटना पर गहरा दु:ख जता रहे हैं. पर, रामलखन के भीतर की संवेदना कुंठित हो कर रह गयी है, वह दु:खी होना चाहता है, पर नहीं हो पा रहा है. पता नहीं उसका आक्रोश भी कहां तिरोहित हो गया है.

४०२, श्रीरामनिवास, ठट्ठा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं. ३, चेंबूर, मुंबई-४०००८९.
मो. : ९८३३४४३२७४.

: प्राप्ति-स्वीकार :

युगपुरुष गणेशशंकर विद्यार्थी (दो भाग) : **सं. श्री तिलक,** प्रभात प्रकाशन, ४/१९ आसफ अली रोड, नयी दिल्ली- ११०००२. अमूल्य.

अलविदा अन्ना (विदेश-यात्रा संस्मरण) : **डॉ. सूर्यबाला,** १६६१ दखनीराय स्ट्रीट, ने. सु. मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १५० रु.

ताजमहल और अन्य कहानियां (क. सं.) : **वल्लूर शिवप्रसाद,** जय किसान प्रकाशन, १०१ वृंदावन पार्क रेसिडेन्सी, गुंटूर-५२२००६ (आं. प्र.). मू. ४०० रु.

ख़ूबसूरत शहर और चीख़ें (क. सं) : **सं. सैली बलजीत,** अरुण प्रकाशन, ई-५४, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. ४०० रु.

हरी-सुनहरी पत्तियां (क. सं.) : **कमल कपूर,** अक्षरधाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल-१३६०२७. मू. २०० रु.

अपने-अपने सच (क. सं.) : **देवेंद्र कुमार मिश्रा,** पार्वती प्रकाशन, ७३-ए, द्वारिकापुरी, इंदौर-४५२००१. मू. २०० रु.

कोहरे का सूरज (क. सं.) : **जयनाथ मणि त्रिपाठी,** अंचल भारती प्रकाशन, रा. औ. आस्थान, गोरखपुर मार्ग, देवरिया -२७४००१. मू. २०० रु.

एक और चेहरा (क. सं.) : **डॉ. तारिक असलम तस्नीम,** बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से-९, क. इं. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ७० रु.

समकालीन हिंदी लघुकथाएं (ल. सं.) : **डॉ.अशोक भाटिया,** हरियाणा ग्रंथ अकादमी, से-१४, पंचकूला -१३४११३. मू. २२० रु.

नीम का पेड़ (ल. सं.) : **किशन लाल शर्मा,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, दिल्ली-११००३०. मू. २०० रु.

प्रतिध्वनि (काव्य संग्रह) : **प्रतिभा पुरोहित,** राहुल प्रकाशन, सी-७४ साईधाम टेनामेंट, अहमदाबाद-३८२४१८. मू. १८० रु.

धनक रंग (माहिये) : **सिराज देहलवी,** गुलिस्तां पब्लिकेशन्स, ६७ शौकत अली स्ट्रीट, कोलकाता-७०००७३. मू. १५० रु.

संगत (कविता संग्रह) : **ख़ुदेजा,** पहले पहल प्रकाशन, २५-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, भोपाल. मू. १५० रु.

गंगा-सागर (क. सं.) : **एल. एल. श्रीवास्तव,** प्र. सुषमा श्रीवास्तव, १४३/२, बलिहार रोड, मोराबादी, रांची-८. मू. १२५ रु.

काव्य कलश (का. संग्रह) : **रंजन कलश,** इंदौर, रंजन कलश, ५३ बी सेक्टर, इंद्रपुरी, भोपाल-४६२०२१. मू. १०० रु.

बाबुल तू बगिया का तरुवर (क. सं.) : **अरुण कुमार भट्ट,** प्र. शारदा साहित्य मंच, रावतभाटा (राज.). मू. १०० रु.

कोल्लेरू झील (लंबी कविता) : **एस. आर. भल्लम,** प्र. रचना साहिती गृहम, इंदिरा नगर, ताडेपल्लिगूडेम-५३४१०१. मू. १०० रु.

शब्द हुए निःशब्द (दो. सं.) : **सतीश गुप्ता,** प्र. शब्दोत्सव, के-२२१ यशोदानगर, कानपुर-२०८०११. मू. १०० रु.

चहक-महक (बाल कविताएं) : **सदाशिव कौतुक,** पार्वती प्रकाशन, ७३-ए, द्वारिकापुरी, इंदौर-४५२००१. मू. ५० रु.

कहानी

सुरली भौजी

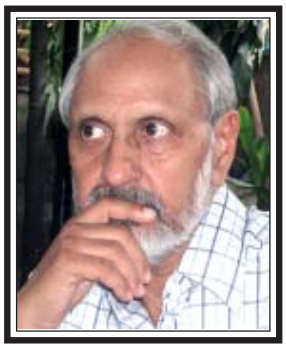

✍ डॉ. रूपसिंह चंदेल

"कौ...ऽ...न?" दरवाज़े पर दस्तक सुन भीतर से आवाज़ आयी; और उसी के साथ, दरवाज़े तक किसी के आने की आहट.

दरवाज़ा खुला तो रवीश रोमांच से भर-सा उठा. 'भौजी का चेहरा बिल्कुल नहीं बदला....न ही शरीर. वैसी ही कसी हुई देह, वैसा ही भरा-भरा चेहरा. उम्र को धता बताती चेहरे पर वही चमक-गमक. दस वर्ष लंबे अंतराल के बाद भी....!!!'— उनके चेहरे पर नज़र गड़ाये वह सोच रहा था.

उधर भाभी भी अनजान-से दुबले-पतले, लेकिन आकर्षक नौजवान को दरवाज़े पर खड़ा देखकर किंचित अचकचा-सी गयी. वह उससे उसका परिचय पूछने ही वाली थी कि चेहरा पहचान में आ गया.

"अरे... तुम?" अतिशय आश्चर्य और हर्ष के मिले-जुले भाव सहित उनके मुंह से निकला. विस्मय से उनकी बड़ी-बड़ी आंखें और चौड़ी हो गयीं.

वह ड्योढ़ी के उस पार अंदर बुलाये जाने के इंतज़ार में खड़ा रहा, उनके चेहरे पर नज़रें गड़ाये. भौजी की नज़रें भी उस पर जो एक बार टिकीं तो हटने का नाम ही नहीं ले रही थीं. उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था शायद कि सामने जो खड़ा है वह रवीश ही है. आख़िर उसे कहना ही पड़ा, "बाहर से ही लौटा दोगी भौजी?"

"ऊं हं...." उन्होंने उसके चेहरे से नज़रें हटायीं, "आंखों को विश्वास ही नहीं हो रहा रवीश कि तुम हो... आख़िर तुम चले क्यों गये थे; और रहे कहां इतने दिन? तुमने तो हमारे होश ही गुमा दिये थे. कहां नहीं खोजा तुम्हारे भइया ने. गांव, जंगल, एक शहर से दूसरे शहर — और महीनों पुलिस के चक्कर काटे...."

उनकी बात बीच में ही काटता हुआ वह बोला, "सब बताऊंगा भौजी...कुछ दम तो ले लेने दो!"

"ऊं हं..."

बरौठा पार कर सामने आंगन था. आंगन में चारपाई पड़ी थी, जिस पर एक मटमैला बिछौना तहाया हुआ रखा था. भौजी ने बिछौने को लपककर उठाया और सामने की दूसरी कोठरी में उसे पटककर एक नयी साफ़ दरी लाकर चारपाई पर बिछाते हुए बोलीं —"अब बैठो."

"मैं कोई मेहमान हूं भौजी, जो तुम इतना सब कर रही हो!" रवीश उनकी ओर देखता हुआ बोला.

"मेहमान से भी अधिक..... पता नहीं किस बात से नाराज़ होकर गये तो सुध ही न ली कि हम सब पर का बीत रही होगी?"

रवीश ने चुप रहना ही उचित समझा. उसे इस बात का अहसास अब हो रहा था कि उसे कम से कम इंदर भइया के नाम एक ख़त डालकर उन्हें यह बता देना चाहिए था कि वे परेशान न हों....वह सही सलामत है.

"इंदर भइया कहां हैं भौजी?" विषय बदलने के लिए वह बोला.

"भइया, आज शहर गये हैं. बेटा शहर में पढ़ रहा है..." एक क्षण रुककर वह बोली — "शाम की गाड़ी से आ

डॉ. रूपसिंह चंदेल

जन्म : १२ मार्च १९५१; गांव : नौगवां गौतम (जिला-कानपुर).
शिक्षा : पी-एच. डी. (हिंदी), कानपुर वि. वि.

प्रकाशित कृतियां : *अब तक ४६ पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें ८ उपन्यास, १३ कहानी संग्रह, ३ किशोर उपन्यास, १० बाल कहानी संग्रह सहित यात्रा संस्मरण, आलोचना, लघुकथा संग्रह, संस्मरण, शोधपूर्ण जीवनी (दॉस्तोएव्स्की के प्रेम); तथा महान रूसी लेखक लियो तोल्स्तोय के अंतिम और अप्रतिम उपन्यास - 'हाजी मुराद' का पहली बार हिंदी में अनुवाद. साथ ही तोल्स्तोय का अंतरंग संसार, तोल्स्तोय पर उनके परिजनों, लेखकों, रंगकर्मियों आदि के संस्मरणों का अनुवाद.*

शीघ्र प्रकाश्य : *साक्षात्कार (हिंदी, पंजाबी और कन्नड़ लेखकों के साथ बातचीत).*

पुरस्कार/सम्मान : हिंदी अकादमी दिल्ली से १९९० और २०००, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से १९९४ में पुरस्कृत. उपन्यास 'गुलाम बादशाह' पर राजस्थान का प्रतिष्ठित पुरस्कार 'आचार्य निरंजननाथ सम्मान' से दिसं. २०१३ में सम्मानित.

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन.*

जायेंगे.''

''तो हरीश इतना बड़ा हो गया. ...शहर में जाकर पढ़ने लायक! कितना छोटा था — गोल-मटोल...''— क्षणभर के लिए वह जैसे अतीत में उतर गया.

''कहां रहे इतने दिनों... हम सबकी तनिको याद न आयी?'' भौजी ने पूछा तो उसकी तंद्रा टूटी.

''याद न आयी होती तो आज यहां कैसे बैठा होता.'' कहने को तो वह कह गया, लेकिन अपनी आवाज़ के खोखलेपन को उसने स्वयं अनुभव किया. प्रसंग को टालने के उद्देश्य से वह बोला — ''घर में कोई बदलाव नहीं किया आप लोगों ने. मैं देखता हुआ आया हूं कि मानू सिंह, परताप सिंह, शिवपाल सिंह के ही नहीं कल्लू और परसू लोध के घर तक पक्के बन गये हैं.... लेकिन आप...''

''सबके लिए ज़िंदगी इतनी आसान नहीं है. तुम्हारे जाने से जान सांसत में रही. तुम्हारे साथ किसी अनहोनी की कल्पना से हम कितना परेशान रहे होंगे तुम सोच नहीं सकते. उससे जूझ ही रहे थे कि हरीश को पता नहीं क्या बीमारी हुई! ... उसके इलाज़ के लिए लगातार शहर भागते रहे...''

''ओह!'' भौजी के चेहरे की ओर देखते हुए उसने पूछा — ''अब कैसा है हरीश?''

''ठीक है... बिल्कुल ठीक...'' फिर अचानक कुछ याद आ जाने के भाव से उठते हुए वह बोलीं, ''तुम पता नहीं कितनी दूर से आये और मैं अपनी ही गाये जा रही हूं. बिल्कुल ही पागल हूं.''

''वह तो तुम हो ही भौजी...'' शरारतभरे अंदाज़ से उनकी आंखों में झांकता हुआ वह बोला.

उसकी शरारत पर मुस्कराकर सुरली भौजी उठीं, ''चाय-नाश्ता लाती हूं, तब तलक तुम आराम करो.''

चारपाई पर पसरते हुए रवीश ने जाती हुई भौजी के पार्श्व को देखा. 'काया पहले से कहीं अधिक पुष्ट दिख रही है'. उसने सोचा—''आज भी चाल में वही नफ़ासत है! यहां रहने के दिनों में उनकी चाल को देखकर वह कहा करता, ''भौजी आपकी चाल गजगामिनी–सी है'' और वह मान से इठलाकर उसे झिड़कती हुई कहतीं, ''दिन पर दिन बहुत शरारती होते जा रहे हो रवीश. अपनी बकवास अपने पास ही रखा करो...''

लेकिन वह जानता था कि उसके वैसे बोलने को भौजी बार-बार सुनना चाहती हैं. जब वह उनकी आवाज की तारीफ़ करता हुआ कहता, ''भौजी... शायद तुम्हारी कोयल जैसी मधुर और सुरीली आवाज के कारण ही तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हारा यह नाम रखा था.'' तब नाराज़गी जताती-सी वह कहतीं, ''मुझे यह सब पता नहीं... अब जो रख दिया सो रख दिया.'' लेकिन यह कहते हुए उनकी आंखों की चमक बता जाती थी कि यह सुनकर वे नाराज़ नहीं, बहुत ख़ुश हैं.

किचन में घुसते ही सुरली भौजी उसकी आंखों से ओझल हुई तो मन की बेचैनी दबा वह पूरी तरह से चारपाई पर पसर गया और खो गया अतीत में.

□

वह आठ साल का था कि एक वर्ष के अंतराल में पहले पिता और फिर मां की मृत्यु हो गयी थी. कठिनाई से एक साल गांव में रह पाया. ताऊ के यहां हर सुबह जानवरों का गोबर उठाने से शुरू होती और विद्यालय जाने से पहले एक कप चाय; फिर एक परौठा मिलने से पहले ताई की हज़ार झिड़कियां मिलतीं. दोपहर बाद घर लौटने पर बिना सालन नमक के साथ दो चपाती और फिर खेतों की ओर दौड़ा दिया जाता — अधपेट. छोटी उम्र और काम का

क्षमता से अधिक बोझ; वह ताऊ-ताई को बिना बताये एक सुबह स्कूल से सीधे ननिहाल भाग आया. शायद वे लोग यही चाहते थे. नाना-मामा थे नहीं. थे मामा का इकलौता बेटा — इंदर और नानी. नानी बूढ़ी थीं. उसकी दास्तान सुनकर नानी ने उसे छाती से लगाते हुए कहा था, ''तू अब कहीं नहीं जायेगा रविश.'' वह उसे रवीश नहीं पुकार पाती थीं, ''...यहीं रहकर पढ़ाई कर और बड़ा आदमी बन.''

कहते हैं कि उसके नाना-मामा की मृत्यु उसके पैदा होने से पहले ही हो चुकी थी. इंदर, जिन्हें वह इंदर भइया कहता था, मामा की मृत्यु के समय उन्नीस या बीस साल के थे. उनकी मृत्यु के बाद इंदर को पढ़ाई छोड़ खेत संभालने पड़े थे. लेकिन वह पढ़ाई के महत्व को समझते थे. उन्होंने अगले ही दिन उसे गांव के स्कूल में उसी कक्षा में प्रवेश दिलवा दिया जिसमें वह पढ़ता था. दो साल बाद इंदर का विवाह हुआ फतेहपुर के एक गांव में. सहबोला बनकर वह इतराता घूमता रहा था. इंदर की पत्नी, जिसे वह पहले ही दिन से भौजी कहने लगा था, ऐसी कि अंधेरे में खड़ी हो तो रोशनी की आवश्यकता न थी. लगभग छब्बीस साल की आयु, बड़ी आंखें, लंबे केश, भरी देहयष्टि, गोल और भरा चेहरा. विदा होकर वह उसी बैलगाड़ी में गांव तक आया था और रास्ते भर भौजी की ख़ैर-ख़बर लेता रहा था.

तीन साल बीत गये. पांचवीं उत्तीर्ण कर चार मील दूर दूसरे गांव में इंदर ने छठवीं में उसका दाख़िला करवा दिया. नानी पोते का मुंह देखने की आस लिये चल बसी थीं. एक दिन उसने भौजी को इंदर भइया से कहते सुना, ''अम्मा पोते की आस लिये चली गयीं — मेरे घर वाले भी (भौजी का मतलब अपने मायकेवालों से था) गाहे-बगाहे टोक देते हैं — एक दिन चलकर शहर के अस्पताल में हमें अपने को दिखा लेना चाहिए... शंका का समाधान...''

''पगला गयी हो सुरली... अभी उमर ही का है. कुछ दिन अउर देखि लेव...'' भौजी को बीच में टोक इंदर भइया बोले थे. उसने उस दिन अनुभव किया था कि भौजी संतान को लेकर जितना चिंतित थीं भइया उतने ही लापरवाह.

□

उसी वर्ष जाड़े के दिनों में, शायद दिसंबर माह में इंदर भइया को आगरा के एक गांव शादी में जाना पड़ा. उनके जाने के बाद भौजी दिनभर गंभीर रहीं. स्कूल से लौटने के बाद उसने यह अनुभव किया था. जानवरों के सानी-पानी और उनके नीचे साफ़-सफ़ाई के लिए इंदर भइया ने गांव के एक मज़दूर की व्यवस्था कर दी थी. वह आकर भैंस का दूध निकाल गया था. भोजन के पश्चात रात वह अपनी कोठरी में पढ़ रहा था. यह वही कोठरी थी जिसमें नानी के साथ वह सोया करता था. बिजली तब गांव में न थी — लालटेन की रोशनी में दरवाज़े पर भौजी प्रकट हुईं. उसकी ओर गर्म दूध का गिलास बढ़ाते हुए बोलीं, ''रवीश मुझे अकेले डर लग रहा है. पढ़ने के बाद मेरे कमरे में आ जाना.'' दूध का गिलास थामते हुए उसने टाइम पीस में समय देखा, नौ बज रहे थे. उसने सिर हिलाकर हामी भरी तो भौजी लौट गयी थीं.

वह प्रतिदिन रात आठ बजे पढ़ने के लिए बैठ जाता और दो घंटे पढ़ता. दस बजे उसने सुबह पांच बजे के लिए एलार्म लगाया और लालटेन की रोशनी धीमी कर आंगन पार कर भौजी की कोठरी, जिसे वह कमरा कहती थीं, में गया. वहां पहले से ही लालटेन जल रही थी. अपनी लालटेन बुझाकर उसे खूंटी से टांग उसने पूछा, ''भौजी, मेरी चारपाई कहां है?''

भौजी ने कुनमुनाते हुए रजाई हटायी और उसके लिए जगह बनाते हुए बोली —''इधर लेट जाओ.''

''मज़ाक न करो भौजी... मेरे लिए चारपाई...?'' उसकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि भौजी ने लपककर उसका हाथ पकड़ उसे रजाई में खींच लिया था. वह बेहद घबड़ा गया था, ''यह क्या... यह क्या... भौजी... यह क्या...?''

लेकिन भौजी कोई उत्तर दिये बिना उसके गाल चूमे जा रही थीं और उसे अपने शरीर से चिपकाये जा रही थीं. वह जितना ही उनसे छूटने का प्रयास कर रहा था वह उतना ही उसे अपने में दबोच रही थीं. उसका प्रतिरोध अधिक देर तक कायम नहीं रह सका. भौजी के शारीरिक स्पर्श से वह एक ऐसी अनुभूति में खोता जा रहा था कि उसे स्वयं यह ज्ञान नहीं रहा कि वह किस दुनिया में विचरने लगा था. वह एक ऐसी दुनिया का हिस्सा बन चुका था जो उसके लिए अनजान थी लेकिन इतनी ख़ूबसूरत, इतनी आकर्षक कि वह उसमें डूब ही गया था. इंदर भइया की अनुपस्थिति के चार दिन ही नहीं वह उसमें डूबा रहा बल्कि उस दुनिया ने उसके अंदर स्थायी रूप से अपना स्थान बना लिया था.

वह दुनिया पता नहीं कब तक आगे उसके अंदर आबाद रहती यदि वह हाई स्कूल में अनुत्तीर्ण न हुआ होता. घर में किसी की नज़रें भले ही नहीं बदली थीं, लेकिन हाई स्कूल की परीक्षा में पुन: बैठने की तैयारी करते हुए उसने आत्ममंथन शुरू कर दिया था. इस बीच भौजी ने एक पुत्र को जन्म दिया — गोल-मटोल और गोरे-चिट्टे पुत्र को. और तभी एक दिन मजाक में भौजी ने कहा था, ''रवीश, जिसे तुम अपना भतीजा कहते हो वह भतीजा नहीं, तुम्हारा बेटा है...''

उस दिन उसने अपने अंदर घृणा और कृतघ्नता का ऐसा मिला–जुला भाव अनुभव किया था जो स्वयं और भौजी — दोनों के प्रति था. उसी दिन उसने उस घर को छोड़ देने का निश्चय किया था. हाई स्कूल का परीक्षा परिणाम अनुकूल रहा था. द्वितीय श्रेणी मिली थी. विद्यालय से टी. सी. और मार्क्सशीट लेकर एक सुबह वह ननिहाल से भी भाग खड़ा हुआ था. लखनऊ गया था फ़ौज में भर्ती होने, लेकिन सफलता नहीं मिली. तत्पश्चात छोटे-छोटे काम करके गुज़ारा करने लगा था. एक साल बाद वह कानपुर आ गया और एक प्रिंटिंग प्रेस में कंपोज़ीटर की नौकरी पाने में सफल रहा. कुछ कमाई होने लगी तो उसके अंदर दफ़न स्त्री-संसर्ग की दुनिया फिर जागने लगी. उस दुनिया को और अधिक जगाने में अहम भूमिका निभायी थी उसके साथ काम करने वाले एक अन्य कंपोज़ीटर ने. वह एक दिन उसे मूलगंज के एक कोठे पर ले गया था. एक बार उसने वहां का रास्ता जो देखा तो जब तक कानपुर में रहा, वहां जाना बंद नहीं हुआ. माह में एक-दो बार जाने लगा था. जिस दुनिया को भौजी के साथ वह गांव में छोड़ आया था, उसने उसे मूलगंज के कोठों में खींच लिया था.

□

शाम ढलते ही नारी देह की चाह उसे होने लगती; और रात गहराने तक इतनी बलवती हो उठती कि अपने आपको मूलगंज की ओर जाने से रोक पाना उसके लिए असंभव हो उठता. उसने कभी कहीं पढ़ा था कि कम आयु में चारित्रिक स्खलन मानसिक और शारीरिक रोग का रूप ग्रहण कर लेता है और व्यक्ति आजीवन, चाहे पुरुष हो या स्त्री, उसका शिकार रहता है. वह चाहकर भी उस कमज़ोरी से मुक्ति का रास्ता तलाश नहीं कर पा रहा था. लेकिन वह अपने करियर को लेकर भी सचेत था. और उस छोटी-सी नौकरी के साथ ही उसने प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में पहले इंटर पास किया था और उसके बाद प्रेस मालिक के एक जानकार सी. ए. के यहां जा बैठा था. सी. ए. के यहां नौकरी करते हुए उसने सी. ए. इंटर किया और कानपुर को अलविदा कहकर दिल्ली जा पहुंचा था, जहां एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में उसे नौकरी मिली. उस नौकरी के साथ ही उसने सी. ए. फ़ाइनल करना ज़ारी रखा. दिल्ली में अच्छी नौकरी थी तो जीवन के अभावों को पूरा करने के अनेक नये स्थान और साधन भी थे. उसकी मूलभूत कमज़ोरी ने जल्दी ही उसे एक ऐसी युवती से मिला दिया जो एच. आई. वी. संक्रमित थी. जब उसे इस बात की जानकारी हुई, बहुत विलंब हो चुका था. वह स्वयं गंभीरता से उस बीमारी की चपेट में आ चुका था और तब उसे सुरली भौजी की याद हो आयी थी... 'तुमने देह की इस दुनिया में

न धकेला होता भौजी, तो....' वह इससे आगे सोच नहीं सका था. स्त्री-देह से मिलने वाले स्वर्गिक सुख की अनुभूति के एकाएक नारकीय पीड़ा में बदल जाने का कारण स्वयं उसकी संयमहीनता रही, यह वह सोच नहीं सका. दैहिक संसर्ग का समर इस तरह हारने की छटपटाहट, पीड़ा, हताशा का जैसे कहीं कोई अंत ही नहीं था. काम और उसकी तृप्ति से परिचित कराने वाली नायिका खलनायिका में परिवर्तित हो गयी और उससे प्रतिशोध की लपटें सिर ऊंचा उठाने लगी थीं. ''भौजी, मैं अकेला नहीं मरूंगा, तुम्हें भी तिल-तिलकर इस आग में जलना होगा.'' उसने एक दिन निश्चय किया था और वापस गांव जाने की योजना बनाने लगा था.

□

''सो गये रवीश...?'' एक ट्रे में चाय और नाश्ता थामे भौजी खड़ी थीं.

वह उठ बैठा. उसने एक बार फिर भरपूर नज़र उन पर डाली. 'बिल्कुल नहीं बदली यह. वैसा ही गदराया बदन, आज भी वैसा ही जवानी जैसा रूप!!!'

'रवीश के चेहरे में वैसा ही भोलापन है. तब मसें भीग रही थीं. लेकिन अब तो नस-नस से जवानी फूट रही है. बल्कि बिल्कुल जवान. सत्ताइस-अट्ठाइस का है. कितना मोहक-आकर्षक. कितने बरस बीत गये इसके हाथ की छुअन अनुभव किये. यह इंतज़ार किस बात का कर रहा है. चाय को परे खिसका क्यों नहीं देता.' अपने स्वयं के भीतर उसे सुरली भौजी ख़ुद से यह कहती सुनायी दी.

''तुमने कुछ कहा भौजी?'' इसी के साथ उसके अंदर का लंपट पुरुष मचलकर चीख़ने लगा — 'चाय-नाश्ता बाद

(शेष पृष्ठ १६८ पर देखें....)

कहानी

कितने प्रश्न

✍ विकेश निझावन

एक प्रश्न के छः सौ रुपये, दो प्रश्नों का एक हज़ार रुपया.... और तीन प्रश्नों के केवल बारह सौ रुपये. .... एक बार में तीन से अधिक प्रश्न नहीं पूछ सकते आप. सभी प्रश्नों को लिखित रूप में दीजिएगा और लिखित रूप में ही उनका जवाब पाइएगा. कोई भी जवाब अगर समयारूप ठीक नहीं होता या पूरा नहीं हो पाता तो हमारे हाथ का लिखित क़ाग़ज दिखाकर पैसे तुरंत वापस ले जा सकते हैं.

रूप नारायणी जैसे सोते से जगी. एकाएक पंडितजी का ध्यान आ गया था उसे. पिछले वर्ष इन्हीं दिनों तो गयी थी पंडितजी के पास. शमशेर की बहू वृंदा ले गयी थी उसे. कितनी विचलित थी रूप नारायणी उस वक़्त. वृंदा के आगे अपना दुखड़ा रो बैठी थी. दुखड़ा भी ऐसा जो किसी के आगे कहते न बने. इंसान ज़िंदा जी मुंह न खोले, अगर खोल भी बैठे तो कहते ही मर जाये. लेकिन नारायणी मरी नहीं थी. सोचती तो कुछ ऐसा ही थी लेकिन जब सारा कुछ उगल दिया, तो उसे लगा था, सर से मनो बोझ उतर गया है जैसे.

वृंदा ने धीरज बंधाया था — तू इतना क्यूं घबरा गयी नारायणी. औरत की ज़िंदगी में तो ऐसा हो ही जावे, और फिर तू तो वैसे भी रूप नारायणी है. तेरी सूरत देख कर तो आईना भी चटक जाये. फिर वो तो मरद जात... भला कैसे छोड़ देता तेरे को!

नारायणी थोड़ा कसमसायी फिर बिफर पड़ी — तुझे ठट्ठा सूझे. मेरी जान पर बनी है. कल को कुछ हो-हवा गया तो?

- अरी कुछ न होवे. एक बार में कुछ न होवे.
- तू तो ऐसे कह रही, जैसे तेरे साथ भी कभी ऐसा हुआ हो.

वृंदा हंस पड़ी. एक विद्रूप सी हंसी. फिर नारायणी के दुपट्टे को अंगुली पर गोल-गोल करती बोली — मेरे साथ तो ऐसा कई बार हुआ री!

– क्या बकवास करती है !
- सच कह रही हूं. पिछले साल मामा के यहां गयी थी तो मामा के लड़के ने ही....
- हाय राम! भाई के साथ ही...!
- रिश्ते तो कहने के होते हैं री. इंसान को जानवर बनने में देर थोड़े न लगे.
- तूने किसी से कहा नहीं?
- मां से कहा था.
- फिर?
- कहने लगी, मैं क्या करूं! जवान ख़ून है, कुछ भी कर सकता है.
- मां ने ऐसा कहा? अगर हर मां ऐसा सोचने लगे...
- हर मां ऐसा नहीं सोच सकती... वृंदा ने बात बीच में काटी.

विकेश निझावन

लेखन : *अब तक देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका', 'हंस', 'कादंबिनी, 'कथाबिंब', 'वर्तमान साहित्य', 'कथादेश', 'रूपकंचन, 'वागर्थ, 'हिंदी चेतना', 'सरिता', 'नवभारत टाइम्स, 'शिखर, 'कथाक्रम'... आदि में दो सौ से ऊपर कहानियां एवं कविताएं प्रकाशित.*

दस कहानी संग्रह, चार कविता संग्रह, दो उपन्यास तथा एक लघुकथा संग्रह तथा कुछ बाल पुस्तकें प्रकाशित.

कहानी संग्रह : हर छत का अपना दु:ख, अब दिन नहीं निकलेगा, महादान, आख़िरी पड़ाव, कोई एक कोना, गठरी, महासागर, मेरी चुनिंदा कहानियां, कथापर्व, मातृछाया आदि.

कविता संग्रह : *एक ख़ामोश विद्रोह, मेरी कोख का पांडव, एक टुकड़ा आकाश, शेष को मत देखो.*

लघुकथा संग्रह : *दुपट्टा, उपन्यास-मुखतारनामा.*

अन्य : *कहानी संग्रह 'अब दिन नहीं निकलेगा' एवं कविता संग्रह 'एक टुकड़ा आकाश' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत. कुछ कहानियां राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत.*

कहानियां 'न चाहते हुए', 'ऊदबिलाव', 'एक टुकड़ा ज़िंदगी का' दूरदर्शन पर नाट्य रूपांतर. आकाशवाणी से कहानियों एवं कविताओं का नियमित प्रसारण.

कुछ कहानियों का गुजराती, अंग्रेज़ी, पंजाबी, तेलगु एवं उर्दू में अनुवाद.

विशेष : *'विकेश निझावन का जीवन एवं साहित्य' पर कुरुक्षेत्र वि. वि. से एक छात्रा द्वारा पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त.*

संप्रति : *साहित्यिक पत्रिका 'पुष्पगंधा' का संपादन.*

- क्यों?

- बस, सौतेली मां ही ऐसा सोच सकती है. वृंदा की आवाज़ भारी हो आयी थी.

नारायणी उसे देखती भर रह गयी थी. ज़रा रुक कर बोली तू तो बच गयी लेकिन मुझे कुछ हो-हवा गया तो ऽऽ? नारायणी वृंदा को कंधे से पकड़ कर झिंझोड़ने लगी थी.

- डॉक्टरनी को दिखा ले.

– न! पूरे गांव में बात फैला देगी.

- तो फिर एक काम कर.

- क्या?

- मेरे साथ पंडितजी के चल.

- कौन से पंडित जी?

- दूसरे गांव के हैं. यहां किसी को कानों-कान ख़बर न होगी.

- वो क्या करेगा?

- लिख कर देगा कि कुछ होने वाला है या नहीं.

- उसे क्या कहूंगी, शर्म लागे है.

- तुझे कुछ नहीं कहना. वो ख़ुद ही बता देगा. लिख कर भी देगा. अगर लिखा हुआ झूठ निकला तो पैसे वापस.

- तू सच कहे?

- सोलह आने सच! मैं तो पिछले तीन साल से जानूं उन्हें.

- पैसे कितने लगेंगे?

- पहले तो एक सवाल का सौ रुपया लेंवे थे, अब दो सौ हो गये होंगे. इतने तो होंगे तेरे पास.

- पैसे तो बथेरे हैं मेरे पास. विष्णु की जेब काटना अच्छी तरह जानूं.

- दूसरे की तो जेब काटना ही जाने, अपनी तो इज़्ज़त ही कटवा आयी.

- चोऽप, हरामखोर! तुझे बता दिया इसका मतलब जे तो न....

- अच्छा बस कर! मज़ाक कर रही थी मैं तो.

घर से मंदिर का बहाना करके निकली थी रूप नारायणी. वृंदा रास्ते में मिल गयी थी. सात किलोमीटर का रास्ता तय किया था दोनों ने. रास्ते में एक-एक भुट्टा ले लिया था और चबाती चली गयी थीं.

- वैसे आधी पंडिताइन तो मैं भी हूं. तेरा भविष्य तो मैं भी बता दूं. वृंदा चलते-चलते बोली थी.

- क्या मतलब!

- तुझे कुछ न हुआ. सब पचा गयी तू तो.

- तुझे कैसे पता?

- इतना बड़ा भुट्टा खा गयी. उल्टी तो क्या, एक उबकाई तक न आयी तुझे.

- चुप बेवकूफ! इतनी जल्दी मितली थोड़े न लगे.

- ठीक है, पंडितजी की बात ही मानेगी तू तो.

आख़िर दोनों सरकती हुई पहुंची थीं पंडित जी के पास.

पंडितजी ने क़ाग़ज पेन सामने रख दिया. रूप नारायणी ने क़ाग़ज पेन तो हाथ में ले लिया, लेकिन क्या लिखे. हाथ कांपने लगे थे. कौन से शब्द हैं उसके पास...? रूप नारायणी पिघल आयी. आंसू जार-जार उसकी आंखों से टपकने लगे.

पंडित जी मुस्करा दिये — कोई बात नहीं. जो तूने लिखना था तेरी आंखों ने कह दिया. तेरे पाप का प्रायश्चित हो गया. निश्चिंत होकर घर जा और चैन की नींद सो. तेरे पर कोई कष्ट नहीं आने का.

पंडित जी की एक सवाल की फीस अब पांच सौ रुपया हो गयी थी. उन्होंने क़ाग़ज पर सवाल भी लिख दिया और जवाब भी. क़ाग़ज को दोहरा-चौहरा कर नारायणी की ओर बढ़ाते बोले — इसे संभाल कर रखना. कुछ ग़लत निकला तो पैसे वापस ले जाना.

नारायणी ने घर आते ही क़ाग़ज संदूकची के हवाले कर दिया. उसे तो कोई न खोल सके. इस पर ताली जितनी छोटी है उतनी ही मज़बूत भी. और इसकी चाबी.... कोई लाख कोशिश कर ले, अगर मिल जाये तो! नारायणी को अपने पर विश्वास भी था, घमंड भी. लेकिन ज़्यादा दिन तक नारायणी को काग़ज़ संभाल कर नहीं रखना पड़ा. दस-बारह दिन बाद ही माहवारी आ गयी थी और नारायणी हल्की हो आयी थी. मन में बैठा डर भी हट गया था. पडिंत जी पर विश्वास भी चोखा जम गया.

अब तो पंडितजी के पास दोबारा जाने की इच्छा पैदा हो आयी रूप नारायणी की. ख़ुद मां कब बन पायेगी, इस वक़्त यह सवाल उसके सामने मुंह बाये खड़ा था. पंडित जी तो महीना तारीख़ भी बता देंगे और फिर अगर उनका जवाब ग़लत निकल आया, पैसे तो वापस हो ही जाने हैं. इस बार नारायणी ने वृंदा को फिर से पटा लिया.

पंडित जी ने सर से पांव तक देखा रूप नारायणी को. बोले — इतनी दूर से एक सवाल के लिए आती है... पांव भी थकते होंगे.... समय भी जाया जाता है. एक समय में तीन प्रश्न पूछ लिया कर तो अच्छा रहता है. दूसरे पर भी निर्भर नहीं होना पड़ता. पैसे भी कम लगते हैं. तीन सवालों पर छूट जो है.

पंडित जी की बात तो ठीक है. सवाल तो उसके मन में अभी कई हैं.

पराये मर्द के साथ सहवास हो जाने के बाद से इतना डर क्यों बैठ गया है उसके मन में? पहला सवाल तो यही है. दूसरा सवाल, पराये मर्द और अपने मर्द के बीच वह एक अंतर को मापने लगी है? दोनों में क्या अंतर है? और तीसरा सवाल... पराये मर्द को लेकर उसे अभी तक एक दुर्गंध का अहसास बना हुआ था, अब वह दुर्गंध सुगंध में क्यों बदलने लगी है?

छि:! कितनी गंदी बात सोच बैठी है वह.

पूरा डेढ़ साल हो चला है उसके विवाह को. अभी तक उसके गर्भ नहीं ठहरा. पिछली बार मां के पास गयी थी तो मां ने साफ़-साफ़ पूछ लिया था — तेरा मर्द ठीक तो है न? कहीं आधा-अधूरा तो नहीं.

रूप नारायणी की आंखों में जैसे ख़ून उतर आया था. मां यह क्या कह रही है! नारायणी बोल तो नहीं पायी थी लेकिन ज़हर भरी आंखों से मां की ओर देखने लगी थी.

- आय-हाय! ऐसे क्या देख रही है मुझे. मुई, हमारे यहां तो किसी को तीन महीने से ज़्यादा न लगे. हम तो पहले फेरे पर ही ख़ुश-ख़बरी लेकर जाती थीं. जरा रुक कर मां बोली थी — आज तो मैं पूछ रही हूं, कल को गली-मुहल्ले वालियां पूछने लगेंगी, तब क्या जवाब देगी?

रूप नारायणी का मन तो हुआ था मां की यह बात विष्णु से कह डाले. पर यह भी कोई कहने की बात है. कितना तो वह उसे प्यार करता है. लेकिन रूप नारायणी को आज लग रहा है कि प्यार और मर्दानगी में अंतर होता है.

आज वह पंडितजी के आगे पूरे तीन सवाल रखेगी. पहला यही कि वह मां कब बन पायेगी? दूसरा यह कि विष्णु बाप बनने लायक है कि नहीं? और तीसरा... तीसरे सवाल का सोच कर तो नारायणी ख़ुद ही कांप गयी. उसकी इस बात को कोई जान गया तो उसका गला ही दबा देगा. मां और वीर तो उसे ज़िंदा ज़मीन में गाड़ देंगे. लेकिन अब उसे मां और वीर से क्या लेना-देना! अब तो वह विष्णु की अमानत है. उसकी बीवी है. अब इसका अच्छा-बुरा, बस वही जान सकता है.

न-न! वह विष्णु को कैसे छोड़ सकती है. उसकी ब्याहता पत्नी है वह. उसके साथ फेरे लेकर आयी थी इस घर में. पचासों लोग गवाह हैं. विष्णु को छोड़ कर पराये मर्द के पास जायेगी, तो लोग थू-थू न करेंगे. लेकिन वह भी क्या करे! मां ने ख़ुद ही तो कहा था, अगर जल्दी पेट न फूला तो लोग-बाग सवाल करने लगेंगे. तब क्या विष्णु की बदनामी न होगी? लेकिन अभी उसे पक्का तो न पता. पहले पंडित जी से सवाल तो पूछ ले.

- क्यों बीवी, पिछले सारे सवाल सही निकले थे न?

- सही तो निकले थे, पर एक में थोड़ी कसर रही.

- वो क्या?

- जो तारीख़-दिन आपने बताया था, काम उस दिन तो न बना. तीन दिन बाद जाकर हुआ था.

- तो हम ग़लत हुए न! पंडितजी ने अपनी कुर्ती में से पांच सौ का नोट निकाला और नारायणी के आगे रख दिया.

पांच सौ का कड़कड़ाता नोट देख एक पल के लिए नारायणी की आंखें कुंधियायीं. लेकिन अगले ही पल विचार आया, आज तो तीसरा सवाल भी पूछ ही डालेगी.

- आप इसे रख लीजिए पंडितजी. नारायणी ने नोट पंडित जी को वापस देते हुए कहा — अभी तो मुझे बहुत पूछना है आपसे.

अजीब बात! इस बार सवाल लिखते हुए नारायणी के हाथ ज़रा भी न कांपे. बड़े आराम से उसने लिख दिया — मेरे जीवन में कोई दूसरा आदमी...?

- अगर चाहो तो हां, नहीं चाहो तो न!

बिल्कुल सटीक जवाब दिया पंडित जी ने. यह सब तो उसी पर निर्भर! पर यह तो अधूरा जवाब हुआ. उसे तो उलझन में डाल दिया पंडितजी ने. वह किसकी सुने? दिल की या दिमाग़ की?

उसका चेहरा देख पंडित जी मुस्करा दिये — बीवी, अभी थोड़ा सब्र कर ले. यहीं पर जमी रह.

लौटते हुए नारायणी के पांव लड़खड़ा रहे थे. पंडितजी ने सब्र करने को कहा है. लेकिन अब उससे सब्र कहां हो रहा है. शिवा उसे कई बार इशारा कर चुका है. जब कभी घर से बाहर निकलती है तो कहीं न कहीं खड़ा दीख जाता है. आज वह मुआ न ही दीखे तो अच्छा.

रूप नारायणी राम-राम करती आगे बढ़ रही थी.

- तू क्या बोल रही है? वृंदा ने पूछा तो नारायणी सकपका गयी. अब तक जाने कौन सी दुनिया में विचर रही थी. कब घर का दरवाज़ा सामने आ गया, उसे पता ही न चला. वृंदा तो बीच रास्ते में ही अपने घर की ओर मुड़ गयी थी.

विष्णु दरवाज़े पर ही खड़ा था. उसे देखते ही आगे को लपका — तू कहां गयी थी री?

- मैं!... मैं पंडित जी के पास गयी थी. नारायणी की जुबान लड़खड़ा सी आयी.

- ये पंडितों-वंडितों के चक्कर में काहे को पड़ गयी तू! क्या कोई समस्या आ गयी तेरे को?

- नऽऽ हीं- नहीं तो! वो तो वृंदा साथ ले गयी थी.

- उसे भी समझा, पंडितों के चक्कर में न पड़े. कोई समस्या है तो बुद्धि से काम ले. घर में चार लोग होते हैं, उनसे बातचीत करके सलाह ले ले.

नारायणी कुछ नहीं बोली. चुपचाप भीतर चली आयी. विष्णु आज दफ़्तर से जल्दी कैसे आ गया, उतना भी न पूछ पायी. गुसल से निबट कर सीधे रसोई में चली गयी. विष्णु गलियारे में से चिल्लाया था — अरी चाय बना कर इधर ही ले आ.

विष्णु समझ गया था कि नारायणी चाय बनाने ही जा रही होगी. बाहर से आकर चाय पीने की तलब दोनों को रहती है.

इस बीच नारायणी अपने को संभालने में लग गयी. कहां-कहां उड़ रही थी वह. विष्णु कहता है, घर में चार लोग होते हैं, उनसे सलाह ले लेनी चाहिए. अरे जीवन में इंसान का अपना भी तो कुछ होता है. आज वह विष्णु के सामने मां की सारी बात रख देगी.

चाय पतीली से गिरते-गिरते बची. नारायणी ने उन्हें प्यालों में उंडेला और बाहर आंगन में ले आयी.

- बैठ इधर! विष्णु चाय की प्याली पकड़ता बोला — क्या प्रॉब्लम हो गयी वृंदा को जो पंडितजी के यहां जाना पड़ गया?

- मुझे तो कुछ नहीं बताया.

- तूने पूछा भी नहीं.

- बताने वाली बात होती तो ख़ुद ही बता देती.

- सो तो ठीक! पर उसे समझा, जो बातें बताने वाली नहीं होती, वे तो घर के भीतर ही रहनी चाहिए.

अब रूप नारायणी क्या कहे! चुप बनी रहेगी तो विष्णु को शक होने लगेगा. वैसे तो चबर-चबर करती रहती है. अब क्या सांप सूंघ गया. यही बात बोलेगा विष्णु. इससे पहले कि विष्णु कुछ कहता, रूप नारायणी ही बोली — वृंदा के घर का तो तुम जानो ही. उसकी वहां कौन सुने.

विष्णु ने सवाल नहीं किया. नारायणी की बात से पूरी तरह सहमत था. फिर भी बोला — नारायणी! घर की बात अगर बाहर जाती है तो घर की छत दरक जाती है. अगर उसकी बात कोई नहीं सुनने वाला तो उसे कह, घर के खंभों से बात करे. घर की छतें खंभों पर टिकी होती हैं. घर की छत को दरकने न दे. खंभे उसकी बात सुनेंगे... ज़रूर सुनेंगे!

विष्णु चाय ख़त्म कर उठ खड़ा हुआ. फिर पैंट की जेब में हाथ डाल क़ाग़ज का एक पुर्ज़ा निकाल नारायणी की ओर बढ़ाता बोला — तुम्हारा ये काग़ज़ अलमारी के बाहर गिरा पड़ा था. कोई ज़रूरी क़ाग़ज लगता है.

नारायणी ने देखा, यह वही क़ाग़ज था, जो पंडित जी ने सबसे पहले लिखा था. उसने तो क़ाग़ज खिड़की के बाहर

(शेष पृष्ठ २०० पर देखें...)

कहानी

'आश-किरण!'

✍ विजय

वह चौवालीस-पैंतालीस साल की है. मगर ख़ुद को वह बूढ़ी समझती है और बूढ़ियों के समान ही रहती है जबकि शहरी औरत इस उम्र में सबसे ज़्यादा प्रसाधनों का इस्तेमाल कर कम उम्र दिखाने की कोशिश करती है. मगर आभा ने पति के होते हुए भी कभी प्रसाधनों की मांग न की थी और पति के स्वर्गवासी होने पर तो अपनी ओर से वह बहुत उदासीन रहने लगी थी. वह चाहती थी और उसका ध्यान भी हमेशा अपने बच्चों की तरफ़ ही रहता था. बेटा अब उन्नीस साल का है और दो बच्चे मर जाने के बाद हुई लड़की बारह-तेरह की है.

मायके में उसका नाम ज्योत्सना था. चार बेटों के बाद घर को जगमग करनेवाली बेटी होने के कारण. मगर शादी के बाद बूढ़ी सास ज्योत्सना न बुला सकी तो पति ने उसका समानार्थी नाम आभा कर दिया. अब तो कई बूढ़ियां जिन्होंने उसे बहू रूप में विरल डंडी (पालकी) से उतरते देखा या उसे आभा बहू कहकर ही बुलाती हैं. गांव में आठवीं तक का स्कूल था. पंद्रह की होते उसकी शादी हो गयी. आठवीं का इम्तिहान भी न दे सकी वह. पति आशाराम फ़क्त पांचवी तक पढ़ा था. उसकी टीकरी भी छोटी थी. शुरू में तो दस घर थे जो अब छब्बीस-सत्ताइस हो गये हैं.

सास को पोता-पोती खिलाने की चाह थी. उनकी चाह पूरी होने के साथ-साथ अधूरी भी रह गयी क्योंकि उनके जीवन काल में दो साल के अंतर से बच्चे हुए वे एक दो साल के होते-होते जाते रहे, भगवान को प्यारे होते रहे. हर एक बच्चे की मौत पर आभा मूक रह जाती और सास छाती पीट कर रोती, ... भगवान इनकी जगह मुझे क्यों नहीं उठा लेता है. फिर वह दिन आ गया जब बूढ़ी सास की अर्थी उठी. ख़ूब रोयी थी आभा. महसूस हुआ था कि सास नहीं अपितु मां मरी हो.

पति आशाराम किसान था. औरों की तरह टीकरी पर जापानी ढंग से खेती करता था. गुज़ारा हो जाता था. आशाराम की मृत्यु सांप के काटने से हुई. तब दूसरे नंबर का बेटा चौदह साल का था. उससे बड़ा बेटा अठारह का होते-होते जो लखनऊ, दिल्ली नौकरी के लिए गया तो गुम हो गया. उसका कोई पता आशाराम न तलाश सका. बड़े चाव से आशाराम ने उसका नाम निशानाथ रखा था. आभा को सास की बातें याद आती रहतीं. शादी के बाद तीन वर्ष तक जब उसकी कोख न भरी तो सास ने गंडा पहनाया और बकरे की क़ुर्बानी देकर पूजा करायी थी मगर जब पड़ोसियों ने उसके कोख न भरने का प्रश्न उठाया तो सास ने हंसकर कहा था कि मरी पढ़ी-लिखी है. इसलिए अठारह वर्ष से पहले कोख न भरना चाहे. सास की निग़ाह से बहू पढ़ी लिखी थी. अक्सर कहती थीं, हमारा आशाराम तो पांचवी से स्कूल छोड़ खेतों में लग गया था क्योंकि उसके सिर से बाप का साया उठ गया था.

सुनकर पड़ोस की औरतें प्रश्न नहीं करतीं. ख़ुद हंसती आभा यह सब सुनकर. रात आशाराम को बताती तो वह दबोच लेता, तू आलिम फाज़िल हो चाहे पर बनी मेरे लिए है.

सुनकर आभा को बड़ा सुख मिलता. मगर जब सत्तरह की थी तो आशाराम ने कहा था कि चल तुझे डॉक्टर को दिखा

विजय

६ सितंबर १९३६, आगरा.

प्रकाशित कृतियां : *(क) कहानी संग्रह : 'हथेलियों का मरुस्थल', 'जंगल बबूल का', 'बौसुरीली', 'नीलकंठ चुप है', 'अभिमन्यु की तलाश', 'गंगा और डेल्टा', 'किले', 'गमन', 'घोड़ा बाज़ार', 'वंशबेल', 'गाथा', 'पड़ाव', 'पोस्टर से झांकते चेहरे', 'ज. झ. द.', 'दास्ताने-लक्षुनी' प्रकाशित. कहानी संग्रह 'एक नाम सूरजमुखी' (शीघ्र प्रकाश्य).*

(ख) उपन्यास : 'साकेत के यूकलिप्टस', 'सीमेंट नगर', 'लौटेगा अभिमन्यु', 'नीड़ का तिमिर', 'मुक्तिबोध', 'नंबरदार हुआ नाखुदो', 'मुहाफ़िज'.

(ग) बाल साहित्य : 'सलोनी की ज़िद', 'ईनाम और जुर्माना'.

(घ) अनुवाद कार्य : जोगिंदरपाल की कुछ कहानियां, लघुकथाएं व उपन्यास — पार परे (उर्दू से हिंदी).

संप्रति : *वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त) रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन.*

दें! बिगड़ उठी थी आभा और कहा था कि पहले ख़ुद को दिखाओ. जब डॉक्टर कह दें कि तुम में कोई दोष नहीं है तब मुझे दिखाना. मगर आशाराम ने ख़ुद को नहीं दिखाया. क्यों दिखाता जब कि आभा को अक्सर ही बुलाता रहता था. अपने पुरुषत्व पर उसे विश्वास जो था. अठारह की होते-होते वह गर्भवती हो गयी. सास को अपनी बात पर सहारा मिल गया. पड़ोसिनियों से अक्सर कहती कि मैंने जो कहा था वह सच हुआ न!

निशानाथ के गुम हो जाने पर सकते में था आशाराम. अक्सर आभा से कहता कि कपिल की देखभाल अच्छी तरह करे. तभी एक दिन दौड़ते हुए आकर रामलखन जोशी ख़बर दे गया था कि आशाराम को सांप ने काट लिया है खेतों पर. सुगंधी को लेकर दौड़ी थी आभा. मगर खेत की जगह उन्हें मिला आशाराम मंदिर में, जहां सांप के काटे का उपचार हो रहा था. चीख़ी थी आभा कि मंदिर की जगह उन्हें फ़ौरन केदारनाथ के अस्पताल ले चलो. मगर किसी ने नहीं सुना और चार घंटे बाद उन्हें आशाराम की लाश सौंप दी गयी. तब तक कपिल भी स्कूल से वापस लौट आया था. पिता के नीले पड़े जिस्म पर लोट गया था. उसके बाद वह स्कूल नहीं गया. खेतों पर मां के साथ काम करता और थककर लौट आता. जो खेत आशाराम की मेहनत से सोना उगलते थे अब वो नहीं रहे. हारकर आलू बोना शुरू कर दिया आभा ने. मगर क्या आलुओं से पेट भर सकता था? कपिल लगातार कहता कि उसे घोड़ा या टट्टू दिलवा दो. वह केदारनाथ घाटी में यात्री या सामान ढोकर पैसा कमायेगा. उसे ज्ञात था कि खेतों की मेहनत से वह उतना नहीं कमा सकती कि तीन-चार लोग ढंग से रह सकें.

हारकर आभा ने आधे खेत बेचकर घोड़ी ख़रीद दी कपिल के लिए. कपिल ने घोड़ी को नाम दिया था मस्ती! क्योंकि उस पर बैठ कर कपिल के अंदर अजीब सी मस्ती आ जाती थी. मगर अंदर ही अंदर आभा आशंकित हो जाती.... कहां रहेगा वह? क्या खायेगा? लोग तो दस-बीस रुपयों के लिए मारपीट कर देते हैं फिर कपिल के पास तो धंधे से केदारनाथ में बड़ी रक़म रहेगी. कहां रखेगा वह रुपया?

मगर तभी सुनाई दे जाती उसे मंदाकिनी की छन-छन. सुहानी ध्वनि में वह खोजती फिर हाथ पसार के गंगा मैया से कपिल की रक्षा के लिए भीख मांगने लगती. सोमवार को जाता कपिल और शनिवार की शाम या रात्रि लौट आता. सोमवार को तड़के उतर जाता टीकरी से क्योंकि उस दिन मंदिर में विशेष पूजा होती. पट बंद होने पर घोड़ी मस्ती की मालिश और दोस्तों के साथ चियागोटी खेलने में बिताता. बवे (मां) को समझाता रहता. रहने की पक्की सराय सरकार ने बना रखी है. रात सरकारी आदमी आकर पाती देता है और रोकड़ ले लेता है. जब आता हूं पाती देकर रोकड़ ले आता हूं. तू फ़िक्र में क्यों रहती है.

''अब तेरे पास रोकड़ भी है तो तेरे लिए ब्यारी (बहू) तलाशती हूं.''

''न, पहले सुगंधी की होगी तब करूंगा मैं.''

आभा को लगता कि काश कपिल के बुवा (पिता) इस वक़्त जीते होते और अपने बेटे की बात सुनते. कपिल कहता और बाहर निकल जाता. तड़के सोमवार की सुबह मस्ती की रास पकड़े टीकरी से नीचे उतर जाता. मंदाकिनी पार कर आधा मील चल पुल से पहुंच जाता केदारनाथ. फिर पूरे दिन व्यस्त रहता. कभी सवारी तो कभी यात्रियों का सामान भी ढोता. सुगंधी से बताता कि यात्री कुछ ज़्यादा ही आ रहे हैं केदारनाथ, कि घोड़े कम पड़ जाते हैं. पांच साथी थे उसके

जो टीकरी से घोड़ा, घोड़ी या खच्चर लेकर उतरते. सब हंसते-बोलते. रात साथ-साथ बिताते. एक खाना बनाता बारी-बारी से तो पांच हंसते-खेलते रहते थे. उनमें से तीन बुधवार और तीन इतवार को छुट्टी रखते. जब बुधवार आता कपिल को सराय में छोड़ दो साथी निकल जाते केदारनाथ के बाहर जहां लड़कियां उन्हें शराब परोसतीं और उनके साथ रात काटतीं.

मगर सोलह जून को कहर टूटा था. बादल फटा था कहीं. सोनामी से बड़ी सोनामी आयी थी केदारनाथ में. हरहराती मंदाकिनी चारों तरफ़ फैल गयी थी. चपेट में आये इंसान और चौपाये. सबको बहाकर अपने साथ ले गयी. घनघोर वर्षा बरस रही थी. पहाड़ियों से कीचड़, मिट्टी व बोल्डर्स गिर रहे थे. जो यात्री ऊपर की ओर भागे वे चट्टानों से दब गये. गांव के गांव खाली हो गये पहाड़ों से. जो मंदिर के अंदर सुरक्षा हेतु गये वे भी नहीं बचे. मंदिर के अंदर पानी जो घुस गया था. चारों तरफ़ लाशें ही लाशें बिखरी हुई थीं. जो बह गये सो बह गये. केवल मंदिर खड़ा रह गया था.

मेहने बेहाल कर दिया था हरिनाम टेकरीवालों को भी. उस पर हवा का भूचाल! हवा जब कम हुई तो लोग बाहर की तरफ़ भागे. अपने-अपने खंडहर हुए घर उन्हें डरा रहे थे. मंदाकिनी के किनारे से उल्टी तरफ़ लोग उतरने लगे. कोई डेढ़ सौ लोग थे. सुगंधी भी अपनी बवे (मां) का हाथ पकड़कर भागी. पागल-सी अपने खंडहर हुए मकान को आभा देखती, सुगंधी के साथ भागी. कई बार सुगंधी या आभा का पैर फिसला मगर एक दूसरे के सहारे ने बचा लिया. आधा घंटे का रास्ता उन्होंने अढ़ाई घंटे में काटा. मौत जब पास होती है तो जीने का जोश ज़्यादा ही बढ़ जाता है. एक मध्यम दर्ज़े का बोल्डर नीचे आ रहा था. सुंगधी ने मां को झटपट दूसरी ओर खींच लिया.

नीचे पहुंच उन्होंने प्रकृति का सर्वनाश देखा. हज़ारों की संख्या में पेड़ उखड़े पड़े थे. तलाशने पर दो छायादार पेड़ उन्हें मिले. कोई डेढ़ सौ लोग इन्हीं के इर्द–गिर्द फैल गये. वर्षा हो रही थी. ऊपर टीकरी से छोटे-बड़े पत्थर अब भी गिर रहे थे पर वे उनसे दूर थे. भूखे प्यासे वे ख़ुद और मूर्छित हो रहे बच्चे चार दिनों तक तड़पते रहे. तब कहीं उनकी सुध ली गयी. टूटे-फटे टेंट उनके लिए लग गये. टेंट लगाने वालों ने ही बताया कि केदारनाथ और उसके आसपास शायद ही कोई बचा है.

अनायास पूछा था आभा ने, ''मेरा कपि! कैसा होगा मेरा कपिल!''

हंसी थी सुगंधी मगर इस हंसी के पीछे दारुण दुख छुपा था, ''बहुत पक्की है दीदा (बड़ा भाई) की सराय. उस पर ऊंचाई है, दीदा कोई खुले में नहीं सोते हैं.'' उसने टेंटवालों के साथ आये अफ़सर से सुना था, दक्षिण में कई साल पहले सुनामी आयी थी उससे जो विनाश हुआ उससे ज़्यादा भयावह सर्वनाश उत्तराखंड का हुआ है. कहते हैं केदारनाथ और उसके पास ऊंचे पहाड़ों पर बसे गांव, क़स्बे तबाह हो गये. कैलाश का मंदिर जाने कैसे बच गया. इसके अंदर शरण लेनेवाले भी नहीं बचे. हैलीकॉप्टर मौसम ठीक होने के इंतज़ार में हैं. आर्मी के जवान यात्रियों को बचा रहे हैं. हमारी टीकरी और केदारनाथ के मध्य बना पुल भी टूटा पड़ा है. केदारनाथ में लाशें ठंड और वर्षा सह रही हैं. मंदाकिनी विनाश करके पुन: अपनी गति से बह रही है.

आभा अनायास सुगंधी से पूछती, ''यहां मंदाकिनी की छन-छन नहीं सुनायी दे रही है?''

''बवे हम टीकरी से उलटे उतरे हैं. यहां मदांकिनी कहां? और उसकी छन-छन पायजेब वाली आवाज़ कहां?''

''हम कब अपने घर लौटेंगे?''

''शायद जब मेह की मार कम हो जाये,'' सुगंधी कहती है मगर अंदर ही अंदर महसूस करती है कि शायद कभी नहीं. जहां दीदा गया वहीं हमें भी जाना है.

वर्षा रुकी कुछ क्षण. आभा ने कहा, ''चल! अब

घर चलें.''

''तू रेडियो पर ख़बरें नहीं सुनती है, बवे! अभी बंद है बारिश! न जाने कब शुरू हो जाये.''

मगर अगली बार जब वर्षा रुकी तो आभा नहीं मानी. सुगंधी को साथ ले ऊपर टीकरी पर चढ़ गयी. घर देखा तो रो पड़ी, ''कहां बांधेगा मेरा कपिल घोड़ी?''

अंदर तलाशा तो नोटों की लुगदी हाथ आयी. रो पड़ी आभा, ''कहां से करूंगी तेरी शादी?''

''शादी की न सोच! ज़िंदगानी की सोच बवे!'

फिर मंथर गति होते हुए भी लौट आयी सुगंधी के साथ. दोपहर का खाना हो चुका था कैंप में. दोनों भूखे रहे.

लेटे-लेटे पूछा था सुगंधी से, ''कैलाश मंदिर ऐसे खड़ा है मानो हमारे घरों को मुंह चिढ़ा रहा हो. आया होगा कपि और घर टूटा देख लौट गया होगा. जाने किस कैंप में हो? सुना है केदारनाथ में भी कैंप हैं. वहीं हो शायद कपि?''

कपिल दीदा कभी न लौटेगा बेवे, कहते-कहते रुक गयी. आखों से आंसू झर-झर टपकने लगे.

आभा ने संभाला उसे, ''पगली! सब ठीक हो जायेगा. मेरा कपि सब ठीक कर देगा चार दिन में. थोड़े दिनों की बात है सुगंधी,'' आभा ने सुंगधी को समझाया.

सुगंधी कह न सकी कि वह क्यों रो रही थी.

और एक दिन आ गये बाबू और अफ़सर. नोट करना था कि कौन-कौन नहीं आया है. लापता है.

किसी ने बेटे, किसी ने मर्द और किसी ने भतीजे के केदारनाथ से न लौटने की व्यथा लिखायी. ख़ामोश रही आभा.

वो तो सुगंधी ने अफ़सर को लिखा दिया कपिल का हुलिया और न लौटने की वजह. अफ़सर ने प्रश्न किया, 'तेरी बेवे तो ख़ामोश रही?''

''उसे लगता है कि दीदा लौटेगा एक दिन. पर जो केदारनाथ में जानवर के साथ था क्या बचा होगा?'' सुंगधी कहते-कहते रो पड़ी. जानती थी कि दीदा कभी न लौटेगा.

अफ़सर दयालु था. उसने सुगंधी के कहे को मान लिया. चला गया दूसरे कैंपों में.

सुगंधी दूसरे टेंटों में जाती रहती. रेडियो सुनती पर बेवे को कुछ न बताती. वक़्त ने उसे समझदार बना दिया था. आभा हंसती, ''छोटे से डिब्बे में जाकर क्या सुनती है?'' सुगंधी क्या बताये कि बड़े रेडियो या छोटे से ट्रांज़िस्टर में फ़र्क नहीं होता है.

वह जानती है कि गोविंदघाट, केदारडोंब, रामवाड़ा, गौरी कुंड, हेमकुंड साहब, सोनप्रयाग व गंगोत्री पर बड़ा नुक़सान हुआ है. कहीं-कहीं तो कोई नहीं बचा है. केदारनाथ में तो मंदाकिनी ने कहर ढाया था. वह भाई कपिल के बारे में सोचती है. कैसे अठखेलियां दोनों के मध्य होती थीं. आज तो वह खुलकर रो भी नहीं सकती है. बेवे फ़ौरन कहेगी, क्या अपशकुनी फैलाती है? केदारनाथ के खंडहर उसकी आंखों में फैल जाते.

''कैप में अफ़सर आया था. टूटे मकानों को बनवाने की रक़म देने. साथ आये थे बैंक वाले. बैंकवाले खाता खोलने आये थे. हज़ार रुपया ज़रूर जमा रखना होगा.

आभा ने चेक लेकर नंदसिंह विष्ट को दे दिया. रक़म पर हस्ताक्षर कर चेक थमा दिया उसका. ठेकेदार ने रुपया पाकर काम शुरू कर दिया. कैंप छोड़कर आभा और सुगंधी लौट आये. मिली रक़म से एक बड़ा कमरा, रसोई और गुसलख़ाना बन पाया था. झगड़ पड़ी थी आभा ठेकेदार पर, और दो कमरे क्यों छोड़ दिये? अस्तबल कहां बनाया?''

ठेकेदार हंसा, ''सरकारी गुड़ से इतनी ही मिठास आ पायी. अगर पूरा घर ठीक करना है तो अपने पास से रोकड़ निकालो.'' नंदसिंह बिष्ट आ गये. आभा को समझाया, सरकार मुआवज़ा सिर छुपाने को देती है न कि आलीशान कोठी के लिए.

झींकती हुई आभा लौट आयी. सुगंधी से बोली, ''तेरे ब्याह में तो वक़्त है पर कपिल को तो ब्याहना है. उसे तो अलग कमरा चाहिए ही.''

सुगंधी बेवे को लेकर सोच में पड़ गयी. उसके बाद मंत्री जी भी आये. मृतकों के लिए चेक बांटने. आभा नहीं गयी. वह मानने को तैयार नहीं है कि कपिल नहीं रहा. चेक मुखिया नंदसिंह विष्ट को दे दिया. चार बार वे आभा के द्वार गये पर चेक आभा ने स्वीकारा नहीं. अंत में वे हताश लौटे क्योंकि चेक की तारीख़ दो महीने की होती है.

खेतों पर काम करती आभा सुगंधी से कहती है, ''ये दीवाली तो गयी पर अगली दीवाली जब कपिल लौट आयेगा तो धूम-धाम से मनायेंगे.''

''और सबसे बड़े दीदा?'' सुगंधी कहती है.

आभा एक निश्वास खींचकर रह जाती है.

१४१०-ए ब्लाक सी, गौर बेलोरिया,
सामने दिल्ली पब्लिक स्कूल,
अहिंसा खंड-२१,
जि. गाज़ियाबाद, इंदिरापुरम-२०१०१४.
मो.: ९३१३३०१४३५

कहानी

उजाले का अंधेरा

✍ विवेक मिश्र

घर से निकलने से पहले उसे लगा कि वह एक बार गहरी नींद में सोती निशा को नींद से उठाये. वैसे नहीं जैसे वह कभी उसे दोपहर की नींद से उठाता है, बल्कि झिंझोड़कर इस तरह उठाये जिससे उसकी सालों साल पुरानी नींद, जिसमें वह जागते हुए भी बनी रहती है, टूट जाये और फिर अपने सीने में दबे हुए तमाम ग़ुस्से को इक्ठ्ठा करके कहे कि वह इस घर से जा रहा है और वह भी कभी न लौटने के लिए. वह अपने जीवन से, उसकी रोज़-रोज़ की खिट-खिट से ऊब गया है, आकंठ भर गया है. उसे सोते-जागते हमेशा ये एहसास होता है कि मानो वह फट पड़ेगा, बह निकलेगा — उसका दुख — कभी भी, कहीं भी. उसने सोचा कि वह उठा कर कहे उससे कि जिस दांपत्य की बात दिन की रोशनी में वह सबके सामने मुस्करा-मुस्कराकर करते हैं, रात में उसी दांपत्य का खोखलापन उसे निगलने के लिए मुंह फाड़ता है. वह एक साथ, एक छत के नीचे रहते हुए अलग-अलग दिशाओं के सफ़र पर हैं. एक ऐसे सफ़र पर जिसकी कोई मंज़िल नहीं है.

....पर उसने उसे नहीं उठाया. उसे लगा शायद उसे जगाकर उससे यह सब कह देने में उसकी बहादुरी नहीं बल्कि उसके भीतर की कोई कमज़ोरी है, वह अपने निर्णय से डिग जाने के लिए बहाना ढूंढ़ रहा है, वह जानता है कि उसके ऐसा करने पर कुछ भी हो सकता है पर उसका इस तरह घर से जाना नहीं हो सकेगा. वह फिर सदा की तरह ऐसे ही इसी चारदीवारी में रह जायेगा. शायद इसीलिए उसके मन में यह ख़्याल आ रहा है कि वह जाने से पहले उसे जगाये और वो एक-एक बात उससे कह डाले जो हमेशा किसी न किसी लिहाज़ में उसने नहीं कही पर वह जानता है कि यह सब कह चुकने के बाद उसका क्रोध चुक जाएगा, वह रीत जायेगा — इस क्रोध से, इस तनाव से और इस तरह, इस समय निमिष और निशा को छोड़ के, नहीं जा सकेगा.

क्षण भर बाद उसे अपने आप पर, अपने मान पर, अपनी घृणा और क्रोध पर ही संदेह होने लगा. उसे लगा कि यह सब शायद उसका अपने आपको समझाने का ढोंग भर है, वह दरअसल इस सबसे मुक्त होना ही नहीं चाहता, जाना ही नहीं चाहता यहां से या फिर उसमें साहस ही नहीं है, यहां से चले जाने का. वह सोचने लगा — क्या हर गृहस्थ ऐसे ही ऊबता होगा, अपनी गृहस्थी से? ... भाग जाना चाहता होगा चुपचाप रात के अंधेरे में... पर ऐसा चाहते हुए भी बना रहता होगा अपने घर पर ही, अपने परिवार के साथ, ... किसी अनजाने डर से घिरा हुआ, कोने में दुबका, ... सालों-साल.

उसे विश्वास हो चला कि वह रोज़ छोटी-छोटी लड़ाइयां लड़कर अपने आपको किसी बड़ी लड़ाई के उस अप्रत्याशित ख़तरे से बचाता आ रहा है जिसके बाद वह सब वैसा नहीं रह जायेगा जिसकी शायद उसे आदत हो गयी है. अपने भीतर झांककर जैसे उसने ख़ुद को धिक्कारा — वह एक कायर, डरपोक और घरघुसरा आदमी है जो कई बार अपने को साहसी दिखाने के लिए बेवजह चिल्लाता, दहाड़ता, चिंघाड़ता है, यहां-वहां पांव पटकता है पर कुछ कर नहीं पाता, ...ऐसा करते

विवेक मिश्र

१५ अगस्त १९७० झांसी में. विज्ञान में स्नातक, दंत स्वास्थ विज्ञान में विशेष शिक्षा, पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नातकोत्तर.

प्रकाशन : *एक कहानी संग्रह — 'हनियां तथा अन्य कहानियां' प्रकाशित. लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं व कहानियां प्रकाशित. साठ से अधिक वृत्तचित्रों की संकल्पना एवं पटकथा लेखन. 'लाइट थ्रू अ लेबिरिंथ' शीर्षक से कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद राईटर्स वर्कशाप कलकत्ता से तथा कहानियों का बंगला अनुवाद डाना पब्लिकेशन, कलकत्ता से प्रकाशित.*

हुए उसके अहम को बहुत गहरी चोट लगी.

... पर आज वह बहुत निर्मम था — जीवन के प्रति, अपने प्रति, अपनी दुर्बलताओं के प्रति. आज वह रेशा-रेशा अपने दुख को छील रहा था. वह किसी तरह उसके शांत हो जाने पर, उसे किसी समझौते पर पहुंचते हुए नहीं देखना चाहता था बल्कि वह उस ऊब से जन्मे क्रोध पर सवार हो यहां से चले जाना चाहता था. वह जैसे लगातार अपने क्रोध पर धार धर रहा था. वह उस नामालूम से ज्वालामुखी के फटने की राह देख रहा था. वह अपने भीतर बैठे किसी आदमी के नाखून पैने कर रहा था. उसे लगा निशा के जागते ही यह सब एक तिलिस्म की तरह टूट जायेगा इसलिए उसने निशा को जगाकर उससे कुछ भी कहने का ख़्याल छोड़ दिया.

... उसने कुछ अन्यमनस्क होकर कीले पर टंगा कोट उतारा जिसके नीचे नीले बल्ब की रोशनी में उसने अपनी, निशा और निमिष की तीन साल पुरानी तस्वीर देखी. वह एक पल उसको देखने के लिए वहीं खड़ा रहा, फिर जैसे सहसा ख़ुद पर झुंझलाया वह हमेशा से जानता था कि यहां ठीक इस कीले के नीचे यह तस्वीर है जिसे देखकर वह तमाम पुरानी बातों को, अच्छे दिनों को याद करने लगता है फिर आज वह क्यों इस तस्वीर के नीचे आ खड़ा हुआ. बाहर इतनी सर्दी तो है नहीं कि उसे कोट की ज़रूरत पड़ती.

उसने फिर ख़ुद को आइना दिखाया — वह दरअसल कोट लेने यहां, इस तरफ़ आया ही नहीं था, वह इस सुनसान रात में बस ऐसा कोई बहाना ढूंढ रहा है जो उसे किसी तरह इस घर में रोक ले. हमेशा की तरह कमज़ोर कर दे और सुबह वह यह कहकर अपने आपको बहला सके कि कल रात वह तो ग़ुस्से में चला ही गया होता अगर उसके साथ फलां बात नहीं हो गयी होती, या फलां के ख़्याल ने उसे ऐन मौक़े पर रोक न लिया होता!

उसे अब अपने आप पर खीझ हो रही थी. उसने ग़ुस्से से कोट अंधेरे में उछाल दिया. कोट पलंग के उस कोने में गिरा जहां अपने पैर सिकोड़े निमिष सो रहा था. उसे लगा कोट के गिरने की आवाज़ से निमिष जाग गया होगा. वह अभी पूछेगा — इतनी रात को आप कहां जा रहे हैं, या फिर कहेगा — इन कपड़ों में मॉर्निंग वॉक पर क्यूं जा रहे हैं. वह बहुत ध्यान से निमिष को देख रहा था. निमिष ने कुनमुनाकर करवट बदली, उसे लगा वह जाग रहा है पर उसके बाद वह बहुत देर तक बिलकुल भी नहीं हिला बल्कि उसके धीमे-धीमे लिये जा रहे ख़र्राटों से कमरे के उस कोने में पसरा अंधेरा गाढ़ा होने लगा. उसने सिर को झटका और बिना किसी से कुछ कहे घर से निकल जाने का फ़ैसला किया तभी उसे लगा — उसे निकलने से पहले एक सिगरेट पीने की ज़रूरत है. वह सिगरेट पीकर बेहतर निर्णय ले पाता है.

... और वह अपनी पढ़ने की टेबल पर सिगरेट टटोलने लगा. बिना किसी आहट के डिब्बी उसके हाथ आ गयी. माचिस भी ठीक वहीं उसी के पास ही होनी चाहिए, ... पर वह वहां नहीं है. आज फिर निशा ने गैस जलाने के लिए उसकी टेबल से माचिस उठा ली होगी. कितनी बार मना किया इन लोगों को कि उसकी चीज़ें न उठाया करें पर वे अपनी आदतों से मज़बूर हैं. दरअसल यहां किसी को उसकी परवाह ही नहीं. उसने ग़ुस्से में टेबल पर रखे सामान को फिर से टटोलना शुरू किया. टेबल के किनारे खड़ी करके रखी गयी टॉर्च उसका हाथ लगने से गिरकर लुढ़कने लगी जिसे उसने अंदाज़े से पकड़ लिया. उसे अपने पर और ग़ुस्सा आया. उसे पहले ही टॉर्च जला लेनी चाहिए थी, तब सिगरेट और माचिस आसानी से उसके हाथ आ गये होते. अभी वह टॉर्च जलाने की सोच ही रहा था कि घड़ी का अलार्म बज उठा.

पहले कभी इतनी जल्दी सुबह नहीं हुई.

(शेष पृष्ठ १६८ पर देखें....)

कहानी

नेफ़्रटीटी की वापिसी

✍ संतोष श्रीवास्तव

मैं मिस्र के शहर अमाना से तीन सौ बीस किलोमीटर दूर वैली ऑफ़ दि किंग्स में पिरामिडों को देखने के शौक़ीन टूरिस्ट दल के साथ भारत से यहां फ़िल्मेपिया 'टूर एंड ट्रेव्हल्स' की टूर मैनेज़र की हैसियत से आयी हूं. चुलबुली नीरजा की ख़ास फ़रमाइश है — ''मैडम, मुझे तो नेफ़्रटीटी का मक़बरा और उसकी ममी देखनी है.''

''कौन है ये नेफ़्रटीटी?'' केवल मौज मज़े के लिए आये अधेड़ मारवाड़ी दंपत्ति ने दूर-दूर तक कहीं भी धूप से बचने के लिए छाया को न पा सिर पर के हैट को सूरज की तरफ़ थोड़ा तिरछा किया. सचमुच धूप तीखी तेज़ थी और हूं-हूं करती हवाएं रेत के थपेड़ों से सीधे शरीर पर ही वार कर रही थीं. इतने सालों से फ़िल्मेपिया में नौकरी करते हुए मैंने कई देशों की यात्रा की लेकिन मिस्र के पिरामिड मेरे लिए भी अजूबा ही थे. ख़ास कर नेफ़्रटीटी ... तीन हज़ार वर्षों से रेत में दबी अपने शानदार, रोमांचकारी जीवन को समेट वह मुझे जैसे किसी चुंबकीय ताक़त से अपनी ओर खींच रही थी. अपनी ख़ूबरसूरती में बेमिसाल नेफ़्रटीटी, जो एक शक्तिशाली महिला के रूप में मिस्र के इतिहास में उभरी और अपनी क्रांतिकारी हुकूमत, सत्ता, प्रेम, विश्वासघात यहां तक कि हत्या की त्रासद कथा बन गयी.

तीखी तेज़ धूप को अनदेखा कर हमारा काफ़िला 'वैली ऑफ दि किंग्स' पहुंच चुका था. चारों और रेतीली पहाड़ी और ढूह थे. दूर-दूर तक इतने अधिक पिरामिड थे जैसे मधुमक्खी के छत्ते हों. मेरी गाइड बुक में नेफ़्रटीटी के पिरामिड के आगे के. वी. पैंतीस लिखा था. ''तलाशिए... के. वी. पैंतीस' टूरिस्ट दल में होड़ लग गयी ''मैडम, देखिए.... के. वी. पैंतीस.'' वह ख़ुश थी कि उसने पिरामिड ढूंढ़ निकाला. बीस-पच्चीस साल पहले इस पिरामिड में प्रवेश नहीं किया जा सकता था, लेकिन नेफ़्रटीटी पर शोध करनेवाली महिला डॉ. फ़्लेचर ने कोठरी की दीवार तुड़वाकर प्रवेश किया था. टूरिस्ट दल टूटी दीवार से अंदर आ गया. अंदर गहरा अंधेरा था. सबके हाथों में पकड़े टॉर्च जल उठे. मक़बरे के रक्षक ने सर्च लाइट जला कर गुफ़ा को जगमगा दिया लेकिन वहां तबाही का मंज़र था. नेफ़्रटीटी की ममी पर कफ़न तक न था. ममी के चेहरे पर शाही रुआब और अथाह ख़ूबसूरती थी. लेकिन उसके शरीर पर की हर चीज़ जैसे किसी ने जानबूझकर तबाह कर डाली थी. शाही कफ़न चीर डाला था. सिर पर से बालों की विग नोंच डाली थी. ममी का एक हाथ बाजू में कटा पड़ा था. हाथ की उंगलियों के नाखूनों पर मेंहदी के निशान थे. ममी के अंगों पर शाही गहने तो ज्यों के त्यों थे पर चेहरे को खरोंच डाला गया था. स्पष्ट था कि तबाही नफ़रत की वजह से की गयी. ... पर इस नफ़रत का कारण?

पिछली रात काहिरा में अपने होटल के कमरे में मैं रातभर इन सवालों से जूझती रही थी ... जवाब के लिए मैंने गूगल में नेफ़्रटीटी का इतिहास छान मारा था. ... बेहद रोमांचकारी इतिहास... तभी कुणाल का फ़ोन आया — ''कब लौट रही हो कनु?''

''बताया तो था.... तीन दिन बाद... कुणाल, अभी मैं लैपटॉप पर नेफ़्रटीटी को पढ़ रही थी. बस यूं समझो एक अंधड़ भरी उथल-पुथल से गुज़र रही हूं. कल वैली ऑफ दी किंग्स जाना है. ... सब बताना पड़ेगा न टूरिस्ट दल को.''

संतोष श्रीवास्तव

२३ नवंबर, जबलपुर, एम. ए. (हिंदी, इतिहास), बी. एड., पत्रकारिता में बी. ए.

प्रकाशन : *बहके बसंत तुम, बहते ग्लेशियर, यहां सपने बिकते हैं, प्रेम संबंधों की कहानियां (कथा संग्रह). मालवगढ़ की मालविका, दबे पांव प्यार, टेम्स की सरगम, हवा में बंद मुट्ठियां (उपन्यास). मुझे जन्म दो मां (स्त्री विमर्श), फागुन का मन (ललित निबंध संग्रह), नहीं अब और नहीं (संपादित संग्रह), नीले पानियों की शायराना हरारत, (यात्रा संस्मरण).*

विशेष : *विभिन्न भाषाओं में रचनाएं अनूदित, पुस्तकों पर एम. फ़िल. तथा शाहजहांपुर की छात्रा द्वारा पीएच. डी., रचनाओं पर फ़िल्मांकन, कई पत्र पत्रिकाओं में स्तंभ लेखन व सामाजिक, मीडिया, महिला एवं साहित्यिक संस्थाओं से संबद्ध, प्रतिवर्ष हेमंत फॉउंडेशन की ओर से हेमंत स्मृति कविता सम्मान एवं विजय वर्मा कथा सम्मान का मुंबई में आयोजन.*

पुरस्कार : *आठ राष्ट्रीय एवं दो अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं पत्रकारिता पुरस्कार जिनमें महाराष्ट्र के गवर्नर के हाथों राजभवन में 'लाइफ़ टाइम अचीवमेंट अवार्ड' विशेष उल्लेखनीय है. 'मुझे जन्म दो मां' पुस्तक पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पीएच.डी. की मानद उपाधि. भारत सरकार अंतरराष्ट्रीय पत्रकार मित्रता संघ की ओर से प्रतिनिधि के रूप में १७ देशों की यात्रा.*

''मैं भी इस विषय से रिलेटेड सामग्री तुम्हें बस दो मिनट में मेल कर रहा हू. शायद तुन्हें नेफ्रटीटी को समझने में और अधिक मदद मिल जाये.''

''थैंक्स कुणाल... डिनर लिया तुमने?''

''आधे घंटे बाद लूंगा. तुम्हें बहुत मिस कर रहा हूं डियर!'' एक-दूसरे की मोहब्बत में गिरफ़्त हमने चालीस की उम्र पार कर ली लेकिन एकाकी रह कर ... कभी-कभी ख़ुद से सवाल करती हूं, इसकी वजह?

तेज़ी से फ़ासले तय कर मैं जहां पहुंची हूं. ... खंडहर हुई हवेली का प्रवेश द्वार है वह. प्रतिष्ठित ज़मींदार घराने के अकेले वारिस दिग्विजय ने हवेली की जगह शानदार कोठी बनवाने के इरादे से विशाल ज़मीन को नींव के लिए खुदवाना शुरू किया तो पश्चिम दिशा में रखी भारी चट्टान बड़ी मुश्किल से कई मज़दूरों ने मिलकर सरकायी थी. चट्टान के नीचे पांच फ़ीट गहरे गड्ढे से एक नरकंकाल निकला. सब डर गये. मज़दूरों ने दहशत की वजह से काम रोक दिया. लेकिन जब दिग्विजय की पत्नी सुमन देवी ने कंकाल देखा तो सोच में पड़ गयी. रात्रि के एकांत में दिग्विजय से मिलते ही बोली — ''कंकाल का हिंदू विधि से दाह संस्कार करवा दीजिए. न जाने किसका कंकाल है. लेकिन उंगलियों में पहनी ये हीरे की अंगूठी और हाथ का कंगन बतला रहा है कि कंकाल किसी समृद्ध घराने की महिला का है.''

अंगूठी और कंगन देखकर चौंक पड़े थे दिग्विजय. यादों का अलबम खुल गया था. पचास वर्ष पुराने, पीले, धुंधले चित्रों में वे अपनी माताजी के हाथ के ये गहने बख़ूबी पहचानते थे. आंखों में सैलाब उमड़ आया. वे कंगन और अंगूठी को चूमकर रो पड़े —

''सुमन, ये माताजी के ज़ेवर हैं.''

''क्याऽऽऽ'' ताज्जुब से भर उठीं सुमन देवी. उन्होंने कभी अपनी सास मालती देवी को देखा नहीं था लेकिन उनके अपार विदुषी होने के क़िस्से वे सुनती आयी थीं. सुनती आयी थीं कि उनके ससुर प्रेमनाथ की मृत्यु के बाद उनका दूर-दूर तक फैला साम्राज्य कितनी कुशलता से संभाला था मालती देवी ने.

समृद्धि प्रेमनाथ के क़दम चूम रही थी. हवेली मानो इंद्र की अलकापुरी और इंद्राणी उस ज़माने के ज़मींदार ख़ानदान की पुत्री मालती देवी. ... रूप, गुण और बुद्धि की खान. प्रेमनाथ के संग बीते दस वर्षों के वैवाहिक जीवन में वे तीन बार मां तो बनी थीं लेकिन उनके बच्चे जन्म के तीसरे, चौथे महीने में ही चल बसते. न जाने कितनी मन्नतें, गंडा, ताबीज के टोटकों के बावजूद प्रेमनाथ पिता नहीं बन पाये और जब बन पाये तो ... ज़मींदारी प्रथा का अंत हो चुका था और सरकार द्वारा ज़मींदारों, नवाबों के प्रिवीपर्स भी बंद कर दिये गये थे. प्रेमनाथ कारोबार को बढ़ाने में रात-दिन जुटे रहते लेकिन अलकापुरी को जैसे किसी की नज़र लग गयी थी. चाचा, ताऊ के बेटों ने कारोबार हथियाने की योजना पर विचार करना शुरू कर दिया था. बड़े भाई सोमनाथ के होने के बावजूद प्रेमनाथ कारोबार में अकेले पड़ गये हैं यह बात चाचा ताऊ के बेटे अच्छी तरह समझते थे. सोमनाथ दिन-रात रंगरेलियों में डूबे रहते ... उनकी एय्याशी पुश्तैनी कारोबार को कहीं ख़त्म न कर दे इसलिए प्रेमनाथ ने कड़ी मेहनत कर अकेले ही कारोबार संभाला. सोमनाथ को सिर्फ़ शराब, औरत और अपने सुरक्षा कवच में नियुक्त किये कारिंदों पर लुटाने के लिए पैसा चाहिए था. पहले इफ़रात लिया फिर

मालती देवी के कारोबार में रुचि लेने के बाद उनका मासिक जेब ख़र्च तय कर दिया गया जो सोमनाथ को बर्दाश्त नहीं था.

''देखो प्रेम... घर की लक्ष्मी घर में ही शोभा देती है. तुम बहू को क्यों कारोबार में इन्वॉल्व कर रहे हो?''

प्रेमनाथ सोमनाथ की बहुत इज़्ज़त करते थे. सर झुकाकर बोले — ''भाई साहब, वे अर्थशास्त्र पढ़ी हैं, सही सलाह देती है''

ठहाका लगाकर हंसे सोमनाथ — ''अरे वाह... तुम तो जोरू के ग़ुलाम निकले.''

प्रेमनाथ ने बुरा नहीं माना. ऐसी गुणवती बीवी का गुलाम होना उन्हें स्वीकार है.

हवेली के हर काम में मालती देवी का दख़ल था. नौकर-चाकर, नाते-रिश्ते, खेत-खलिहान, व्रत-उपवास, तीज-त्यौहार... मज़ाल है कि कुछ उनकी नज़रों से छूट जाये. लंच के बाद वे ऑफ़िस चली जातीं और प्रेमनाथ के संग शाम को घर लौटतीं. ऑफ़िस में उनका अलग केबिन था. संपत्ति का बंटवारा हो चुका था. मालती देवी के कारण प्रेमनाथ की संपत्ति जहां एक ओर बढ़ रही थी वहीं सोमनाथ की उनकी रंगरेलियों के कारण घट रही थी. सोमनाथ इस बात को लेकर भी अंदर ही अंदर विद्रोह पाले थे. एक औरत उन पर भारी पड़ रही है और वे कुछ नहीं कर पा रहे हैं. प्रेमनाथ तो सीधा सादा है इसीलिए वह नहीं समझ पा रहा है कि मालती ने उसे कैसा कठपुतली बनाकर रखा है. लानत है ऐसी मर्दानगी पर और वे मालती को रास्ते से हटाने की योजना बनाने लगे. बस एक बात से राहत मिलती उन्हें कि प्रेमनाथ की संपत्ति का कोई वारिस नहीं है.

लेकिन ईश्वर ने उनकी इस सोच को भी नकार दिया. शादी के दस साल बाद मालती देवी ने दिग्विजय को जन्म दिया. हवेली तो क्या पूरा शहर आतिशबाज़ी की चकाचौंध से भर उठा. स्याह आसमान में आग के फूल खिलते और धरती तक पहुंचने से पहले ही ग़ायब हो जाते. दिग्विजय जाड़ों में दिसंबर मास में पैदा हुए थे. उस साल बेतहाशा ठंड पड़ी, ओले गिरे और बारिश भी हुई. खेतों में लहलहाती फ़सल पाला पड़ने से झुलस गयी. खेतों का मुआयना करके लौट रहे प्रेमनाथ को जाने कैसी हवा ने दबोचा कि बायां अंग लकवाग्रस्त हो गया. उनके बिस्तर पर आते ही सोमनाथ ने उनके कारोबार की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाही कि मालती देवी ने दख़लंदाज़ी की.

''अभी मैं ज़िंदा हूं जेठजी... सम्हाल लूंगी सब. आप चिंता न करें.''

सोमनाथ तिलमिला गये लेकिन चूंकि जायदाद और कारोबार में वे अपना हिस्सा पहले ही ले चुके थे इसलिए उन्हें चुप रह जाना पड़ा. लेकिन सूखी हुई घास में चिंगारी तो पड़ ही चुकी थी. उन्होंने चचेरे भाइयों को भी अपनी गिरफ़्त में लेकर मालती देवी के विरुद्ध भड़काना शुरू कर दिया. उनकी कोशिश रहती कि प्रेमनाथ को कारोबार में नुक़सान पहुंचे और पूरे खानदान की नज़रों में उनकी जो साख है उसे मिट्टी में मिला दें. लेकिन मालती देवी का वे कुछ नहीं बिगाड़ सके. उनकी इसी कुशलता ने सोमनाथ के दिल की चिंगारी को लपट देना शुरू कर दिया.

मालती देवी लाख कोशिशों के बावजूद प्रेमनाथ को नहीं बचा पायीं. आठ बरस हलचलविहीन शरीर से बिस्तर भोग कर प्रेमनाथ ने संक्रांति के दूसरे दिन प्राण त्याग दिये.

मालती देवी का संसार उजड़ चुका था. आठ बरस के नन्हे दिग्विजय की परवरिश और प्रेमनाथ का कारोबार... तिस पर ख़ानदानी दुश्मनों की गिद्ध नज़र. ... लेकिन मालती देवी ने वह कर दिखाया जिसकी सोमनाथ को उम्मीद भी नहीं थी. उन्होंने दिग्विजय को देहरादून पढ़ने के लिए भेज दिया और पूरी तरह कारोबार के लिए समर्पित हो गयीं. पुरखों की शान-बान को क़ायम रखना और दिग्विजय को उच्च शिक्षा देकर पुश्तैनी कारोबार के लायक बनाना अब मालती देवी का मक़सद बन गया. उन्होंने तो, जैसे अपने आसपास सुदृढ़ किलेबंदी कर ली थी जिसमें उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ परिंदा भी पर नहीं मार सकता था. यह वह युग था जब औरत मर्द की जायदाद समझी जाती थी. ऐसे में मालती देवी के मातहत ज़िंदगी गुज़ारने को विवश नाते-रिश्तेदार पंगु कर देनेवाली मन:स्थिति से गुज़र रहे थे. एय्याश सोमनाथ धर्म, कर्म भूल अगर कुछ याद रखे थे तो मालती देवी ... मालती देवी उनके दिमाग़ में ऐसी छा गयी थीं कि और कुछ सूझता ही नहीं था उन्हें. मालती देवी उनके दिल का चैन और रातों की नींद ले उड़ी थीं. मालती देवी इस बात से वाकिफ़ थीं. वे ऊपर से चाहे जितनी कठोर और दृढ़ व्यक्तित्व वाली थीं लेकिन प्यार से ओतप्रोत एक कोमल दिल भी तो था उनके पास. जब भी वे कारोबार से थकतीं प्रेमनाथ की तस्वीर के सामने बैठकर ख़ामोश ज़बान में अपने दिल का हवाला देतीं. उन्हें लगता जैसे प्रेमनाथ उन्हें तसल्ली दे रहे हैं, आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दे रहे हैं. शायद इसी अलौकिक साथ के बल पर वह अपने ख़ानदान की सबसे शक्तिशाली महिला बन चुकी थीं.

वह दिग्विजय की पंद्रहवीं सालगिरह थी. क्रिसमस की

छुट्टियों में दिग्विजय घर आये थे. इस बार मालती देवी कुछ नया करने की योजना बना रही थीं.

''माताजी इस बार विदेशी ऑर्केस्ट्रा का प्रोग्राम रखिए न,'' दिग्विजय भी उत्साह में थे.

''क्यों नहीं. ... हर बार आतिशबाज़ी होती है, इस बार ऑकेस्ट्रा मंगवाते हैं. आप मेहमानों की लिस्ट चेक कर लें. ... कोई छूट न गया हो.''

मालती देवी ने लिस्ट दिग्विजय के हाथों में थमायी और हवेली की सजावट देखने के लिए चली गयीं.

शाम से घर में मेहमानों का तांता लग गया. ऑर्केस्ट्रा की धुन पर सब नाच-थिरक रहे थे. मालती देवी बेटे को ख़ूबसूरत पोशाक में देख सीधा प्रेमनाथ की तस्वीर के सामने जा खड़ी हुईं — ''देख रहे हैं बेटे को. बिल्कुल आप ही का प्रतिरूप है. उसकी तालीम में मैंने कोई कोर कसर छोड़ी हो तो बता दीजिए. अपनी समझ से मैं जो कर रही हूं वो आपकी मनमर्ज़ी का तो है न?'' मालती देवी को लगा प्रेमनाथ इस बार मुस्कुराये नहीं बल्कि उनकी आंखों में ख़ौफ़ की परछाइयां थीं. फ़ोटो के कांच में मालती देवी ने अपनी ओर बढ़ते उस ख़ौफ को पहचान लिया. ऑर्केस्ट्रा के शोर में उनकी चीख़ दब गयी.

फिर कहीं नहीं मिलीं वे. कहां गयीं? ज़मीन खा गयी या आसमां निगल गया. .... तलाश....तलाश.... मालती देवी की जगह दिग्विजय ने ले ली. छोटी उम्र के बावजूद उन्होंने सोमनाथ के पैर टिकने नहीं दिये.

अफ़वाहों का बाज़ार गर्म था. मालती देवी की शख़्सियत पे रुसवाई के दाग़ लगाना नामुमकिन था. सोमनाथ ने क़ारिंदों का मुंह रुपयों से इतना ठूंस दिया था कि कोई न उगल पाया कि सोमनाथ ने मालती देवी की हत्या करवायी है.

देहरादून में पढ़ाई के दौरान ही दिग्विजय का परिचय सुमन देवी से हुआ जो पहले प्यार, फिर विवाह में तब्दील हो गया. दिग्विजय छः साल ऑस्ट्रेलिया में कारपोरेट जगत से जुड़े रहे. जब भारत लौटे तो हवेली को खंडहर में तब्दील पाया. ख़ानदान तितर-बितर हो गया था. ... कुछ ने शहर छोड़ दिया, कुछ ने दुनिया.

अपने पिता दिग्विजय और मां सुमन देवी की मैं इकलौती बेटी कनुप्रिया. मैंने दादी को नहीं देखा. पापा ने जब पुरानी हवेली तुड़वाकर नयी कोठी बनवायी तो जिस जगह उनका शव मिला था उस पर तुलसी का चौरा बनवाया. मम्मी सुबह-शाम वहां दीपक जलाती हैं. कोठी के ड्राइंग रूम में उनकी तस्वीर देखकर मैंने मान लिया था कि वे संसार की सबसे रूपवती स्त्री थीं.

रूपवती नेफ्रटीटी भी थी. नेफ्रटीटी की तस्वीर उसके पिरामिड में लगी देख मैं पलक झपकाना भूल गयी. इतनी ख़ूबसूरती? गुफ़ा की दीवारों पर राजघराने के चित्र उकेरे गये थे. एक-एक चित्र नेफ्रटीटी के संग घटी घटनाओं की गवाही दे रहे थे. मैं उन चित्रों को चलता-फिरता महसूस करने लगी.

नील नदी के किनारे बसा बेहद ख़ूबसूरत शहर मलकाटा. सम्राट का विशाल महल. साम्राज्ञी टॉय सम्राट की रखैलों की देखभाल ख़ुद करती थीं. नेफ्रटीटी को जन्म देनेवाली रखैल की मृत्यु प्रसव के दौरान ही हो गयी. नेफ्रटीटी का बचपन महल के रीति-रिवाज़ों, क़ायदे-क़ानून के बीच आराम से गुज़र रहा था लेकिन साम्राज्ञी टॉय की पैनी नज़र ने जान लिया था कि नेफ्रटीटी का बेपनाह सौंदर्य, विलक्षण प्रतिभा और अदभुत सोच रखैलों की अन्य औलादों जैसा नहीं है. उसने नेफ्रटीटी की शादी अपने बेटे एखेनाटन से कर दी. लेकिन शादी के लिए कहां बनी थी वह. एखेनाटन सम्राट होकर भी साम्राज्य के प्रति अपने फ़र्ज नहीं निभा रहा था. वह सिर्फ़ नेफ्रटीटी के रूप का ग़ुलाम था. लिहाज़ा सम्राट और साम्राज्ञी दोनों की भूमिका वही निभा रही थी. वह एक शक्तिशाली औरत के रूप में उभरी और मिस्र के इतिहास पर छा गयी.

अंधेरा घिरने लगा था. ... हमें काहिरा लौट जाना चाहिए था लेकिन गुफ़ा की दीवारों के चित्र जैसे मुझे पुकार रहे थे — कनुप्रिया. ... मैं नेफ्रटीटी ... लगातार कई बरसों तक मेरे कुशल शासन में रहते हुए मेरे ही सैनिकों ने मेरे खिलाफ़ साज़िश रची और एक दिन थीब्स में मुझे निहत्था पा मेरी हत्या कर दी गयी. हत्या मेरी दादी मालती देवी की भी कर दी गयी थी. दादी ने भी मर्द की सत्ता को चुनौती दी थी. दोनों साज़िश का शिकार होकर दुनिया से कूच कर गयीं लेकिन दुनिया के लिए एक सवाल छोड़ गयीं. ... आख़िर औरत की सत्ता में इंकार क्यों है?

''ये गुज़रे वक़्त की घटनाएं हैं कनु... इनसे आज का आकलन नहीं किया जा सकता. समाज कितना बदल गया है, सोच कितनी बदल गयी है.'' फ़ोन पर समझा रहा था कुणाल और मैं काहिरा में अंतिम डिनर लेते हुए सोच रही थी. ... नहीं, बदला नहीं है ज़माना. ... फ़र्क बस इतना आया है कि औरत पहले ख़ुद के अंदर थी अब बाहर आयी है.

२०४, केदारनाथ को. हॉ. सो.,
सेक्टर ७, निकट चारकोप बस डिपो,
कांदिवली (प.), मुंबई-४०००६७.
मो. : ९७६९०२३१८८.

कहानी

कत्लगाह

✍ सुधा अरोड़ा

सुबह की सैर पर निकलने से पहले इस कसाई बाड़े को पार करना ही पड़ता था जहां जाली के एक बड़े–से पिंजरे में मुर्गियों का जत्था ठुंसामुसा अधमरा-सा पड़ा रहता था. जैसे ही पिंजरे का दरवाज़ा खुलता और एक हाथ एक गर्दन को मचोड़ता हुआ बाहर खींचता, सभी मुर्गियों के पर फड़फड़ाने लगते और मुर्गियों की आवाज़ घायल चिड़ियों की चीं-चीं में तब्दील हो जाती. मनप्रीत उस ओर देखना नहीं चाहता था. ऐसी डरी हुई चिंचियाती आवाज़ें सुबह–सवेरे उसके मुंह का ज़ायका बिगाड़ देतीं. वह तब कसाई की दुकान से आगे तेज़ी से क़दम बढ़ाता और मेन रोड से होते हुए उस पार्क में दाख़िल हो जाता जहां कतार की कतार इतने रंगों के फूल थे कि उन रंगों को मिलाकर कई इंद्रधनुष तैयार किये जा सकते थे. इतने सुनहरे-रुपहले, पीले-नारंगी, लाल-गुलाबी रंगों के बीच जब उसका पहला फ़ोन अपनी प्रेमिका मोहिनी का नंबर मिलाता तो उस ओर से रंगों में झूमती-लहराती, बल खाती मोहक आवाज़ कानों में गूंजती — गुडमॉर्निंग मनप्रीत! मनप्रीत के कानों से तैरता हुआ मादक खुमार उसके जेहन तक पहुंचता और रात की बेहोशी, चौकन्नी सुबह को भी धुंधला करने लगती. यों मनप्रीत का पहला प्रेम नहीं था यह. पहला तो बेनू से था जिससे उसने शादी की और जो अब हर बीस साल पुरानी बीवी की तरह, बीवी कम और मां का रोल ज़्यादा निभाने लगी थी. खाने-पीने और दवा-दारू से लेकर उसके रुमाल और मोज़ों तक का हिसाब-क़िताब उसने रखना शुरू कर दिया था. ऐसी बीवी को लड़ियाने और बांहों में भरने का ख़्याल साथ छोड़ चुका था. ऐसे में भुवनमोहिनी मदमाती बयार की तरह मनप्रीत के जीवन में दाख़िल हुई. उसका एक नज़र देख भर लेना और अपनी भरी आवाज़ में पूछना — ''कैसे हो? कहां हो?'' मनप्रीत को धराशायी करने के लिए काफ़ी था. लेकिन प्रेम को धीरे- धीरे पींगें बढ़ाने का मौक़ा ही नहीं मिला. प्रेम मनप्रीत की ज़िंदगी में चौकड़ियां भरते हुए आया और एक के बाद एक घटनाक्रम को फलांगता, ऐसे कूदता-फांदता निकल गया कि वह अपने को खाई में गिरने से रोक नहीं पाया.

प्रेम के मामले में मनप्रीत भट्ट शुरू से ख़ुशकिस्मत रहा था. वह ख़ुद भी कम दिल फेंक आदमी नहीं था. कोई लड़की आकर गले पड़ ही जाये तो उसे गले से लिपटाने में अपना क्या जाता है! एक से पल्ला छूटता नहीं कि दूसरी अपनी कविताएं लेकर हाज़िर हो जाती. कविता लिखकर थोड़ी-सी शोहरत हासिल करने का यह बड़ा फ़ायदा है. दायें-बायें, जिधर नज़र डालो — लड़कियां ही लड़कियां. भुवनमोहिनी उस लिहाज़ से लड़की नहीं थी और मनप्रीत भट्ट से दो-चार साल बड़ी ही होगी, फिर शक़्ल सूरत भी ऐसी नहीं कि कोई दोबारा घूमकर देखे. सो मनप्रीत के आगे-पीछे डोलती रही, मनप्रीत अनदेखा करता रहा. अब घर चूंकि पंद्रह मिनट के फ़ासले पर था, हर साहित्यिक प्रोग्राम में साथ लग लेती. एक पराई औरत का साथ चलना किस आदमी को अखरता है. चले! फिर उसने बिना नागा फ़ोन शुरू कर दिये. ठीक है, आवाज़ थोड़ी अय्याश क़िस्म की — मर्दानी थी — पर रुमानी सोच लिये, जैसे दो-एक पेग़ चढ़ाकर आयी है. मनप्रीत ने सोचा — बात करने में अपना क्या जाता है. तब यह नहीं सोचा था कि यह विषबेल उसकी गर्दन को इस कदर जकड़ लेगी कि सांस लेना दूभर हो जायेगा.

एक दिन चार दोस्तों के बीच मोहिनी अकेली साथ हो ली. वहां व्हिस्की के कुछ घूंट भी भर लिये. सब अपनी–अपनी

सुधा अरोड़ा

४ अक्तूबर १९४६

प्रकाशन : *१९६७ में छात्र जीवन में ही प्रथम कहानी संग्रह 'बग़ैर तराशे हुए प्रकाशित. ग्यारह कहानी संग्रह, एक उपन्यास (यहीं कहीं था घर), स्त्री विमर्श संबंधी चार पुस्तकें प्रकाशित.*

कविता संकलन : *'रचेंगे हम साझा इतिहास',* ***एकांकी :*** *'ऑड मैन आउट उर्फ बिरादरी बाहर'*

संपादन : *'औरत की कहानी', 'भारतीय महिला कलाकारों के आत्मकथ्यों के दो संकलन — 'दहलीज को लांघते हुए' और 'पंखों की उड़ान', 'मन्नू भंडारी : सृजन के शिखर', 'मन्नू भंडारी का रचनात्मक अवदान'.*

अनुवाद : *कहानियां लगभग सभी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, फ्रेंच, पोलिश, चेक, जापानी, डच, जर्मन, इतालवी तथा ताजिकी भाषाओं में अनुदित और इन भाषाओं के संकलनों में प्रकाशित.*

'रहोगी तुम वही' (उर्दू भाषा में); 'उंबरढ्याच्या अल्याड पल्याड' (स्त्री विमर्श पर आलेखों का संकलन मराठी भाषा में).

राह चल दिये तो ऐसे डगमगाने लगी कि मनप्रीत को उसे सहारा देना ही पड़ा. कसकर उसने मनप्रीत की कलाई थाम ली और अपने प्रेम की घोषणा कर दी — ''मन! मेरे मन! तुम रहो अपनी बेनू के पास पर मैं तुमसे बहुत प्यार करती हूं. सच, तुम्हारी बेनू बहुत अच्छी है. मैं उसके हक़ पर डाका नहीं डाल रही पर मैं अपने मन का क्या करूं कि वह तुम्हारे मन से एकाकार हो गया है? बोलते-बोलते वह मनप्रीत की बांह का सहारा लिये सड़क पर झूमती रही. नशे के बहाने से सब कुछ बोल गयी जिसे बोलने का मौक़ा बहुत दिनों से ढूंढ़ रही थी. मनप्रीत को अपना नया नामकरण 'मन' भा गया और नामकरण से भी ज़्यादा उसे उच्चारने का मोहिनी का मोहक अंदाज़ — 'मन्न!' लगता जैसे आंखों की मादकता लटपटाती ज़बान का पल्ला थाम रही है.

महीने भर बाद मनप्रीत ने बताया कि अपनी कंपनी की एक ट्रेनिंग के सिलसिले में उसे नागपुर जाना पड़ रहा है. सोमवार से बुधवार तक तीन दिन वह नागपुर में रहेगा.

मोहिनी ने लंबी सांसें भरकर कहा — ''यानी तीन दिन तुम्हारी आवाज़ भी सुनने को नहीं मिलेगी?''

मनप्रीत ने कहा — ''क्यों, रोज़ शाम को वहां से फ़ोन तो कर ही सकता हूं.''

मोहिनी ने पूछा — ''अपने यार दोस्तों के साथ पीने नहीं बैठोगे?''

''कैसे यार दोस्त?'' मनप्रीत ने टोका — ''अपनी कंपनी से तो मैं अकेला ही जा रहा हूं. बाक़ी लोगों से कोई जान पहचान थोड़े ही है.''

मोहिनी ने कहा — ''चलो मन, तुम जा रहे हो तो मैं भी पूना के उरलीकांचन हो आती हूं. कब से ड्यू है! वज़न बढ़ता जा रहा है. कम करना है.''

शनिवार को दोनों मिले और एक दूसरे से विदा ली.

सोमवार की दोपहर जब मनप्रीत नागपुर के हवाई अड्डे पर उतरा तो मोहिनी हवाई अड्डे की दर्शक दीर्घा में हाथ में फूलों का गुलदस्ता लिये मनप्रीत के स्वागत के लिए खड़ी थी.

मनप्रीत जैसे आसमान से गिरा — ''तुम और यहां?''

''तीन दिन कैसे रहती वहां?'' मोहिनी ने आंखों में आंखों के रास्ते प्रवेश किया, सवाल के जवाब में सवाल किया और वहीं ठिठक गयी — ''तुम्हारे बिना!''

''आयी कैसे?'' मनप्रीत अपनी हैरानी संभाल नहीं पा रहा था.

''हवा के झोंकों पे सवार होकर!'' सूरजमुखी के खिले हुए नारंगी फूलों का गुलदस्ता थमाने मोहिनी, मनप्रीत के क़रीब सरक आयी, ''तत्काल से टिकट निकाली, बस, गाड़ी पकड़ ली.''

मनप्रीत दो क़दम पीछे हटा — यह बला तो गले ही पड़ गयी. इस अवांतर स्थिति के बारे में तो सोचा ही नहीं था.

''यहां रहने का कहीं ठौर ठिकाना है?'' मनप्रीत ने व्यावहारिक होते हुए कहा.

''मेरे रहने के लिए तो तुम्हारी आंखें ही काफ़ी हैं, मन!'' मूरत बनी मोहिनी, आंखों में ही थिर हो चली.

गुलदस्ता हाथ में लेकर मनप्रीत सहज होने की कोशिश में लगा.

''चलो!'' मनप्रीत ने कुटिल मुस्कुराहट के साथ कहा, और सोचा — क्या फ़र्क पड़ता है, इस तरह मर मिटी है तो इसे हाथ से जाने क्यों दिया जाये. इस अय्याश किस्म को आजमाया जाये!

टैक्सी में बैठते ही परफ़्यूम की तीखी गंध हवा के झोंके के साथ गुज़री तो मनप्रीत को गुज़री एक शाम की बात याद आयी. एक बार मोहिनी जैसे ही पास बैठी, पसीने की

ज़बरदस्त गंध का भभका मनप्रीत के नथुनों से दिमाग़ तक जा पहुंचा. मनप्रीत के मुंह से निकला — उफ्! पसीने की कैसी ज़बरदस्त बू आ रही है. बस ट्रेन में बहुत धक्के खा कर आ रही हो क्या? .... मोहिनी ने फ़ौरन कंधे भींचे और गर्दन अंदर की ओर खींचकर बोली — पसीने की गंध? और ठहाका लगा दिया —मुझे तो कभी पसीना आता ही नहीं? मनप्रीत को ब्रेक लगा — अरे, तुम इंसान नहीं हो क्या, पसीना तो हर एक को आता ही है! उसने हंसकर बात बदल दी — पर आजकल ड्योडरेंट ख़ूब मिलते हैं. किसी भी कॉस्मेटिक की मामूली दुकान से लेकर केमिस्ट तक में. अब इस देसी परफ़्यूम की तीखी गंध ने मुहर लगा दी कि वह पूरी तैयारी के साथ सूरजमुखी का गुलदस्ता लिये इस नगर में पधारी है.

मिस्टर भट्ट के नाम से बुक किये गये मनप्रीत के कमरे में मिसेज़ भट्ट का नाम जोड़ दिया गया. मोहिनी वहां टिक गयी और फिर नागपुर, नागपुर न रहा, नागिनपुर हो गया. कमरे के बाहर झमाझम बारिश होती रही और कमरे के अंदर राग देह मल्हार बजता रहा. ऐसा ज्वार भाटा उमड़ा कि मनप्रीत की सारी अराजकता उसमें तार-तार होकर बह गयी. उस बेडौल देह के सारे ढीले सिरे लुप्त हो गये और तराशे हुए अंग निखर कर सामने आ गये. उन तीन रातों ने बेनू के साथ मनाये हनीमून की पंद्रह रातों को पीछे छोड़ दिया. तीन रातों के ये डंक, अपने सियाह निशान, मनप्रीत के जिस्म पर ऐसे छोड़ेंगे कि उसका जीना मुहाल हो जायेगा, यह मनप्रीत को भी तब कहां मालूम था. वह कहां जानता था कि वह मोहिनी की शतरंज की बिसात का मोहरा बन चुका है जिसमें मात खा जाना उसकी फितरत है.

'मेरे मन, मेरे प्राण, मेरा तुम्हारा प्रेम तो गंगा-जमुना का संगम है?' 'मन और माही' — जैसे 'हीर और रांझा', 'शीरीं और फरहाद', 'लैला और मजनू'... 'मेरी देह पर बलात्कार हुआ पर मेरे होंठ अब तक कुंवारे हैं.'... ये जुमले जिन्हें, दस साल पहले भुवन मोहिनी ने अपने पति नंबर दो शीलभद्र चौबे की 'समिधा' बनकर शीलभद्र से कहे थे, यहां भी दोहराये गये. तब हवाई प्रेम का मारा, शीलभद्र बेचारा, पहली बार किसी स्त्री देह के नज़दीक आया था और इतने गरिष्ठ जुमलों को पचाने का उसका हाज़मा कमज़ोर था, पर यहां खाया-पिया, अघाया मनप्रीत ढाबे के नये किस्म के व्यंजन चख रहा था और उसकी स्वादेन्द्रिय सभी स्वादों का छक कर आनंद लेना चाहती थी.

वहां ये जुमले रिश्ता टूटने का सबव बने थे, यहां जुड़ने का बन गये. नागपुर से जो सिलसिला शुरू हुआ कि मुंबई भी हर वीक एंड पर 'नागपुर' बनने लगा. शेर की दाढ़ में ख़ून का स्वाद लग चुका था. अब वह आसानी से छूटनेवाला नहीं था.

दफ़्तर की ओर से मनप्रीत को जिस शहर में ट्रेनिंग के लिए भेजा जाता, मनप्रीत से पहले मोहिनी का सूटकेस रेडी हो जाता, पर हर शहर को तो नागपुर बनाया नहीं जा सकता था.

अगली बार मनप्रीत को गुवाहाटी जाना पड़ा. इधर बेटू को टायफायड हो गया. बेटू को संभालने के लिए बेनू काफ़ी थी पर मनप्रीत का ध्यान घर की ओर अटका था. एअरपोर्ट पर हवाई जहाज के लैंड करने और एक्ज़िट से बाहर निकलने के बाद, दर्शक दीर्घा की ओर देखते हुए मनप्रीत को धुकधुकी होने लगती — इस सिरफिरी लड़की का क्या भरोसा — दो दिन पहले ट्रेन पकड़ ले और फूलों का गुलदस्ता लिये स्वागत में खड़ी मिले. यह अलग बात थी कि उसकी आंखें अब हर एअरपोर्ट पर फूलों का गुलदस्ता तलाशने की अभ्यस्त हो गयी थीं.

गुवाहाटी पहुंचते ही उसने बेनू को फ़ोन लगाया कि बेटू के बारे में जान ले — उसका बुख़ार कुछ उतरा कि नहीं. बेनू से वह बात कर ही रहा था कि इधर मोबाइल पर वेटिंग कॉल का एलर्ट जगमग करने लगा. ''चलो, फिर बात करता हूं'' कहकर उसने बेनू को अचानक लाइन से रुख़सत किया और माही की ओर मुड़ा, ''कहीं एक्सीडेंट हो गया क्या, क्यों फ़ोन पर फ़ोन किये जा रही हो?'' सवाल के जवाब में फ़ोन के स्पीकर का रुख रेडियो की ओर था, जहां एक पुराना गीत बज रहा था — ''ऐ चांद, जहां वो जायें, तू साथ चले जाना, कैसे हैं, कहां हैं वो, हर रात ख़बर लाना....''

मनप्रीत खीझ गया. जैसे ही मोहिनी की आवाज़ सुनायी दी, वह दहाड़ उठा, ''रात को साढ़े ग्यारह बजे यह गाना सुनाने के लिए फ़ोन पे फ़ोन किये जा रही हो?''

मोहिनी ने अपने मोहक अंदाज़ में कहा — ''जो मैं नहीं कह पायी, वह बात यह गाना तुम तक पहुंचा रहा है, मन!''

मनप्रीत और ज़ोर से बोला, ''सुबह के पॉवर पॉइंट प्रेजेंटेशन के लिए मुझे तैयारी करनी है और तुम इस वक़्त पुरानी फ़िल्मों के गाने सुनाकर मुझे परेशान कर रही हो?''

अब मोहिनी के स्वर में धमक थी, ''अच्छा, तो मैं जनाब को परेशान कर रही हूं? गुवाहाटी में पहले से कोई मौज़ूद है इसलिए मुझे ले जाने से कतरा रहे थे. ठीक है, रहो अपनी गुवाहाटी बाला के पास. ख़ुदा हाफ़िज.''

मनप्रीत ने सिर पीट लिया. रेफ़ तो लगाना ही नहीं आता इसे नख़ बोलना आता है, न फ़ और न ज़. बावजूद में रेफ़ लगा कर बोलेगी और ज़िंदगी से रेफ़ को खींचकर अपनी कांख में दबा लेगी.

किसी तरह गुवाहाटी का सेमिनार निबटा कर मुंबई पहुंचा तो दोनों मोहतरमाओं ने मुंह फुला रखा था.

बेनू ने ग़ुस्से से कहा, ''अच्छी रस्मअदायगी की, बेटू का बुख़ार जानने के लिए फ़ोन किया और जब तक मैं पूरा बताऊं, लाइन ही काट दी! चक्कर क्या है?''

इधर मोहिनी अलग उत्तर-दक्षिण देखती रही, ''सच-सच बताना मनप्रीत भट्ट, कितने शहरों में कितनी प्रेमिकाएं पाल रखी हैं?''

मनप्रीत रुआंसा हो गया. अब समझ में आया, इसीलिए बड़े बुज़ुर्गों ने बीच मंझधार दो नावों पर सवार होने के ख़तरों से आगाह किया है.

विपरीत दिशा में जाती दो औरतों को लाइन पर लाने में मनप्रीत के सिर से उड़ते बालों की लाइन और चौड़ी होती चली गयी.

कभी मोहिनी सुबह-सुबह फ़ोन करती, ''सच बताना मन!'' उसका नशीला स्वर फ़ोन के चोगे को चीर कर उसके कान की लवों को दहका देता. तुम कल रात को बेनू के पास गये थे न? मैंने सपने में देखा.'' अब सपने वह ज़रूरत से ज़्यादा देखने लगी थी. जो बातें सीधे न कह पाती, सपनों के बहाने से पूछ बैठती.

मनप्रीत कहता, ''माही, तुम अपने और मेरे बीच में बेनू को क्यों ले आती हो बार-बार?''

अब मोहिनी अक़्सर कहती, ''क्या करूं मन! मैं तुम्हें अब किसी और के साथ बांट नहीं सकती. बांटना चाहती भी नहीं — चाहे वह तुम्हारी बीवी ही क्यों न हो. मनप्रीत और माही प्रीत. माही प्रीत और मनप्रीत. बस, हम दोनों के बीच में कोई तीसरा नहीं आना चाहिए. तुम्हारी बेनू भी नहीं.'' फिर वह सीधी आंखों में धंस जाती, ''ऐसा नहीं हो सकता मन कि हम एक छोटी-सी कुटिया छवा लें जहां बस मैं रहूं और तुम! तुम और मैं! हम शादी क्यों नहीं कर लेते मन? ऐसा कब तक चलेगा बोलो एक दिन चलो बांद्रा कोर्ट चलते हैं.... चलोगे न?'' और बस, शादी की ऐसी मानसिक तैयारी के बाद कुछ पलों में ही मुंबई को नागपुर में तब्दील कर देना आसान हो जाता.

आम तौर पर प्रेम आंखों के रास्ते शुरू होकर देह में नीचे उतरता है पर यह प्रेम तो उल्टे चढ़ा था और उसे सावन का अंधा बना रहा था. मनप्रीत को पूरा भुवन मोहिनीमय नज़र आ रहा था. अब मनप्रीत जब भी मोहिनी को देखता तो उसकी आंखों में क़ैद होकर रह जाता. इस प्रेम के बिना उसका निस्तार नहीं था. मोहिनी उर्फ़ माही की 'प्रेम' से अंटी खूंख़ार नज़रों को देखते हुए मनप्रीत को भी अक़्सर लगता कि इस 'प्रेम' की तो क़िस्म ही अनोखी है. इस तरह का हिंसक प्रेम तो कभी बेनू ने किया ही नहीं. कभी-कभी मनप्रीत महसूस करता कि वह इस प्रेम से हांफने लगा है पर उसे इस फाहश 'प्रेम' की लत लग गयी थी.

अब मोहिनी बेनू से और ज़्यादा प्रेम से बात करती ताकि घर आने-जाने का रास्ता भी खुला रहे. पर भीतर तो कुढ़न पल ही रही थी कि बीस सालों से इस खायी-अघायी बीवी को सिर्फ़ घुमौरी खाकर चक्कर ही आते हैं, कुछ हो क्यों नहीं जाता. हो जाये तो उसकी लाइन क्लियर हो. बेटू का क्या है, उसे हॉस्टल में डाल देंगे, पढ़ लेगा, वहीं पल भी जायेगा. मोहिनी तो कटी पतंग की डोर लोकने को मुस्तैद खड़ी थी, पर डोर बेटू के मज़बूत हाथों में थी और बेटू था कि उसको पापा की यह दोस्त, फूटी आंखों नहीं सुहाती थी. घर के दरवाज़े पर मज़बूत सांकल चढ़ाकर बेटू अपनी मम्मी के लिए सुरक्षा कवच बन गया. कई बार बड़े जो चीज़ें समझ भी नहीं पाते, बच्चे भांप लेते हैं.

करवाचौथ के दिन मनप्रीत अपनी माही के साथ मड आइलैंड के एक सस्ते पब के ऊपर बने कमरे में बैठा चौथ के चांद को निहार रहा था और बेनू अपने पति की पंद्रह साल पुरानी तस्वीर सामने रख गीली आंखों से छाननी से धुंधलाया चांद देख रही थी.

एक दिन ज़िद करके मोहिनी मनप्रीत को अपना घर दिखाने ले गयी. घर क्या था, बस, पैर फैला सकने लायक एक लंबा-सा कमरा था जिसमें चार आदमी सो सकें. एक कमरा किराये पर क्यों नहीं ले लेती? मोहिनी भी जब तब मनप्रीत को कहती, ''मन! और कुछ नहीं, बस, एक कमरा चाहिए जहां मैं इत्मीनान से बैठकर लिख-पढ़ सकूं.'' और मनप्रीत ने सचमुच वडाला से लेकर सायन कोलीवाड़ा तक में किराये के कमरे देखने शुरू कर दिये. दो हज़ार महीने पर रमाबाई चॉल में एक कमरा तय भी कर लिया जिसमें मोहिनी ट्यूशन लिया करेगी तो घर की माली हालत भी सुधरेगी और एक्स्ट्रा आमदनी भी होगी. मनप्रीत की सरकारी नौकरी की तो इतनी हैसियत थी नहीं कि दो-दो परिवार पाल सकता. हां, मोहिनी अपना कमाती–धमाती तो मनप्रीत ताउम्र उसके हिंसक प्रेम को बख़ुशी झेल ले जाता. पर ट्यूशन किसे लेनी

थी. मोहिनी ने जिस इरादे से 'कमरा चाहिए' का राग अलापा था, वह द्रुत तान पर समाप्त हो गया.

मोहिनी की माया मनप्रीत समझ ही न पाया.

उनका 'नागपुर' गेस्ट हॉउस के कमरों में ही फलता-फूलता रहा.

मनप्रीत तो मुंबई महानगर में नागपुर का भी लुत्फ़ उठाने में मशगूल था. उसे नहीं मालूम था वह नागपुर में क़ैद होकर रह गया है जबकि मोहिनी मुंबई से पूरे भारत की परिक्रमा करने की योजना में दिन-रात लगी हुई है.

इधर कानपुर के एक डी. आई. जी. से मोहिनी की पहचान हो गयी. उसने एक सम्मेलन में बुलाया. वहां से ख़ूब चहक-चहक कर फ़ोन करती रही. सम्मेलन में उसका सिक्का जम गया था तो परम प्रसन्न थी पर जिस दिन वहां से चलना था, उस दिन सारा दिन फ़ोन कर करके बताती रही, अभी ट्रेन फलाने स्टेशन पहुंची है, अभी फलाने प्लेटफ़ॉर्म पर है, चाय पी रही हूं. मनप्रीत सुनता रहा. दिन में पंद्रह बार फ़ोन आये और हर बार ए. एच. व्हीलर का, बटाटा वड़ा का, पानी की बोतल का, चायवाले का आंखों देखा विवरण. मनप्रीत को खटका हुआ — आंखों देखा हाल कुछ कह रहा है और बैकग्राउंड का ध्वनिविहीन विवरण कुछ और.

अगले दिन वह सीधे मोहिनी के घर ही पहुंच गया. देखा तो बैग पर एअरलाइंस का टैग लगा था. उससे कुछ बोलते न बना — जैसे मोहिनी की नहीं, अपनी ही चोरी पकड़ी गयी हो.

मनप्रीत ने कहा, ''तुम्हारे बैग पर यह टैग....?''

''अरे व्वो....व्वो तो भाई दिल्ली से आया था. मेरा बैग ले गया था.''

भाई की टूटी हुई हवाई चप्पल और बग़ल से सीवन उधड़े कुरते पर नज़र डालकर मनप्रीत मन मसोस कर चुप हो रहा. सच का सामना करने की ताक़त नहीं थी उसमें, इसलिए उसे नज़रअंदाज करना चाहता था.

मनप्रीत को समझ में नहीं आया कि सम्मेलन की सारी बिरादरी जब रेलगाड़ी से लौटी तो इस मोहिनी को डी. आई. जी. ने हवाई यात्रा का टिकट क्यों दिया. और टिकट दिया तो दिया, रेलयात्रा के एक दिन का काल्पनिक प्रसारण सुनाकर उस हवाई यात्रा को ढकने-छिपाने की ज़रूरत क्यों पड़ी? कुछ तो है जिसकी पर्दादारी है. सवाल सामने डट कर खड़ा था पर जवाब मनप्रीत के हक़ में नहीं जाता था.

सोचा, इस बाबत ज़्यादा पूछताछ की तो कहीं मुंबई

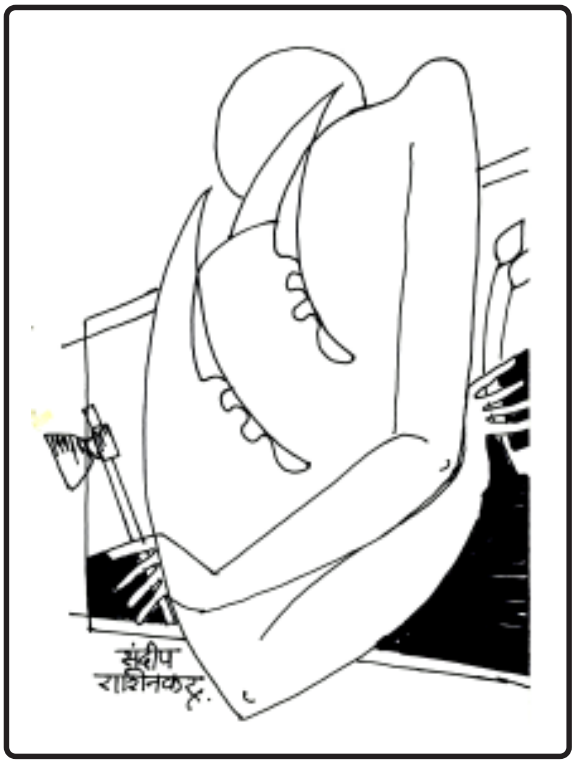

में नागपुर पनपना बंद न हो जाये. मनप्रीत ने इस ब्यौरे पर ही राख डाल दी, बेशक भीतर ही भीतर वह धुंधआता रहा. मोहिनी की माया मोहिनी ही जाने.

अब माया तो चंचल है. वह एक जगह टिक कर कहां रहती है सो अपने मायावी रूप दिखाने शुरू कर दिये. मनप्रीत के एक पुराने बुज़ुर्ग कवि मित्र गोपालजी उसके घर पधार रहे थे, दो दिन के लिए.

मोहिनी को बताया तो उसकी आंखों में ग़ज़ब एक की चमक कौंधी — ''अरे वाह! सूरत के गोपाल जी आ रहे हैं. मैं तो उनका साक्षात्कार लूंगी.''

मनप्रीत ने कहा — ''ज़रूर लेना. पर एक बात याद रखना, नाम बड़े हैं पर दर्शन छोटे. आदमी ठीक नहीं है. जन्मजात लंपट है, इससे बचकर रहना.''

मनप्रीत ने तो आगाह किया. आगाह करने में मोहिनी को संभावनाएं दिखायी देने लगीं.

मनप्रीत के पास तो सिर्फ़ मारुति वैन थी — वो भी बिसूरती हुई, यहां तो चमचमाती सिल्वर ग्रे रंग की मारुति ज़ेन और होंडा सिटी गाड़ी के साथ-साथ, आगे लॉन और पीछे आंगनवाला, ग्राउंड प्लस वन का करोड़ों का बंगला भी था. मनप्रीत की बेनू को तो सिर्फ़ घुमौरियों के बाद चक्कर आते थे,

यहां गोपाल जी की गोपालन तो हाई ब्लडप्रेशर के साथ-साथ दिल की पुरानी मरीज़ भी थीं तो यहां मोहिनी के 'कमरा चाहिए' आवेदन में स्थायी नियुक्ति की संभावनाएं ज़्यादा थीं.

सबसे पहले तो गोपाल दंपत्ति को, उसांसे भर-भर कर, अपना छोटा-सा बसेरा दिखाने ले गयी. बिरला ही होगा, उस बसेरे को देखकर, जिसकी आंखें नम न हों, सो गोपाल दंपत्ति पसीज गये. उन्हें कहां मालूम था कि इस बसेरे को देखकर दो दर्जन लोग पहले ही पसीज चुके हैं.

बेचारी भुवनमोहिनी. भुवन को मोह ले, पर अपने रहने का ठौर ठिकाना नहीं. श्रेष्ठ कुल की मेधावी कन्या और घर में पढ़ने-लिखने की एक मेज़ तक रखने की जगह नहीं. अब मेधा को तराशने के लिए दूसरों के घरों में ठौर न तलाशे तो और करे क्या!

बस, दो महीने बीते और पता चला कि दो महीनों में पांच बार सूरत हो आयी.

वहां भी 'कमरा चाहिए' पुराण दोहराया गया. गोपाल जी अपनी फितरत कैसे छोड़ते. अपने नकली दांतों की जोड़ी को दबाकर, लहक-लहक कर, मुंह से कम और नाक से ज़्यादा, बोले — ''कमरां? अरे भइयां, यहां तो कोठी खाली पड़ी है. जब चाहो, आओ. जितने दिन चाहो, रहो. हम दो हैं, तीन हो जायेंगे. बढ़िया रहेगा.''

गोपालजी की गोपालन अड़ गयीं, ''अपने नाती–पोते आते हैं, क्या देखेंगे, एक कुंवारी कन्या यहां डेरा जमाये पड़ी है.'' गोपालन ने मना तो कर दिया पर इसका अंजाम वो भुगतना पड़ा कि दो बार नर्वस ब्रेक डाउन से अस्पताल में भरती हो गयीं और गोपालजी ने अपनी पचास साल पुरानी पत्नी को देखने अस्पताल जाने से इनकार कर दिया.

मोहिनी और गोपालजी — दोनों एक दूसरे का साक्षात्कार करते इगतपुरी घूम आये. दोनों ने मिलकर सोचा — शायद ऊपर बसेरा करने वाले लड्डू गोपाल मदद करें और इन सत्तरवर्षीय गोपालन को अपने पास बुलाकर इन दोनों को हरी झंडी दिखा दें. पर ऊपर इन बुढ़ौती के गोपालों की 'मोहिनियों' की लंबी कतार के कारण ट्रैफ़िक जैम था, सो दो-दो नर्वस ब्रेक डाउनों के बावजूद अस्पताल प्रवास के बाद गोपालन अपनी पदवी पर लौट आयीं. कौन जाने, इन 'मोहिनियों' के बोझ से रसातल को जाती धरती को बचाने के लिए ऊपर वाले गोपालजी रेडलाइट का स्थायी सिगनल हटाते ही नहीं और गोपालनें आपातकालीन द्वार तक पहुंच कर भी अपने-अपने 'बसेरों' को 'भूत (या भूतनी) का डेरा' बनने से बचाने के लिए लौट–लौट आतीं.

गोपालन को ख़बर मिल चुकी थी, इस मोहिनी ने पता नहीं कितनों के नाम के सिंदूर से अपनी मांग भरी, कितनों के लिए करवाचौथ के व्रत रखे, कितने मंगलसूत्र इसकी दराज़ में पड़े हैं, कितनों के चरणों पर अपना माथा टिका कर आंखों से गंगा-जमुना बहा चुकी है — बस इसलिए कि अपने दड़बे से विदा लेकर होंडा सिटी गाड़ी में बैठकर लंबी ड्राइव पर जाये और फिर बंगले के सामने बने लॉन के बीचोबीच, हरसिंगार के पेड़ को हिला हिलाकर, झरते फूलों के नीचे बाल खोलकर, दोनों हाथ लहराकर गाना गाये— 'पंछी बनूं, उड़ती फिरूं.....'

अब तक गोपालन पर सारे जुल्म-ओ-सितम ढाते हुए भी गोपाल जी उनके साथ दोपहर का खाना खाते रहे थे. लेकिन अब उनके साथ चाय पीनी भी बंद कर दी. गोपाल जी बंगले के निचले हिस्से में रहते, गोपालन ऊपर के कमरे में रहतीं. यार दोस्त आते तो गोपालन शो-पीस की तरह सामने लाकर खड़ी कर दी जातीं. दोस्तों के लिए बोन चाइना के कप प्लेट में जब गोपालन चाय नमकीन सर्व करतीं तो गोपाल जी की इज़्ज़त में इज़ाफ़ा हो जाता. दोस्तों के रुख़सत होते ही गोपालन वापस अपने कमरे में पार्सल हो जातीं. पर गोपालन अपनी छोटी-सी स्पेस को बचाने की ख़ातिर अपने फ़ैसले पर अटल रहीं और 'कमरा चाहिए' के गुब्बारे की हवा निकल गयी. आख़िर गोपालन ने मोहिनी के घर आने पर रोक लगा दी तो मोहिनी की फुंकारों से गोपाल जी के बंगले का आसमान थर्रा उठा. गोपालन का जीना गोपाल जी ने हराम कर दिया और गोपालन के अंतिम क्रिया कर्म का बेसब्री से इंतज़ार करने लगे.

औरतें फिर सख़्तजान औरतें होती हैं. जीती चली जाती हैं.

सूरत में मोहिनी की दाल न गली और वह अपनी मोहिनी सूरत लेकर वापस अपनी खोली में लौट आयी. उधर गोपाल जी फ़ौरन से पेश्तर दूसरा विकल्प तलाशने में जुट गये. उनके पास विकल्पों की कमी कभी नहीं रही. इन विकल्पों ने उन्हें कवि से उठाकर उपन्यासकार बना दिया था. एक विकल्प, एक नया उपन्यास. जब भी कोई विकल्प संभावना बनने लगता, एक नये उपन्यास की ज़मीन तैयार होने लगती और ख़ुशी से उनकी आंखें चुंधिया जातीं.

इधर मायानगरी मुंबई में मनप्रीत काम से ज़्यादा शहर में सस्ते दर पर घंटों के हिसाब से मिलते कमरों में दिलचस्पी ले रहा था. सो रिपोर्ट उसके दफ़्तर तक जा पहुंची. महीने भर के अंदर उसे तबादले के क़ाग़ज थमा दिये गये. माही के

चलते मुंबई को नागपुर में तब्दील करने की यह सज़ा मुकर्रर थी ही.

एक दिन अपनी पत्रिका के विज्ञापन के लिए मनप्रीत अपनी माही को साथ लेकर अपने एक रईस व्यवसायी मित्र डॉ. अनेजा के दफ़्तर में चंदा मांगने पहुंचा. पहले तो दोनों साथ-साथ जाते रहे, फिर मनप्रीत का पत्ता कट गया और माही के लुभावने अंदाज़ यहां रंग ज़माने लगे. डॉ. अनेजा जिनके लिए मशहूर था कि दफ़्तर का काम करते हुए आंखें ऊपर नहीं उठाते थे, ग़लती से माही की तिरछी कजरारी आंखों पर जो निग़ाहें उठायीं, तो पलकें झपकाना भूल गये.

अब भुवनमोहिनी मनप्रीत से कतराने लगी.

मनप्रीत से रहा नहीं गया, एक दिन पूछ ही बैठा — ''तुम आजकल डॉ. अनेजा के घर बहुत जा रही हो. कोई ख़ास वजह?''

पलभर को मोहिनी थमी, जीभ को गाल में घुमाया, फिर बोली — ''तुम कहना क्या चाहते हो?''

मनप्रीत ने कहा — ''वही, जो तुम सोच रही हो.''

तमक कर जवाब ऐसे आया जैसे संवाद का रिहर्सल हो चुका हो — ''मैं स्साली हरामजादी हूं, नीच हूं, कमीनी हूं, रांड की जनी हूं, क्या कर लोगे? बोलो.''

मनप्रीत जैसे आसमान से नीचे गिरा पर अटकने के लिए खजूर की जगह साक्षात 'नागिनपुर' उसके सामने था. अपने 'पुर' को तिलांजलि देता हुआ. मनप्रीत ने उसकी ऐसी आवाज़ दूसरों को गरियाते सुनी थी. ऐसा जवाब उसके लिए अप्रत्याशित था. उसका मुंह तो ऐसे बंद हुआ जैसे किसी ने ज़बान काट डाली हो. इससे ज़्यादा क्या कह सकती है कोई. ख़ुद ही अपने को गालियां दे रही है. उसका मन तो हुआ कि इसकी पसंदीदा तीन अक्षर की गाली दे दें पर उस गाली से क्या जुड़ जाता सिनेरियो में? वह गाली उसकी आंखों से बाहर छलकी पड़ रही थी. उससे बड़ी कोई गाली दे सकते हो तो दो, वर्ना रास्ता नापो.... यह उसकी एंटीसिपेटरी बेल थी. तिरछी नज़रों से उसने ऐसे देखा जैसे माटी कुम्हार से कह रही हो — तू क्या रूंदे मोय, इक दिन ऐसा आयेगा, मैं रूंदूंगी तोय.... वह दिन आयेगा क्या, वह तो सज-धज के साथ आकर सामने खड़ा था. अब मनप्रीत को लगा कि धरती फट जाये और वह सीता मैया की तरह उसमें समा जाये. मनप्रीत कहां जानता था कि एक दिन वह अपने प्रेम में इस मुकाम पर खड़ा होगा.

मोहिनी तो आगे बढ़ ली — अपने 'मन' को 'जै रामजी की' बोल कर पूरी धौंस के साथ.

उधर अपने घोंसले के तिनके बिखरने से बचा लेने के बाद बेनू भट्ट मना रही थी, कि ईश्वर उस नये मुर्गे के दड़बे और मुर्गाबी की रक्षा करे. पर सत्यनारायण की कथा सुनने के बाद चरणामृत वाली हथेली अपने बालों पर फेरते हुए भी उसे लग रहा था कि जब तक वह मुर्गा समझे... समझे, यह समिधा उर्फ़ सुमेधा उर्फ़ माही उर्फ़ मोहिनी अपना पूरा खेल वहां भी खेल कर आगे बढ़ चुकी होगी. यह भी संभव है कि अब उसका नाम और लिबास भी बदल चुका हो. बेनू को लगा — नारायण सुने, न सुने, क्या भरोसा, उसके मुंह से बेसाख़्ता निकला — जय अंबे! जय भवानी!

भुवनमोहिनी ऐसी जमात की सिरमौर थी, जो हरेक को सीढ़ी बना कर मंज़िल की ओर आगे बढ़ती चली जा रही थी और जिस सीढ़ी का काम समाप्त हो जाता, उसे पांव के अंगूठे से परे धकेल देती. मनप्रीत भट्ट भी अब वह सीढ़ी था जो पानी में डूब चुकी थी. उसे नहीं मालूम था कि उससे पहले शीलभद्र चौबे, डॉ. गिरधारीलाल पांडे, त्रिनेत्र चतुर्वेदी, मिश्रा, भारद्वाज, वाजपेयी यानी इन पोथी पारायण विद्वानों के नामों की कई सीढ़ियां जलसमाधि ले चुकी हैं. अब बारी चिकनी चमचमाती सीढ़ी डॉ. सौमित्र की थी. अपने कंधे का सहारा देकर सीढ़ी बनने वाला हर आशिक सोचता रहा कि बाक़ी सब तो पितु-मातु-सहायक हैं, स्वामी-सखा वह अकेला है. प्रेम तो इसने सिर्फ़ मुझसे ही किया है. मेरे ही लिए यह कन्या धरती पर अवतरित हुई है.

उसके बाद भुवनमोहिनी का ग्राफ़ लगातार ऊपर उठता गया. अब उसकी आंख प्रतिष्ठित सम्मानित वरिष्ठ नागरिकों पर गड़ गयी थी. अब उसे किसी सम्मानित वरिष्ठ नागरिक की प्रेमिका ही बनना था, बीवी नहीं. उसने प्रेमिकाओं को पहाड़ों पर ऐश करते और बीवियों को एंटीडिप्रेसेंट गोलियां खा खाकर नर्वस ब्रेक डाउन से अपस्तालों में भरती होते देखा था. वह बीवी बनकर मानसिक चिकित्सा केंद्रों में सायकिएट्रिस्ट के चक्कर लगाना नहीं चाहती थी. उसे तो फ़ाइव स्टार रिसॉर्टों का डबल बेड चाहिए था, जहां सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित तबके के मर्द अपनी बीवियों को नहीं, प्रेयसियों को लेकर जाते हैं.

आख़िर मोहिनी की गिरफ़्त में डॉ. सौमित्र जैसा एक तगड़ा मुर्गा आ ही गया. उसने ताड़ लिया कि मुर्गा अब कटने के लिए गर्दन ख़ुद ही आगे कर चुका है. अब उसे एक अच्छे कसाई की भूमिका में आने से भला कौन रोक सकता था.

खचाक! उसका पहला ही वार इस बार काम कर गया. मुर्गे को पर फड़फड़ाने का मौक़ा भी नहीं मिला.

उसका यह हश्र देखकर हलाल होने के लिए कतार में खड़े बाक़ी सभी मुर्गों में हड़कंप मच गया और वे अपनी सलामती की दुआ मांगते दरवाज़े की फ़ांक से बाहर निकल भागने की कोशिश में आपस में भिड़ने लगे.

□

कोई नहीं बता सकता था कि उसमें कितने मुर्गे थे और कितनी मुर्गियां. सबकी गर्दनें अकड़ी हुई थीं, सबके गले रुंधे हुए थे और उनमें चीख़ने की नहीं, सिर्फ़ कराहने भर की ताक़त बच रही थी. उस कराह में प्रतिरोध अपनी आख़िरी सांसें ले रहा था. आगे रास्ता बंद था.

१७०२, सॉलिटेअर, हीरानंदानी गार्डेन्स,
पवई, मुंबई-४०००७६.
मो. : ९७५७४९४५०५.
ई-मेल : sudhaarora@gmail.com

सुरली भौजी

(पृष्ठ १४६ का शेष....)

में तू आया है जिस लिए...' उसने बदन में तेज़ सुरसुराहट अनुभव की और नीचे उतरने के लिए उचकने लग गया.

''तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं लग रही रवीश!'' उसमें अस्वाभाविकता अनुभव करती सुरली ने चाय की ट्रे चारपाई पर रखते हुए कहा — ''चाय पियो और सो रहो... सफर की थकान लग रही है...''

''थकान ऐसे नहीं मिटेगी भौजी..'' कहने के साथ ही वह उठ खड़ा हुआ. लेकिन सुरली ख़तरा भांप चुकी थी. तेज़ी से पलटकर वह बरौठे की ओर भागी थी कहती हुई, ''दरवाज़ा खुला हुआ है...''

रवीश बरौठे की ओर लपका लेकिन तब तक उसे दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनायी दी थी और सुनाई दी थी सुरली भौजी की चीख़ती हुई आवाज़, ''रवीश, वह भौजी कब की मर चुकी — भलाई इसी में है कि तुम इसी वक़्त इस घर से दफ़ा हो जाओ वर्ना...''

रवीश जड़ हो गया. हाथ आयी मछली हाथ से फिसल गयी थी. उसके कान में लगातार 'वर्ना' शब्द गूंज रहा था. 'भाग जा..!!' उसके कान में उसके डर ने कहा और इसी के साथ उसे छप्पर पर किसी चिड़िया की चीख़ सुनायी दी. चिड़िया लगातार चीख़ रही थी.

उसकी नज़रें छप्पर पर चिड़िया की ओर टिक गयी थीं.

बी-३/२३०, सादतपुर विस्तार,
दिल्ली-११० ०९४
मो. : ९८१०८३०९५७/९८११३६५८०९
ई–मेल : rupchandel@gmail.com
roopchandel@gmail.com

उज़ाले का अंधेरा

(पृष्ठ १५६ का शेष...)

आज उसकी ग़लती नहीं थी. आज उसकी ऊब, उसका ग़ुस्सा, उसका निर्णय — सब पक्का था पर आज समय ने धोखा दे दिया और वह हमेशा-हमेशा के लिए यहां से भाग खड़े होने में विफल रहा. उसे लगा आज की विफलता सालों से चली आ रही विफलता से अलग थी.

यह अलार्म जैसे उसके ग़ुस्से पर, उसकी किसी को बिना बताये घर से हमेशा के लिए चले जाने की योजना पर अप्रत्याशित हमला था. वह जानता था यह अलार्म फिर सब कुछ वैसा ही कर देगा जिसमें वह कुछ देर छटपटाने के बाद अवश्य ही फंस जायेगा. वह फिर मुस्कराते हुए एक और दिन जियेगा. उसने आख़िरी कोशिश की और झपटकर बेड के बगल में रखी घड़ी का अलार्म बंद कर दिया. इस कोशिश में सिगरेट की डिब्बी हाथों से छूटकर कहीं गिर गयी.

उसे लगा घड़ी की आवाज़ से निशा जाग गयी होगी. उसने बिना निशा की ओर देखे उसकी आहट ली. लगा वह अभी भी सो रही है. चैन की सांस ली. लगा अभी सब कुछ ख़त्म नहीं हुआ. सब सो रहे हैं, सुबह हुई है पर उजाला नहीं, उसमें देर है. अभी वह उजाला नहीं हुआ जिसमें उसका ग़ुस्सा धुल जाता है, जिसमें तमाम नकली मुस्कराहटें उग आती हैं. उसने दम साधा, दिल कड़ा किया और दरवाज़े की ओर क़दम बढ़ाये.

आज वह चला ही जायेगा. ... तभी पीछे से निशा की आवाज़ आयी — ''आज जब समय से उठ ही गये हो, तो चाय ही बना दो.'' बस यही, यही तो वह नहीं चाहता था. वह चुपचाप किचन में चला गया और लाइट खोली.

खिड़की में बैठे कबूतर पहले से ही जाग रहे थे, बतिया रहे थे, उसे चिढ़ा रहे थे. वे उसके खिड़की को बार-बार ठोकने पर भी वहां से टस से मस नहीं हुए. ... बाहर वही उजाला धीरे-धीरे फैल रहा था. उसका चेहरा काला पड़ने लगा.

१२३-सी, पॉकेट-सी,
मयूर विहार फेस-२,
दिल्ली-११००९१.
मो-९८१०८५३१२८

कहानी

मुझे माफ़ कर देना...

✍ सुभाष नीरव

डाक में कुछ चिट्ठियां आयी पड़ी हैं. निर्मल एक बार उन्हें उलट-पलटकर देखती है, पर पढ़ने को उसका मन नहीं कर रहा. वह जानती है कि ये सभी चिट्ठियां पाठकों की तरफ़ से ही आयी हैं, जो नि:संदेह अभी हाल ही में एक पत्रिका में छपे आत्मकथा-अंश को लेकर ही होंगी. अधिकांश में उसकी तारीफ़ होगी, कुछ में उसके साथ सहानुभूति दिखाने की कोशिश की गयी होगी और हो सकता है, एक-आध चिट्ठी में आलोचना भी हो. पता नहीं क्यों, आजकल पाठकों के आये ख़तों को वह उतनी बेसब्री से नहीं पढ़ती जितनी बेसब्री से पहले पढ़ा करती थी. उसकी रचना पर यदि कोई ख़त आता था तो वह सारे काम छोड़कर उसे पढ़ने बैठ जाया करती थी. कई-कई बार पढ़ती थी, ख़ुश होती थी. दिनभर एक नशा-सा तारी रहता था उस पर. वह उन चिट्ठियों का जवाब भी देती थी. पर अब उस तरह की उमंग उसके अंदर जैसे शेष ही नहीं रही थी.

निर्मल उठकर खिड़की के पास जा खड़ी होती है. खिड़की के पार एक टुकड़ा नीला आकाश कैनवस की तरह फैला हुआ है. कहीं-कहीं उड़ान भरते परिंदे इस आकाश में एक लकीर-सी खींचते प्रतीत होते हैं. क़रीब बीस वर्ष हो गये निर्मल को भी क़ाग़ज के आकाश पर शब्दों के परिंदे उड़ाते हुए. कई कहानी संग्रह, कविता संग्रह, कितने ही उपन्यास और अब वह अपनी ज़िंदगी के सफ़े खंगाल रही है. उम्र के इस पड़ाव पर वह अपनी आत्मकथा लिख रही है जिसका एक अंश हिंदी की एक प्रसिद्ध पत्रिका में अभी हाल में प्रकाशित हुआ है. उसकी नज़र फिर से मेज़ पर पड़ी चिट्ठियों पर पड़ती है. उसको लगता है, मानो मेज़ पर पड़ी चिट्ठियां उसको अपनी ओर खींच रही हों. वह छोटे-छोटे पैर उठाती मेज़ के पास आ खड़ी होती है. चिट्ठियों के ढेर को एक बार फिर उलट-पलटकर देखती है. अचानक एक लिफ़ाफ़े पर उसकी दृष्टि स्थिर हो जाती है. लिफ़ाफ़े के बाहर भेजने वाले का नाम पढ़कर वह सोच में पड़ जाती है. उसके हाथ तेज़ी से लिफ़ाफ़ा खोलते हैं. इतना लंबा खत! यह तो उसकी कॉलेज की सखी रंजना का ख़त है. वह कुर्सी पर बैठ जाती है. कांपती उंगलियों में पकड़ा हुआ ख़त वह बेसब्री से पढ़ना शुरू करती है —

प्रिय निर्मल,

अरे, तू तो बहुत बड़ी लेखिका बन गयी. तेरी एक दो कहानियां मैंने पहले भी पढ़ी थीं, न जाने किस पत्रिका में, पर मुझे नहीं पता था कि उन कहानियों की लेखिका मेरी सखी निर्मल ही है. यह तो मुझे उस पत्रिका से पता चला जिसमें तेरी आत्मकथा तेरे परिचय और चित्र के साथ छपी हुई है. सच पूछो तो मैं तो यूं ही वक़्त काटने के लिए इस पत्रिका के पन्ने पलट रही थी कि तेरी फ़ोटो पर मेरी निग़ाहें रुक गयीं. फिर तेरी आत्मकथा का अंश पढ़े बग़ैर रह न सकी. पढ़ लेने के बाद मैं पूरी रात बेचैन रही. नींद पता नहीं कहां रास्ता भूल गयी थी. मुझे तेरे संग बिताये वे दिन याद आते रहे. वे कॉलेज के दिन मेरी आंखों के सामने जैसे पुन: जीवित हो उठे हों. तूने अपनी आत्मकथा में कॉलेज के दिनों को स्मरण किया है, मुझे और रवींद्र को याद किया है. रवींद्र और मुझे तूने जिस प्रकार पेश किया है, वह तेरा सच है. पाठकों को भी वह सच ही

लगेगा. परंतु क्या तू सचमुच नहीं जानती कि तेरे साथ क्या हुआ था? या तू जान बूझकर उस सच को आंखों से ओझल किये रखना चाहती है. रवींद्र और मेरी तस्वीर तूने अपनी आत्मकथा में जिस प्रकार प्रस्तुत की है, क्या वह तस्वीर सच के बहुत क़रीब है? निर्मल... हमने हिंदी में एम. ए. एक साथ ही किया. हम दोनों ने दो वर्ष कॉलेज के हॉस्टल के एक ही कमरे में इकट्ठा ही बिताये थे. हम अच्छी सहेलियां थीं, एक-दूजे को प्यार करती थीं. हमारे बीच लड़ाई-झगड़ा भी होता था. पर जितना मैंने तुझे समझा है, तू शुरू से ही एक चुप और गुमसुम-सी रहने वाली औरत रही है. तूने कभी प्रतिवाद करना सीखा ही नहीं. जो तुझे मिल गया तो ठीक, नहीं तो सब्र कर लिया. अपना दर्द, अपना दुःख, अपनी पीर, तू अपने अंदर ही जज़्ब करती रहने वाली औरत है. शायद, इसी जज़्ब किये दर्द ने तेरे हाथों में क़लम दे दी और तू मुंह से न बोलकर अपने शब्दों से उन्हें ज़ुबान देती रही. मुझे लगता है, तू आज भी वैसी ही है, जैसी पहले थी. पर मैं बचपन से ही ऐसी लड़की नहीं थी. मैंने चुप रहना कभी सीखा ही नहीं. अपनी बात चीख़-चीख़कर कहना, अपनी हर बात को लोगों से मनवाना मेरी आदत का एक अहम हिस्सा रहा है. जो चीज़ मुझे पसंद आ जाती, उसको हासिल करना मेरी मज़बूरी बन जाता. यदि मेरी पसंदीदा वस्तु मुझे आसानी से नहीं मिलती तो मैं उसे छीन लेने की हद तक पहुंच जाती और छीन भी लेती. बचपन में बहन-भाइयों से छीन लिया करती थी. बड़ी हुई तो सहेलियों से छीन लेना मेरी आदत थी. मैं यह कभी बर्दाश्त नहीं कर पाती थी कि जिसको मैं पसंद करती हूं, जो मैं चाहती हूं, वह चीज़ कोई दूसरा ले जाये. मेरी इस आदत से तू भलीभांति वाकिफ़ है. तेरी कोई भी चीज़ जो मुझे अच्छी लग जाती थी, पसंद आ जाती थी, मैं तेरे से मांगती नहीं थी, छीन लेती थी. चाहे वह तेरा पेन हो, तेरा हेयर-क्लिप हो, सूट हो या फिर जूती. तू कई बार एक–दो दिनों के लिए मुंह फुला लिया करती थी, परंतु मुंह से कोई प्रतिवाद नहीं करती थी. कभी लड़कर अपनी चीज़ वापिस नहीं ली. तेरे मुंह में जैसे ज़ुबान ही न हो. निर्मल...मैं कई बार सोचती थी कि तू कैसी लड़की है. इसी बीच, हमारी ज़िंदगी में रवींद्र आ गया. एक सुंदर, ख़ूबसूरत नौजवान. मेरी बड़ी बहन की एक सहेली का छोटा भाई. पता नहीं, उसकी देह में कैसी ख़ुशबू थी कि मैं पहली ही नज़र में उसकी हो गयी. सोते-जागते उसका नशा मेरे पर तारी रहता. हर वक़्त उसकी सूरत मेरी आंखों के सामने रहती. वो जब भी मेरे साथ बात करता, मैं किसी दूसरी ही स्वप्नमयी दुनिया में पहुंच जाती. वह मेरे संग इतना खुल गया था कि

सुभाष नीरव

२७ दिसंबर १९५३, मुरादनगर (उ. प्र.)

स्नातक, मेरठ वि. वि.

प्रकाशित कृतियां : *'दैत्य तथा अन्य कहानियां', 'औरत होने का गुनाह', 'आख़िरी पड़ाव का दुःख' (कहानी-संग्रह); 'यत्किंचित' व 'रोशनी की लकीर' (कविता-संग्रह); 'सफ़र में आदमी' (लघुकथा संग्रह); दो बाल कहानी संग्रह (मेहनत की रोटी, सुनो कहानी राजा); एक कहानी संग्रह 'सुभाष नीरव दीआं चौणवियां कहानियां' पंजाबी में प्रकाशित. पंजाबी से लगभग दो दर्ज़न से अधिक पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद.*

ब्लॉग्स : *साहित्य और अनुवाद से संबंधित इंटरनेट पर ब्लॉग्स- 'सेतु साहित्य', 'कथा पंजाब', 'सृजन यात्रा', 'गवाक्ष' और 'वाटिका'.*

संप्रति : *भारत सरकार के अवर सचिव पद से २०१३ में सेवा-निवृत्त.*

हम आपस में हर प्रकार की बातें कर लेते थे. वे बातें भी जो समाज में वर्जित कही जाती हैं. फ़िल्म और साहित्य को लेकर वह अक्सर बातें करता था. विशेषकर वे बातें जो स्त्री-पुरुष के बीच की अंतरंग बातों को व्याख्यायित करती थीं. मेरे भीतर एक औरत भूखी रहने लगी थी. मैं उसकी भूख को कुचलने की कोशिश करती, तो वह और अधिक भड़क उठती. मैं सोचती कि वह भूख रवींद्र के सानिध्य में कम हो जायेगी, उसके स्पर्श से वह शांत हो उठेगी, पर ऐसा न होता. वह और अधिक तेज़ हो जाती. फिर सोचती, रवींद्र की अनुपस्थिति में यह भूख शांत हो जायेगी, पर जब वह मेरे क़रीब न होता तो इस भूख को जैसे दौरा-सा पड़ जाता. मुझे वह रवींद्र के पास दौड़ा ले जाना चाहती. अभी मैं अपने भीतर की औरत की इस भूख से दो-चार हो ही रही थी कि मुझे यह अहसास होने लगा कि रवींद्र की दिलचस्पी मुझमें ख़त्म होती जा रही है, वह अब तेरी तरफ़ झुक रहा है. जब वह मुझसे मिलने आता था, मुझे लगने लगता कि वह मुझे नहीं, मेरे बहाने तुझे मिलने आता है. उसकी नज़रें अब मुझे नहीं तलाशती थीं. वह अब तेरे में दिलचस्पी लेने लग पड़ा था. यह बात अलग है कि वह अभी भी मुझसे उसी प्रकार खुल कर बातें किया करता था. यह मेरे लिए असहनीय था, कतई असहनीय निर्मल... मुझे यह बिल्कुल मंजूर नहीं था कि वह मुझे इग्नोर करके तेरे संग बातें करे. फिर, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे तू भी उससे प्रेम करने लग पड़ी थी. वह आता तो तेरा चेहरा खिल उठता. तू अधिक से अधिक उसके संग रहना चाहती थी. मुझे लगा मानो तू मुझसे मेरी प्यारी चीज़

को छीन लेना चाहती है. मैं रवींद्र को पूरा का पूरा हासिल करना चाहती थी. मेरे भीतर की औरत पागल हुई बैठी थी. मैंने तेरे बारे में रवींद्र से क्या-क्या झूठ नहीं बोला. तेरे चरित्र को दागी बताया. तेरी बुराइयां कीं. कॉलेज के कितने ही लड़कों के संग तेरे संबंध हैं, रवींद्र को मैं बताती रही. मैं चाहती थी कि रवींद्र तेरे साथ कोई रिश्ता न रखे. तेरे साथ बात न करे. परंतु, आहिस्ता-आहिस्ता मुझे पता चला कि मैं जो बात रवींद्र को तेरे बारे में बताती थी, वह सब की सब तुझे बता देता था. पर तूने कभी इस बारे में मेरे साथ बात नहीं की. न ही कोई झगड़ा किया, न रूठी, न रोयी, न कलपी.

निर्मल... तूने अपनी कहानियों, अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने दुःख लोगों से साझे करने की राह खोज ली. तुझे प्रारंभ से ही साहित्य में रुचि रही थी. हिंदी साहित्य ही नहीं, दूसरी भारतीय भाषाओं का साहित्य भी तू लाइब्रेरी से इशू करवाकर पढ़ती रहती थी. तेरे पास आज एक भाषा है, एक शैली है, एक ढंग है अपनी बात अपनी क़लम के माध्यम से कहने का. पर, मेरे पास तेरे जैसी न भाषा है, न शैली है, न मुझे लिखने का कोई ढंग आता है, पर मैं इस ख़त के ज़रिये तेरे साथ अपना दुःख ही नहीं, एक सच...कड़वा सच भी साझा करना चाहती हूं. निर्मल...मैंने तुझे ही नहीं, रवींद्र को भी धोखा दिया. पर आज लगता है, धोखा तो मैंने अपने आप को भी दिया था. मैं रवींद्र को हर हाल में अपना बनाना चाहती थी, उसकी हो जाना चाहती थी. मैं चाहती थी कि वह मेरा रहे, पूरा का पूरा. मैं बाज़ी हारना नहीं चाहती थी. हमारे एम. ए. फ़ाइनल के पेपर हो चुके थे. एक दिन मैंने रवींद्र से कहा कि मेरी कोख में उसका अंश पल रहा है. उसके पैरों तले से जैसे धरती खिसक गयी हो. वह घबरा गया. मैंने उससे कहा कि यदि वह महीने के अंदर-अंदर मेरे साथ विवाह नहीं करेगा तो मैं यह बात अपने परिवार में बता दूंगी और ख़ुद ज़हर खा लूंगी. रवींद्र मेरी धमकी से डर गया. जो तीर मैंने चलाया था, वह ठीक निशाने पर लगा था. उसने चुपचाप मेरी बात मान ली. मेरे माता-पिता और भाइयों ने रवींद्र को लेकर कोई एतराज़ नहीं किया. शायद इसके पीछे रवींद्र का एक अच्छे परिवार से होना रहा हो या फिर उसके परिवार के सफल कारोबार का होना एक कारण रहा हो. मैं ख़ुश थी. हवा में उड़ रही थी. मेरे पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे. मेरे सपने सच होने जा रहे थे. यह वो ख़ुशी थी जिसे मैं तब तुझसे शेयर करना चाहकर भी शेयर नहीं कर पा रही थी.

महीने भर बाद हमारा विवाह हो गया. मुझे वह दिन अभी भी याद है जब मैंने आख़िरी बार तेरा चेहरा देखा था,

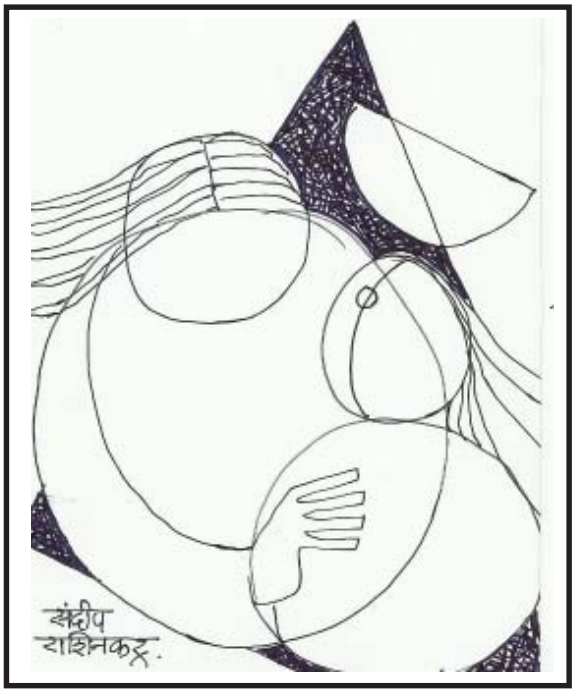

तूने कोई रोष व्यक्त नहीं किया था, कोई प्रतिवाद नहीं किया था. तूने हम दोनों को मुबारक़बाद दी थी और तेरे चेहरे पर ख़ुशी के रंग थे. पर क्या तू वाकई भीतर से ख़ुश थी? नहीं, तुझे बहुत दुःख हुआ था रवींद्र की बेवफ़ाई पर, पर जैसा कि तेरा स्वभाव रहा है, तूने उफ्फ तक नहीं की. अपना दुःख, अपनी पीर अपने अंदर ही जज़्ब कर ली.

विवाह के बाद हम मुंबई आ गये. पहले रवींद्र अपने पिता और भाइयों के संग मिलकर कारोबार करता रहा, फिर उसने अपना बिज़नेस अलग कर लिया. अपने बिज़नेस को लेकर वह पागल हुआ फिरता था. वह मुझे प्यार करता था, या फिर अपने काम को. पर निर्मल... मैं अपना झूठ कब तक छिपा सकती थी? विवाह के तीन महीनों बाद भी जब मैं उम्मीद से न हुई तो मेरी परेशानी बढ़ने लग पड़ी. मैं अपने झूठ को कैसे छिपाती. मैंने एक दिन रवींद्र से सब कुछ सच-सच बता दिया. मैंने यह झूठ सिर्फ़ रवींद्र को हासिल करने के लिए बोला था. मैं उससे बेइंतहा मोहब्बत करती थी. पर रवींद्र इस सच को जानने के बाद मेरे साथ कभी हंसकर नहीं बोला. वह जैसे ख़ामोशी के गहरे कुओं में गुम होता चला गया था. वह बहुत कम मतलब की बात ही मेरे साथ करता. उसने अपने आप को और अधिक अपने काम और बिज़नेस में झोंक दिया. एक वर्ष बीता, दूसरा बीता और फिर तीसरा... चौथा और मैं मां बनने को तरस गयी. डॉक्टरों को दिखलाया तो उन्होंने जो जवाब

दिया, वह मेरे लिए ऐसा था जैसे मेरे कानों में किसी ने गरम पिघलता हुआ शीशा डाल दिया हो. मैं ज़िंदगी में कभी मां नहीं बन सकती थी.

दु:ख का एक विशाल पहाड़ जैसे मेरी ख़्वाहिशों पर अचानक आ गिरा था. सारी चाहतें, सारे सपने उसके नीचे दबकर, कुचलकर दम तोड़ रहे थे और मैं बेबस देख रही थी. मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था. न खाने को, न पीने को, न पहनने को. रात-रात भर मैं जागती रहती. मुझे अपनी ज़िंदगी में अंधेरा ही अंधेरा दिखायी देता था. काला... स्याह अंधेरा... रोशनी की हर किरण को लीलता हुआ.

एक दिन मुझे ख़बर मिली कि पुत्र की चाह में मेरी बड़ी बहन के यहां तीसरी कन्या ने जन्म लिया है. रवींद्र और मैंने आपस में सलाह-मशवरा किया और मैं अपनी बहन की छह महीनों की बेटी अपने घर ले आयी. रवींद्र ने उसका नाम रखा — श्वेता. श्वेता के आ जाने के बाद मेरे अंदर की मां जैसे जीवित हो उठी. हमने श्वेता को पाला, पोसा, पढ़ाया और योग्य बनाया. जब वह ब्याहने योग्य हुई तो रवींद्र ने कहा, ''हम अपनी बेटी का विवाह उसके संग करेंगे जो घर-दामाद बनने को तैयार होगा.'' हमें वर खोजने में कोई अधिक परेशानी नहीं हुई. रवींद्र का फलता-फूलता बिज़नेस था, हमारी बेटी पढ़ी-लिखी और सुंदर थी. हमने उसका विवाह कर दिया. लड़का हमारे घर पर ही रहने लगा. रवींद्र के साथ बिज़नेस में हाथ भी बटाने लग पड़ा.

और फिर एक दिन मेरी ज़िंदगी में फिर से अंधेरा छा गया.

एक दिन काम करते समय रवींद्र की छाती में ऐसा दर्द उठा कि वह वहीं का वहीं ढेर हो गया. उसको हार्ट-अटैक पड़ा था. फिर इसके बाद की कहानी मैं निर्मल तुम्हें क्या बताऊं... जिसे मैंने अपनी बेटी समझकर पाला, उसने मुझे मां कहना तो एक तरफ़, मां समझना भी बंद कर दिया. मां जी, मां जी करते दामाद ने भी रंग बदल लिये. दोनों ने रवींद्र का सारा बिज़नेस अपने हाथों में ले लिया. एक फ़्लैट और थोड़ी-सी प्रॉपर्टी मेरे नाम छोड़कर उन्होंने सब कुछ बेच दिया और स्टेट्स चले गये. कई वर्ष हो गये हैं अब तो उन्हें गये हुए. कभी कोई फ़ोन नहीं, कोई चिट्ठी नहीं. मैं हूं और बस, मेरा अकेलापन है. कभी–कभी मैं सोचती हूं कि दूसरों से चीज़ें छीन लेने वाली मैं आज अपना सब कुछ गवां चुकी हूं. निर्मल... जब मैंने रवींद्र को तेरे से छीना था तो सोचा था कि मैं जीत गयी और तू हार गयी. पर मुझे लगता है, मैं जीतकर भी जीती नहीं थी, और तू हारकर भी हारी नहीं थी. रवींद्र ने तुझे कभी अपने दिल से भुलाया नहीं था. वह बेशक मेरे साथ था, दुनियादारी के लिए मुझसे प्यार करता था, पर दिल से तेरे पास था, तुझे ही प्यार करता था. कई बार मुझे प्यार करते करते मेरा नाम भूल जाता था और 'निर्मल... निर्मल...' कहने लग पड़ता था. उन्हीं क्षणों में मुझे लगता था, वह मुझे नहीं, मेरे ज़रिये तुझे अपनी बांहों में कस रहा है... तुझे प्यार कर रहा है. सच, निर्मल, वह मेरा कभी हुआ ही नहीं. वह तो तेरा था जिसको मैंने झूठ का सहारा लेकर तुझसे छीन लिया था. अगर मुझे माफ़ी के योग्य समझो तो मुझे माफ़ कर देना, निर्मल... तेरी सखी - रंजना.

निर्मल के हाथों में ख़त अभी भी झूल रहा है... उसके हाथ कांप रहे हैं... निर्मल ने ख़त को पहले अपने होंठों से लगाया और फिर उसको छाती से चिपका लिया है. निर्मल को ऐसा लगता है मानो उसने ख़त को नहीं, रंजना को अपनी छाती से लगा रखा है... उसकी आंखों में से दो मोती गिरते हैं और ख़त के पन्ने उन मोतियों को अपने में जज़्ब कर लेते हैं.

३७२, टाइप-४, लक्ष्मीबाई नगर,
नयी दिल्ली-११००२३
फोन : ०९८१०५३४३७३,
०८४४७२५२१
E-mail: subhashneerav@gmail.com

ग़ज़ल

राजेंद्र निशेश

हवाओं का रुख बदला सा लगता है,
खौफ़-ज़दा हरेक परिंदा लगता है ।
हाल मत पूछो तुम मेरे शहर का
सन्नाटे का एक सहरा लगता है ।
हादसों में हर घड़ी हम जी रहे हैं,
टूटा सपना ही सहारा लगता है ।
सीने को तो सी लेते हम ज़ख़्मों को,
सब कहते कि घाव पुराना लगता है ।
एक आवारा बादल को हम ढूंढ़ रहे,
लेकिन वह भी भटका-भटका लगता है ।।

२६९८, सेक्टर, ४०-सी,
चंडीगढ़- १६००३६
मो. ९४१७१०८६३२

कहानी

पंचमी के चांद की विज़िट...

✍ डॉ. सूर्यबाला

वे दोनों बेहद ख़ुश थे... जैसे जन्मों की चाह पूरी हुई हो, एक दूसरे को पा कर.

-मैंने सोच लिया, अमेरिका वाला जॉब छोड़ कर वापस इंडिया लौट आता हूं.

-पागल मत बनो. इतनी मेहनत से अर्जित वहां की डिग्री, नयी नौकरी... इतना ब्राइट फ़्यूचर...

-मुझे जो चाहिए था, मिल गया, मेरी तलाश पूरी हुई...

-ठीक है, मैं रिज़ाइन कर साथ चली चलती हूं... ख़ुश?

-सच?... उसे विश्वास नहीं हुआ?

-हां, हम बहुत सारे ख़ूबसूरत सचों की तलाश साथ-साथ करेंगे...

□

हवाई जहाज बादलों के ऊपर उड़ रहा था. वे एक-दूसरे का हाथ थामे खिड़की से बादलों की नर्म पंखुरियां अपने चारों तरफ़ महसूस कर रहे थे. आकाश बहुत पास था. इतना कि खिड़कियां खुली होतीं तो छू लेते. इस आकाश में पड़ रही थी उनकी नयी ज़िंदगी की नींव.

मैं बहुत सामान्य परिवार का हूं — अमेरिका के नाम पर अभी सिर्फ़ एक संकरा वन रूम अपार्टमेंट और दो-चार बर्तन ही दे पाऊंगा तुम्हें...

- जानती हूं अमेरिका आया हर युवक, अपने शुरुआती दिन ऐसे अपार्टमेंट या बेसमेंट में काट कर ही अपने भविष्य की बेस पुख़्ता करता है चाहे अमीर हो या निर्धन!

□

सचमुच, संकरा, छोटा सा अर्पाटमेंट देख कर वह ज़रा भी हताश नहीं हुई. छितरे-बितरे, रैक्स, छोटे-बड़े पैकेट्स वाला बैचलर्स किचेन दिखाते हुए वह एकबारगी झेंपा तो, 'नो मोर' — अब कहां (बैचलर), कह के वह खिलखिलायी..

डिब्बों में जो कुछ मिला, निकाला, पकाया और एक दूसरे को खिला-खिला कर पेट भर लिया. मिल–जुल कर बर्तन धोने लगे तो अचानक खिड़की से पंचमी का आधा चांद दिखा...

अपने अपार्टमेंट की खिड़की का पहला चांद... यह यहां तक चला आया हमारे साथ-साथ वे अध-धुले बर्तन छोड़, एक में एक चेहरा सटाये. पंचमी का पूरा चांद और ढेर सारा आकाश देखने की कोशिश करने लगे... लेकिन अपार्टमेंट से सटे दूसरे अपार्टमेंट की वजह से बहुत थोड़ा दिख पा रहा था और तब तक चांद गुज़र गया...

दोनों ने एक साथ सोचा, हम ऐसा घर बनायेंगे जिसकी खिड़की से हमेशा चांद ज़रूर दिखाई दे और पंचमी के चांद वाली यह रात कभी भूलेंगे नहीं.

आकांक्षा यानी उस लड़की ने अपार्टमेंट की खिड़की पर आइसक्रीम के खाली डिब्बों में एक-एक गुलाब और मोगरा

डॉ. सूर्यबाला

२५ अक्तूबर १९४३ (उ. प्र.);
शिक्षा : एम. ए., पीएच-डी. (काशी वि. वि., वाराणसी).

प्रमुख कृतियां : *'मेरे संधि-पत्र', 'सुबह के इंतज़ार तक, 'अग्निपंखी', 'यामिनी-कथा', 'दीक्षांत' (उपन्यास); 'एक इंद्रधनुष', 'दिशाहीन', 'थाली भर चांद, 'गृहप्रवेश', 'सांझवाती', 'कात्यायनी संवाद', 'सिस्टर! प्लीज़ आप जाना नहीं', 'मानुष-गंध, 'वेणु का नया घर', 'सूर्यबाला की प्रेम कहानियां' (कहानी-संग्रह); 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र ट्राइम्स', 'देशसेवा के अखाड़े में, 'भगवान ने कहा था' (हास्य-व्यंग्य); 'अलविदा अन्ना' (विदेश-प्रवास संस्मरण). उपन्यास 'दीक्षांत' तथा 'यामिनी-कथा' क्रमशः स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में शामिल. टी. वी. धारावाहिकों के माध्यम से अनेक कहानियों, उपन्यासों तथा हास्य-व्यंग्यपरक रचनाओं के रूपांतर प्रस्तुत.*

टी. वी. धारावाहिकों में 'पलाश के फूल', 'न किन्नी, न', 'सौदागर दुआओं के', 'एक इंद्रधनुष', 'सबको पता है', 'रेस' तथा 'निर्वासित' आदि. अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में सहभागिता. अनेक कहानियां एवं उपन्यास विभिन्न शिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित. कोलंबिया वि. वि. (न्यूयॉर्क), वेस्टइंडीज वि. वि. (त्रिनिदाद) तथा नेहरू सेंटर (लंदन) में कहानी एवं व्यंग्य रचनाओं का पाठ. 'सज़ायाफ़्ता' कहानी पर बनी टेलीफ़िल्म को वर्ष २००७ का सर्वश्रेष्ठ टेलीफ़िल्म पुरस्कार.

प्रमुख पुरस्कार/सम्मान : *'प्रियदर्शिनी पुरस्कार', 'घनश्यामदास सराफ पुरस्कार', 'दक्षिण भारत प्रचार सभा', 'काशी नागरी प्रचारिणी सतपुड़ा लोक संस्कृति', 'अभियान', 'मुंबई विद्यापीठ', 'व्यंग्य-श्री पुरस्कार', 'रत्नीदेवी गोइंका वाग्देवी पुरस्कार', 'राजस्थान लेखिका संस्थान', 'वाग्मणि सम्मान'.*

लगाये. मौसम गीला था, दोनों पनप गये तो वह ख़ुशी से निहाल हो आयी.

-तुम्हें फूलों, पौधों का इतना शौक़ है!... जब हम बड़े अपार्टमेंट में मूव करेंगे तो ज़्यादा बड़ी खिड़कियां होंगी! तुम और ज़्यादा गुलाब लगा सकोगी. ज़्यादा गुलाब, ज़्यादा चांद... कैसा लगता है न!

□

दिन गुज़रे. सचमुच उनके पास अब एक बड़ा अपार्टमेंट था — अब हर सुबह इधर वह अपनी खटारा कार लेकर ऑफ़िस निकलता, उधर वह सारे सारे दिन फूल, पौधे, पॉट्स, के साथ जुट जाती. साफ़-सफ़ाई के बाद घर सजाती-संवारती. पर ज़रूरत की चीज़ें, ग्रोसरी लाती. विकास की पसंद की डिशेज़ बनाती. वाह! हरी धनियां सिर्फ़ पैंसठ की, और मिर्ची पचपन की — विकास ने लिस्ट देख कर चिढ़ाया.

-सचमुच! तभी इतनी तीखी है न!

दोनों हंसे... लेकिन वह बात का मर्म भी समझ गयी. अब से वह अपने बजट और ख़रीदारी में ज़्यादा समझदारी बरतेगी... अकेले कमाने से विकास पर ज़्यादा 'लोड' पड़ रहा है. ग्रोसरी और ख़रीदारी बहुत हो चुकी. वह एक नये विश्वास से उठ खड़ी हुई, कड़ी मेहनत के साथ इंडिया में अपने छूटे हुए कैरियर की कड़ियां जोड़ने. उसने सुना था, यहां प्रयत्न और प्राप्ति के बीच परिश्रम तो है लेकिन प्रतिरोध नहीं. हिम्मत से डाइव मार जाओ तो हासिल कर के ही ऊपर आओगी. विकास से मन बांटा तो उसे भला क्या आपत्ति हो सकती थी? उसकी ख़ुशी में, उसकी ख़ुशी.

आकांक्षा जुट गयी. दो साल की कड़ी मशक्कत और तीन महीने की ट्रेनिंग के बाद शुरुआत काफ़ी उत्साहप्रद रही. सुरुचि और सलीका, महत्वाकांक्षा और मेहनत. लोग प्रभावित हुए. पैसों के साथ-साथ प्रोत्साहन और प्रशंसा भी.

अप्रत्याशित! छः महीने के अंदर ही उसे ज़्यादा वेतन के साथ हेड ऑफ़िस का ऑफ़र मिल गया.

आकांक्षा को लगा, यह ऑफ़र नहीं, सपना है. उसने विकास की आंखों में इस सपने की अहमियत और क़ीमत आंकनी चाही...

विकास गद्‌गद् था. यह सिर्फ़ तुम्हारा नहीं, मेरा भी तो सपना है जो तुम्हारी मुट्ठी में आ समाया है. तुम मेरी ख़ातिर अपना इतना ब्राइट कैरियर छोड़ कर आयी थीं. तुमसे कहा नहीं पर मुझे हमेशा यह बात कुरेदती थी.

दोनों ने एक साथ निर्णय लिया, अवसर नहीं खोना है. विकास जल्दी उठ जाया करेगा. आकांक्षा को 'सब-वे' (लोकल) तक छोड़ कर बाक़ी के काम पूरे कर ऑफ़िस जाया करेगा. आकांक्षा को एक घंटे पहले जाना पड़ेगा ओर लौटते

में भी ट्रैफ़िक की वजह से रात हो जायेगी. तो क्या, विकास ही लौटते हुए ग्रोसरी भी लेता आयेगा. सुबह लांड्री में डाले कपड़े निकाल लिया करेगा और यूं ही कुछ पका–पुका भी लेगा नही ंतो ब्रेड, टॉरटिया... डोंट वरी... उसने प्यार से आकांक्षा की मुट्ठियां दबायीं.

□

पहले दिन विकास ने जो सब्ज़ी बनायी उस पर दोनों ठठा कर हंसे. पनीली बेस्वाद... लेकिन दोनों ने बटर, सॉस मिला-मिला कर खाया, खिलाया. थकान से लस्त होने के बावजूद ख़ुशी से सराबोर.....

□

पहले वेतन के बाद ही, विकास आकांक्षा के लिए नयी गाड़ी ले आया. ख़ुद के लिए खटारा ही रखी.

अब दोनों अपनी-अपनी गाड़ियों से अलग-अलग जाते. अलग अलग आते.

'सब-वे' तक पहुंचाने की ज़रूरत नहीं थी अब.

घर के काम भी वह जल्दी सलटाने लगा. तो खाली समय बच जाता. आकांक्षा को तो देर होनी ही थी समय व्यर्थ गंवाने से फ़ायदा!... अतः विकास ने मैनेज़मेंट क्लासेस ज्वॉयन कर ली.

आकांक्षा गर्वित हुई.

अब हफ़्ते के तीन दिन विकास के क्लासेस देर से छूटते.

आकांक्षा अकेले ही देर रात तक खुले स्टोरों, होमगुड्स, लाइफ़स्टाइल वाली चीज़ों की शॉपिंग कर लेती. कभी बेडरूम के लिए लैंप, कभी स्टडी के लिए बुक शेल्फ़. अकेले के हिस्से में आये समय का सदुपयोग.

अब पैसों की किल्लत नहीं थी, किल्लत समय की थी.

कभी आकांक्षा की आफ़ीशियल पार्टी में कर्ट्सी के नाते विकास निमंत्रित होता, कभी विकास के यहां आकांक्षा... पर उनका शामिल होना तभी संभव होता जब उनकी अपनी ड्यूटी मुहलत देती. विकास ढेर सारी गुलाबों की किस्में लाकर आकांक्षा का फूलों का शौक़ पूरा करना चाहता. करता भी लेकिन फूलों को उतना ही सुंदर, स्वस्थ बनाये रखने के लिए उतने ही ज़्यादा रख-रखाव की भी ज़रूरत होती. आकांक्षा करती भी.

फिर भी गुलाब मुरझाते दिखे तो दोनों ने एक पूरे वीक-एंड उन्हें नयी मिट्टी खाद के साथ बड़े गमलों में डाला...

अब हर हफ़्ते, पखवारे, वीक-एंड्स की यह दिनचर्या सुनिश्चित हो गयी. उसके बाद लॉड्री, ग्रोसरी.

□

एक दिन किसी मित्र की हॉउस वार्मिंग पर निमंत्रित थे दोनों. मित्र का घर, अपार्टमेंट या फ़्लैट न होकर सबर्ब में लिया एक बंगला था जिसके चारों ओर खुला, फैला मखमली लॉन, चारों तरफ़ फूलों की क्यारियां और बैकयार्ड में साफ़ नीले पानी वाला आयताकार स्वीमिंग पूल भी था.

विकास और आकांक्षा मुग्ध थे.

पूछने पर मित्र ने बताया कि ऐसा कुछ पहुंच के बाहर जैसा असंभव नहीं है यह. बड़ी आसानी से थोड़े लोन, किश्तों की मदद से वे दोनों भी शहर से दूर एक ऐसा बंगला ख़रीद सकते हैं. मित्र ने एजेंटों के नंबर भी नोट करा दिये.

□

सचमुच साल बीतते न बीतते आकांक्षा और विकास के पास भी वैसा ही ख़ूबसूरत लॉन, स्वीमिंग पूल और फूलों की क्यारियों से सजा हुआ एक बंगला हो गया. चूंकि बंगला ढलान पर था इसलिए यहां तो फूलों की क्यारियों के लिए बेशुमार जगह थी. आकांक्षा गुलाबों के साथ ट्यूलिप, लिली, आड़ू, चेरी और स्ट्रॉबेरी की पौधें भी ख़रीद लायी, बैकयार्ड में लगाने के लिए.

स्वीमिंग पूल पर बने डेक के लिए शोख रंगों वाली कुर्सियां और बीचों-बीच फूलदार छतरी भी. घर के अंदर स्वेड के सोफ़े, पैडस्टल लैंप, बढ़िया डिनरसेट तथा क्रिस्टल की ग्लासें...

ख़र्च ज़्यादा हो जाने से एकाध बार विकास घबड़ाता भी लेकिन हर सुनने वाला यही समझाता कि यहां तो हर चीज़ आसान किश्तों में उपलब्ध है. फिर हमें तरसने की ज़रूरत? हम भारतीय जीना नहीं जानते, जीवन को ढोते हैं... लोक से ज़्यादा परलोक की बातें करते-करते इस लोक का कचरा कर डालते हैं.

इन्हीं मित्रों के सुझाव पर एक 'बारबी-क्यू' भी आ गया और तय हुआ कि जल्दी से जल्दी मित्रों और सहकर्मियों के लिए हॉउस वार्मिंग पार्टी रखी जाये. लेकिन चूंकि विकास की कंपनी की कुछ विदेशी कंपनियों के साथ डील चल रही थी और आकांक्षा भी पूरे महीने सर्विस टूर पर थी, अतः न चाहते हुए भी आयोजन टालना पड़ा.

लंबी टूरिंग और अतिव्यस्तता की वजह से अक्सर कुछ कुछ दिनों बाद क्यारियों के गुलाब और ग्लाइडोलिया मुरझाये मिलते... स्वीमिंग पूल की सतह पर भी पेड़ों से झरी पत्तियां

या टहनियां तैरती होतीं और ड्राइव-वे की झाड़ियां बेतरतीब बढ़ी हुई मिलतीं. विकास और आकांक्षा वीक-एंड में जल्दी ही उठ कर दोपहर देर तक स्वीमिंग पूल में पड़ी पत्तियां छानते और डेक की सफ़ाई में जुट जाते.

अपने नये बंगले के लॉन की बेतरतीब होती घास के लिए भी वे अपने अमेरिकन पड़ोसियों की तरह फावड़े, खुर्पियां, दस्ताने और लॉन 'मो' करने की मशीन ले आये जिससे हर थोड़े दिनों पर दोनों मिल कर सूखी पत्तियों की रेकिंग (झाड़) कर सकें, और बेतरतीब बढ़ी घास को मशीन से 'मो' कर एकसार कर सकें.

क्यारियों को खोद कर पौधों को डिसइन्फेंक्टेंट करना भी उतना ही ज़रूरी होता.

एक बार पूल पर झुक आये एक पेड़ को कटवाने के लिए ही विकास ने पहले म्यूनिसिपल ऑफ़िस को सूचित किया, वे इन्स्पेक्ट करने आये, तब ऑर्डर लिया और किसी लकड़हारे को बुलवाया तो उसने सिर्फ़ इसी के पूरे ढाई सौ डॉलर चार्ज़ किये. विकास के पसीने छूट गये. तभी तो करोड़पतियों को छोड़कर अपने हिसाब से ही लोग शौक़ पालते हैं और ख़ुद ही खटते हैं.

□

इस बीच बर्फ़ गिरनी शुरू हो गयी और रुक-रुक कर, हफ़्तों, महीनों कभी रुई के फाहों सी, कभी उड़ती गुबार–सी और कभी तेज़ बौछारों की शक्ल में गिरती रही. देखते-देखते घरों की छतें, पेड़, पौधे, पूल और डेक से लॉन तक बर्फ़ से ढंक गये. अब तक अपार्टमेंट में, बाहर की सड़कों पर बिछी बर्फ़, सुबह-सुबह म्यूनिसिपैलिटी की 'थ्रेशर' हटा जाया करता था लेकिन अब अपना ड्राइव-वे, अपनी प्रॉपर्टी थी. तो लगभग रोज़ 'शॉवेल' से बर्फ़ हटाना, रास्ता बनाना और बीच से कार निकाल कर ले जाना, उनकी दिनचर्या में शामिल था.

सबसे ज़्यादा मेहनत तो पूल को ढांपने के लिए करनी पड़ी. उसे दबीज तारपोलीन से खींच-खींच कर ढांपा गया. फिर ऊपर बड़े-बड़े तकिये के आकार के फ्लोट्स डाले गये. जिससे वह धसकने से बचा रह जाये.

मार्च के आख़िर तक बर्फ़ पिघली. पेड़-पौधे, जंगल घाटियों की ढंपी हरियाली लहलहा उठी. उनके अपने लॉन से भी बर्फ़ की चादर हटती गयी और ताज़ी हरी घास निकल आयी.

सहकर्मी और मित्रों ने उन्हें वापस हॉउस वार्मिंग की याद दिलायी. ख़ुद उनकी बेसब्री भी अब चरम पर थी. अगला महीना भी उनके विवाह की वर्षगांठ वाला था.

सो दोनों सोत्साह तैयारी में जुट गये. सबसे पहले

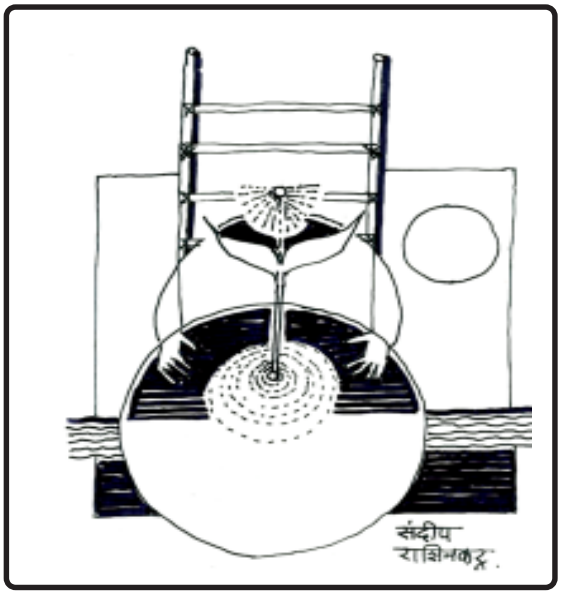

पैसेज़ से दरवाज़े तक किनारों पर लग आयी काई खुरची गयी. खिड़कियों पर पिघलती बर्फ़ की झूलती झालरों वाली 'आइसिकल्स' पहले जितनी ख़ूबसूरत दिखती थीं, अब उनके बदरंग निशान मिटाने ज़रूरी थे. लेकिन चूंकि होम स्टोरों में सफ़ाई के सारे साधन उपलब्ध थे इसलिए दोनों ने ब्रश, झाड़ू, स्क्रबर से रगड़ कर न सिर्फ़ निशान बल्कि खिड़कियों के शीशे, फ्रेम सब चमका दिये. 'लॉन मोअर' से बेतरतीब बढ़ी घास तराशी और पौधों की बढ़ आयी टहनियां काट कर बराबर कीं. और तो और क्यारियों में इस तरह फूल लगाये जिससे आयोजन के एक दो दिनों पहले से सारी क्यारियां लहलहा उठें. वैसे भी यहां के 'मिरैकल-ग्रो' जैसे रसायनों से पौधे इस तरह रातोंरात बढ़ते हैं कि उनके असली होने में शक होने लगता है.

अब सिर्फ़ पांच महीने तक ढंके पूल की सतह पर तैरते फ़्लोटर्स और तारपोलीन हटा कर सफ़ाई करनी थी, और क्लोरीन भी डालनी थी. बहुत शीघ्र उनके बहु प्रतीक्षित दिन, उनकी सारी क्यारियां फूलों से भरी होंगी, स्वीमिंग पूल में फ़िरोजी पानी लहराता होगा और ऊपर आसमान में पंचमी का चांद....

ख़ुशी से उमगते वे सप्ताहांतों या पूरे-पूरे दिन अपने डेक, लॉन, क्यारियों और स्वीमिंग पूल के चारों किनारों की सफ़ाई करते और बाक़ी दिनों शाम को अपने ऑफ़िसों से लौटते हुए प्लेटों, ग्लासों, नैपकिन्स के पैकेट्स, ड्रिंक्स की बोतलें और स्नैक्स लिये

(शेष पृष्ठ २०० पर...)

कहानी

हादसे ऐसे भी होंगे...!!

(शायर अदीम से क्षमा याचना सहित)

✍ सूरज प्रकाश

तभी मेरे साथ वह हादसा हुआ था. १३ अगस्त की रात. उस रात भयंकर बरसात हो रही थी. मैं शूट पूरा करके ट्रेन से जैसलमेर से दिल्ली आ रही थी. बहुत बड़ा प्रोजेक्ट था और पंद्रह दिन के बाद दिल्ली वापिस लौट रही थी. मैं सेकेंड एसी में थी और मेरी टीम के बाक़ी लोग अपने-अपने हिसाब से दूसरे डिब्बों में थे. कम ही लोग थे हमारे डिब्बे में. हमारी चार सीटों पर हम दो ही पैसेंज़र थे. मैं अपना सारा सामान हमेशा अपने साथ ही रखती हूं. दो लैपटॉप, एक कैमरा, अलग-अलग लेंसों का सेट, तीन मोबाइल, डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड, पेन ड्राइव, वॉइस रिकॉर्डर और हज़ार जीबी की एक एक्सट्रर्नल हार्ड डिस्क, हैड फ़ोन, ईयर फ़ोन, ड्राइविंग लाइलेंस, आधार कार्ड, पैन कार्ड तथा कुछ और छोटे मोटे सामान. सबसे क़ीमती हज़ार जीबी की एक्सट्रर्नल हार्ड डिस्क जिस पर मेरी अब तक की शूट की गयी सारी रॉ और फ़ाइनल फ़िल्में सेव की हुई थीं. पूरे कैरियर में अलग-अलग एजेंसियों के लिए बनायी हुई. कुछ फ़ाइनल होने के क़रीब थीं और लौटते ही तैयार करके सौंपनी थीं. बहुत मेहनत और लगन से बनायी हुई कुछ अपनी फ़िल्में थीं मेरी जो मुझे बेहद प्रिय थीं और सही वक़्त पर सही जगह सही क़ीमत पर बेची जानी थीं. कुल सौ से भी ज़्यादा. इनमें वो रॉ फ़िल्म भी थी जो हम जैसलमेर से शूट करके ला रहे थे और यह मेरी अब तक की सबसे महंगी, और प्रेस्टीजियस फ़िल्म थी. चालीस लाख की. मेरा ये सारा ख़जाना आधी रात में चलती ट्रेन में किसी ने चुरा लिया था. मैं बरबाद हो चुकी थी.

मेरा ये सारा क़ीमती सामान दो बैगों में था. इनके अलावा एक बड़ा पर्स और कपड़ों के लिए एक सूटकेस. सारी चीजें एक ही जगह रखने की अपनी ज़िद या ख़राब आदत के चलते ही ये हादसा हुआ था. ज़रूर कोई मेरे सामान पर निग़ाह रखे हुए होगा. ट्रेन में रात के वक़्त बरसात का फ़ायदा उठाते हुए कोई हाथ साफ़ कर गया. मैं एकदम से सड़क पर आने की हालत में आ गयी थी. सिर्फ़ मैले कपड़ों का सूटकेस ही छोड़ दिया गया था. मेरा पर्स और क़ीमती सामान के दोनों बैग जा चुके थे. पर्स तो बिल्कुल मेरे सिर के पास से ही उठा लिया गया था. पता नहीं रात को किस वक़्त और किस स्टेशन पर यह हादसा हुआ होगा लेकिन मुझे सुबह उठने पर ही पता चला था. मैं खाली हाथ रह गयी थी. चाय लेने तक के पैसे नहीं बचे थे मेरे पास. मैंने शोर मचाया था, रोयी थी, चिल्लायी थी, लेकिन न तो मुझे कोई ढंग की सलाह मिल पायी थी और न ही कोई मदद मिल पायी थी. एटेंडेंट कुछ बता नहीं पाया था और टीटी का कुछ पता नहीं था. बेशक दो एक सहयात्री ज़रूर मेरी मदद के लिए आगे आये थे. मुझे नहीं पता था कि चोरी की रिपोर्ट कहां करनी है. मुझे यह भी ख़बर नहीं थी कि मेरे साथी किस-किस डिब्बे में हैं. मैं बदहवास थी. किसी तरह एसी थ्री टीयर में जा कर अपने सहायक विपिन को खोजा था और उसके ज़रिये पूरी टीम तक ख़बर पहुंची थी. मेरे सारे सामान के जाने का मतलब मेरा और मेरी पूरी टीम का बेरोज़गार हो जाना था. सबसे पहले तो चोरी की रिपोर्ट लिखवानी थी. सहयात्रियों ने यही सलाह दी कि चोरी वाले या उसके बाद के सबसे नज़दीक के स्टेशन पर ही रिपोर्ट लिखाना ठीक रहता है. यही सोच कर मैं और विपिन अगले स्टेशन पर उतर गये

सूरज प्रकाश

प्रकाशन : *अधूरी तस्वीर, छूटे हुए घर, मर्द नहीं रोते, खो जाते हैं घर, छोटे नवाब बड़े नवाब (कहानी संग्रह); हादसों के बीच (उपन्यास); देस बिराना (उपन्यास, ऑडियो सीडी के रूप में भी उपलब्ध); जरा संभल के चलो (व्यंग्य संग्रह); दाढ़ी में तिनका (विविध).*

अनुवाद : *जॉर्ज आर्वेल का उपन्यास एनिमल फॉर्म, गैब्रियल गार्सिया मार्खेज के उपन्यास, 'क्रॉनिकल ऑफ अ डेथ फोरटोल्ड', 'ऐन फैंक की डायरी का अनुवाद', 'चार्ली चैप्लिन की आत्मकथा', 'चार्ल्स डार्विन की आत्मकथा', इनके अलावा कई विश्व प्रसिद्ध कहानियों के अनुवाद प्रकाशित, कई गुजराती पुस्तकों का अनुवाद.*

संपादन : *बंबई-१ (बंबई पर आधारित कहानियों का संग्रह), कथा लंदन २००५, कथा दशक*

सम्मान : *गुजरात साहित्य अकादमी (१९९४) और महाराष्ट्र अकादमी (२००२), आशीर्वाद (२०११)*

अन्य : *कहानियों का दूरदर्शन पर प्रदर्शन. लेखन पर एक एम. फ़िल और रचनाएं तीन पीएच-डी. कार्य में शामिल.*

थे. ये अलवर जंक्शन था और यहां ट्रेन सिर्फ़ दो ही मिनट के लिए रुकती थी. तय था कि न तो दो मिनट में रिपोर्ट लिखी जा सकती थी और न ही किसी मदद की उम्मीद की जा सकती थी.

रेलवे पुलिस में रिपोर्ट लिखवाना इतना आसान नहीं था. बैग के साथ ही मेरा जर्नलिस्ट कार्ड भी जा चुका था और मुझे अपने आपको जर्नलिस्ट सिद्ध करने में ही अच्छी ख़ासी तकलीफ़ हुई. संडे की सुबह होने के कारण वहां कोई ज़िम्मेवार आदमी नहीं था. एक सिपाहीनुमा आदमी बैठा था जिसे न हिंदी लिखनी आती थी और न ही कोई और भाषा ही. जिस आदमी को रिपोर्ट शब्द सही न लिखना आता हो उससे यह उम्मीद ही कैसे की जा सकती थी कि वह मेरे साथ न्याय करता या चोर को पकड़ने में मेरी मदद करता. उसने रिर्पोट लिखा था. साफ़-साफ़ लग रहा था उसे रिपोर्ट क्या, कुछ भी लिखना नहीं आता था. दो लाइनें लिखने में ही उसके पसीने छूटने लगे थे.

मैं ग़ुस्से में तो थी ही, अड़ गयी — जब तक कोई ज़िम्मेवार पुलिसवाला वहां नहीं आयेगा, हम रिपोर्ट नहीं लिखवायेंगे और बिना रिपोर्ट लिखवाये जायेंगे नहीं.

तब वहां अच्छी ख़ासी भीड़ जमा हो गयी थी. स्टेशन मास्टर को किसी ने ख़बर कर दी थी और वे भी वहीं चले आये थे. हमारा ग़ुस्सा देख कर उन्होंने हमें शांत करने की कोशिश की और अलवर में मौज़ूद सबसे सीनियर रेलवे पुलिस वाले को बुलवा लिया गया था. पता नहीं किस रैंक का रहा होगा. लेकिन स्मार्ट और बातचीत में समझदार और कड़क लगा. उसने आते ही नयी समस्या खड़ी कर दी. बेशक ये पता चलने पर कि मैं पत्रकार हूं वह थोड़ा नरम हुआ. हमारे लिए चाय मंगायी. ध्यान से पूरी बात सुनी. पूछा क्या-क्या सामान गया है. मैंने अपनी याददाश्त का सहारा लेते हुए चोरी गये सामान की पूरी सूची लिख कर दे दी. ब्रैंड नेम्स के साथ जितना बताया जा सकता था.

- कुल कितने का सामान गया होगा?

- सामान की क़ीमत तो तीन लाख तक की होगी लेकिन लैपटॉप और हार्ड डिस्क में जो फ़िल्में थीं, मेरी इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी की क़ीमत भी लगायें तो चार से पांच करोड़.

- ये इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी क्या होती है? वह हैरानी से बोला था.

ऐसे तनावपूर्ण पलों में भी मेरे चेहरे पर हल्की-सी मुसकान आ गयी थी — आप नहीं समझ पायेंगे. एफआइआर लिखवाते समय इस मुद्दे को नहीं समझाया जा सकता. वैसे भी इस रिपोर्ट में उसका ज़िक्र करने का कोई मतलब नहीं. मैंने बात ख़त्म करनी चाही थी.

- लेकिन आप तो बता रही थीं कि आप पत्रकार हैं. इतना तो मैं भी जानता हूं कि ये सारा सामान पत्रकार तो लेकर नहीं चलते. उसने अपनी समझ दिखानी चाही थी.

- आप सही कह रहे हैं. मैं फ़िल्में बनाती हूं. डाक्यूमेंटरी फ़िल्में. एक फ्रेंच कंपनी के लिए. यह काम भी मीडिया में आता है.

- कैश कितना था?

- बीस हज़ार के क़रीब.

- कार्ड कितने थे?

- दो क्रेडिट कार्ड और एक डेबिट कार्ड. ड्राइविंग लाइसेंस, आधार कार्ड, पैन कार्ड, हेल्थ इंशोरेंस कार्ड वग़ैरह.

- ब्लाक करवा दिये हैं?

मैं पहले ही हताश थी, बोली — अभी हमें ट्रेन से

उतरे आधा घंटा भी नहीं हुआ. कार्ड की डिटेल्स या तो लैपटॉप या मोबाइल में सेव थीं या दिल्ली में घर पर होंगी. कुछ समझ में नहीं आ रहा क्या हो गया.

- लैपटॉप पासवर्ड से ही खुलते हैं या वैसे ही? उसने अपनी टैक्निकल जानकारी बघारी.

- थैंक गॉड, दोनों लैपटॉप पासवर्ड से ही खुलते हैं.

- मोबाइल कितने थे?

- तीन. इससे पहले कि वह मोबाइल की संख्या के बारे में कुछ कमेंट करता, मैंने उसे यह कह कर चुप किया कि ये सब प्रोफेशनल ज़रूरतें हैं.

अब उसने अपने पत्ते खोले — आपको अपनी रिपोर्ट उस स्टेशन पर लिखवानी चाहिए जहां आपको चोरी का पता चला.

मैंने अपने ग़ुस्से पर काबू रखते हुए उसे बताया कि मुझे चलती ट्रेन में बीस मिनट पहले ही चोरी का पता चला और उसके बाद अलवर जंक्शन ही पहला स्टेशन आया है और हमने यहीं रिपोर्ट लिखवाने के लिए अपनी ट्रेन छोड़ी है.

यह सुनने के बाद वह एक पल के लिए रुका और नया फ़रमान सुना दिया — देखिए हम चाहेंगे और पूरी कोशिश भी करेंगे की आपका सारा सामान आपको सही सलामत मिल जाये और चोर को सज़ा भी मिले लेकिन दो एक बातें आपको बता दूं. पहली तो आपकी इस चोरी के बारे में ख़बर अभी थोड़ी ही देर में वायरलेस से इस रूट के सभी थानों और स्टेशनों पर चली जायेगी. आपकी कई चीज़ें हैं. लैपटॉप, कैमरे, मोबाइल, कार्ड वग़ैरह. चोर आम तौर पर दो चार दिन ठहर कर सामान बेचने निकलते हैं. पर्स और उसका सामान सबसे पहले इधर-उधर फेंकते हैं पैसे निकालने के बाद. हां, मोबाइल कम से कम एक महीना इस्तेमाल नहीं करते. उसके बाद ही सिम कार्ड निकाल कर मोबाइल ठिकाने लगाते हैं. लेकिन पुलिस के भी कई तरीक़े होते हैं अपने काम करने के और चोर पकड़ने के. चोरी के माल पर निग़ाह रखने के. चोर के बारे में या आपके सामान की ख़बर मिलते ही आपको यहां सामान की पहचान के लिए बुलाया जायेगा. यह बुलाना कई बार और तब तक होता रहेगा जब तक आपका सारा सामान न मिल जाये. तय है सामान कई जगह बेचा जायेगा और तभी उसके पकड़े जाने की उम्मीद बनेगी. अब आप बतायें कि क्या आपके लिए बार-बार दिल्ली से यहां आना हो पायेगा. बात सिर्फ़ वहीं ख़त्म नहीं होती. पुलिस के रोल के बाद अदालत की कार्रवाई चलती है. बरामद होने के बाद भी आपको आपका सामान पुलिस नहीं दे सकती. यह काम अदालत के आदेश के बाद होता है. उनकी लंबी प्रोसेस चलती है. मैं कुछ कहती इससे पहले ही उसने मुझे टोकते हुए कहा — मैं आपको हताश या निराश नहीं कर रहा. मेरी पूरी बात सुन लीजिए पहले फिर आप अपनी बात कहना.

- तो इसका मतलब आप इस चोरी की रिपोर्ट नहीं लिख रहे?

- सॉरी मैडम, आप ग़लत समझ रही हैं. आपकी रिपोर्ट लिखी जायेगी और ज़रूर लिखी जायेगी लेकिन मैं आपके भले के लिए आपको बताना चाहता हूं कि ट्रेन के आख़िरी स्टेशन पर भी रिपोर्ट लिखवायेंगी तो भी लिखी जायेगी और उस पर भी वैसे ही एक्शन होगा जैसे यहां पर रिपोर्ट लिखने से होगा. बस वहां रिपोर्ट लिखाने से आपको बार-बार यहां आने की ज़हमत नहीं उठानी पड़ेगी.

मेरे लिए यह नया एंगल था. मैं कुछ सोच नहीं पा रही थी. वैसे भी अब मैं खाली हाथ थी और देखा जाये तो मेरे पास अब दिल्ली जाने का टिकट भी नहीं था. स्टेशन से घर जाने के लिए ऑटो के पैसे भी नहीं थे. पता नहीं कब तक ये हालत चलने वाली थी. मैंने विपिन की तरफ़ देखा था.

उसी ने पुलिस वाले से पूछा था — तब उपाय क्या है? दिल्ली वाले रिपोर्ट लिखेंगे क्या? वे भी तो आपकी तरह पहला सवाल यही पूछेंगे कि चोरी का पता चलते ही अगले स्टेशन पर रिपोर्ट क्यों नहीं लिखवायी. आप राजस्थान में हुई चोरी की रिपोर्ट राजस्थान में नहीं लिख रहे तो वे राजस्थान की चोरी की रिपोर्ट दिल्ली में क्यों लिखने लगे? बीच में हरियाणा भी आने वाला है.

- और कुछ?

- क्या आपको नहीं लगता कि चोरी की जगह से आप ज़्यादा नज़दीक हैं और अभी चोरी हुए ज़्यादा वक़्त भी नहीं हुआ है. दिल्ली जाकर रिपोर्ट लिखवाने का मतलब वारदात की जगह से दूरी और एक्सट्रा टाइम?

इतनी देर में पुलिस वाला पहली बार मुस्कुराया था — आपकी दोनों बातें सही हैं. इस रूट पर यह पहली चोरी नहीं है. कई बार नॉर्थ से आने वाली गाड़ियों में भी चोरी हो जाती है तो रिपोर्ट राजस्थान में ही लिखी जाती है.

तभी विपिन ने अगला सवाल पूछ लिया — तो दिल्ली में रिपोर्ट लिखवाने का हमें फ़ायदा यह होगा कि हमें बार-बार जांच के सिलसिले में यहां नहीं आना पड़ेगा.

- जी आपने सही समझा. पुलिस वाला अब संतुष्ट

नज़र आ रहा था.

- एक सवाल और. विपिन अब सारी तसल्ली कर लेना चाहता था.

- जी कहिए.

- दिल्ली वाले इस रिपोर्ट का क्या करेंगे, मतलब वे दिल्ली में जांच कैसे करेंगे जबकि चोरी राजस्थान में हुई है?

अब पुलिस वाला थोड़ा हकलाया — वे दरअसल इस रूट पर चोरी की घटना के बाद के सभी स्टेशनों पर रिपोर्ट की कॉपी भेजेंगे.

- ठीक, तो इसका मतलब उसकी कॉपी जांच के लिए आपके पास भी आयेगी.

अब पुलिस वाला घिर चुका था — हां, आयेगी तो सही.

- और नियमानुसार आपका स्टेशन ही चोरी का पता लगने के बाद पहला स्टेशन पड़ता है.

अब उसके पास कोई जवाब नहीं था. विपिन उस पर चढ़ बैठा — और आप हमारी ही परेशानी बचाने के लिए कह रहे थे कि हम रिपोर्ट दिल्ली में लिखवायें. आप तो दिल्ली में सराय रोहिल्ला स्टेशन के रेलवे पुलिस इंचार्ज़ से हमारी बात भी करवा रहे थे. हद है. लेकिन आपने यह नहीं बताया कि वहां से रिपोर्ट आप ही के पास वापिस आनी है.

अब मैं समझी थी कि यह सारा नाटक रिपोर्ट लिखने से बचने के लिए था. मैं यह सोच कर भी कांप गयी थी कि अगर हम इसकी बात मान कर दिल्ली चले गये होते तो कितनी परेशानी होती. बेशक पत्रकार जान कर रिपोर्ट लिख ली जाती लेकिन वही रिपोर्ट आख़िर यहीं भेजी जाती. इस सारी कार्रवाई में समय बरबाद होता सो अलग.

अब वही स्मार्ट पुलिसिया आंय-बांय तर्क देने लगा. स्टाफ की कमी का रोना रोने लगा.

अब विपिन ने कड़क आवाज़ में कहा — लिखिए हमारी एफ़आइआर और दीजिए हमें उसकी एक कॉपी.

थाना इंचार्ज़ मज़बूरन मुंशी जी से बोला — इन्हें क़ाग़ज और कार्बन दे दीजिए और रिपोर्ट ले लीजिए. मैं जरा एक एसपी साहब के पास जा रहा हूं. बुलावा आया है. वैसे भी बहुत देर हो गयी है.

अब उस पर चढ़ बैठने की बारी मेरी थी. उसका रास्ता रोक कर खड़ी हो गयी — हमें रिपोर्ट नहीं लिखानी है बल्कि एफ़आइआर लिखवानी है. हमें एफ़आइआर की कॉपी ही चाहिए.

रास्ता रोके जाने से वह चिढ़ गया — उससे आपको क्या फ़र्क पड़ता है. हम रिपोर्ट लिख तो रहे हैं. एक्शन भी लेंगे ही.

मैंने उसी की स्टाइल में जवाब दिया — इतना तो मुझे भी पता है और बाक़ी आपके काम करने के तरीक़े से पता चल गया है कि इससे फ़र्क हमें नहीं आपको पड़ता है. आप हमसे यही लिखवाना चाहेंगे कि ट्रेन में मेरा सामान खो गया है. इतना तो मुझे भी पता है कि सादे क़ाग़ज पर लिखी इस रिपोर्ट के कोई मायने नहीं होते. आपको उस पर कोई एक्शन नहीं लेना होता. मेरा बहुत क़ीमती सामान चोरी हुआ है और हम आपके पास मदद मांगने ही आये हैं. हम यहां से एफ़आइआर लिखवाये बिना नहीं जायेंगे. मैं जर्नलिस्ट हूं और काम करवाने के तरीक़े हमें भी सिखाये गये हैं. वैसे भी आप हमारा पूरा एक घंटा बरबाद कर चुके हैं.

उसने जाते जाते मुंशी को हाथ से इशारा किया और तेज़ी से निकल गया.

मुंशीजी ने कम से कम दो घंटे लगाये एफ़आइआर लिखने में. एक तरह से विपिन ने ही सारा काम किया. सादे क़ाग़ज पर उसे लिख-लिख कर सारी बातें बतायीं जिसे उसने रजिस्टर में कॉपी किया. जब तक एफ़आइआर की कॉपी हमें मिलती, दोपहर हो चुकी थी. साथ में बीस हिदायतें — शहर छोड़ कर मत जायें. लगातार संपर्क में रहें. कभी भी बुलाया जा सकता है. अपना कांटैक्ट नंबर छोड़ जायें. अभी अपने नंबर ब्लाक न करवायें और अपने खोये नंबरों पर बार-बार फ़ोन करके देखती रहें. कभी इंगेज़ मिले तो हमें बतायें. मजे की बात, मुंशी ने थाने का नंबर भी नहीं दिया था. पहले तो वह रेलवे वाला नंबर देकर ही टालना चाहता था लेकिन जब विपिन ने कहा कि हम रेलवे वाले नंबर पर बात ही कैसे कर सकते हैं तब जा कर उसने थाने का नंबर दिया थ. विपिन अब बहुत सेफ़ गेम खेल रहा था. अपने मोबाइल से उस नंबर पर एक बार फ़ोन करके चैक कर लिया कि हमें सही नंबर दिया गया है. फ़िलहाल रिपोर्ट में विपिन का ही नंबर लिखवाना पड़ा था. हमें जो हिदायतें गिनवायी गयी थीं, वे सारे काम पुलिस के थे जो हमें करने थे और जो हिदायत ज़मानत पर छूटे चोरों को दी जाती है, कि शहर छोड़कर न जायें, वह हमें दी गयी थी. बस, हमें यही नहीं कहा गया कि चोर को पकड़ कर भी ले आयें और उनके हवाले कर दें.

□

अब मेरे पास करने को कोई काम नहीं था लेकिन अचानक ही मैं बहुत बिज़ी हो गयी थी. घर पर एक पुराना मोबाइल पड़ा था, फ़िलहाल उसी में एक नया सिम कार्ड

डालकर वह नंबर अलवर के थाने में दर्ज़ करवा दिया था. संयोग से जब तीनों मोबाइल ख़रीदे गये थे तो वेंडर से ही उनके आइवी नंबर नोट करवा लिये थे. तब पता नहीं था कि ये आइवी नंबर कितने काम आने वाले थे. मैंने पुलिस को ये नंबर भी दे दिये थे.

हालांकि अलवर के पुलिस थाने से संपर्क करना इतना आसान नहीं होता था. कभी नंबर न मिलता तो कभी ड्यूटी पर बैठे पुलिस वाले को मेरे केस के बारे में कुछ भी पता न होता. हर बार सारी बातें बतानी पड़तीं. कई बार आधा–आधा घंटा तक होल्ड कराया जाता और कोई जवाब न मिलता.

□

अब हालत यह थी कि मुझसे कोई फ़ोन पर बात नहीं कर सकता था और मेरे पास किसी का नंबर ही रहा नहीं था. पूरी दुनिया से कट जाने की-सी हालत हो गयी थी. पुलिस की सलाह थी कि जब तक आपके मोबाइल ट्रैक न हो जायें, मैं वही नंबर न लूं. मज़बूरन मैंने फ़ेसबुक और ईमेल के ज़रिये सभी पार्टियों, दोस्तों और परिचितों से कह दिया था कि मेरे तीनों नंबर चोरी हो चुके हैं और मेरे पास किसी का भी नंबर नहीं है. सब लोग मुझे अपना नंबर दें या मेरे नये नंबर पर कॉल करें. अब ईमेल भेजने या चैक करने के लिए साइबर कैफ़े या दोस्तों के यहां जाना पड़ता था. अभी नया लैपटॉप ख़रीदना किसी ऐय्याशी से कम नहीं था. मेरी क़िस्मत अच्छी थी कि जब तक मैं अपने डेबिट कार्ड और क्रेडिट कार्ड ब्लॉक करवाती, उनसे कोई शॉपिंग नहीं की गयी थी. इसका मतलब चोर सड़क छाप चोर ही रहा होगा और कार्ड इस्तेमाल करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया होगा. पूरे स्टॉफ की सेलरी बाक़ी थी और मैं कुछ नहीं कर पा रही थी. एजेंसी को मैंने चोरी के बारे में बता दिया था लेकिन वहां से अभी तक किसी तरह का आश्वासन नहीं आया था. मैंने संदेश भिजवाया था कि अगर वे कुछ फंड्स दे दें तो फ़िल्में रीशूट करने के बारे में सोच सकती हूं. इससे मेरी फंसी हुई रक़म निकलने की उम्मीद बंधती थी. संयोग से फ़िल्म की स्क्रिप्ट और दूसरी डिटेल्स विपिन के लैपटॉप में मिल गये थे. इस फ़िल्म की कुछ फुटेज़ भी मिल गयी थी. मेरे पास अपनी बनायी फ़िल्में भी तो नहीं बची थीं कि उन्हें ही बेच कर कुछ पैसे जुटा लेती. कुछ दोस्त थे जिनके पैसे मेरी फ़िल्मों में लगते ही रहते थे. इन्वेस्टमेंट या पार्टनरशिप के रूप में. मेरी हालत देख कर सब चुप थे बल्कि मेरी छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए मदद भी कर रहे थे लेकिन बड़े पेमेंट जस के तस खड़े थे और मेरी नींद हराम किये हुए थे.

मन पर बहुत बोझ था उन दिनों. अपनी तकलीफ़ें किसी से शेयर करना चाहती थी लेकिन किसी की निग़ाह में लल्लू लाल भी नहीं बनना चाहती थी. बेशक लापरवाही हो चुकी थी और उसका ख़ामियाजा भुगत भी रही थी लेकिन हर कोई मुझे उसके लिए उपदेश दे या लैक्चर पिलाये, ये मैं गवारा करने को तैयार नहीं थी.

□

मैं उस रात साइबर कैफ़े में गयी थी तो फ़ेसबुक पर मुंबई में रह रही मेरी दोस्त सिमरन ऑनलाइन मिल गयी थी. मैंने उसे पूरा क़िस्सा बताया था. बताया कि मेरे पास अभी नया नंबर नहीं है, वह अपना मोबाइल नंबर दे दे. वह इस हादसे को सुन कर बेहद परेशान हो गयी थी और उसने हर तरह की मदद की पेशकश की थी. मुझसे कसम ली थी उसने कि कुछ भी ज़रूरत हो तो मैं उससे कहूं. बैंक में पैसे ट्रांसफर करने के लिए मेरा बैंक एकाउंट नंबर तक मांग लिया था. जब मैंने बताया कि ज़रूरत होगी तो उसी से और सिर्फ़ उसी से कहूंगी तो उसने एक और प्रस्ताव रख दिया था – तुम्हारे लैपटॉप भी तो गये हैं. मेरे पास एक एक्सट्रा रखा है. हाल ही में नया ख़रीदा है हालांकि पुराने से भी ठीक काम चल ही रहा था. मैं कुरियर कर देती हूं. इसके लिए तो मना मन करना. बेशक मुझे लैपटॉप की बेहद ज़रूरत थी और मैं नया लैपटॉप ख़रीदने की हालत में नहीं थी, फिर भी मैं उससे इतना बड़ा अहसान लेने के लिए

ख़ुद को तैयार नहीं कर पा रही थी. आख़िर फ़ेसबुक फ्रेंड ही तो थी जिससे न कभी मिली थी और न कभी मिलने की संभावना ही नज़र आती थी.

चैट ख़त्म होते ही उसने मेरे नये नंबर पर फ़ोन किया था और पहली बात यही कही थी कि कुछ काम न हो तो मूड बदलने के लिए मुंबई ही चली आओ. चेंज़ भी हो जायेगा और फिर तुम्हारे लिए यहां काम की कोई कमी नहीं रहेगी. रहने के लिए मेरा घर है ही सही लेकिन मैंने ही मना कर दिया था कि रोज़ाना ही पुलिस के मैसेज़ का इंतज़ार रहता है. वहां के चक्कर भी काटने पड़ते हैं. पता नहीं कब मेरे काम का बुलावा आ जाये. सिमरन से बात करने पर अपने आप पर गर्व हो आया था कि फ़ेसबुक ने हमारे लिए कितनी ख़ूबसूरत दुनिया की खिड़की खोल दी है वरना सिमरन जैसी दोस्त कैसे मिलती मुझे. यहां किसी जानकार या दोस्त ने कभी नहीं कहा कि मेरा पुराना लैपटॉप या पुराना मोबाइल ही रख लो कुछ दिन के लिए.

□

बाद में जब मेरे एक लोकल दोस्त को पता चला था कि मुंबई में रहने वाली मेरी एक फ़ेसबुक फ्रेंड अपना लैपटॉप मुझे कूरियर करने के लिए तैयार बैठी है तो वह हंसा था — मत चूको चौहान. लपक लो. आजकल ऐसे बेवकूफ़ मिलते कहां हैं. मुझे उसकी बात सुन कर बेहद तकलीफ़ हुई थी कि आजकल ईमानदार होना और अनजान आदमी की मदद के लिए आगे आना भी बेवकूफ़ी माना जाने लगा है. शर्म भी आयी थी कि एक ये हैं जो मदद करने वाली फ़ेसबुक फ्रेंड को बेवकूफ़ बता रहे हैं और मुझे न चूकने की सलाह दे रहे हैं जबकि कम से कम दस बरस से मेरे परिचित हैं लेकिन कभी ये नहीं सोचा कि हज़ार दो हज़ार रुपये ही उधार ही दे दें या उनके ऑफ़िस मिलने आयी हूं तो एक कप कॉफी ही पिला दें. बाद में बेशक मैंने सिमरन से यह झूठ बोला था कि मेरा नया क्रेडिट कार्ड आ गया है और मैंने कार्ड पर नया लैपटॉप ले लिया है. लैपटॉप लेने से ज़्यादा ज़रूरी अपनी टीम की सेलरी देना था और जहां से भी थोड़े से पैसों का इंतज़ाम होता, मैं कर्ज़ उतारती. पर्सनल काम तो कुछ दोस्तों के आफ़िस जा कर या साइबर कैफ़े जा कर चल ही रहा था.

□

दिल्ली से अब मेरा मन उचट चुका था. काम कुछ था नहीं और पुलिस कोई मदद नहीं कर रही थी. सिर्फ़ आश्वासन थे जो हर बार दोहराये जाते थे. मैं सरकार में, मंत्रालयों में और पुलिस में अपने सारे संपर्क खटखटा चुकी थी. बस अब एक ही उपाय बाक़ी था कि अलवर जा कर रेलवे पुलिस थाने के आगे भूख हड़ताल पर बैठ जाऊं. दो महीने हो चुके थे और हर दिन बीतने के साथ सामान वापिस मिलने की उम्मीदें कम होती जा रही थीं. इधर कोई नया काम मिल नहीं रहा था. तकलीफ़ यह भी थी कि अब तक पूरी ज़िंदगी किसी के अधीन काम किया नहीं था और अब ऐसे ही काम मिल रहे थे. पुराना काम पूरे करने के न तो साधन थे और न ही उत्साह.

अपने अच्छे दिनों में मैंने ख़ूब पैसे कमाये थे तो पटना में एक घर ख़रीदा था. अब उसे बेचने की नौबत आ गयी थी. जो फ़िल्में पूरी कर चुकी थी, वे दोबारा शूट करनी पड़तीं या उनके लिए जो एडवांस ले रखा था, वह लौटाना था. कुछ काम ऐसे भी थे जिनके लिए पार्ट पेमेंट आ चुका था और काम शुरू करना था. दोनों ही तरह के काम करने की इच्छा ही नहीं रही थी. देनदारियां लाखों में थीं और लेनदारियां उंगलियों पर गिनी जा सकती थीं. फ़्लैट बहुत नुक़सान में बेचना पड़ा था लेकिन कुछ हद तक कर्ज़े उतर गये थे. बाज़ार में अपनी साख बनाये रखने के लिए ऐसा करना ज़रूरी था.

□

इस बीच मैं पहले ही दिन से अपनी ड्यूटी लगातार निभा रही थी. मेरा एक ही काम था. दिन में कई–कई बार चोरी गये तीनों मोबाइलों के नंबर्स मिलाना. शायद चोर कभी ग़लती से फ़ोन उठा ही ले या मेरे किसी भी मोबाइल से किसी से बात कर रहा हो और नंबर इंगेज़ आ रहा हो. वैसे भी जब तक अपनी सभी पार्टियों को न बताया जाये, सभी उन नंबरों पर ही फ़ोन करते रहने वाले थे. एक बार भी चोर ने मोबाइल एटेंड कर लिया तो पुलिस की साइबर ब्रांच के लिए उसकी लोकेशन पता करना आसान हो जाता है. दो बार ऐसा हुआ कि मेरा एक मोबाइल लगातार एक घंटे तक इंगेज़ आता रहा. वह मेरा सबसे क़ीमती मोबाइल था. मैंने तुरंत पुलिस को इस बारे में बताया था. उन्होंने इस बात को नोट कर लिया था और मुझे आश्वस्त किया था कि मैंने उनका काम आसान कर दिया है. अब चोर का पता लगाना आसान हो जायेगा.

इसके बाद भी कई दिन तक वहां से मुझे कोई बुलावा नहीं आया था और फ़ोन करने पर संतोषजनक जवाब न मिलता. एक बार फिर मैं थी और हताशा थी.

□

तभी कुछ ही दिन के अंतराल पर मेरे तीनों मोबाइल फ़ोनों के बिल आये थे. मैंने लपक कर बिल खोले थे और की गयी कॉल और रोमिंग के ब्यौरे जांचे थे. दो मोबाइलों से चोरी की तारीख़ के बाद कोई कॉल नहीं की गयी थी लेकिन मेरे सबसे महंगे वाले सैमसंग के मोबाइल से दो दिन में एक

ही नंबर पर इक्कीस कॉल किये गये थे. मैंने अपनी डायरी चेक की. ये वही और उसके बाद वाली तारीख़ थी जब मैंने पुलिस को मोबाइल इंगेज़ मिलने की ख़बर दी थी.

मैंने तुरंत विपिन को बुलवाया था. बिल स्टेटमेंट देखने के बाद उसे भी यक़ीन हो चला था कि इस नंबर के ज़रिये ज़रूर चोर तक पहुंचा जा सकता है. आख़िर कोई अंजान आदमी को दो दिन में २१ बार फ़ोन नहीं करता और कुछ बार तो एक-एक घंटे तक बात की गयी थी. तभी विपिन को कुछ याद आया था और उसने अपना मोबाइल निकाल कर यह नंबर अपने मोबाइल में फ़ीड किया था. विपिन के चेहरे पर चमक आ गयी थी. जब पूछा मैंने तो उसने अपना मोबाइल मेरे आगे कर दिया था. स्क्रीन पर नीचे की तरफ़ एक नाम चमक रहा था — सुषमा परीक. जयपुर सर्कल. साथ में मोबाइल कंपनी का नाम. जब मैंने पूछा कि यह क्या है तो उसने बताया था — एक सॉफ़्टवेयर है – ट्रू कॉलर. मेरे मोबाइल में है. इससे किसी भी नंबर के यूज़र, लोकेशन और सर्विस कंपनी का पता चल सकता है. अब यह तो पता चल गया है कि इस नंबर पर कोई लड़की है. ज़रूर चोर की गर्ल फ्रेंड होगी. लोकेशन के बारे में कुछ कह नहीं सकते क्योंकि जयपुर सर्कल में आसपास के दो तीन सौ किमी के घेरे के सारे नंबर आ जाते हैं. शायद उसकी मोबाइल कंपनी के कस्टमर केयर सेंटर से कुछ और पता चल सके.

यह हमारे केस के हिसाब से बहुत बड़ा क्लू था जो अचानक हमें घर बैठे मिल गया था. अब सुषमा परीक की लोकेशन पता करनी बाक़ी थी जिससे पता चल सकता था कि चोर जयुपर या उसके आसपास के किस शहर का है. हम मोबाइल कंपनी के कस्टमर केयर सेंटर गये थे लेकिन एफ़आइआर की कॉपी देखने, मेरा ज़र्नलिस्ट कार्ड देखने और सारे तर्क सुनने के बाद भी वे हमें इतना ही बताने के लिए तैयार हुए थे कि वह नंबर किस कंपनी का है. वे जितना बता रहे थे हम पहले से ही उससे ज़्यादा जानते थे.

हालांकि हम अब यूज़र का नाम भी जानते थे और उस नंबर पर फ़ोन करके कुछ भी बात करके हम उसका पता पूछ सकते थे लेकिन ज़रा सी भी हड़बड़ी हमें भारी पड़ सकती थी. वैसे भी पुलिस ने पिछले दो महीने में अपनी तरफ़ से एक पत्ता तक नहीं हिलाया था. कई चक्कर लगाने के बाद और एक तरह से गिड़गिड़ाने के बाद यही पता चला था कि इस बात को उन्होंने मेरी फ़ाइल में दर्ज़ तो कर लिया था लेकिन मेरे मोबाइल से किये गये नंबरों के मालिकों के बारे में पता लगाने के लिए अब तक कुछ किया नहीं था. जब पिछली बार अलवर गयी थी तो मैं अपने ग़ुस्से पर क़ाबू न रख पायी थी और एक तरह से पूरा थाना ही सिर पर उठा लिया था. मैं चिल्ला रही थी कि मैंने आपको इतना बड़ा क्लू दिया और आप उस पर आसन बिछाये इतने दिन से योगाभ्यास ही कर रहे हैं. वे लोग एक महिला पत्रकार द्वारा इतना बड़ा सीन क्रिएट किये जाने के बारे में सोच भी नहीं सकते थे. बेशक मेरी फ़ाइल निकाली गयी थी. डेट्स देखे गये थे. तब पुलिस ने एक ही भेद खोला था कि बाक़ी दोनों मोबाइलों के सिम कार्ड बदले जा चुके हैं. मैं हैरान थी कि इन दोनों जानकारियों के मिलने के बाद भी पुलिस कुछ नहीं कर रही थी. न तो उसने कॉल किये गये नंबर के मालिक का पता जानने की कोशिश की थी और न ही यह जानने की ही ज़हमत उठायी थी कि सिम कार्ड बदलने के बाद अब वे मोबाइल किसके पास हैं और मज़े की बात, कई–कई बार पूछने पर भी मुझे कोई बात नहीं बतायी गयी थी. मैं हैरान थी कि वे इतना महत्वपूर्ण सुराग दबाये बैठे थे, अब तक कुछ काम तो किया होता लेकिन मेरे शोर मचाने के बावजूद कुछ भी नहीं किया गया था. मैं दिल्ली से हर बार अलवर जाती लेकिन खाली हाथ लौटना पड़ता. मैं हर बार गिड़गिड़ाती और वे हर बार काम करने के अपने तरीक़े की दुहाई देते रहते. मैंने अनुरोध करके, गिड़गिड़ा कर, ग़ुस्सा हो कर जतलाना चाहा कि मैं आपके काम करने के तरीक़े पर उंगली नहीं उठा रही. मेरा डर यह है कि एक-एक दिन मुझे इसलिए भारी पड़ रहा है कि अब तक जैसे मेरे मोबाइल ठिकाने लगाये जा चुके हैं, मेरे लैपटॉप और हार्ड डिस्क कहीं ठिकाने लगा दी गयीं तो पहला काम यही किया जायेगा कि उन्हें फार्मेट किया जायेगा और मेरा सारा काम ख़त्म कर दिया जायेगा. मेरी बरसों की मेहनत एक ही क्लिक में चली जायेगी. लेकिन शायद वे हमारे पहले दिन के व्यवहार का बदला ले रहे थे.

अब हमने यही ठीक समझा था कि मोबाइल बिल लेकर उनके सिर पर जा बैठें. अब इस नंबर का सच हमारे पास था और ज़रूरत पड़ने पर हम इस तुरुप चाल को चल सकते थे. वे अगर ख़ुद कुछ नहीं करते तो हम ख़ुद ही फ़ोन करके सुषमा परीक का पता पूछें और उसके ज़रिये चोर तक पहुंचें. मैंने विपिन को भी साथ चलने के लिए राज़ी कर लिया था. वैसे भी वह तब से बेरोज़गार ही था और पूरे केस में लगातार मेरे साथ बना रहा.

□

ट्रेन में चलते समय मैं लगातार उन घटनाओं के बारे में अनुमान लगा रही थी जो आगे जा कर होने वाली थीं. अजीब

बात थी कि मुझे चोर पर तरस आ रहा था. मैं चाहने लगी थी कि वह अनपढ़ गंवार, जाहिल और काम चोर निकले. जैसा मेरे डेबिट और क्रेडिट कार्डों के साथ कुछ नहीं किया था उसने, बाक़ी सामान के साथ भी कुछ न किया हो. काश, वह कुछ भी बेच न पाये. मेरा पता ठिकाना है ही मेरे सामान में. आकर सारा सामान दे जाये और जितने चाहे पैसे ले जाये. फिरौती की तरह. मैं कुछ भी नहीं कहूंगी. या फिर कैमरा रख ले, पैसे रख ले, कार्ड उसके किसी काम के नहीं, मोबाइल रख ले, बस मुझे मेरा बरसों की इतनी मेहनत से किया गया क़ीमती काम लौटा दे. मैं लगातार डर रही थी कि कहीं उसने लैपटॉप न बेच दिये हों और ख़रीदने वाले ने उन्हें आगे बेचने के लिए फ़ॉर्मेट न कर दिया हो. उसे बेशक हार्ड डिस्क में कुछ एक्सट्रा स्पेस मिल जायेगी लेकिन..... यह लेकिन ही तब से मेरी जान खाये जा रहा था.

□

हमने दिल्ली से चलते समय ही तय कर लिया था कि इस बार पुलिस वालों से कोई बहस नहीं करेंगे बल्कि अपनी तरफ़ से मदद करने की ही पेशकश करेंगे. हमें पता था कि हमारी ये विज़िट निर्णायक होगी. बेशक सामान न मिले, उसका पता ठिकाना और हालत के बारे में तो कुछ न कुछ पता चलेगा ही. हम दोनों ही ये मान कर चल रहे थे कि ये लड़की ज़रूर चोर की गर्ल फ्रेंड होगी. कोई एक एक घंटे या दो दिन में कम से कम किसी दोस्त से तो बात नहीं करता, बिज़नेस डील की बात अलग है.

□

पुलिस वालों ने जब मोबाइल का बिल देखा तो अब उनके पास बनाने के लिए कोई बहाना नहीं बचा था. वैसे भी हमने उनका ही काम आसान किया था. हमने उन्हें अपनी तरफ़ से कुछ नहीं बताया था कि यह किसका नंबर है. वे शायद पहले भी इस तरह का काम कर चुके थे. घंटे भर में पुलिस वाला पूरी डिटेल्स ले आया था. मैंने प्रिंट आउट देखना चाहा तो उसने क़ाग़ज मेरे आगे कर दिया. हम सही थे — सुषमा परीक. उम्र २१ बरस. मैंने मुंशीजी से पूछा — अब क्या करेंगे?

- करेंगे क्या, फुलेरा जायेंगे. वहां छोकरी को थाने बुलवायेंगे और चोर के बारे में पूछेंगे. आप फ़िकिर मत करो. ये हमारा रूटीन काम है.

- लेकिन मैं कुछ और सोच रही हूं थानेदार साहब.

उसने अपने हाथ का काम रोक कर मेरी तरफ़ देखा. इशारे से मेरी बात का मतलब पूछा.

- मेरा मतलब यह किसी भी लिहाज़ से ठीक नहीं होगा कि पुलिस सीधे लड़की के घर पहुंच जाये या लड़की को थाने बुलवाया जाये. इसमें उस बेचारी का क्या क़सूर कि उसका बॉय फ्रेंड चोर है. हमें तो उसके माध्यम से चोर तक ही तो पहुंचना है. यह काम लड़की के घर वालों को बिना बताये या बिना हो-हल्ला मचाये भी तो किया जा सकता है. छोटे शहर के मोहल्ले का मामला ठहरा. उसे बदनाम होते देर नहीं लगेगी.

- तो उससे क्या फ़र्क पड़ता है? हमें तो अपना काम करना है.

- फ़र्क पडता है भइया. वो चोर ज़रूर इसका बॉय फ्रेंड होगा. पता नहीं लड़की को उसके चोर होने का पता भी है या नहीं. दूसरे आजकल लड़कियां अपने घर पर बता कर बॉय फ्रेंड थोड़े ही बनाती हैं.

- लेकिन हमें तो अपना काम करना ही है. आप ही के केस में तो कर रहे हैं.

- यही मैं कह रही हूं कि पुलिस वालों को देख कर लड़की के घरवालों और आस-पड़ोस में सबको पता चल जायेगा कि एक चोर उसे फ़ोन करता है. ठीक है कि हम उस लड़की से चोर के बारे में पता लगाने जा रहे हैं लेकिन यह काम हम लड़की को बदनाम किये बिना भी तो कर सकते हैं.

- तो आप ही बताओ हम क्या करें? बंद कर दें केस कि हम लड़की को बुला कर या उसके घर जा कर उससे पूछ ताछ नहीं कर सकते. आप तो जी हमें अपना काम करने दो.

- आप करो अपना काम लेकिन उसे इस मामले में उसके घर वालों के ही सामने बदनाम करने की ज़रूरत नहीं है. लड़की को ज्यों ही पता चलेगा कि वह आदमी चोर है और चोरी किये गये फ़ोन से ही उससे इतनी बातें करता रहा है तो वह उससे नफ़रत ही करेगी और हमसे सहयोग ही करेगी.

- लेकिन ये होगा कैसे? उसका सवाल अपनी जगह पर था.

- मैं बताती हूं. क्या करेंगे. मैं पत्रकार हूं. जानती हूं ये काम कैसे किया जा सकता है. मैं अकेली जाऊंगी उसके घर और उससे किसी भी तरीक़े से अकेले ही बात करूंगी. उसके घर वालों को भी ख़बर नहीं होगी. ये मेरी गारंटी रही कि उससे चोर के बारे में जानकारी ले कर ही आऊंगी.

- और अगर उसने आनाकानी की तो?

- तो मैं आपके काम करने के तरीक़े में रुकावट नहीं डालूंगी.

ड्यूटी पर पुलिस वाला पूरी तरह से तो नहीं लेकिन कुछ हद तक सहमत हो गया है. उसके जूनियर ने भी मुझसे सहमति जतायी.

□

अलवर की रेलवे पुलिस ने अपनी सारी औपचारिकताएं पूरी की हैं, फुलेरा जंक्शन के रेलवे थाने और वहां की पुलिस चौकी को ख़बर दी है और दो पुलिस वालों के साथ हम अगली गाड़ी से फुलेरा जंक्शन के लिए चल पड़े हैं. वहां पहुंच कर पुलिस वाले अपनी औपचारिकताओं में लग गये हैं और तय प्रोग्राम के अनुसार मैं ज़रूरी क़ाग़जात ले कर अकेली ही सुषमा परीक के घर गयी हूं. घर आसानी से मिल गया है. साधारण सा घर. दरवाज़ा उसके भाई ने खोला है. मैंने पत्रकार के रूप में अपना परिचय दिया है और एक सर्वे के सिलसिले में सुषमा के लिए पूछा है.

भाई ने अंदर आने के लिए कहा है और सुषमा को बुलाया है. सुषमा आयी है. साधारण कद काठी की एक अति साधारण लड़की. मन में आया है — ऐसी लड़की किसी चोर की प्रेमिका ही हो सकती है. उसने मुझे उत्सुकता से देखा है. मैंने फिर पत्रकार के रूप में परिचय दिया है और एक सोशल समस्या पर कुछ सवाल पूछने की अनुमति चाही है. वह तैयार हो गयी है लेकिन उसका भाई भी वहीं जम कर बैठ गया है. आख़िर मुझे कहना पड़ा है कि मैं सुषमा से कुछ ऐसे सवाल पूछने वाली हूं जिनके शायद वो तुम्हारे सामने जवाब न दे पाये.

भाई अजीब सा मुंह बनाता हुआ परदे के पीछे चला गया है लेकिन उसके जाते हुए क़दमों की आहट ने बता दिया है कि वह दूसरे कमरे में उतनी ही दूर गया है कि छुप कर हमारी बातें सुन सके. छोटे शहर की मिडल क्लास मेंटैलिटी.

मैंने इस बात की परवाह किये बिना और बिना कोई भूमिका बांधे मोबाइल कंपनी से आयी लिस्ट उसके सामने कर दी है और कहा है — मुझे तुम्हारा मोबाइल नंबर पता है और मुझे इस नबंर से तुम्हें फ़ोन करने वाले आदमी का नाम और पता चाहिए.

वह सूची देख कर ही घबरा गयी है. उसके चेहरे का रंग उड़ गया है और वह हकलाने लगी है — यह तो मेरा नंबर नहीं है और मैं इस नंबर वाले आदमी को भी नहीं जानती.

मैंने उसे प्यार से समझाया है — देखो सुषमा. मैं जानती हूं कि तुम इस नंबर वाले आदमी को नहीं जानती क्योंकि यह नंबर मेरा है. मैं उस आदमी के बारे में जानना चाहती हूं जिसने इस नंबर से तुम्हें फ़ोन किये.

- लेकिन मुझे तो किसी ने कोई फ़ोन नहीं किये. कई बार रांग नंबर आ जाते हैं.

- सच कह रही हो?

- लेकिन आप क्यों जानना चाहती हैं? उसके चेहरे पर अभी भी प्रश्न चिह्न टंगा हुआ है. उसने पल्लू से पसीना पोंछते हुए कहा.

- क्योंकि ये नंबर मेरा है और मेरे सारे सामान के साथ तीन मोबाइल भी चोरी हुए हैं. जिसने सामान चुराया है उसने इस नंबर से तुम्हें २१ बार कॉल किया है और दो बार एक-एक घंटे की कॉल की गयी है. और एक-एक घंटे तक रांग नंबर पर बात नहीं की जाती. हमें तुमसे कुछ नहीं चाहिए, बस इस आदमी का नाम और पता बता दो.

वह घबरा गयी है. रोने लगी है. उसे डर भी है कि कहीं भाई न सुन ले. फिर भी उसने आख़िरी कोशिश की है — दरअसल मेरा मोबाइल पिछले दिनों चोरी हो गया था. ये कॉल्स मेरे पास नहीं आये.

मैंने उसे समझाने की कोशिश की है — देखो सुषमा, एक चोर को बचाने की कोशिश तो करो मत. बेशक तुम्हारा दोस्त हो. वो चोर है जो चलती ट्रेन से मेरा कई लाख का सामान चुरा कर अभी भी आराम से घूम रहा है. मेरा सब कुछ लुट चुका है. मेरा ये मोबाइल भी उसी के पास है और इसे इस्तेमाल कर रहा है. मुझे बाक़ी क़ीमती सामान का पता लगाना है. मुझे चोर में कोई दिलचस्पी नहीं. मुझे मेरा सारा सामान वापिस चाहिए.

वह फिर हकलायी — लेकिन मेरा मोबाइल तो कब से गुम हो चुका है.

मैंने एक और आख़िरी और अचूक दांव चला - देखो तुम्हारा नंबर मेरे पास है. मैं अभी अपने मोबाइल से तुम्हारा नंबर डायल करती हूं. अभी बजेगा भीतर के किसी कमरे में ये मोबाइल और तुम्हारा भाई लेके आयेगा — सुषमा तुम्हारा फ़ोन. यह तो तय है कि उसके नाम की जगह तुमने किसी सहेली का नाम डाला होगा. तब मेरे लिए तुम्हारे भाई के सामने सच बोलने और सच उगलवाने के अलावा कोई चारा नहीं रहेगा.

इतना सुनते ही वह रोने लगी है और मुझे हाथ के इशारे से चुप रहने का इशारा किया है. मेरी तरफ़ याचना भरी निग़ाह से देखा है. मेरे चेहरे की सख़्ती देख कर वह घबरा गयी है — हम बाहर चलें क्या?

- हां, एक काम करो, मेरे साथ ज़रा स्टेशन तक चलो. स्टेशन पर मेरा सामान रखा है. वहीं बात करते हैं. फिर तुम वापिस आ जाना.

वह अंदर की तरफ़ गयी है. तय है, पर्स और मोबाइल लेने. आते-आते उसकी आवाज़ आयी है — भइया, ज़रा इन्हें स्टेशन तक छोड़ कर आती हूं. ज़रा दरवाज़ा बंद कर लेना. □

हम दोनों बाहर गली में आये तो सुषमा ने दबी सहमी आवाज़ में कहा है — लेकिन वो तो बता रहा था कि ये फ़ोन उसे आधी रात को सड़क पर पड़ा मिला था?

तो अब आयी लाइन पर. पूछा मैंने कि कब की बात है तो बताया — जब उसने पहली बार इस नंबर से फ़ोन किया था.

मैंने उसका नाम पूछा तो वह घिघियायी — जी जी वो ...

मैंने ढाढस दिलाया — घबराओ नहीं, तुम्हारा नाम कहीं नहीं आयेगा. फिर मैंने उसका मनोबल बनाये रखने के लिए उससे व्यक्तिगत सवाल पूछने शुरू कर दिये हैं. ज़रूरी जवाब वह पुलिस वालों के सामने दे तो ही बेहतर. इस बीच मैंने विपिन को फ़ोन पर बता दिया है कि मैं लड़की को लेकर आ रही हूं. स्टेशन पहुंचने से पहले मैंने सुषमा को बता दिया है कि उसे सारी बातें पुलिस वालों के सामने बतानी होंगी और वह बिल्कुल भी न घबराये. उसका नाम कहीं नहीं आयेगा और न ही उसके घर वालों को पता चलेगा. लेकिन सुषमा अभी भी बहुत घबरायी हुई है. मैंने उसका कंधा थपथपा कर दिलासा दिया है.

मैंने स्टेशन के पुलिस थाने में पहुंचते ही पुलिस वालों को इशारा किया — यही है जिसके नंबर पर फ़ोन किये गये थे. अपने आपको स्टेशन पर पुलिस के थाने में पाकर सुषमा रोने–रोने को है लेकिन उसे पता चल चुका है कि अब बिना नाम और पता बताये कोई उपाय नहीं.

मैंने उसे पुलिस वालों को सौंप दिया है. सबसे पहले उससे चोर का नाम पूछा गया.

उसने रोते–रोते बताया — संतोष नाम है उसका.

- कैसे जानती हो उसे?

- पहले हम उसी मोहल्ले में रहते थे. पास में रहता था.

- करता क्या है?

- ड्राप आउट है. नौंवीं तक हमारे साथ पढ़ा.

- तुम्हारी पढ़ाई?

- बारहवीं के बाद छोड़ दी.

- अब क्या करती हो?

- घर पर ही रहती हूं.

- आख़िरी बार वह कब मिला था?

- कई दिन हो गये, बीच में मेरी तबीयत ख़राब थी.

- फ़ोन कब किया था उसने आख़िरी बार?

- तीन दिन पहले.

- किस नंबर से?

- अपने वाले नंबर से.

- उसका अपना नंबर बताओ.

सुषमा ने अपने मोबाइल से देख कर बता दिया है.

- तुमने कब किया था फ़ोन उसे?

- मैं नहीं करती, वही करता है. जब बात करने का मौक़ा होता है तो मैं मिस्ड कॉल देती हूं. वही बात करता है.

- इस समय कहां मिल सकता है?

- घर पर ही होना चाहिए, वैसे पता नहीं, कोई काम धाम नहीं करता.

वह मेरी तरफ़ देख कर अचानक रोने लगी है — दीदी उसे मैंने पकड़वाया है, या मैं उसे जानती भी हूं ये बात कहीं नहीं आनी चाहिए. नहीं तो मेरे घर वाले मुझे मार डालेंगे.

- नहीं, तुम्हारा नाम कहीं नहीं आयेगा. तुम तो हमारी मदद ही कर रही हो.

- कोई ख़ास बात? अगला सवाल.

- वो वो दरअसल.. वह कहते कहते रुक गयी है.

- हां हां बोलो.

- वह वही वाला मोबाइल मुझे देना चाहता था. उसने यही बताया था कि सड़क पर पड़ा हुआ मिला है.

- तो लिया क्यों नहीं?

- घर पर क्या बताती कि इतना महंगा मोबाइल कहां से ले लिया.

- कौन सा मॉडल था?

- पता नहीं लेकिन सैमसंग का काफ़ी महंगा मॉडल था.

यह सुन कर पुलिस वाले ने मेरी तरफ़ देखा — मैंने सिर हिला कर बताया — हां, मेरा ही होना चाहिये

पुलिस का काम हो चुका था. सुषमा को इस हिदायत के साथ जाने दिया गया कि वह भूल कर भी हमारी मुलाकात का ज़िक्र संतोष से न करे. न ही उसे कुछ बताये. अगर वह आज हाथ में नहीं आया तो हम तुम्हारे घर फिर से आ धमकेंगे और तब इस मैडम की एक ना चलेगी.

□

हमें रात वहीं ठहरने के लिए कह दिया गया. एक मामूली सा होटल ही हमें मिल पाया. रात दस बजे पुलिस का फ़ोन आया कि संतोष को पकड़ लिया गया है. हमें तुरंत बुलाया गया था. विपिन और मैं तुरंत लपके. मैं दुआ कर रही थी कि मेरा सारा सामान सही सलामत मिल जाये. हमारे वहां पहुंचने तक चोर की पिटाई का एक दौर पूरा हो चुका था. बीस–बाइस बरस का मरियल सा लड़का. मार खाने के बाद वैसे ही हुलिया बिगड़ा हुआ था. हमें देखते ही वह रोने लगा. समझ गया कि मेरे ही सामान की चोरी के इल्ज़ाम में उसे धरा गया है. अपने आपको बेकसूर बताता रहा. अब तक की पिटाई के बाद उसने इतना ही उगला था कि कुछ सामान उसे बरसात की रात में सड़क पर पॉलिथीन की थैली में बहुत भीगी हुई हालत में मिले थे. एक मोबाइल और लैपटॉप उसने रख लिये थे और बाक़ी सामान टूटा–फूटा समझ कर उसने फेंक दिया था. ये सुनते ही मेरी तो जैसे जान ही निकल गयी. लगा, बेहोश होकर गिर ही जाऊंगी. पता नहीं यह असली चोर है भी या नहीं. सुषमा भी कुछ ऐसा ही बता रही थी.

तभी थाना इंचार्ज़ ने मुझे बुलाया और ड्रावर से एक मोबाइल निकाल कर दिखाया — यह आपका है क्या? इसकी जेब से निकला है. मैंने लपक कर मोबाइल उठाया और अपने माथे से लगाया. ओह गॉड! मेरे खोये सामान की पहली आइटम. मोबाइल की एड्रेस लिस्ट देखी. इमेज़ेज़ देखीं. एकदम हताश हो गयी. सब कुछ डिलिट किया जा चुका था. मैंने उस मोबाइल से अपना नया नंबर डायल किया. नंबर बदला जा चुका था. मिसयूज के कारण दो महीने में ही मेरा क़ीमती मोबाइल सदियों पुराना लगने लगा था. मैंने कुछ और फोल्डर चेक किये. हां, कुछ फ़ाइलें मिल ही गयीं. मैंने कन्फ़र्म किया — हां, ये मेरा ही है. लेकिन मेरा बाक़ी सामान? वो तो बता रहा है सड़क पर बरसात में मिला और बाक़ी सामान फेंक भी दिया. मैं बेसब्र हुई जा रही थी.

- सब बतायेगा, ज़रा धीरज धरें. अभी तो एक ही डोज़ मिली है उसे. चोर इतनी आसानी से सारी बातें नहीं बताते. कई–कई दिन लग जाते हैं तब कुछ पता चलता है या हाथ लगता है. कल इसके इलाक़े के थाने में इसकी हिस्ट्री शीट निकलवायेंगे तो पता चलेगा. पुराना खिलाड़ी है या नया. अभी आप जायें. आप कल दिन में आना. तब तक देखें क्या हाथ लगता है.

सुबह आठ बजे ही पुलिस वालों का बुलावा आ गया. मैं हैरान भी हुई कि क्या उसने सारा सच उगल दिया है या सामान का पता बता दिया है. दुविधा में थी कि क्या हो सकता है लेकिन थाने में दूसरी ही कहानी हमारा इंतज़ार कर रही थी. बताया गया कि चोर मुझसे अकेले में बात करना चाहता है. मैं जब उसके पास गयी तो उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा कि पुलिस वालों से कह कर थोड़ी देर के लिए उसकी जंजीर खुलवा दें. तब मैंने पहली बार देखा कि उसके पैर से एक जंजीर बंधी हुई थी और जंजीर का दूसरा सिरा दीवार में लगी एक कड़ी से बंधा हुआ था. मुझे लगा कि अगर वह सच बताने को तैयार हो तो इतनी रियायत तो उसके साथ की जा सकती है.

जंजीर खुलने के बाद उसने अपने हाथ पैर सीधे किये. दो मिनट तक आंखें बंद कीं और कहने लगा — दीदी, मैं सचमुच में चोर नहीं हूं. मुझे ये सामान सड़क पर एक पालिथीन की थैली में मिला था. आप मेरा भरोसा करें मैडम. ये पुलिसवाले मुझे मार डालेंगे. मेरा कैरियर तबाह हो जायेगा. प्लीज़ मुझे बचा लें. वह ज़ार ज़ार रोने लगा. मेरे पैरों पर गिरने लगा.

मैंने डांटा — पहले तो ये दीदी-वीदी का नाटक बंद करो. सच–सच बताओ मेरा सारा सामान कहां है? सच बताओगे और मेरा सामान वापिस दिलवाओगे तो मैं देखूंगी कि तुम्हें कोई सज़ा न मिले. मुझे मेरे अपने क़ीमती सामान से मतलब है.

- मेरा यक़ीन करो मैडम, मैं सच में चोर नहीं. मैं तो ख़ुद पुलिस की नौकरी के लिए कोशिश कर रहा हूं. एप्लाई भी कर रखा है. मुझे ये मोबाइल और लैपटॉप ही सड़क पर मिले थे. बाक़ी सब कुछ बरसात में ख़राब हो गये थे तो वहीं फेंक दिये थे.

- तुम जिसे बेकार समझ कर फेंकने की बात कर रहे हो वह हार्ड डिस्क थी. तुम नहीं जानते संतोष तुमने मेरा कितने करोड़ों का नुक़सान किया है. मैं इस चोरी के बाद सड़क पर आ गयी हूं. मेरा घर बार सब बिक गया है. दोनों लैपटॉप और कैमरा वग़ैरह कहां है?

- सिर्फ़ लैपटॉप था. वो तो मैंने बेच दिया था. वो मैं पुलिस को बता दूंगा.

- तुम्हें पता है मेरा क्या-क्या चोरी हुआ है जिसे तुमसे बरामद कराया जायेगा.

- मैं सच कह रहा हूं मैडम, मुझसे ऐसी चोरी का सामान कैसे बरामद कराया जा सकता है जो मैंने की ही नहीं.

अब मुझे भी ग़ुस्सा आने लगा है. सच है लातों के भूत... मैंने बताया उसे — दो लैपटॉप, एक कैमरा, अलग-अलग लेंसों का सेट, तीन मोबाइल, डेबिट कार्ड, क्रेडिट

कार्ड, लाइसेंस, आधार कार्ड, पैन कार्ड, पैन ड्राइव, वॉइस रिकॉर्डर और हज़ार जीबी की एक एक्सटर्नल हार्ड डिस्क. हैड फ़ोन, ईयर फ़ोन तथा कुछ और छोटे-मोटे सामान.

- सच मानिए, मैं चोर नहीं हूं, मेरा कैरियर तबाह..

- कितना पढ़े हो और क्या करते हो? मैंने उसी से सच्चाई उगलवानी चाही.

- बारहवीं पास हूं. जॉब तलाश कर रहा हूं, .. पुलिस...

मतलब झूठ बोल के मेरी हमदर्दी लेना चाहता है. सुषमा बता रही थी, नवीं का ड्राप आउट है. ये ख़ुद को बारहवीं पास बता रहा है. मैं उठ खड़ी हुई — सच बोल के मेरा सारा सामान वापिस दिलवाओगे तो पुलिसवाले बनोगे और झूठ बोलोगे तो राम सिंह जैसा हाल होगा.

- क क कौन राम सिंह, वह घबरा गया.

- वही राम सिंह जिसने दिल्ली में दामिनी के साथ चलती बस में सामूहिक बलात्कार किया था और जेल में दूसरे क़ैदियों ने उसी के साथ अप्राकृतिक सैक्स करके उसे आत्महत्या के लिए मज़बूर किया. चाइस इस यूअर्स कह कर मैं बाहर आ गयी.

□

रेलवे पुलिस को लोकल थाने से उसके खिलाफ़ कुछ नहीं मिला है. अलबत्ता उस थाने में भेजे जाने से पहले उसकी कुटाई के कई दौर चले और उसने उन दोनों दुकानदारों के नाम भी बता दिये हैं जिन्हें उसने लैपटॉप और दूसरा मोबाइल बेचे थे. उसी रात वे दोनों भी धर लिये गये हैं. लेकिन बाक़ी सामान के बारे में वह साफ़ मुकर गया. बार–बार मार खाते हुए भी यही कहता रहा कि जो भी सामान मिला था वह बरसात में सड़क पर ही मिला था. हार्ड डिस्क के बारे में यही कहता रहा कि कुछ था तो सही लेकिन उसे पता नहीं था कि ये हार्ड डिस्क होती है. बेकार समझ कर उसने उसे वहीं फेंक दिया था. अलबत्ता वह इस बात का जवाब नहीं दे पाया है कि इतनी बरसात में दोनों मोबाइल और लैपटॉप ठीक हालत में कैसे रह गये. उसे जेल भेज दिया गया.

□

मैं अवाक हूं. कुछ भी नहीं सूझ रहा कि चोर के पकड़े जाने की इतनी रोमांचक यात्रा के बाद मुझे ख़ुश होना चाहिए या ज़ोर-ज़ोर से रोना चाहिए क्योंकि जिसने लैपटॉप ख़रीदा था वह न केवल उसकी फॉर्मेटिंग कर चुका होगा बल्कि उसकी कन्फिग्रेशन भी बदल चुका होगा. अब वह मेरा क़ीमती लैपटॉप नहीं, कबाड़ी की दुकान पर बिक रहा एक साधारण सा लैपटॉप रह गया होगा. दूसरा मोबाइल भी जिस हालत में मुझे दिखाया गया है, न ही दिखाया जाता तो बेहतर रहता. ये सामान भी मुझे अदालतों में बीसियों तारीख़ें भुगतने के बाद ही मिलेंगे. इसमें छः महीने भी लग सकते हैं. अब तक हज़ारों रुपये अलवर और फुलेरा तक आने-जाने और यहां ठहरने के ख़र्च कर चुकी हूं.

□

इस बीच मैं अपनी शराफ़त का परिचय देते हुए एक और धोखा खा चुकी हूं. चोर के ही हाथों. अब तक का सबसे बड़ा हादसा.

चोर कम से कम बीस दिन से जेल में था. मुझे दो बार पुलिस के बुलावे पर अदालती कार्रवाई के सिलसिले में अलवर जाना पड़ा था. तभी अचानक एक दिन मेरे दिल्ली वाले घर में एक आदमी आया और मेरे हाथ में मेरा ड्राइविंग लाइसेंस थमा दिया. अरे, ये तो ट्रेन में चोरी गये बैग में था. इसके पास कहां से आया?

पूछने पर बताया उसने कि वह संतोष का भाई है. संतोष के सामान में ये लाइसेंस मिला जिस पर लिखे पते पर वह यहां तक पहुंचा है. वह संतोष से कह सुन कर बाक़ी सामान और पेपर्स भी बिना पुलिस को बीच में लाये बरामद करवा देगा अगर...

- अगर क्या ... मैं आगे सोच भी नहीं पायी.

- अगर मैं संतोष की जमानत करवा दूं.

मैं तो अपना सामान किसी भी क़ीमत पर वापिस पाने के लिए जैसे उतावली हो रही थी. चल दी उस बंदे के साथ अलवर. उस दिन विपिन शहर में नहीं था लेकिन एकाध दिन में आ जाने वाला था. मैं इतनी बेसब्र हो चली थी कि एक दिन के लिए भी उसका इंतज़ार नहीं किया और न ही उससे फ़ोन पर सलाह ही ली.

□

इधर मैंने संतोष की जमानत करवायी और उधर उसका भाई साफ़ मुकर गया कि उसने मुझसे ऐसा कोई वायदा ही किया था.

मैंने अपने हाथों से ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है.

अब किस मुंह से अदालत या पुलिस के पास जाऊं?

एच१/१०१ रिद्धि गार्डन,
फिल्म सिटी रोड, मालाड पूर्व
मुंबई ४०००९७
मोबाइल ९९३०९९१४२४
Email : mail@surajprakash.com

कहानी

उत्तराधिकारी

✍ डॉ. स्वाति तिवारी

''मरने के बाद कितना निर्विकार लगता है चेहरा?''

''एकदम निर्मल पानी की तरह स्वच्छ. लगता है बस अभी उठेंगे और आवाज़ लगायेंगे — समर...''

जिज्जी की निर्मल आत्मा अपने भाई के निर्विकार चेहरे को पढ़ रही थी.

''हां, प्राणविहीन चेहरे निर्विकार ही होते हैं! विकार तो सारे जीवित अवस्था में ही फलते-फूलते हैं.'' न चाहते हुए भी शब्द निकल ही गये थे मेरे मुंह से. जिज्जी ने अपनी गर्दन घुमाकर मेरी तरफ़ देखा और आंखों ही आंखों में मुझे चुप रहने का आदेश भी दिया. जानती हूं जिज्जी अपने भाई की प्रतिष्ठा पर आंच नहीं आने देना चाहतीं. वे कभी नहीं चाहती थीं कि मैं सार्वजनिक रूप से उनके मायके में आऊं और उनकी भाभी के बसे-बसाये ज़मींदारी कुटुंब में सेंध लगाऊं.

सामने रखा है चादर से ढका शव. शांत चेहरा. त्वचा की चमक अभी ज्यों की त्यों है. शायद ठाकुरों का ख़ून मरने के बाद भी देर तक रगो में दौड़ता है — पानी नहीं बनता! अधखुली बड़ी-बड़ी आंखें मेरी ही तरफ़ देख रही हैं. एक पल को लगा अभी इशारा करेंगे, ''इधर आओ, वहां क्या कर रही हो. कोई और आनेवाला है का?'' जान-बूझकर पूछा गया यह प्रश्न कितना विचलित करता रहा मुझ पर पलटकर, केवल आंखें तरेरने के अलावा कुछ नहीं कह पायी कभी.

मन में एक बात बार-बार उठ रही थी कि आज तो मैं इस रहस्य को खोल ही दूं. जिज्जी हैं न हमारे संबंधों की गवाह. अपने मरे हुए भाई के सिर पर हाथ रखकर वे झूठ नहीं बोल पायेंगी. अगर आज चुप रही तो शायद अपने बच्चों के लिए न्याय नहीं मांग पाऊंगी कभी.

कितनी बार तुम्हारे चेहरे का स्पर्श किया था, ठाकुर रणवीर सिंह! तुम्हारी ठाकुरी मूंछें मेरे गालों को छील देती थीं कई बार. तब भी मैं ख़ुश थी तुम्हारा साथ पाकर. जवान देह उस वक़्त कितनी कसमसाती थी अपने ही बंधनों में बंधकर. बंधन खोलती भी तो देह की स्वतंत्रता का मोल करने वाला तो जिज्जी के आम के बाड़े में डले हिंडोले पर पड़ा चिलम में भरकर गांजा फूंकता खांसते-खांसते सारी रात वहीं काट देता था. कितनी बार हिंडोले से खींचकर खोली तक लायी उसको, पर हाड़-मांस के उस मरद की मर्दानगी में मर्द का स्पंदन था ही नहीं, वह वहीं पसर जाता ख़र्राटे भरता. चिलम-गांजे की गंध पूरी खोली में फैल जाती, तब धड़कता सीना ले ग़ुस्से में पैर पटकती मैं ही अमराई के हिंडोले पर पहुंच जाती और हिंडोले की चरर-चूं फिर शुरू हो जाती. पड़ी रहती मैं खुले आसमान में, तारे गिनती अधूरी ख्वाहिशों की वेदना लिये.

ठाकुर रणवीर सिंह आज इतने साल तुमसे संबंध रहने के बावजूद तुम्हारी मृत देह मुझे अंदर से तोड़ भी रही है और जोड़ भी रही है — तोड़ इसलिए रही है कि मैं ठकुराइन की तरह तुम्हारा गम सबके सामने नहीं मना सकती... पत्नी न कहलाने की पीड़ा तुम नहीं समझोगे ठाकुर... पर मैं टूटकर भी जुड़ी हुई हूं. मेरे माथे पर सिंदूर ज्यों का त्यों है. मेरे पास दो नन्हें ठाकुर हैं जिनके चेहरे की बांछें अभी से तुम्हारी तरह लगने लगी हैं. पत्नी होकर भी ठकुराइन ने बेटियां ही जनी थीं तुम्हारा वीर्य मेरे अंदर ही जाकर वंशवृक्ष उगा पाया था.. और इस मायने में तो मैं ठकुराइन से ऊंची ही रही ना? बड़े गर्व

डॉ. स्वाति तिवारी

१७ फरवरी १९६०, धार (म. प्र.), एम. एससी., एल. एल. बी., एम. फ़िल., पीएच. डी.

लेखन : *नयी पीढ़ी के कथाकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर, कविता, लेख, रिपोर्ताज़, यात्रा-संस्मरण, व्यंग्य, संपादन और फ़िल्म निर्माण में भी सक्रिय. अब तक एक दर्जन से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन. ''ब्रह्म कमल-एक प्रेम कथा'' उपन्यास प्रकाशनाधीन. देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में कहानियों का निरंतर प्रकाशन. प्रमुख अंग्रेज़ी पत्रिका ''संडे इंडियन'' ने २१वीं सदी की १११ महिला लेखिकाओं की सूची में सम्मिलित.*

प्रकाशन : *'क्या मैंने गुनाह किया', 'छः-जमा तीन', 'मुड़ती है यूं ज़िंदगी', 'ज़मीन अपनी-अपनी', 'विश्वास टूटा तो टूटा, 'मैं हारी नहीं", 'बैंगनी फूलों वाला पेड़', 'हथेली पर उकेरी कहानियां' (सभी कहानी संग्रह); वृद्धावस्था के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर केंद्रित दस्तावेज 'अकेले होते लोग' और महिलाओं के क़ानून से संबंधित महत्वपूर्ण पुस्तक 'मैं औरत हूं मेरी कौन सुनेगा'; स्तंभ लेखन : 'हमारे आसपास' (दैनिक भास्कर), 'महिलाएं और क़ानून' (दैनिक फ्री प्रेस, अंग्रेज़ी), 'आख़िरी बात' (चौथा संसार), 'आठवां कॉलम एवं अपनी बात' (चेतना).*

पुरस्कार : *अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित. हाल ही में 'स्वाति तिवारी की चुनिंदा कहानियां' के लिए मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा वागीश्वरी सम्मान से अलंकृत.*

विशेष : *कलागुरू विष्णु चिंचालकर पर निर्मित फ़िल्म का पटकथा-लेखन. संपादन और सूत्रधार. इंदौर स्थित परिवार परामर्श केंद्रों पर आधारित लघु फ़िल्म 'घरौंदा न टूटे' का निर्माण, संपादन व स्वर.*

संप्रति : *मध्य प्रदेश शासन के मुखपत्र 'मध्य प्रदेश संदेश' की सहयोगी संपादक.*

से कहते थे न ठाकुर रणवीर सिंह! ठाकुरों की शान उनकी हवेली होती है. आज तुम्हारी इस ऊंचे बुर्जवाली हवेली पर दीया धरने वाला कोई नहीं. तुम्हारे नाम का दीया मेरी खोली के बाहर मेरा बेटा ही धरेगा ठाकुर रणवीर सिंह.

तुम्हारी जिज्जी तुम्हारे चेहरे को निर्मल, निर्विकार कह रही हैं... पर ठाकुर रणवीर सिंह मुझे लग रहा है तुम्हारा चेहरा असहनीय वेदना से भरा हुआ है. तुम्हारे हाथ बार-बार फड़क उठते हैं अपने बेटों को कलेजे से लगाने के लिए. लोगों की बातें तुम्हारे भी कानों में पड़ रही होंगी. जितने लोग उतनी बातें. पर सबसे बड़ा आश्चर्य मुझे ही हो रहा है लोगों की बातें मुझे विचलित कर रही हैं — शायद तुम्हारी आत्मा को भी कर रही होंगी. कहते हैं मरने के बाद आत्मा देह के आसपास और दस दिन तक घर के दरवाज़े पर ही खड़ी रहती है. गरुड़ पुराण का पाठ इसीलिए रखा जाता है. तभी तो लोग मरने वाले के घर जाकर उसकी अच्छाइयों को याद करते हैं. तो तुम भी यहीं कहीं किसी कोने में अदृश्य बैठे लोगों की बातें सुन रहे हो न ठाकुर! आश्चर्य इस बात का है कि ठकुराइन इन बातों से विचलित नहीं हैं. एक दृढ़-आत्मविश्वास से भरा भाव उनके चेहरे पर है. उनका चेहरा मैंने ऐसे समय एकदम क़रीब से देखा जब लोग दयनीयता की हद तक बरा जाते हैं. जानती और समझती भी हूं यह पल उस स्त्री के लिए असहनीय वेदना का ही है पर जाने क्यूं ठकुराइन के चेहरे पर उसके भीतर की वेदना की जगह भीतर की निश्चिंतता उठकर बाहर आ रही है. क्या ठाकुरों की स्त्रियां भी अंदर से इतनी सशक्त होती हैं? तुम तो इतने सशक्त नहीं थे तभी तो परस्त्री की देह को देखते ही कमज़ोर पड़ते चले गये. हां, तुमने मुझे भी अपनी बलिष्ठता के अंश दिये थे. तुम्हारे शरीर की कठोरता से टकराकर मेरे कोमल अंग कितने तरंगित हुए थे. तुम बांके जवान से कम नहीं थे. ठाकुर, तुम्हारी बड़ी-सी लाल पगड़ी को अपना खूंट बनाती मैं तुम्हारे गर्म होठों को अपनी पलकों पर अभी भी महसूस कर सकती हूं. तुम्हारे चेहरे पर झलकते पसीने की बूंदों को सीप के मोती की तरह अपने होठों से समेटा है मैंने. मेरे आंचल में दुबकता तुम्हारा वो शिशु-सा मचलता चेहरा मुझे कितनी तृप्ति, कितनी संपूर्णता का अहसास दे गया. पर मैं अभागी तुम्हारे नाम का दुख नहीं मना सकती... क्या यही मेरे किये की सज़ा है?

तुम्हारे बीज ने मेरे अंदर ठकुराइन से ज़्यादा ठसक भर दी थी. एक बार आंखें खोलो ठाकुर, देखो, अपने उत्तराधिकारियों को. क्या मैं इनका हक़ मांग सकती हूं ठकुराइन से... एक बार हमारे भविष्य का सोचते तो तुम. क्या ये तुम्हारे उत्तराधिकारी होकर भी जिज्जी की आम की बाड़ी में कंचे-गिल्ली खेलते कच्ची केरी की तरह धूप में पकेंगे. तुम इन्हें इनकी सही जगह तक पहुंचाकर तो जाते. अब तक मेरे लिए जीवन सतत और बहती अंतर्धारा था. इसीलिए आमबाड़ी के उस चौकीदार के पानी में खारापन नहीं होने के बावजूद मैं उसके साथ जीवन जी रही थी. दाल-रोटी पकाते और आमबाड़ी के तोते उड़ाते. पर तुमने मुझे जीवन का अर्थ दिया. जीवन को सार्थकता दी रतिदान देकर. हां! स्त्री पूरी ही तब

होती है जब उसकी कोख़ में चाहत का बीज पड़ता है. पर दुर्भाग्य मेरा... मैं तो तुम्हें रोकर श्रद्धांजलि भी नहीं दे सकती.

तुम पत्नी के प्रति एक गर्व से भरे क्यूं रहते थे ठाकुर? जबकि तुम पत्नी के प्रति वफ़ादार नहीं रहे थे. तब भी पत्नी का नाम तुम्हारी मूंछों पर ताव देता था. कितनी बातों का रहस्य पहेली की तरह अबूझा ही रह गया. कितनी बातों का दर्द मुझे साल रहा है अभी इसी भावुक समय में. तुम खाट-पलंग से नीचे कभी नहीं बैठे पर आज तुम्हारी देह इस तरह ज़मीन पर नहीं रखनी चाहिए थी ठकुराइन को. मैं तुम्हें उसी मान-सम्मान में देखना चाहती हूं रणवीर सिंह, हां! एक बार, सिर्फ़ एक बार शायद आख़िर बार... मैं तुम्हें संपूर्ण रूप से स्पर्श करना चाहती हूं — आंखों में जब्त करना चाहती हूं उस देह के सौंदर्य को. हां, मैं सदा के लिए तुम्हें अपने अंदर महसूस करना चाहती हूं. थरथराते कंठ से तुम्हें बार-बार पुकारना चाहती हूं ठाकुर रणवीर सिंह. पर कौन इज़ाज़त देगा?

''चल उठ, कौशल्या.'' जिज्जी ने हाथ पकड़कर झकझोरा था.

''जिज्जी बाईसा ठाकुर मरे नहीं हैं देखो. अधखुली आंखों की चमक.'' रुलाई का रुका बांध जिज्जी के कंधे लगकर फूट ही पड़ा था. कब से रोके थी इसे मैं... मौत के इस सन्नाटे में. पर अब कितना कुछ पिघल रहा था कलेजे में. भय, शोक! विलाप! विरह! चिंता! जाने कितने अपरिभाषित अहसास थे मन में.

''रोने से ठाकुर भाई की आत्मा को कष्ट होगा, कौशल्या. शरीर नश्वर है सभी को त्यागना है.'' देख मुझे, मेरा तो भाई था वो. पर पिता, पति, जवान बेटा और अब भाई खोते हुए जैसे आंखों का पानी ही सूख गया है. चल हट, यहां गाय के गोबर से लीपना है. अर्थी की तैयारी यहीं होगी न.'' जिज्जी की सांत्वना के शब्दों में पहली बार कोमलता का भाव था, पर ठकुराइन की आंखें जिज्जी को इशारा कर रही थीं, इसे अंदर ले जाओ.

तुम्हारे नाम का दीपक अपनी पूरी लौ के साथ जल रहा है. जिज्जी ने अगरबत्तियां और जला दी हैं. नयी पगड़ी, नये कपड़े सब तैयार हैं ठाकुर, पर यह सब उस यात्रा के लिए हैं जहां तुमने मृत्यु को वरा है.

मेरा सपना तो अधूरा ही रह गया कि तुम लाल मारवाड़ी लहरिएदार साफ़े में आकर मेरा वरण करोगे. कटार भी रख रही है जिज्जी ने तुम्हारे साथ. हां, यह वही कटार है जिससे तुमने मेरी खोली के बाहर लटकी आम की डाली

काटकर मेरे टपरे पर फेंकी थी मजाक करते हुए, ''लो कौशल्या!'' मैंने तुम्हारे दरवाज़े पर तोरण बांध दिया, अब तुम मेरी हुई.''

मैं तुम्हारी हो गयी थी ठाकुर. मेरे टपरे का वो हक़दार तब जाने कहां ग़ायब हो जाता था. झूले की चरर-चूं तब तक बंद रहती थी जब तक तुम उधर होते थे. शायद जिज्जी उसे दूसरे खेतों पर भेज देती थीं. जानते हो ठाकुर वो भी आया है तुम्हें विदा देने. क्या पता, अंदर से ख़ुश होगा कि उसकी ज़िंदगी से तुम हमेशा के लिए चले गये हो या हो सकता है वो तुम्हारे सम्मान में ही आया हो अहसान का कर्ज उतारने. कहा भी था मैंने उससे कि — ''अहसान मानो ठाकुर का, उसने तुझे नामर्द की पगड़ी बंधने से बचा लिया. ये बच्चे तेरे ही नाम से तो पल रहे हैं तेरे घर का चिराग़ बनकर.''

तब से उसने फिर कभी नहीं पूछा कि ठाकुर आमबाड़ी में बार-बार क्यों आता है. उसने आंखों से जो भी कहा हो पर जबान से कुछ नहीं कहा. हां, इतना ज़रूर कहा था, ''चल कौशल्या, तेरे हाथ की रोटी तो मिल रही है वरना तू बराकर भाग जाती तो?'' तब शायद अंदर ही अंदर वह खीझा, अकुचाया और अपमानित भी हुआ होगा पर एवज़ में ठाकुरों की मर्दानगी भरे दो पुत्रों ने उसकी पीठ को घोड़ा बना उसके

कंधों पर बैठ कच्ची अमिया तोड़ उसके कंधों को पितृत्व के भार से भर दिया था शायद. बच्चे उसके जीवन की ललक बन गये हैं. रोटी के दो निवाले भी बच्चों के बग़ैर गले के नीचे नहीं उतार पाता है. बच्चे भी उसी के सिरहाने अग़ल-बग़ल सोते हैं — अब वह हिंडोले पर रात नहीं काटता. खोली में अपने बच्चों को क़िस्से-कहानियां सुनाता है. दहाड़ मारते हुए किसी के रोने की आवाज़ ने मेरी तंद्रा भंग की, ''कौन आया है यह?''

''ठाकुर सा की बड़ी बेटी है.''

''ओह! नाक-नक्श तो ठाकुर जैसे ही हैं.''

''हां, बच्चे तो मां-बाप पर ही जाते हैं.''

''चलो, सब खड़े हो जाओ, समय हो गया है. बिटिया की ही बाट जोह रहे थे सब.'' मंदिर के पुरोहितजी ने यह कहते हुए गंगाजल के छीटे मारते हुए मंत्रोच्चार शुरू किया. पर एक प्रश्न था जो वहां गेंद की तरह उछल रहा है. कभी कोई तो कभी कोई हेरफेर से पूछ रहा है...

''ठाकुर को अग्नि कौन देगा?''

कभी नाम आता छोटे चचेरे भाई का, तो कभी दामाद कुंवर धर्मवीर का. मन बार-बार बोलते चुप हो जाता कि ठाकुर की संतान हैं, बेटे हैं. जब कंडे को उठाने का वक़्त आया तो ठकुराइन की आवाज़ ने सबको चौंका दिया था. ''कौशल्या के बड़े बेटे को मैं गोद लेती हूं, वही देगा ठाकुर को मुखाग्नि.''

''क्या?''

''हां!''

''क्या अनर्थ कर रही हो ठकुराइन! जानती हो इसका अर्थ?'' ठाकुर मा साब लकड़ी की टेक ले खड़ी हो गयी थीं.

''ठाकुर अपनी वसीयत में लिख गये हैं कि मैं ठकुराइन सुभद्रा देवी पत्नी ठाकुर रणवीर सिंह जब भी जिस किसी बच्चे को गोद लूंगी वही सुभद्रा देवी का दत्तक पुत्र होगा और वही मेरी ठाकुर हवेली का उत्तराधिकारी भी बनेगा.''

''अगर कौशल्या तैयार हो तो मैं उसके बड़े पुत्र जयसिंह को समाज के सामने आज से दत्तक पुत्र मानती हूं.''

मैं सकते में आ गयी थी ठाकुर रणवीर सिंह. आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं था. क्या यह चमत्कार था? अब तक मैं अपने बच्चों को तुम्हारा उत्तराधिकारी बताने को आतुर थी पर अचानक ठकुराइन के इस वार से आहत अपने बेटों को अपनी देह से सटाये खड़ी रह गयी. क्यों अब नहीं चाहती मैं कि ये तुम्हारी हवेली के उत्तराधिकारी कहलायें? मेरे अंदर की मां जागृत हो उठी थी शायद. ''नहीं ये मेरे बच्चे हैं ठकुराइन, ये ठाकुरों के बाड़े में बंधे बैल नहीं हैं कि जब तुम चाहो इधर से उधर बांध लो.''

''ये बच्चे मेरे और आमबाड़ी के चौकीदार रतनसिंह के बच्चे हैं. हमारे जीवन का आसरा... इन्हें किसी हवेली का उत्तराधिकारी नहीं बनना.''

रतन ने दोनों बेटे अपने कंधे पर बिठा लिये थे. ''चल, कौशल्या घर चलते हैं.'' कहते हुए.

अब जिज्जी उठ खड़ी हुई थीं, ''कौशल्या, ठकुराइन को तेरे सहारे की ज़रूरत है. देख, सुख के तो सब साथी होते हैं जो दु:ख में साथ दे, वही सही अर्थों में अपना होता है. ठकुराइन पर दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा है, उसे तेरी सहायता चाहिए. एक ही बेटा तो मांग रही है वह. एक तो तेरा और रतन का ही रहेगा न.''

''तो क्या मेरा एक बेटा राजा बनेगा और एक रंक?''

''नहीं! कौशल्या, ऐसा नहीं होगा सिर्फ़ एक के माता-पिता का नाम बदलेगा. पालन-पोषण दोनों का एक साथ एक जैसा इसी हवेली में, तू और रतनसिंह ही करेंगे.''

''मैं आज से हवेली का पिछला हिस्सा रतनसिंह को देती हूं. तुम दोनों यहीं आकर रहोगे. अपने बच्चों के साथ.'' ठकुराइन ने यह कहते हुए ठाकुर की अर्थी के पास अपने चूड़े-बिच्छे उतारकर रख दिये. अब मेरी बारी थी. ठाकुर तुम्हारे प्यार को याद कर मुझे भी तुम्हें कुछ देना था. मैंने रतनसिंह को देखा उसने दोनों बेटे तुम्हारे चरणों के पास खड़े कर बच्चों को आदेश दिया था, ''छोरों अपने धरमपिता ठाकुरजी का पाव लागो.'

जिज्जी के चेहरे पर भावों का एक युद्ध समाप्त हुआ. तुम्हें तुम्हारे ही बेटे ने मुखाग्नि दी.

ई-एन १/९, चार इमली,
भोपाल-४६२०१६
मो. - ९४२४०११३३४

मुक्तक

– के.पी.सक्सेना 'दूसरे'

सिंकने लगी हैं रोटियां फिर फिर से गांव में,
मंदिर कभी तो मस्जिद रहते हैं दांव में ।
बोये थे कल बबूल जो, ग़ैरों के वास्ते,
चुभने लगे हैं अब तो, बच्चों के पांव में.

शांतिनगर, टाटीबंध,
रायपुर-४९२०९९

कहानी

अड़तालिस घंटे

✍ शैल अग्रवाल

अंधेरा अभी भी चारों तरफ़ पसरा पड़ा था और इक्की-दुक्की कारों के अलावा ट्रैफ़िक शांत ही था, वरना लंदन कब सोता है! घड़ी देखी तो सात बजकर दस मिनट हो चुके थे. रोशनी हल्की-हल्की फटनी शुरू हो रही थी. कितना वक़्त लगता है रोज़ मात्र दो मील के इस सफ़र में जबकि सुबह सात बजे ही घर छोड़ देती है वह. ...आज बस, पांच मिनट लेट हो गयी, तो नतीज़ा यह कि दस की जगह तीस मिनट और लग गये. छोटे से इस रास्ते में. ट्रैफ़िक जाम में फंसी तीन बार मुझसे झड़प चुकी है — ''सुबह-सुबह यूं अख़बार लेकर बाथरूम में बंद होने की आदत छोड़ो, अब ख़ुद तो लेट होते ही हो, देखना, मुझे भी मरवाओगे तुम एक दिन.''

सच कहूं तो इन छोटी-मोटी नोंक-झोंकों के बिना हमारी कोई सुबह ही नहीं होती कभी.

फ़्लैट से रिया का क्रश और फिर अस्पताल... बस यही रोज़ का सफ़र है. पौने आठ तक पहुंच जाये तो ठीक, वरना अगले दस मिनट में ही कार पार्क इतना भर जाता है कि मनचाही जगह तो छोड़ो, एक खाली जगह तक के लिए भी अस्पताल के वी. आई. पी. कार पार्क के चार-चार चक्कर लगाने पड़ जाते हैं सीनियर रजिस्ट्रार डॉ. नंदिनी सिंह को, जबकि सिर्फ़ डॉक्टरों के लिए ही सुरक्षित है यह पूरा कार पार्क.

और तब मुझे छोड़ना पड़ता है, ताकि वह पार्किंग का समय बच जाये.

बॉस मिस्टर रौबिंसन तो पहले ही पहुंच जाते हैं वार्ड में, कई बार बताया है उसने मुझे.

''पहले? क्या पता, रात भर सोते भी हैं या सुबह अस्पताल जाने की तैयारी में ही बैठे-बैठे पूरी रात गुज़ार देते हैं ...या फिर शायद घर जाते ही न हों... बीवी से पटती ही न हो और घबराकर यहीं दुबके बैठे रहते हों, देखो तुम कितने लकी हो, कम-से-कम घर लौटने से डरना तो नहीं पड़ता तुम्हें.''

...आख़िर किस दंपति में नोंक-झोंक नहीं होती नंदू...दो बर्तन साथ-साथ होंगे तो खटकेंगे ही. क्या हमारी कम लड़ाई होती है?

...पर नंदिनी के लिए तो यही सबसे बड़ा कौतुक और मज़ाक था मिस्टर रौबिंसन को लेकर. सोचता हूं, सही-सही जान पाती तो कम-से-कम चेहरे पर चिपकी इस अविश्वसनीय और खिसियाई मुस्कान से तो छुटकारा पा ही लेती वह, जो 'आज फिर क़रीब-क़रीब तुमने सुबह का वार्ड राउंड मिस ही कर दिया था.' इस कथन की स्मृति मात्र से ही बरबस होठों पर चिपक जाती है. मुझे पूरा विश्वास है कि 'पर किया तो नहीं सर!'... उत्तर भी ज़रूर ही देना चाहती होगी मेरी तेज़ तर्रार नंदिनी पर मर्यादावश कुछ नहीं कह पाती होगी. आख़िर पति और बॉस में यह फ़र्क तो है ही, सोचते-सोचते उस तनाव भरी मन:स्थिति में भी आंखों को एक क्षीण शरारती चमक गुदगुदा गयी. घड़ी देखी तो अभी भी दो मिनट शेष ही थे.

''तुम भी... बस्स'', कहती गर्दन झटकती उतर गयी वह, दौड़ती-भागती-सी ही.

घर से चली थी तब भी हमेशा की तरह ही, वैसे ही मुस्कराती, दौड़ती-भागती और व्यस्त ही तो थी नंदिनी. पर सब

शैल अग्रवाल

२१ जनवरी १९४७ (वाराणसी).

सितार और भारतनाट्यम के प्रशिक्षण के साथ-साथ अंग्रेज़ी साहित्य, संस्कृत व चित्रकला में स्नातक प्रथम श्रेणी ऑनर्स के साथ तदोपरांत अंग्रेज़ी साहित्य में एम. ए. (बनारस हिंदु वि. वि.)

वर्ष २००३ में मिडलैंड आर्ट कांउसिल ने इंगलिश कविता 'रिफ्यूजी' को रिफ्यूजी चेतना सप्ताह के लिए चुना और शिक्षा पर आलेख को औक्सफौम संस्था ने अपनी विज्ञापन पट्टिका पर. १९६८ से आजतक मुख्यत: ब्रिटेन में लिखना, पढ़ना आदत और मज़बूरी दोनों ही. पहली कविता आठ वर्ष की उम्र में. पहली कहानी ११ वर्ष की उम्र में. दोनों ही तत्कालीन 'आज' अख़बार में प्रकाशित. बचपन के झुटपुट लेखन और जीवन के एक लंबे जुझारू व मौन अंतराल के बाद पिछले एक दशक से लेखनी पुन:सक्रिय. निबंध, कहानी, कविताएं, लघुकथा, हाइकू आदि देश विदेश की विभिन्न पत्रिकाओं और संग्रहों में. मराठी व नेपाली में अनुवादित व कुछ भारत के विभिन्न विद्यालयों में शोधाधीन. शोधपत्र और काव्यपाठ व कहानियां रेडियो और अंतर्राष्ट्रीय मंच से व कई साहित्यिक आयोजनों में सहभाग — कैनन पोएट्स, गीतांजलि, कृति यू.के व यू.के. (हिंदी).

मार्च २००७ से ब्रिटेन से निकलने वाली लोकप्रिय व विचारोत्तेजक 'लेखनी' नामक द्विभाषीय मासिक ई-पत्रिका की संरचना और संपादन.

प्रकाशन: *'समिधा' काव्यसंग्रह पाठकों द्वारा अपनी संवेदना कथन शैली और काव्यात्मकता तीनों के लिए ही बेहद पसंद किया गया. 'ध्रुवतारा' (कहानी संग्रह); 'लंदन-पाती' (निबंध संग्रह).*

प्रकाशनाधीन : *'बसेरा' (कहानी संग्रह) ; 'शेष अशेष' (उपन्यास) व बाल कहानी संग्रह,'नयी नयी कहानियां' (दस कहानियां).*

शीघ्र प्रकाश्य : *काव्य संग्रह -'नेतिनेति'. निबंध संग्रह : 'युगांतर'. कहानी संग्रह : 'सुर ताल' (११ कहानियां).*

सम्मान : *वाराणसी, हरिद्वार, लखनऊ और इलाहाबाद की विविध साहित्यिक व सामाजिक संस्थाओं के अलावा, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, साहित्य अकादमी तथा 'अक्षरम' का संयुक्त अलंकरण: काव्य पुस्तक 'समिधा' के लिए लक्ष्मीमल सिंघवी सम्मान. उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान : उत्कृष्ट साहित्य सृजन व हिंदी प्रचार-प्रसार सम्मान (विदेश). यू.के. हिंदी समिति : हिंदी सेवा सम्मान (लंदन); भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, साहित्य अकादमी तथा 'अक्षरम' का संयुक्त अलंकरण : 'प्रवासी मीडिया' सम्मान.*

कुछ सामान्य होने के बावजूद भी, जाने क्यों मैं आज पल भर के लिए भी ख़ुद को उससे, उसके ख़्यालों से अलग नहीं कर पा रहा हूं. इम्तहान की तैयारी के लिए छुट्टी ली थी, पर पढ़ाई तो दूर, बेवजह ही फ़्लैट में बिखरी यह ख़ामोशी और बेचैनी, एक अपराध बोध...जाने किस अनजाने अनिष्ट की आशंका बनकर ले डूबी है मुझे.

रिया तो ठीक है ना... कहीं उसकी तबियत तो ख़राब... आज फिर गोदी से उतर ही नहीं रही था. कितना परेशान करती है यह रिया भी सुबह–सुबह! पर करे भी तो क्या करे, नौ महीने की ही तो है और फिर नैनी भी तो नयी. इतना विश्वास भी तो नहीं किया जा सकता कि दिनभर के लिए अकेला छोड़ दें अपरिचिता के साथ. अस्पताल से पांच मिनट दूर यह अस्पताल के कर्मचारियों के लिए बनी नर्सरी ही ज़्यादा सुरक्षित जगह लगती है, मन चाहे जब आसानी से देख तो लेती है नंदिनी रिया को वहां जाकर, जब भी वक़्त मिले, मन चाहे.

थोड़ी अधिक अनमनी और चुप थी आज रिया! कहीं... छि:, छि: मैं भी बेवजह ही पता नहीं क्या-क्या सोचने लग जाता हूं. अपनी सोच को धिक्कारते हुए मैंने सामने रखी हंसती-मुस्कराती रिया की तस्वीर पर एक प्यार भरी नज़र डाली. इतनी सुबह-सुबह उठना, तैयार होना कभी-कभार तो ठीक है, पर रोज़-रोज़ तो कोई भी बच्चा परेशान करेगा, मां-बाप की तरह उसकी भी तो ड्यूटी लग गयी है, सुबह साथ-साथ उठकर तैयार होना और फिर क्रैश के लिए चल देना, दिन भर के लिए, मानो क्रैश नहीं, काम पर जाने की ड्यूटी ही हो. 'मानो' क्या है ही, जाये बिना ज़िंदगी भी तो नहीं चल सकती उनकी. महत्वाकांक्षा की आंच पर रखा यह पतीला थोड़ा बहुत तो उबले और खनकेगा ही. उबलेगा और खनकेगा क्या, वक़्त बेवक़्त जलेगा भी और बदरंग भी होगा, पर खाना खाना है, तो बर्दाश्त करना पड़ता है, यह भी. व्यस्त मां-बाप के रहते बच्चों को ऐसी परेशानियों से तो गुज़रना ही पड़ता है. देखना, पर ठीक रहेगी हमारी रिया भी... ऐसे ही हंसती-मुस्कराती, उसी के लिए तो सारी ख़ुशियां सहेजना चाह रहे हैं आख़िर, हम दोनों.

बेटी को याद करते ही तने चेहरे पर ख़ुद-ब-ख़ुद मुस्कराहट तैर आयी... है भी तो बेहद नटखट... गोलगोल रुई के फाए-सी.. नरम और प्यारी, बिल्कुल कैंडी फ्लौस की तरह. जब अपने नीचे के नन्हे-नन्हे दो दांतों के साथ लार गिराती मुझे देखकर मुस्कराती है, तो मन करता है कि उठा कर खा ही जाऊं इसे! अब तो पा..पा..पा..पा. कहती, देखते ही लपककर गोदी में भी आ जाती है, जैसे मानो कितना मिस किया हो दिनभर इसने मुझे.

अस्पताल से छुट्टी ली थी कि थोड़ा पढ़ूंगा, थोड़ा आराम करूंगा पर अपने ही घर में आराम करना मुश्किल और असंभव हो सकता है, मुझे पहली बार पता चला ! बेचैन परिंदे की तरह कहीं भी थिर नहीं हो पा रहा था मैं. वक़्त गुज़ारने को बेवजह ही टेलिविज़न खोलकर चैनल बदलने लगा. मन था कि कहीं टिक ही नहीं रहा था. शेयर बाज़ार में नहीं, देश-विदेश की ख़बरों में नहीं, गरमागरम चटपटे बॉलीवुड के छवि संसार या मनभावन संगीत तक में नहीं. फिर सोचा, फुरसत मिली है तो महीनों से बिखरे और जमा इन पत्रों का ही जबाव दे दिया जाये, शायद उस व्यस्तता में ही मन की इस निरर्थक दुश्चिंता से मुक्ति मिले.

टेलिविज़न बंद करने ही जा रहा था कि अचानक ही चल रहा कार्यक्रम रोकते हुए, आपातकालीन ''अभी–अभी ख़बर मिली है'' की अप्रत्याशित और बेचैन करने वाली आवाज़ ने और धुएं भरी एक-के-बाद एक आती तस्वीरों ने मुझे कुरसी से उठाकर वापस वैसे ही तानकर सीधा खड़ा कर दिया, जैसे कि पहले मैं खिड़की के पास बेहद उद्विग्न मन:स्थिति में खड़ा था... एक बार फिर दोनों मुट्ठियां कसकर भिंची हुई थीं, माथे की नस किसी अप्रत्याशित आशंका में बेवजह लपलप कर रही थी.

टेलिविज़न को वैसे ही खुला छोड़कर अब मैं फिर से वरांडे में खड़ा था और फिर तुरंत ही रेलिंग छोड़, हाथ बांधकर कमरे में वापस चहलक़दमी कर रहा था. नंदिनी से संपर्क तो हर हाल में करना ही होगा और तुरंत ही करना होगा. जो भी सुना और देखा था, पूर्णत: विचलित करने के लिए पर्याप्त था. अब तो उस अनचाहे भय ने अजगर बनकर पूरा ही निगल लिया था मुझे. सूखते गले से बारबार थूक निगलता मैं बेचैन था, नंदिनी का हाल-चाल जानने के लिए, रिया को वापस घर लाने के लिए. प्रार्थना कर रहा था दोनों की पूर्ण सलामती की... बेहद डर रहा था, कहीं किसी अप्रिय ख़बर का सामना न करना पड़ जाये. कैसा बेवकूफ़ हूं मैं, ख़ुद ही अपने प्रियजनों के अनिष्ट के बारे में सोच रहा हूं,

ख़ुद को धिक्कारते हुए मैंने वापस अपने काम में मन लगाना चाहा, पर हाथ-पैर बेवजह ही सुन्न हुए जा रहे थे. नंदिनी मेरी बेहद व्यस्त पत्नी और रिया हमारी नौ महीने की असहाय, लाड़ली, बेहद नाजुक, फूल-सी बेटी... कैसी है, कहां हैं, मुझे कुछ भी तो नहीं मालूम था.

बाहर अचानक ही उठे पुलिस कारों और एंबुलेंस के दिल दहला देने वाले शोर ने मेरी तंद्रा को अब पूरी तरह से छिन्न-भिन्न कर दिया था. बात इतनी उलझ जायेगी और एक आम-सी दिखती सुबह यूं आत्म परीक्षण के अड़तालीस घंटों में परिवर्तित होकर धैर्य की, साहस की इस तरह से अग्नि परीक्षा लेगी, यह सब कब सोच पाया था मैं भला. अगले अड़तालीस घंटे में जो भी हुआ, कल्पनातीत था. नंदिनी के लिए भी तो यह सब उतना ही अप्रत्याशित और विचलित करने वाला रहा होगा, जितना कि मुझे महसूस हो रहा है. भय भी तो आख़िर संक्रामक ही होता है. मेरी भयभीत और बेचैन उंगलियां अब बारबार नंदिनी के मोबाइल का नंबर मिलाने की कोशिश कर रही थीं जो मन की सारी व्यग्रता और तत्परता के रहते भी लग कर ही नहीं दे रहा था....

... रोज़ के पहचाने रास्ते हो कर घर से घर तक आना-जाना भी इतना लंबा और भयावह हो सकता है सुबह-सुबह

सोचा नहीं था नंदिनी ने! सुबह की ऑपरेशन लिस्ट का क्रम तो निर्धारित करके ही गयी थी कल रात ही, फिर भी मन-ही-मन एक-एक मरीज़ के क्रम और ख़ास ज़रूरतों को याद करती, दोहराती नंदिनी ने अपने उसी पुराने मनचाहे कोने में कार खड़ी कर दी. जाने क्यों उसे लगता है कि यही कोना भाग्यशाली है उसके लिए. जिस दिन यहां पर जगह मिल जाती है, दिन अच्छा गुज़रता है उसका. न मरीज़ परेशान करते हैं, न सहकर्मी और ना ही ख़ुद को भगवान समझने वाले उसके बॉस मिस्टर रौबिंसन.

अभी वह मुश्किल से गाड़ी के बाहर निकल ही पायी थी कि मोबाइल की घंटी और तीन-तीन कॉल वेटिंग की फ़्लैशिंग लाइट्स ने पुकारना शुरू कर दिया. मां, शोभित और मिस्टर रौबिंसन तीनों ही एक साथ याद कर रहे थे उसे. नंदिनी की ज़िंदगी के तीन प्रमुख वी. आई. पी..... किसको जवाब दिया जाये और किसे रोका जाये, पल भर की ही उलझन थी. स्पष्ट था कि कितना भी ज़रूरी हो, अस्पताल की कॉल ही ड्यूटी के वक़्त की प्राथमिकता और पहली पुकार है. एक कर्तव्यनिष्ठ और अपनी ज़िम्मेदारियों के प्रति जागरूक डॉ. नंदिनी सिंह ने मिस्टर रौबिंसन का नंबर ही सबसे पहले घुमाया. आवाज़ रौबीली, घबराहट भरी और शीघ्रता की तत्परता लिए हुए थी — 'तुरंत ही थियेटर नं. २ के बाहर मिलो. आपातकालीन स्थिति है.'

'आपातकालीन स्थिति...?' नंदिनी भौंचक्की थी, थोड़ी भयभीत भी.

कैसे भी कार का दरवाज़ा बंद करती, ख़ुद को संभालती दौड़ पड़ी थी वह.

अच्छी ख़ासी भीड़ जमा थी वहां पर.

नर्स, डॉक्टर, लैब टैक्नीशियन, व पूरा-का पूरा थियेटर स्टॉफ सभी मौज़ूद थे. किंग क्रॉस रेलवे स्टेशन पर तथा तीन–चार जगह और आतंकवादी हमले हुए हैं. भारी क्षति हुई है और बड़ी संख्या में लोग घायल भी. तीन मुख्य अस्पताल जहां घायल अगले दस मिनट में आने शुरू हो जायेंगे, उनमें से एक उनका अस्पताल भी था और अब सैनिक क्षमता की तैयारी के साथ पूरी टीम को तैयार व सतर्क रहना होगा. सोच मात्र से पेट में उमड़ती ऐंठन को काबू करती नंदिनी ने ख़ुद को कैसे भी संयत करने की कोशिश की... उसके सामने एक व्यस्त और ज़िम्मेदारी भरा दिन खड़ा था. जाने कैसे-कैसे भयावह निर्णय लेने पड़ेंगे, नंदिनी उस कठिन दिन के बारे में सोचने तक में ख़ुद को अक्षम पा रही थी.

स्थिति की गंभीरता और सारी बातें समझती-बूझती नंदिनी पांच मिनट को लेडीज़ टॉयलेट के एकांत में ही बात करने लायक वक़्त निकाल पायी थी. उसे पता था कि घर पर संपर्क करना कितना ज़रूरी है इस वक़्त, शोभित और मां भी यह ख़बर सुनकर ज़रूर ही उसका हाल–चाल जानने के लिए परेशान हो रहे होंगे जितना कि वह ख़ुद रिया की सुरक्षा को लेकर है. पता चला है कि लंदन ब्रिज के आसपास का सारा इलाक़ा सील कर दिया गया है और रिया की नर्सरी भी तो ठीक वहीं पर है. बाहर सन्नाटे को चीरती पुलिस कारों और एंबुलेंसों का शोर स्थिति और वातावरण को और भी गंभीर और असह्य कर बना था. कई बार फ़ोन लगाने के बाद पल भर को बड़ी मुश्किल से शोभित से बात हो पायी थी ... ''थियेटर जा रही हूं. .. आपातकालीन स्थिति है...कब तक लौटूंगी, अभी कुछ कह नहीं सकती. तुम अपना और रिया का ध्यान रखना.''

बस! इतना ही कहकर तुरंत फ़ोन वापस रख दिया था नंदिनी ने. हमेशा की तरह आज भी बेहद जल्दी में ही थी नंदिनी.

''अभी-अभी पता चला है कि लंदन ब्रिज के आसपास का सारा इलाक़ा सील कर दिया गया है. माना, अपनी रिया की नर्सरी वहीं पर है, पर देखना, उसे कुछ नहीं होगा... बहुत लंबी उम्र है हमारी रिया की.''

कहते-कहते रो पड़ी थी नंदिनी. उसकी कांपती आवाज़ की गूंज ख़ुद मेरे अपने गले में भी तो आ अटकी है.

''तुम परेशान मत होना. मैं अभी, तुरंत ही, कैसे भी रिया को घर सुरक्षित लेकर आता हूं.''

अपनी तरफ़ से समझाने और सांत्वना देने की भरपूर कोशिश की थी मैंने, परंतु कहीं कुछ था जो भय और घबराहट बनकर अटक गया था आसपास और मेरे गले में भी.

कार में रिया की सीट तक नहीं थी. रिया हमेशा नंदिनी के साथ और उसी की ही कार में घर से बाहर आती-जाती है और मैं बेवकूफ़ की तरह घबराहट में अपनी ही कार लेकर दौड़ पड़ा हूं. कैसे भी कार के फ़र्श पर अपना कोट बिछाकर और अपनी पैंट की बेल्ट से अगली सीट के पाए के साथ उसे सीक्योर कर धीरे-धीरे कार चलाता, इधर-उधर गलियों से बचता-निकलता, मैं नन्हीं रिया को घर तो ले आया, पर मुझे यह अनुमान नहीं था कि अगले अड़तालीस घंटे तक न सिर्फ़ मुझे रिया के मां-बाप दोनों का ही फ़र्ज निभाना था अपितु हफ़्तों रिया की मां और ख़ुद को... पूरे विक्षिप्त परिवार को भी इस अप्रत्याशित सदमे से उबरने में ही गुज़ारने होंगे.

बाहर का आतंक बंद दरवाज़ों से कैसे बेहद सुरक्षित आम घरों तक में घुस आता है, अचंभा था मुझे .. बेफिक्र और एक ख़ुशहाल ज़िंदगी जीते, यार-दोस्तों के संग हर शाम बीयर के पैग पर ठहाके लगाने वाले डॉ. शोभित सिंह दुनिया में ऐसे अनुभवों से भी गुज़रना पड़ता है कभी-कभी.' यही तो ज़िंदगी है — मैंने ख़ुद को समझाने की कोशिश की. मर्द और वह भी सिंह... कम से कम मुझे तो विचलित नहीं ही होना चाहिए. परंतु यह एक अप्रत्याशित हताशा भरा कठिन अनुभव था, मेरे लिए भी.

मैं स्तंभित था. ग्लानि से भरा, चुप था. नंदिनी इतनी व्यस्त है... अकेली ही सब कुछ झेल रही है और मैं कुछ नहीं कर सकता. स्थिति चिंतित करने वाली और कल्पनातीत थी. चिंता थी मुझे नंदिनी के आराम को लेकर, उसके स्वास्थ्य को लेकर. पेट में हज़ारों घुमावदार ऐंठन देने वाली वह बेचैनी जब असह्य हो चली तो बेमतलब ही फिर से कमरे के चक्कर लगाने लगा. बारबार फ़ोन के ठीक से रखे रिसीवर को उठाकर चेक करता कि रिसीवर ठीक से रखा भी है या नहीं. क्या पता कब नंदिनी को मेरी ज़रूरत पड़ जाये!

अड़तालीस घंटों तक पत्नी का मोबाइल अनुत्तरित रहने के बाद, पहली बार जवाब के रूप में वह अपरिचित हलो भी बेहद सांत्वना दे रही थी.

''हां, हां, डॉ. सिंह. मैं थिएटर नर्स सांड्रा बोल रही हूं. आपकी पत्नी ठीक हैं. आख़िरी केस अभी-अभी सिलकर बंद किया है उन्होंने. केस पूरा होते ही, ऑपरेशन थियेटर के बाहर आते ही, तुरंत आपसे बात करेंगीं. आप उन्हें लेकर क़तई परेशान न हों. बेहद थकी हुई ज़रूर हैं, पर ठीक हैं और सुरक्षित हैं. मुझे आपको यही संदेश देने को कहा गया है.''

मां के बिना बड़ी मुश्किल से रो-रोकर सोयी रिया की भी चिंता थी मुझे. सोती रिया उठ न जाये, इसलिए अपनी बेचैनी को बेआवाज़ दबाते हुए जैसे-तैसे अगले तीस मिनट निकाल दिये मैंने. नंदिनी के फ़ोन का बेसब्री से इंतज़ार था. अड़तालीस घंटे हो चुके थे नंदिनी से बात किये बग़ैर. पता नहीं पल भर को भी सोयी भी थी या नहीं वह!

फ़ोन की वह घंटी एक करेंट की-सी तीव्रता के साथ मेरे हाथ पैरों से गुज़र गयी.

''हां नंदू कैसी हो? ठीक तो हो, ना? बेहद थकी हो? सुनो अपनी कार को वहीं पार्क में ही रहने दो. मैं लेने आता हूं तुम्हें.'' नंदिनी कुछ बोले भी, इसके पहले ही सवालों की झड़ी लगा दी थी मैंने. वाकई में बेहद चिंतित था मैं.

'' नहीं मैं ठीक हूं. दस मिनट का ही तो रास्ता है. फ्रेश होकर आती हूं, अभी.''

बेहद थकी और टूटी-फूटी भारी आवाज़ में इतना ही कह पायी थी नंदिनी.

''तुम रिया के पास ही रहो. सुनो, घर के खिड़की दरवाज़े सब बंद रखना और बेवजह ही बाहर झांकना, घूमना मत. अपना और रिया का ध्यान रखना. मैं बस आती हूं.''

नंदिनी को सुनकर मन भर आया. उसे बस हमारी ही फ़िक्र थी, इस समय भी. इस समय तो उसे भी घर के अंदर और सुरक्षित होना चाहिए था...पास और साथ होना चाहिए था. ख़ैर...जहां भी है, सुरक्षित रहे और सुरक्षित ही घर पहुंच जाये. पहली बार ख़ुद को बेहद कमज़ोर, बेबस... परिस्थितियों के आगे पूरी तरह से लाचार महसूस कर रहा था मैं. पलभर में ही सब कुछ... जीवन... परिवार... एक ऐसे फूल की तरह लगने लगा था, जिसे किसी भी हालत में झरने नहीं दे सकता था मैं, पर फूलों की तरह ही ज़िंदगी को भी मुठ्ठी में बंद करके भी तो नहीं रख सकता था मैं!

नंदिनी के लिए, अपने और रिया के लिए, बेहद धार्मिक न होते हुए भी, मन-ही-मन भगवान से निरंतर प्रार्थना किये जा रहा था. पूरे परिवार के जाने-अनजाने सब अपराधों के लिए बारबार माफ़ी मांग रहा था अब मैं. सब कुछ ठीक था फिर भी मेरे आंसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे.

इंतज़ार जब असह्य हो गया तो रिया को गोदी में लेकर खुले दरवाज़े की ड्योढ़ी पर जा खड़ा हुआ और नंदिनी की कार के बग़ैर बेहद सूनी लगती सड़क को घूरने लगा. ''क्यों इतनी उथल-पुथल, इतना उपद्रव करते हैं ये आतंकवादी, क्या सैकड़ों मासूमों की जानें और हज़ारों का दुख ही जवाब है इनकी मांगों का?''

बंधी मुठ्ठियां और माथे की तड़कती नस अब चेहरे को ही नहीं, मेरे पूरे शरीर की एक-एक मांसपेशी तक को कसे जा रही थी.

आख़िर... कार ड्राइव में आ ही गयी और नंदिनी बिना कुछ बोले, हाथ पकड़कर मुझे और रिया को झपटती-सी कमरे के अंदर ले आयी. मैं जानता हूं रात के उस नीरव सन्नाटे में हमारी ड्योढ़ी पर कोई बम नहीं था, पर उसकी आंखें बेहद डरी-डरी और आंसू भरी थीं.

''...कैसे समझाऊं तुम्हें, यह वक़्त दरवाज़े पर खड़े होकर इंतज़ार करने का नहीं है.'' भरे गले से बस इतना ही कह पायी थी वह उस समय.

घर के बाहर का खुला पड़ा दरवाज़ा भी उसने ही चाभी

से बंद किया था, पर कमरे में आते ही जूतों को वहीं फेंककर सोफ़े पर निढाल गिरी-सी बैठ गयी थी बेहद थकी नंदिनी...ठीक मेरे सामने और चलचित्र-सी अभागी उस सुबह के हर पल को बंद आंखों के नीचे फिर-फिर से जीने लगी थी, शायद.... भरे गले से निकले वे शब्द बीच-बीच में टूट रहे थे... और असह्य वह सदमा अंदर-ही-अंदर अभी तक तोड़े जा रहा था उसे.

''कार तो लकी जगह पर ही रुकी थी शोभित, फिर दिन ऐसा क्यों गुज़रा? ''

अनुत्तरित और बेबस, मैं देख रहा था कि कैसे चेहरे की एक-एक मांसपेशी और आंखों के नीचे पड़े काले गड्ढे, सारी कोशिशों के बाद भी, उसकी अभूतपूर्व थकान की चुगली किये जा रहे थे. सोयी रिया को उसके बग़ल से उठाकर, उसके अपने बिस्तर में सुलाकर, एक बार फिर मैं पत्नी की बग़ल में जा बैठा था और आहिस्ता-आहिस्ता उसके आवेश से कांपते कंधों को दबाने लगा था. शायद थोड़ी थकान से ही राहत दे पाऊं.... पर वह तो इतनी थकी हुई थी कि मेरे हाथों का बोझ भी असह्य था मेरी अपनी ही नंदिनी के लिए.

''चाय बना दूं, पिओगी?'' उसका ध्यान बांटने को मैंने पुन: पूछा उससे.

पूछते ही, ढह गयी वह. फफक-फफककर रोने लगी. ''ऐसा क्यों शोभित...ऐसा क्यों? जानते हो चार-चार ऑपरेटिंग थिएटर लगातार चल रहे थे और डस्टबिन वाले बड़े-बड़े काले बैगों में भर-भरकर इंसानों के अवयव फेंक रहे थे हम. कितने मरे... यह तो छोड़ो. कितने अभागे अंग-भंग हुए, यह पूछो तुम. संज्ञाहीन हो गया था मन और मस्तिष्क. हमने प्रश्न पूछने बंद कर दिये थे. मशीनवत् अपना-अपना काम करते जा रहे थे सभी. एंबुलेंस तो एंबुलेंस बसों में भर–भर कर घायल आये हमारे पास. जिसे जो मिला उसी में बैठकर अस्पताल ले आया गया... चाहे किसी भी हालत में हो. ज़िंदा-मुर्दा कैसे भी, पहले अस्पताल तो पहुंचे, फिर सोचा जायेगा कि क्या हो सकता है, बच पायेगा या नहीं. स्थिति इतनी ज़्यादा आपातकालीन थी. क्या यह सब करते समय उन हत्यारों ने कुछ भी नहीं सोचा... कैसे कोई इतना क्रूर, हृदयहीन हो सकता है, शोभित! बिना सोचे-समझे इतनी तबाही ला सकता है! और हम कैसे इन्हें ऐसा करने दे सकते हैं! बात बर्दाश्त के बाहर है! कैसे सिर्फ़ इसलिए कोई अपना सब कुछ खो दे कि वह ग़लत समय पर ग़लत जगह पर था! कोई जातीय दुश्मनी नहीं, कोई राग-द्वेष नहीं, असल में तो कोई जान-पहचान ही नहीं! फिर भी कीड़े मकोड़े की तरह यूं इतनी निर्दयता से, बेमलब ही मसल दिये जायें, ज़िंदगी से हाथ धोना पड़े?

क्या आज की इक्कीसवीं सदी में भी यह सब, ऐसे ही होना चाहिए! क्यों होने देते हैं हम लोग ऐसा! आख़िर यह सब तोड़–फोड़ और भयानक जान-माल का नुक़सान करने वाले भी तो हममें से ही एक हैं. हमारे बीच में रहते हैं और बीच में रहते हुए ही यह सारी खूंखार तैयारी करते हैं... घिनौने षडयंत्र रचते हैं! कोई-न-कोई तो जानता ही होगा उन्हें! किसी के तो भाई, पति, बेटे होंगे ही वे! इतनी बड़ी साजिश रचते हैं, उसे अंजाम देते हैं और किसी को पता तक नहीं चल पाता? क्या संभव है ऐसा, शोभित? थक गये थे हम लोग, लोगों के बम-विस्फोट में चिथड़े-चिथड़े हुए हाथ पैर सिलते और काटते-छांटते, आंखें निकालते-निकालते. पिछले अड़तालीस घंटे पलक तक नहीं झपकायी है हम में से किसी ने. यंत्रवत् काम करती रही है पूरी टीम. कोई संवेदना नहीं, कोई जान नहीं. सुन्न थे हम सभी... काश वे जिन्होंने ऐसा किया, देख पाते इस विनाश को, अपनी इस ख़ूनी लिप्सा के विनाशकारी तांडव को ! मेरी सहेली रेहाना को जानते हो ना तुम?''

अचानक ही नंदिनी की आवाज़ बेहद भारी हो गयी और वह पूरी तरह से टूटकर बिखरने लगी. मैंने पानी का भरा हुआ गिलास उसके सूखते होठों से लगा दिया और उसकी पीठ को धीरे-धीरे सहलाने लगा. पर नंदिनी तो अपने दुख में डूबी मानो किसी दूसरी ही दुनिया में जा पहुंची थी.

''हां, वही रेहाना, जो तुम्हें बहुत सुंदर लगती थी.''

''...हां वही, जो फ़ैशन मॉडल थी... या यूं कहूं कि बनने जा रही थी...एक बेहद सफल और सुंदर मॉडल. जिसके सामने एक शानदार कैरियर और भविष्य बांहें फैलाये खड़ा था. वही ज़िंदादिल और ख़ूबसूरत रेहाना भी थी, वहां किंग क्रॉस पर, उसी अभागी ट्रेन में, और साथ में उसका सोहम भी. ... वही सोहम शर्मा, जिसके साथ अगले महीने उसकी शादी होने वाली थी. बम ठीक सोहम की सीट के नीचे फटा था और जानते हो शोभित, सोहम के पैर की सारी हड्डियां चूर-चूर होकर एक बड़े धमाके के साथ किरच-किरच कांच के टुकड़े-सी, हवा में बिखर गयी थीं. चारों तरफ़ गिरती सामने बैठी रेहाना के चेहरे में जा धंसी थीं. उसकी दोनों आंखें ले डूबी थीं. जीवन भर जिसने इतना प्यार किया, मरते-मरते इतने सारे दुख एक साथ ही दे गया वह उसे... या फिर हमेशा के लिए समा गया उसमें.... तिरोहित हो गया उसके अंदर ही. बत्तीस टांके तो सिर्फ़ आंखों के आसपास ही लगे थे. चेहरे पर जो लगे, सो अलग.... फिर भी तो कुछ भी नहीं

बचा पाये हम, शोभित. ...कोई जीवन नहीं, जीवन-साथी भी नहीं. और तो और रोटी-रोज़ी कमाने के लिए जिस रूप का सहारा ले रही थी, वह रूप तक नहीं रहा अब तो उसके पास.... चेहरा ऐसा कि अगर देख पाती तो ख़ुद ही डर जाती. अब कोई सोहम नहीं है इस दुनिया में उसे प्यार करने के लिए, शादी करने के लिए...एक आम और ख़ुशहाल जीवन देने और जीते रहने के लिए. वैसे तो अच्छा ही है कि आंखें नहीं रहीं, भयावह यह चेहरा कैसे देख पाती भला वह, तुम ख़ुद ही सोचो. विश्वास मानो शोभित, हम सबने मिलकर बहुत कोशिश की थी कि कम से कम एक आंख तो बचा ही लें. कम से कम जी तो पाये वह. माना, बिना हाथ पैर के जीवन कठिन है पर बिना आंख के तो भयावह और नीरस है...वह भी पच्चीस साल की उम्र में? कैसे जियेगी अब? कुछ भी तो नहीं कर पायी मैं, शोभित. कुछ नहीं कर पायी मैं उसके लिए.'' ग्लानि और दु:ख में डूबी नंदिनी बारबार ख़ुद से ही सवाल पूछे जा रही थी और गोल-गोल उन यातनाओं के भंवर में डूबती-उतराती, हर पल पुन: पुन: जी रही थी, सह रही थी अकेले-अकेले ही सब कुछ. अब वह सिसकियों के साथ रोने लगी थी और मैं उसका दर्द बांटने की कोशिश में, कुछ करने की बजाय, निशब्द बुत बना उसे सुन रहा था. बीच-बीच में उसकी पीठ सहला लेता था, आंसू पोंछ लेता था.

'आख़िर ऐसा क्यों शोभित... तुम्हीं बताओ ऐसा क्यों, क्यों हम इतने लाचार हैं?'

कोई उत्तर नहीं था उसके सभी दंश देते सवालों का मेरे पास. अंदर से उठती विचारों की उबकाई चैन नहीं लेने दे रही थी. कैसे सहा होगा मेरी नंदिनी ने यह सब अकेले-अकेले ही. मुझसे जो सुना तक नहीं जा रहा था, नंदिनी उसी के बीच से गुज़री है. झेला है... वह भी, पल-पल जीवन मृत्यु की गंभीर ज़िम्मेदारी, युवाओं को अंगभंग करते समय एक असह्य अपराध बोध कांधे पर लिये हुए, बिना किसी विश्राम या ठहराव के... लगातार और यंत्रवत्.

रोते-रोते जब थक गयी, तो थकी नंदिनी का सिर मेरे कांधे पर एक ओर ढुलक गया और वैसे ही रोते–रोते ही सो भी गयी वह. बह आये झाग और आंसुओं को थके मुंह और कंधे से पोंछकर मैंने वहीं सोफ़े पर आराम से लिटा दिया उसे. सिर के नीचे पास पड़ा कुशन लगा दिया और पास पड़ा कंबल ओढ़ाकर चुपचाप कमरे के बाहर निकल आया.

नंदिनी को आराम की ज़रूरत थी. शरीर पर ही नहीं आत्मा पर भी बहुत कुछ झेला और सहा था उसने पिछले अड़तालीस घंटों में.

बाहर बरामदे की रेलिंग पर झुककर सिर बाहर की ओर लटकाया तो अजीबो ग़रीब तस्वीरों ने मुझे एक बार फिर से घेर लिया. कहीं रिया की आंखों के गोले पड़े दिखलाई देने लगे तो कहीं अपने और नंदिनी के रेशे-रेशे हुए हाथ पैर... सिर और धड़, ख़ून में लथ-पथ शरीर दूर कहीं... अलग-अलग बिखरे हुए. घबराकर अंदर को वापस दौड़ा. ऑक्सीजन की बेहद कमी महसूस होने लगी थी मुझे. ताज़ी हवा मानो ग़ायब हो चुकी थी चारों तरफ़ से और अपनी ही धड़कनें इस कदर शोर कर रही थीं मानो कान में नगाड़े बज रहे हों.

'पर, यह तो एक सभ्य समाज है... विकसित देश है ... यहां पर कैसे हो पाया यह सब?' कायर पड़ चुकी बुद्धि ने एक और सहमी-सी दस्तक देने की कोशिश की.

अंधेरी रात के उस नीरव सन्नाटे को चीरते, गश्त लगाती पुलिस कारों के सायरन अभी भी मुझे दहला रहे हैं और अपने ही फ़्लैट की बालकनी में अकेला खड़ा मैं बुत बन चुका हूं, सोचे ही जा रहा हूं —

'यह कैसा भय है, जो हादसे के पश्चात भी उद्विग्न कर रहा है, मन को ले डूबा है? हम तो ख़ुशकिस्मत हैं. लंदन के बीचो–बीच, उसी क्षेत्र में रहते हुए भी हाथ, पैर, आंख, नाक, कान, सब सही-सलामत हैं हमारे. हममें से कोई भी ट्रेन पर या स्टेशन के आसपास नहीं था वहां, जहां वे बम फटे थे. हमारा कोई नुक़सान नहीं हुआ, फिर क्यों बेचैन हूं मैं? थकी ज़रूर है, पर नंदिनी ज़िंदा है, मेरे पास है. रिया हमारे साथ है; मेरा परिवार और मैं सुरक्षित हूं... फिर किस आशंका से इतना सहमा और भयभीत हूं मैं? ... आख़िर क्यों? — ''

'अंदर कमरे में नंदिनी बेसुध सो चुकी है, पर उसके द्वारा उठाये सवालों और पिछले अड़तालीस घंटों की उन अप्रत्याशित घटनाओं ने हज़ारों अन्य लोगों की तरह मेरे अंदर भी एक आतंकी विस्फोट का रूप ले लिया है. सारे टूटे बिखरे विचारों को समेटता-सहेजता, मैं बार-बार अंदर से उठती अपनी ही इस आवाज़ से परेशान हूं — ऐसा और कब तक... आख़िर ऐसा क्यों... उन मृत और घायलों की जगह हम भी तो हो सकते थे.... थे क्या, हो सकते हैं ... कहीं पर, और कभी भी. पर,... क्या वाकई में कुछ भी नहीं कर सकते हम?'

1a, Blackroot Rd, Sutton, Coldfield,
West Midlands. U.K. B74 2QH.
e.mail: shailagrawal@hotmail.com,
shailagrawala@gmail.com,
editor@lekhni.net

पंचमी के चांद... (पृष्ठ १७६ का शेष....)

घर लौटते. थकान से निढाल होने पर उनका एक नन्हा सपना होता, एक साथ पूल में कूद पड़ने का, लेकिन अपने इस सपने को उन्होंने फ़िलहाल पार्टी के बाद के लिए स्थगित कर रखा था.

□

लेकिन जाने क्या हुआ कि पार्टी के दो दिनों पहले तक क्यारियों में फूल खिले ही नहीं. गुलाबों की सारी कलियां कसी की कसी... बिल्कुल नहीं लगता था कि ये एक दो दिनों में चिटकेंगी.

आकांक्षा बेहद उदास हो आयी. सब कुछ करके भी क्यारियों में ज़बरदस्ती फूल नहीं खिलाये जा सकते थे. विकास, सूनी क्यारियों से ज़्यादा आकांक्षा के बुझे चहरे को देखकर हताश था. अंत में दोनों को एक साथ सूझा, क्यों न हम फ़्लॉवर शॉप से खिले-खिले फूलों के ढेर सारे गमले ले आयें. विचार मात्र से दोनों ने अपनी-अपनी गाड़ियां निकालीं और अलग-अलग दो-दो ट्रिपें मार कर खिले गुलाब और मौसमी फूलों से पूरी तरह लदे ढेर सारे गमले ख़रीद लाये. और उन्हें कार से उतार–उतार कर हर तरफ़ ख़ूबसूरती से सजा दिया. क्यारियां बेशक थोड़ी सूनी रहीं पर दोनों भरपूर संतोष से एक दूसरे का उत्साह बढ़ाते रहे.

शाम विकास ने आकांक्षा की लायी पिंक शर्ट पहनी और आकांक्षा ने रुपहली एम्ब्रॉयडरी वाली शिफॉन की मैक्सी.

एक के बाद एक दोस्त आते गये. कारों से पूरा ड्राइव-वे पट गया. गुलदस्तों और सौगातों के ढेर लग गये. वे मद्धम म्यूज़िक के बीच हर मेहमान को अटेंड और इंटरटेन करते रहे. ड्रिंक्स और डेज़र्ट से लेकर डांस तक, पार्टी पूरी तरह हिट रही, बीच-बीच में ज़ोक्स और लतीफ़ों से भरपूर कहकहे, लोग तारीफ़ करते नहीं अघा रहे थे.

रात बारह बजे तक भीड़ छंटी. मित्रों ने जितने बन पड़े, कुर्सियां, मेज़ें वग़ैरह अंदर करने में मदद की. सब करते हैं. इस सेवक़ विहीन समाज में. फिर भी सबके जाने के बाद काफ़ी कुछ यहां से वहां तक बेतरतीब फैला हुआ था, और इतने दिनों यहां रहने के बाद अब वे पूरी तरह जान चुके थे कि बेतरतीबी के लिए इस समाज में कोई जगह नहीं है, और सुबह ऑफ़िस भी तो...

अत: दोनों लस्त-पस्त क़दमों से यहां वहां फैली चीज़ों को समेटने में लग गये. मुड़ी तुड़ी पेपर नैपकिनें, बोतलें, कैन, ट्रे, प्लेटें, मूढ़े, स्टूल... विकास के लाख मना करने पर भी आकांक्षा जानती थी कि अकेला विकास कहां तक करेगा. इसलिए वह भी बिना थकान जतलाये किसी तरह चीज़ें जल्दी-जल्दी अंदर लाने में जुटी थी. अंतत: ड्रिंक्स की एक बड़ी क्रेट अंदर लाती हुई आकांक्षा बरामदे में पड़े सोफ़े पर सुस्ताने के लिए अधलेटी हो आयी. आंखें मुंदते ही वह ऐसी गहरी सो गयी जैसे पूरी तरह बेहोश हो... विकास ने देखा, सोचा दो चार मिनट सुस्ता ही लेने दे... सारी चीज़ें समेटने के बाद जगा देगा.

वह अकेले लंबी केन-चेयर खिसकाते हुए अंदर तक ले भी आया. अब सिर्फ़ दो-चार लंबी टेबल्स बाक़ी थीं जो बिना आकांक्षा की मदद के खिसकनी मुश्किल थीं. विकास ने लाचार निग़ाहों से सोफ़े पर सोयी आकांक्षा की ओर देखा... उसमें अब बुलाने भर की भी, न शक्ति थी, न इच्छा... इसलिए उसने अकेले ही लंबी टेबल खींचनी शुरू की. काफ़ी पास तक खींच कर लाया भी लेकिन अब उसकी भी शक्ति चुक रही थी. थोड़ा सुस्ताने की गर्ज से वह अभी अभी अंदर लगे मेन सोफ़े पर लेट गया. ... मिनटों में दोनों गाढ़ी नींद के आगोश में थे. उन्हें पता भी नहीं था कि पंचमी का चांद उनके बेडरूम की खिड़की पर देर से ठहरा उनका इंतज़ार कर रहा था.

चांद इसके पहले भी पिछली बार इसी खिड़की के रास्ते गुज़रा था तब भी वे दोनों थकान से ढेर ऐसे ही सोये पड़े थे. कभी बग़ीचे की सफ़ाई, कभी पूल की रगड़ाई के बाद... उन्हें चांद के निकलने या गुज़रने की कोई सुधबुध नहीं रह गयी थी.

जाते हुए उदास चांद ने एक हताश नज़र खिड़की पर डाली... पता नहीं कब फिर वे दोनों उसे तलाशते खिड़की पर आयेंगे... वह तो उन्हीं दोनों का चाहा पूरा करने के लिए आया था. दोनों यानी विकास और आकांक्षा!

बी-५०४, रुनवाल सेंटर,
गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार,
चेंबूर, मुंबई-४०००८८.
फोन : २५५०४९२७.

कितने प्रश्न (पृष्ठ १५० का शेष....)

फेंका था. फिर यह विष्णु के हाथ कैसे लग गया?

अब जाने कितने प्रश्न रूप नारायणी के सामने आ खड़े हुए. किस-किस का जवाब पंडितजी के पास जाकर पूछेगी? विष्णु पान-बीड़ी का कह कर सड़क पर निकल गया.

नारायणी देर तक बरामदे के खंभों को टकटकी लगाये देखती रही. फिर एक झटके से उठी और खंभे के पास जाकर अपना सर पटक कर जार-जार रो दी.

आई टी आई बस स्टॉप के सामने
अंबाला शहर-१३४००३.
मो. ९८९६१००५५७.

कहानी

उस पार

✍ शैलेंद्र तिवारी

अचानक गांव के एक छोर पर तेज़ आवाज़ों का शोर उठा. जैसे कई लोग एक साथ तेज़ स्वर में कुछ कह रहे हों. वे क्या कह रहे हैं कुछ स्पष्ट नहीं था. बस आवाज़ों का गड्ड-मड्ड शोर था.

अपनी ज़िंदगी की आख़िरी सांसें गिन रहे गिरधर प्रसाद यह शोर सुनकर चौंक पड़े थे. उनके मन में किसी अनिष्ट की आशंका उठने लगी थी. उन्हें लगा कहीं गांव के कुछ लोग आपस में किसी बात को लेकर लड़-झगड़ तो नहीं रहे हैं. आजकल के लोगों का कोई भरोसा नहीं है. ये छोटी-छोटी बातों पर भी लड़ाई-झगड़ा ठान लेते हैं. शुरुआत बस तू-तू, मैं-मैं से होती है. फिर बात बढ़ती हुई गाली-गलौज़ पर आ जाती है. उसके बाद लाठी-डंडा उठने की नौबत आ जाती है. फिर मारपीट और सिर फुटौवल हो ही जाता है.

और फिर उसके बाद थाना पुलिस, कोर्ट-कचहरी.

न जाने ऐसे कितने लोग कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगा रहे हैं. इस चक्कर में न जाने कितने बिला गये. कितने तो बिलाने की कगार पर पहुंच गये हैं. लेकिन लड़ाई-झगड़े से लोग बाज नहीं आ रहे हैं.

फिर आजकल तो चुनाव का माहौल है.

हर गांव में परधानी के चुनाव का माहौल.

अभी तीन-चार दिन पहले परधानी के लिए वोट पड़ा है. जैसे ही चुनाव की तारीख़ घोषित हुई कि माहौल गरम होने लगा था. लगता था कि भीषण लड़ाई-झगड़ा होगा. आपस में लोगों की तना-तनी देखकर यही लगता था कि ख़ूब मारपीट होगी. वोट के दिन पूछना ही क्या? अगर पुलिस की तगड़ी व्यवस्था न होती तो बूथ लूटने के चक्कर में मारपीट हो ही जाती.

अब कहीं उसी को लेकर तो? ज़रूर उसी को लेकर कोई बात है. कारण, आजकल में वोटों की गिनती भी होने वाली थी. कहीं परधानी के नतीज़े देखकर... किसी बात को लेकर वे लोग आपस में भिड़ तो नहीं गये हैं.

अब वे जानने को आतुर हैं कि मामला क्या है?

पर कैसे?

घर का एक भी सदस्य नज़र नहीं आ रहा है कि उसी से कुछ पूछते, कुछ जानकारी लेते. न बेटे दिख रहे हैं न पोते. पता नहीं कहां चले गये सब.

काश, वे स्वस्थ होते तो स्वयं जाकर देखते या पता लगाते.

लेकिन.....

गिरधर प्रसाद कई वर्षों से बीमार चल रहे हैं. बहुत दवाइयां हुईं. कभी वैद्यों का इलाज कराया तो कभी होमियोपैथिक की मीठी गोली खिलायी गयी. फ़ायदा न होते देखकर शहर के बड़े-बड़े डॉक्टरों को दिखाकर बड़ी-बड़ी गोलियां, कैप्सूल और बोतल की कड़वी दवा भी पिलायी गयी. जिसने जो भी सलाह दी सब किया गया. परंतु सब बेकार... कोई भी दवा उन्हें स्वस्थ नहीं कर सकी. धीरे-धीरे वे कमज़ोर होते गये और फिर एक दिन खाट पकड़ ली. अब रात-दिन वे एक खाट पर

पड़े रहते हैं. अब बिना सहारे के वे उठ बैठ नहीं सकते. .. पेशाब के लिए भी उन्हें मदद की ज़रूरत पड़ती है.

पहले वे दिशा-मैदान के लिए दूर जंगल की तरफ़ निकल जाते थे. परंतु अब तो एक क़दम भी चल पाना मुश्किल है. इसलिए बेटे और पोतों ने मिलकर घर के सामने की गड़ही के किनारे एक छोटा सा मड़हा रखवा दिया है. अब उसी मड़हे में वे एक खाट पर पड़े अपनी ज़िंदगी के दिन गिन रहे हैं. टट्टी व पेशाब भी उसी मड़हे की बग़ल में गड़ही के किनारे करते हैं. जिसे बाद में उनका बेटा फावड़े से कांदकर गड़ही में सरका देता है.

अब जब भी उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ती है या टट्टी पेशाब करना होता है. घर के सदस्यों को आवाज़ देनी पड़ती है.

आज भी उन्हें घर के किसी न किसी सदस्य की ज़रूरत थी. जो आकर उन्हें बता सकता कि गांव के एक किनारे पर उठ रहा यह शोर कैसा है? सोचा कि आवाज़ देकर किसी को बुलायें. परंतु कोई दिख नहीं रहा है. कहीं घर के सारे मर्द वहीं तो नहीं गये हैं.

ज़रूर वहीं गये होंगे. तभी तो कोई नज़र नहीं आ रहा है.

सोचते हुए उन्हें बेटे और पोतों पर क्रोध आने लगा था. इस तरह से दूसरों के मामले में हस्तक्षेप करने की उन्हें क्या ज़रूरत है? पता नहीं कब क्या हो जाये? बैठे-बिठाये किसी मुसीबत में फंस जायें. पर उन लोगों को कौन समझाये? आजकल के लोग किसी की मानते ही कहां हैं? सब अपनी-अपनी मर्ज़ी के मालिक हैं. सब अपनी ही तरह से सोचते रहते हैं.

मूर्ख! वे बुदबुदाये थे.

आवाज़ों का शोर प्रतिपल बढ़ता जा रहा था. उन्होंने बड़े ध्यान से सुनने की कोशिश की. मगर कुछ भी समझ में नहीं आया. अब बिना किसी से पूछे कोई जानकारी नहीं मिलेगी. सोचते हुए उन्होंने निग़ाह घर के मुख्य दरवाज़े पर गड़ा दी.

थोड़े इंतज़ार के बाद घर के अंदर से राधा निकलती दिखी.

राधा, उनकी पोती. वह कोई दस-ग्यारह साल की बच्ची थी. पोती को घर से निकलते देखकर उन्होंने आवाज़ दी थी. ''राधा... राधा... बेटी.''

बूढ़े बाबा की आवाज़ सुनकर राधा ने मड़हे की तरफ़ देखा. वह समझी कि बाबा को किसी चीज़ की ज़रूरत है. इसलिए उसे बुला रहे हैं. और वह झट मड़हे में आकर खड़ी हो गयी.

''बाबा कुछ चाहिए क्या?'' उसने पूछा.

शैलेंद्र तिवारी

११ अप्रैल १९६०;
स्नातक, अवध वि. वि., फैज़ाबाद.
लेखन : *'कथाक्रम', 'लमही, 'बया', 'बचन', 'आधार शिला' आदि पत्रिकाओं में कई कहानियां प्रकाशित.*

गिरधर प्रसाद पोती की तरफ़ देखते हुए बोले — ''नहीं बेटी, कुछ नहीं चाहिए. बस, एक बात पूछनी थी. तुम्हारे पिता, काका और भाइयों में से कोई भी नहीं दिख रहा है. सब कहां गये?''

''आपको नहीं पता बाबा?''

''नहीं बेटी. आख़िर वे लोग कहां हैं?''

राधा बोली — ''बाबाजी, चार दिन पहले परधानी का वोट पड़ा था न?''

''हां, पड़ा था.''

''अब वोटों की गिनती हो गयी है और राम सिंह काका परधानी जीत गये हैं. इसी ख़ुशी में जुलूस निकला है. पिताजी, काका और भैया सब वहीं पर गये हैं.''

''तो ये हल्ला-गुल्ला और शोर उसी का है?''

''हां बाबा... सब जीत की ख़ुशी में नारा लगा रहे हैं.''

रुककर गिरधर प्रसाद धीरे से बुदबुदाये — सब मूर्ख हैं.

राधा ने बाबा की तरफ़ देखकर पूछा — ''बाबाजी कुछ कह रहे हैं.''

गिरधर प्रसाद ने पोती की तरफ़ देखा और संजीदा स्वर में बोले — ''बेटी, सब मूर्ख हैं जो एक हत्यारे और बदमाश को गांव का परधान बना दिया. उन्हें कोई दूसरा शरीफ़ और भला आदमी नहीं मिला. लगता है गांव के लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है.''

''नहीं बाबाजी, रामसिंह काका अब बदमाशी नहीं करेंगे. वे सुधर गये हैं.'' राधा ने कहा था. राधा की बात सुनकर गिरधर प्रसाद उसे विस्मय से देखने लगे फिर रुककर कहा था — ''ठीक है बेटी, अब तुम जाओ.''

राधा ने पूछ लिया — ''बाबाजी कुछ चाहिए तो नहीं?''

''नहीं बेटी कुछ नहीं चाहिए.''

''फिर मैं जाती हूं.''

''हां, जाओ.''

राधा चली गयी. गिरधर प्रसाद फिर अकेले हो गये. वे बुदबुदाये — सयानों ने बच्चों को भी नहीं छोड़ा. उनके

दिमाग़ में भी उल्टी-पुल्टी बातें भर दीं.

गांव के उस छोर पर अभी भी लोग सामूहिक स्वर में चिल्ला रहे थे. आवाज़ें अब कुछ क़रीब आती सुनायी पड़ रही थीं. शायद अब जुलूस इधर आ रहा है. अब आवाज़ें कुछ स्पष्ट होने लगी थीं. लोग तेज़ स्वर में चिल्ला रहे थे.

ज़िंदाबाद.... ज़िंदाबाद...

गिरधर प्रसाद रामसिंह के बारे में सोचने लगे.

सोचते हुए राम सिंह का चेहरा आंखों के सामने तैरने लगा था.

रामसिंह को वे बचपन से ही जानते थे. वह उन्हीं के सामने पैदा हुआ था. उन्हीं के सामने खेला-कूदा बड़ा हुआ. पढ़ाई-लिखाई में वह एकदम फिसड्डी था. इसलिए छुटपन से ही वह बदमाशी करने लगा था. दिन-प्रतिदिन उसकी आदतें बिगड़ती जा रही थी. उस समय वह किशोर ही था, जब उसने अपने से पंद्रह साल बड़ी उम्र की औरत से बलात्कार किया था. एक बार तो सुनकर लोगों को विश्वास नहीं हुआ था. पर बात सच थी. बदनामी के डर से यह बात दबा दी गयी थी, लेकिन यह बात पूरे गांव में फैल गयी थी. वह गांव में बदनाम हो गया. अब लोग उसे अच्छी निग़ाह से नहीं देखते थे.

धीरे-धीरे राम सिंह की बदमाशियां बढ़ती गयीं. उसने पढ़ाई-लिखाई हमेशा के लिए छोड़ दी. अब वह राहजनी भी करने लगा था. नतीज़ा, थाने में उसका नाम दर्ज़ हो गया. जब भी कोई वारदात होती... उसकी तलाश में पुलिस गांव में भी आती थी. इस तरह वह पूरे इलाक़े में शातिर बदमाश के नाम से प्रसिद्ध हो गया.

उस समय वह कोई पच्चीस-छब्बीस साल का युवक था. तभी उसने अपने पड़ोसी दामोदर सिंह की हत्या कर दी.

बात बड़ी मामूली थी. मगर.....

दामोदर सिंह सीधे-सादे सज्जन व्यक्ति थे. उनके दोनों बेटे बाहर रहकर नौकरी कर रहे थे. अब गांव में वे और उनकी पत्नी ही रहते थे. बूढ़े हो जाने के कारण अब उनसे खेती-बारी नहीं हो पाती थी. इसलिए बैलों को बेच दिया और सारे खेत अधिया पर दे दिये. दूध के लिए सिर्फ़ एक गाय रखी थी. अब वे उसी की सेवा में लगे रहते थे.

चूंकि दामोदर सिंह अकेले और बूढ़े हो चले थे. उनकी इसी कमज़ोरी का लाभ उठाते हुए एक दिन रामसिंह अपने दुआर की सरहद पार करते हुए उनके दुआर पर आकर खूंटा गाड़ने लगा. यह देखकर दामोदर सिंह ने उसे रोका. तब रामसिंह ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा — ''काका, हम आपका दुआर नहीं लेंगे. हम तो सिर्फ़ जानवर बांधने के लिए खूंटा गाड़ रहे हैं.''

दामोदर सिंह बोले — ''वह सब ठीक है. लेकिन सबको अपनी-अपनी सीमा में रहना चाहिए. परंतु रामसिंह रोकने पर भी नहीं रुका. यह सब देखकर दामोदर सिंह को ग़ुस्सा आ गया. उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि खूंटा किसी भी हालत में नहीं गड़ेगा.

अब उनकी बात काफ़ी तेज़ हो चली थी. लगभग लड़ाई-झगड़े की स्थिति बन आयी. उनके तेज़ स्वर को सुनकर पड़ोसी भी आने लगे. अब वहां आये लोगों को दामोदर सिंह बताने लगे कि किस तरह रामसिंह उनके साथ ज़बरदस्ती कर रहा है. दामोदर सिंह की बातें सुनकर रामसिंह को क्रोध आ गया. वह उठा और पास पड़ी कुल्हाड़ी उठाकर सीधे उनकी गरदन पर हमला कर दिया. कुल्हाड़ी के पहले ही वार से उनकी गरदन लटक गयी. यह देखकर वहां खड़े लोग सन्न रह गये. अब दामोदर सिंह ज़मीन पर गिर पड़े. वे लाश में बदल गये थे.

ओसारे में खड़ी उनकी पत्नी भी यह दृश्य देख रही थी. पति की स्थिति देखते ही चीख़ती हुई दौड़ी थी. यह देखकर रामसिंह भी भाग खड़ा हुआ. पति की लाश देखकर उनकी पत्नी जोर-जोर से रोने लगी. उनके रोने की आवाज़ सुनकर गांव की औरतें भी घरों से झांकने लगीं.

चूंकि हत्या का मामला था. इसलिए थाने ख़बर भिजवा दी गयी. पुलिस आयी. लाश को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया. रामसिंह उस समय घर पर नहीं मिला. दामोदर की हत्या के तुरंत बाद ही उसने गांव छोड़ दिया था.

अब पुलिस को रामसिंह की तलाश थी. बहुत कोशिशों के बाद भी रामसिंह नहीं मिला. उधर पिता की हत्या की ख़बर सुनकर दामोदर सिंह के दोनों बेटे आ गये थे. उन्होंने पुलिस पर बराबर दबाव बनाया कि राम सिंह गिरफ़्तार हो जाये.

कुछ दिन तक इधर-उधर भागते रहने के बाद रामसिंह भी समझ गया था कि अब बचने का कोई रास्ता नहीं है. इसलिए एक दिन अदालत में हाज़िर होकर जमानत कराने का प्रयास किया परंतु सफल नहीं हुआ. पुलिस ने उसे गिरफ़्तार करके जेल भेज दिया.

रामसिंह के जेल जाने के बाद उसके पिता और भाई इस प्रयास में लगे रहे कि किसी भी तरह एक बार उसकी जमानत हो जाये. इसके लिए उन लोगों ने शहर के सबसे बड़े वकील को किया. काफ़ी पैसा भी ख़र्च किया. तब कहीं जाकर छः महीने बाद उसकी जमानत कराने में कामयाबी मिली.

जमानत होने के बाद रामसिंह जेल से बाहर आ गया. उसे पता था दामोदर सिंह का क़त्ल करते हुए गांव के बहुत सारे लोगों ने उसे देखा है. अगर उन्होंने गवाही दे दी तो उम्रक़ैद से कम की सज़ा नहीं होगी.

उसने पता लगाया कि उसके मुकदमे में किन लोगों का नाम गवाही में दर्ज़ है. फिर वह उन लोगों से मिला था. उन्हें गवाही देने से मना किया था. कुछ लोगों ने डरकर गवाही देने से मना कर दिया. लेकिन जो लोग गवाही देने के लिए तैयार थे, उन्हें धमकी दी, कि अगर उन्होंने गवाही दी तो उन्हें भी दामोदर सिंह के पास भेज देगा.

रामसिंह की धमकी काम कर गयी और फिर जब अदालत में मुकदमा चला, सभी गवाह मुकर गये.

गवाहों के मुकरने से मुकदमा कमज़ोर पड़ गया.

और फिर एक दिन अदालत ने रामसिंह को बरी कर दिया.

हत्या के मुकदमे से बरी होने के बाद रामसिंह का हौसला बढ़ गया. अब वह पहले से ज़्यादा ख़तरनाक हो गया था. शायद यही कारण था कि गांव के लोगों में इतनी हिम्मत नहीं रही कि वे रामसिंह का विरोध करते. बल्कि रामसिंह की जी हुजूरी में सबको भलाई दिखी. इसलिए जब इस बार परधानी के चुनाव की घोषणा हुई थी, वह भी चुनाव लड़ बैठा. गांव के लोगों ने वोट देकर उसे परधान भी बना दिया. अब सारे लोग उसी की जय-जयकार कर रहे हैं.

कितने मूर्ख हैं गांव के लोग, एक हत्यारे के हाथों में अपना गांव सौंप दिया. उसे परधान बनाकर लोगों ने और भी ताकतवर बना दिया.

गिरधर प्रसाद सोचते हैं. जहां लोगों को उसका बहिष्कार करना था वहीं, सब लोग उसकी जय-जयकार कर रहे हैं. एक अपराधी की जय-जयकार... यह मूर्खता ही तो है.

वे फिर सोचते हैं.

पहले गांव में ऐसा नहीं होता था.

तब गिरधर प्रसाद को अपने बचपन की एक घटना याद आयी थी. उस समय वे पंद्रह-सोलह साल के रहे होंगे. यह उसी समय की बात है.

बात रामदीन भैया की है.

कोई तीस-बत्तीस साल के रहे होंगे रामदीन भैया. वे बड़े ही ख़ुशदिल और मस्त व्यक्ति थे. जब भी वे घर से निकलते थे, गुनगुनाते हुए चलते थे. वे जानवरों के बहुत बड़े शौक़ीन थे. बहुत ही अच्छे-अच्छे जानवर उन्होंने पाल रखे थे. गाय, भैंस, बैल... उनके सभी जानवर बहुत ही तंदुरुस्त होते थे. उनके स्वस्थ जानवरों को लोग ललचाई नज़रों से देखा करते थे.

रामदीन भैया के बारे में एक बात और मशहूर थी. उन्हें जानवरों की ख़ूब पहचान थी. वे अच्छी नस्ल के कमज़ोर जानवरों को पहचानकर सस्ते में ख़रीद लेते थे. घर लाकर उन्हें अच्छे से खिला-पिलाकर स्वस्थ और तंदुरुस्त बना देते थे. फिर उन्हीं जानवरों को अच्छा मुनाफ़ा लेकर बेच दिया करते थे.

इस तरह वे अच्छी कमाई कर लिया करते थे.

पर एक दिन....

उनकी एक गाय पगहा तुड़ा बैठी. कुछ दिन पहले रामदीन भैया इस गाय को ख़रीदकर लाये थे. तब वह काफ़ी कमज़ोर थी. दस-पंद्रह दिन उन्होंने खिलाया-पिलाया, तब वह कुछ स्वस्थ हुई. ऐसे में एक दिन वह पगहा तुड़ाकर एक खेत में घुसकर फ़सल चरने लगी. तब रामदीन उसे पकड़ने पहुंचे. उन्हें देखते ही गाय भड़ककर भाग खड़ी हुई और दूसरे खेत में पहुंच गयी. वे भी गाय के पीछे लपके. उन्हें आता देखकर गाय फिर भागी. अब वे गाय के पीछे पड़ गये.

अब गाय आगे-आगे...वे पीछे-पीछे....

आख़िर गाय के पीछे दौड़ते-दौड़ते उन्हें ग़ुस्सा आ गया. ग़ुस्से में उन्होंने गाय को ख़ूब खदेड़ा. सोचा... भागते-भागते जब गाय थक जायेगी अपने आप खूंटे पर आकर खड़ी हो जायेगी.

गाय के पीछे दौड़ते-दौड़ते रामदीन स्वयं बुरी तरह थक गये. पर गाय खूंटे पर नहीं आयी. अब उनका ग़ुस्सा और बढ़ गया. किसी तरह थक हारकर जब गाय खूंटे पर पहुंची, उसे खूंटे से बांध दिया. फिर ग़ुस्से में वहीं पड़ी एक लाठी उठा ली और दे दनादन...दे दनादन... गाय पर बरसाने लगे.

मार खाकर गाय चीख़ने लगी थी.

उसकी चीख़ मड़हे में आराम कर रहे उसके पिता और भाई तक पहुंची थी. उसकी चीख़ घर के अंदर उसकी मां और पत्नी ने भी सुनी. क्या बात है? गाय इतनी तेज़ क्यों चीख़ रही है. जानने के लिए सब दौड़ पड़े. परंतु उनके पहुंचने से पहले लाठी की मार खाकर गाय ज़मीन पर पसर गयी थी. रामदीन के हाथ में लाठी देखकर वे लोग सब समझ गये. गाय की हालत देखकर उन्होंने उसकी तरफ़ देखा, पाया ज़मीन पर गिरी गाय पीड़ा से कराह रही है. उसके मुंह से फेंचकुर निकल रहा है.

देखते-देखते गाय ने दो-तीन हिचकी लीं और शांत हो गयी.

गाय की स्थिति देखकर उसके पिता और भाई आवाक थे.

रामदीन भी यह सब देखकर सन्न था. शायद उसे ऐसी

उम्मीद नहीं थी कि वह इतना पीट देगा कि गाय मर जायेगी. अब उसका ग़ुस्सा शांत हो गया था. उसके चेहरे पर दुःख और अफ़सोस के भाव थे. परंतु अब कुछ नहीं हो सकता था.

गाय मर गयी है, यह देखकर उसकी मां और पत्नी मूड़ पकड़कर बैठ गयीं. उसके भविष्य के बारे में सोचकर वे दोनों ज़ोर से रोने लगीं. रोते हुए मां ने कहा — ''बेटा तुमने यह क्या कर डाला. गाय मार डाली. अब तुम पर गऊ हत्या का पाप लगेगा, हे भगवान यह क्या हो गया? यह किस जन्म की सज़ा दी.''

उसकी मां और पत्नी की रोने की आवाज़ सुनकर पड़ोसी भी पहुंचने लगे थे. सामने का दृश्य देखकर किसी को कुछ भी बताना नहीं पड़ा. अब सभी दुख और अफ़सोस प्रकट करने लगे. कुछ लोगों ने कहा कि गाय पर इतना क्रोध नहीं दिखाना चाहिए था.

कुछ लोगों ने कह दिया कि रामदीन ने गऊ हत्या की है. गऊ हत्या पाप है. अब उस पाप का प्रायश्चित करना ही पड़ेगा. प्रायश्चित के बाद ही रामदीन हमारे साथ उठ-बैठ सकता है. जब तक ये प्रायश्चित करके अपनी सज़ा पूरी नहीं कर लेता है, हम इसे बिरादरी और समाज से बाहर कर रहे हैं. आज से हमारे साथ हुक्का पानी बंद.

और उसी समय से रामदीन गऊ हत्या के आरोप में बिरादरी और समाज से बाहर कर दिया गया था.

उसके घर के लोग सारी बातें ख़ूब अच्छी तरह समझते थे. अब उनके बस का नहीं था कि वे बिरादरी और समाज का विरोध करते. उनके बस का नहीं था किया बिरादरी और समाज के नियम बदल देते. वे जानते थे कि अब पश्चाताप किये और सज़ा काटे बिना गुज़ारा नहीं है.

तब तुरंत फ़ैसला लिया गया कि चुप बैठने से कोई फ़ायदा नहीं है. अब आगे वही होना चाहिए जो नियम है. फिर उसी दिन उसे लेकर वे पुरोहित के पास गये. उन्हें सारी बातें बतायीं. सुनने के बाद पुरोहित ने कहा था — ''गऊ हत्या का पाप बहुत बड़ा पाप होता है.'' सुनकर पिता ने हाथ जोड़ दिये — ''पंडित जी, अब क्या बतायें? बेटे से ग़लती हो गयी है. अब कोई उपाय बताइए महाराज जी कि मेरा बेटा इस पाप के कलंक से मुक्त हो जाये.''

पुरोहित ने कहा — ''अब उपाय तो एक ही है जजमान! आपके बेटे को कम से कम चार महीने का पश्चाताप करना होगा. चार महीने घर-दुआर और परिवार से दूर रहकर भीख मांगकर गुज़ारा करना पड़ेगा.''

पिता ने विनती भरे स्वर में कहा — ''पंडितजी, अगर सज़ा कुछ कम हो जाये.''

''गऊ हत्या का मामला है.''

''अब क्या बताऊं, पंडितजी, यह सब बेटे से अनजाने में हुआ है. अब आप ही उसका उद्धार कर सकते हैं. सज़ा कुछ कम देते तो हम आपकी सेवा में कोई कमी नहीं रखेंगे. आपका एहसान उमर भर नहीं भूलेंगे.''

''वह सब ठीक है जजमान, लेकिन....''

''आप चाहेंगे तो बात बन जायेगी.'' पिता और भाई ने पुरोहित के पांव पकड़ लिये थे.

बात बन गयी थी.

पुरोहित ने उसकी सज़ा कम कर दी थी. चार महीने की बजाय अब सिर्फ़ दो महीने पश्चाताप करना था. अब सिर्फ़ दो महीने घर से दूर रहकर, भीख मांगकर गुज़ारा करना होगा. यही सज़ा तय की गयी. सजा पूरी करने के बाद गंगा स्नान करके कथा सुननी है. फिर ब्राह्मणों और बिरादरी के लोगों को भोजन कराना है. उसके बाद वह फिर से अपने घर-दुआर और परिवार में रहने लगेगा. बिरादरी और समाज के बीच उठने-बैठने लगेगा.

वे लोग घर लौट आये. उन्हें आया देखकर सभी लोग जानने आये कि हुआ क्या? उसके भाई और पिता ने सारी बातें बता दी थीं. सुनकर लोगों ने कहा था — ''चलो, दो महीने थोड़ा कष्ट ही सही. फिर दो महीने बाद सब ठीक हो जायेगा.''

लेकिन गांव में कुछ लोग ऐसे थे, जिन्हें विश्वास नहीं हुआ था कि गऊ हत्या की सज़ा सिर्फ़ दो महीने की है. वे लोग आपस में तरह-तरह की बातें करते रहे और कहा था — ''ज़रूर इन लोगों ने पुरोहित को लालच देकर सज़ा कम करायी है.''

अब रामदीन घर-गांव और बिरादरी से दूर रहने लगा. गांव से बाहर एक खाली जगह पर उसके पिता और भाई ने एक मड़हा खड़ा कर दिया था. अब रामदीन उसी मड़हे में, घर-परिवार से दूर, अकेले रहकर अपनी सज़ा काट रहा था. अब वह प्रतिदिन मिट्टी का पात्र लेकर निकल पड़ता था. गांव-गांव घूमकर बताता कि उसने गऊ-हत्या का पाप किया है. अब भीख मांगकर सज़ा काट रहा है. शाम तक वह अपने मड़हे में लौट आता... भोजन बनाता और खा-पीकर एक पुरानी कथरी बिछाकर सो जाता.

अब यही रामदीन की दिनचर्या थी.

अब उसमें काफ़ी परिवर्तन आ गया था.

अब वह पहले की तरह ख़ुशदिल और मस्त नज़र नहीं आता था. अब वह चलते हुए हमेशा की तरह गुनगुनाता भी नहीं था. बस संजीदा और चुपचाप रहता. अब उसके चेहरे पर पश्चाताप और पीड़ा के भाव होते. अपने किये पापों और गुनाहों से वह बहुत ही दुखी नज़र आता.

उसे देखकर लोग कहते — बेचारा, अच्छा-ख़ासा जी

रहा था. लेकिन क्रोध ने बुद्धि भ्रष्ट कर दी.

आख़िर उसने अपनी सज़ा काटते हुए दो महीने पूरे कर लिये. सज़ा पूरी होते ही वह गंगा-स्नान के लिए निकल गया. स्नान करके घर लौटा तब तक कथा सुनाने की पूरी व्यवस्था हो चुकी थी. पुरोहित बुलाकर तुरंत ही कथा सुनायी गयी. कथा के बाद ब्रह्मभोज की व्यवस्था भी थी.

अब रामदीन फिर से बिरादरी और समाज का आदमी बन गया. वह फिर से अपने घर-परिवार और समाज में रहने लगा.

गऊ-हत्या की सज़ा काटते हुए रामदीन ने बहुत कुछ सीखा था.

उसके बाद उसने कभी क्रोध नहीं दिखाया. फिर उसने कभी किसी पर हाथ नहीं उठाया. जब तक जिया, बस एक साधारण जीवन जीता रहा.

लेकिन अब...

अब, समय काफ़ी बदल गया है.

अब, समाज, बिरादरी और गांव-देश काफ़ी बदल गया है.

अब, आदमी कोई भी अपराध करे. सब माफ़....

एक समय था, जब जानवरों की हत्या को भी पाप और गुनाह माना जाता था. उसकी भी सज़ा निश्चित थी. लेकिन अब आदमी की भी हत्या से कोई पाप नहीं लगता. कानून तो भ्रष्ट और अंधा है. वह अपराधी को छोड़ देता है. लेकिन समाज और बिरादरी.... अब ये भी कोई सज़ा नहीं देते. अब समाज और बिरादरी भी भ्रष्ट और अंधी हो गयी है. इतनी भ्रष्ट कि लोग अपराधी की जय-जयकार भी करने लगे हैं.

जैसे रामसिंह की जयकार हो रही है.

''राम सिंह भैया....''

''ज़िंदाबाद...ज़िंदाबाद...''

अब जब गुंडों और क़ातिलों की जयकार होगी... तब उनके हौसले भी बढ़ेंगे. एक अपराधी को मान-सम्मान पाते देखकर और लोगों में भी अपराध करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी. क्योंकि उन्हें भी यही लगेगा कि अपराधी बनकर ही इज़्ज़त और सम्मान प्राप्त किया जा सकता है.

अगर हालत यही रही तो पूरा देश अपराधियों से भर जायेगा. इसके लिए सिर्फ़ इस देश का क़ानून ही नहीं, इस देश के नागरिक भी दोषी होंगे.

गिरधर प्रसाद ने देखा. नारा लगाते हुए भीड़, उनके दुआर पर आकर रुक गयी है? मड़हे में लेटे हुए उन्होंने निग़ाह दौड़ायी थी. देखा, रामसिंह के गले में फूलों की माला है. वह सबसे आगे हाथ जोड़कर चल रहा है. उसके पीछे गांव के लोगों की भीड़ है. इस भीड़ में उनके बेटे और पोते भी

शामिल हैं.

कुछ युवक तेज़ स्वर में नारा लगा रहे हैं.

''रामसिंह भैया....''

''ज़िंदाबाद..... ज़िंदाबाद....''

''देश का नेता कैसा हो?''

''रामसिंह भैया जैसा हो.''

उनके देखते-देखते रामसिंह मड़हे में आकर खड़ा हो गया था. उसने लपककर उनके पांव छुये और कहा — ''काका, आशीर्वाद दो.''

यह सब देखकर उनके होठों पर व्यंग्य भरी मुस्कान आ गयी थी. यह मुस्कान अपनी बेबसी के साथ-साथ गांव के लोगों की कायरता पर भी थी.

नारे लगाते हुए लोग आगे बढ़ गये.

अपने मड़हे में लेटे हुए गिरधर प्रसाद अब भी गहरी सोच में थे कि अगर इसी तरह अपराधियों और क़ातिलों के हाथ में सत्ता की बागडोर चली गयी.... तो फिर देश और समाज का क्या होगा?

६५७/२, सिविल लाइन-१,
शिवाजी नगर, निकट पीडब्ल्यूडी,
सुलतानपुर-२२८००१ (उ. प्र.)
मो. ९६१६८८७२९२,८१८१०७९०९१.

कहानी

खोयी हुई ज़िंदगी

✍ हरि सुमन बिष्ट

चंद ठाकुरों का गांव दुनिया की ख़बरों की सुर्खियों में आ चुका था. भीषण बारिश से गांव तबाह. भले ही ख़बरों में केदारघाटी को दिखाया जा रहा था, परंतु प्रलय की यह घटना पहली नहीं थी, बीसियों बार ऐसी अनहोनी घटती रहती थी. जीवन विहीन हो गया था चंद ठाकुरों का गांव. इंसान और मवेशी लाशों में बदल गये और घर प्राकृतिक प्रकोप की भेंट चढ़कर खंडहर बन गये. भीषण तबाही के बाद जब हालात सामान्य होने लगे तो गौरा अपने घर लौट आयी. अमूमन वह हर साल जून माह में स्कूल की छुट्टियां होने पर ही गांव लौटती थी. इस बार उसे नहीं मालूम था कि जिस गांव में उसने जनम लिया, पली-बढ़ी और मां-पिता तथा दो छोटे भाइयों को छोड़ गयी थी. वह पूरी तरह नष्ट हो चुका है. उसे विश्वास नहीं होता कि यह वही ज़मीन है, जो हरियाली को निगल कर गेरुए रंग में बदल चुकी है. गांव के पुरुष और औरतें, बच्चे और नन्हें-नन्हें शिशु कहीं ढेरों में मृत पड़े हैं तो कहीं अकेले. उन सभी के कपड़े बदरंग, एक रंगवाले मटियाले लाल रंग में रंगे हुए हैं. गांव की हवा बदल गयी है. हवा में अजीब तरह की सडांध उसे महसूस होने लगी. उसने मन को मज़बूत किया और बुदबुदायी, 'यह उसका गांव नहीं हो सकता, अवश्य वह रास्ता भटक चुकी है.' गौरा ने चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी, गांव की सभी सरहदों की पुष्टि वह कर न सकी. गांव से कुछ ऊंचाई पर उसे एक मंदिर होने का संदेह हुआ और वह उस तरफ़ को बढ़ गयी. रास्ते नहीं दिखे उसे, मवेशियों के खुरों के निशान तक मिट गये थे. जिस तरफ़ उसे पगडंडी होने का अहसास हुआ, वह भी उसके लिए जटिल बन गया. पगडंडी को ढूंढ़ते कुछ दृश्य उसके मन में इस क़दर गहरे धंस गये जो हमेशा के लिए उसे डराते रहेंगे, कहीं पर लाशें दिखतीं तो कहीं पर अजीब-सी रिक्तता. उस रिक्तता को एक अजीब तरह का शोर भरने का प्रयास कर रहा था. वह उन लाशों को ग़ौर से देखती और सोचने लगती, जब अचानक मौत आती होगी हाथ-पांव अजीब तरह से मुड़ और जुड़ जाते होंगे. गरदन तो विचित्र कोण में घूम कर लटक जाती होगी. फिर अचानक ऐसे वीभत्स दृश्य की तरफ़ से उसकी आंखें लौट आतीं. उन सबके बीच वह अनुमान लगाने लगती कि उसका भरा-पूरा परिवार भी तो यहीं कहीं होगा. इसी उधेड़बुन में वह उस ऊंचाई पर बने मंदिर पर पहुंच गयी. उसने ग़ौर से इधर-उधर देखा. यह वही मंदिर है जिसका अनुमान उसने लगाया था. जहां पर कभी उसके पिता ने फ़ौज की नौकरी से सेवा मुक्त होकर, सकुशल लौट आने पर अपने इष्ट देवता के प्रति आस्था और भगवान का धन्यवाद किया था. घंटे को उसने उलट-पलटकर देखा. उस पर उसके पिता का नाम लिखा था, उसने घंटे को हिलाया और उसकी टन-टन की आवाज़ भी हू-ब-हू वैसी ही थी. समय के साथ मामूली स्वर में बदलाव आना, उसे स्वाभाविक प्रतीत हुआ. उसका अनुमान उसके विश्वास के प्रतीक के रूप में बदल गया. वह चीख़ी — ''हे राजा! कहां है मेरा गांव. और गांव भर के लोग. मेरा भरा-पूरा परिवार — मां-बाप और दो भाई! तूने सिर्फ़ अपना थान... गौरा फूट-फूट कर रो पड़ी, ''तू बड़ा स्वार्थी निकला राजा! तुझे राजा का दायित्व नहीं मालूम? अरे राजा को हमेशा प्रकृति और प्रजा को नियंत्रित व उसकी रक्षा करना होता है. अब, मैं कहां जाऊं, तेरे थान के

हरि सुमन विष्ट

१ जनवरी १९५८, कुन्हील (जि. अल्गोड़ा).

कार्यरत : *सचिव, हिंदी अकादमी, दिल्ली (रा. रा. क्षेत्र, दिल्ली सरकार).*

प्रकाशित रचनाएं : *ममता, आसमान झुक रहा है, होना पहाड़, आछरी-गाछरी, बसेरा (उपन्यास); सफ़ेद दाग़, आग और अन्य कहानियां, मछरंगा, बिजूका (कथा संग्रह); अंतर्यात्रा (यात्रा वृत्तांत), ख्वाब एक उड़ता हुआ परिंदा था (नाटक एवं पटकथा); अनुवाद : कवि दिवान सिंह की पुस्तक 'दिवानी विनोद' का कुमांउनी से अनुवाद.*

संपादन : *'इंद्रप्रस्थ भारती' त्रैमासिक पत्रिका, अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका के 'कहानी विशेषांक', 'कविता विशेषांक' सहित कई महत्वपूर्ण विशेषांकों का संपादन.*

पुरस्कार एवं सम्मान : *'अराधक श्री' सम्मान, 'डॉ. अंबेडकर सेवाश्री' सम्मान, 'रामवृक्ष बेनीपुरी सम्मान, 'हिंदी सेवा सहस्त्राब्दी सम्मान', निष्काम मानव सेवा सम्मान, राष्ट्रीय बाल प्रहरी सुमित्रानंदन पंत सम्मान, 'साहित्याकाश' द्वारा सम्मानित. 'राष्ट्रीय बाल प्रहरी बाल साहित्य सम्मान', 'पर्वतीय लोक कला मंच', दिल्ली द्वारा सम्मानित. 'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' द्वारा सम्मानित, मोहन उप्रेती लोक संस्कृति, कला एवं विज्ञान शोध समिति, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का शैलेश मटियानी स्मृति चित्रा कुमार कथा पुरस्कार.*

अन्य : *अनेक स्थानीय सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित. पांचवां अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन, ताशकंद-समरकंद उज्बेकिस्तान तथा नवें विश्व हिंदी सम्मेलन, जोहान्सबर्ग की विदेश यात्रा में सक्रिय भागीदारी की.*

सिवाय यहां अब बचा ही क्या है? सांझ घिरने को है — तुझ पर कैसे भरोसा कर सकती हूं. इस ठौर पर रहकर क्या तू मेरी रक्षा करेगा? एक बात और सुन ले राजा! मेरे पिता ने तुझ पर आस्था प्रकट की, भरोसा किया हमेशा और तुझे इसलिए थानवासी बनाया था.... इतना मुझे याद है — तू राजा होते हुए भी उस छलिया कृष्ण की बराबरी तक नहीं कर पाया, जिसने अपने ग्वाल-बालों की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत ही उठा लिया था. एक बात और सुन ले गोलू देवता!

राजा से कुछ कहने का दुस्साहस कोई नहीं कर सकता — मैं कर रही हूं — ''इंद्र भी तेरी तरह राजा है. तुम सियासतदानों की आपसी लड़ाई में निरीह जनता हमेशा कुचली गयी है. यह पहली और अंतिम बार की लड़ाई नहीं है — हमेशा ऐसी लड़ाइयां होती रही हैं. स्वतंत्र भारत के लिए संघर्ष आम आदमी का बोया बीज नहीं था. वह भी सियासतदानों का खेल था. पूरे छह लाख लोगों का कत्लेआम हुआ था — अब आगे नहीं होगा, ऐसा क्या कोई गारंटी ले सकता है — या ऐसा सोच सकता है कि कभी इंद्र का तो, कभी सियासतदानों का खेल आगे नहीं चलेगा — यह क्या अंतिम खेल था. यहीं रहूंगी मैं — इसी ठौर पर. तुम्हारे अगले खेल का एक हिस्सा बनना चाहती हूं.''

चारों तरफ़ से रात घिर आयी. गोलू देवता के थान पर बैठी गौरा को अब कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा था. आसमान में टिमटिमाते तारों की रोशनी में कभी-कभी उसे पेड़ों का हिलना-डुलना प्रतीत हो रहा था. वह थान के भीतर गयी. नयी फ़सल के चढ़ावे के वक़्त शेष दीया–बाती को रखा सरसों का तेल और माचिस की डिबिया उसके हाथ लग गयी. उसने अपनी कमीज़ का एक कोना चीरना चाहा तो, उसकी अंगुलियां तेल की चिकनाई से गिरफ़्त नहीं बना सकीं. उसने झुंझला कर पाज़ामा का नाड़ा हल्का-सा ख़ींचा और उसका एक सिरा दांतों से काट डाला. सरसों के तेल में डुबोकर उसने उसे दीये पर रखा और जलाने लगी. दिप-दिप करता दीया जलने लगा. दीये की पीली रोशनी में वह रात भर स्वयं जलती रही और पहाड़ों के टूटने की भयानक गरजन को सुनती रही. सुबह हुई. सूर्य की चटक धूप में उसने चारों तरफ़ देखा — घर-आंगन और गांव सभी कुछ तबाह हो चुका था. उसके पिता जिन पेड़ों से प्यार करते थे, वे ही बच पाये थे. सेब, आड़ू- आलूचा और अखरोट के पेड़ एकदम पानी में नहाये लग रहे थे — उसका मन ख़ुश हुआ, भीषण तबाही के मूक दर्शक, इन पेड़ों ने जैसे उसे जीवंत बना दिया.

मैं भी तो ऐसी ही ज़िंदगी जी सकती हूं.

गौरा अभी सोच ही रही थी कि जिस पगडंडी पर वह चलकर आयी, उस पर उसे कुछ आकृतियां सरकती महसूस हुईं. उसने उन्हें ग़ौर से देखा, सफ़ेद कपड़ों में कुछ लोग चले आ रहे थे. ''कौन लोग हैं?'' उसने अपने दिमाग़ पर जोर डाला. सफ़ेद वस्त्र पहने हुए वे लोग राजा गोलू देवता के दूत हो सकते हैं! या फिर गांव के रूपसिंह नेता जो हमेशा ऐसे सफ़ेद कपड़े पहनते हैं. अमूमन उसके घर में चर्चा होती रहती थी कि गोलू देवता हमेशा सफ़ेद कपड़ों में ही असहाय, दीन-

दुखियों की मदद करते हैं. गांव की शिनाख़्त वे नहीं कर पाये. उनकी नज़र गौरा पर पड़ गयी. वे लोग चढ़ाई चढ़ने लगे. परंतु, यह सभी सरकारी अधिकारी और स्थानीय नेता निकले, जो चंद ठाकुरों के गांव के हालात का ज़ायजा लेने आये थे. ''सचमुच ये गोलू देवता के ही दूत हैं जो उसकी मदद के लिए इंसान के रूप में इस ओर बढ़ रहे हैं. जिनके हाथों में गैंती, फावड़े और बेलचे हैं.'' उन्हें देखकर गौरा का हौसला बढ़ा. गौरा को एकांत में देखकर उनका अचंभित होना स्वाभाविक था. वे एक स्वर में उससे पूछने लगे कि वह अकेली यहां क्यों रहती है? यह स्थान अब उसके लिए सुरक्षित नहीं है, जंगली जानवरों के भय के साथ-साथ जीवन चलाने के लिए आवश्यक साधन भी यहां नहीं हैं. उसे उनके साथ राहत केंद्र में चलना होगा, जब परिस्थितियां अनुकूल होंगी तभी यहां वापस आये. गौरा ध्यान से उनकी बातें सुनती रही. फिर वह बोली, ''अब मैं इस स्थान को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी, राजा गोलू देवता ही मेरी रक्षा करेगा.'' सरकारी अमला उसकी बात पर ख़ूब हंसा, जब उसने कहा, ''भय अपनों से नहीं, बाहर वालों से होता है, ये जंगली जानवर तो उसके अपने हैं — जिनको बचपन से देखती और उनके विषय में सुनती आयी है.'' सरकारी अमले को यह जानकर बड़ा झटका-सा लगा. गौरा ने आगे जोड़ा, ''जब भयानक बारिश में गांव तबाह हो गया तो, स्वाभाविक है जंगली जानवर जंगल में सुरक्षित नहीं रहेंगे. वे भी भयभीत होकर गांव की तरफ़ आये होंगे और वे भी गांव की भांति धरती को पा गये. सरकारी अमला वापस लौट गया. खाने-पीने का कुछ समान वे गौरा को दे गये. गौरा ने मन में ठान लिया, वह अपना जीवन यापन इस थान में रहकर ही करेगी. धीरे-धीरे ही उसकी ज़िंदगी पटरी पर आयेगी. गौरा ने जितना आसान समझा था ज़िंदगी उतनी ही कठिन बनने लगी. लेकिन उसकी हर मुश्किल में उसे किसी न किसी रूप में मदद मिल रही थी — उसका विश्वास था कि उस पर गोलू देवता की कृपा बनी हुई है.

एक दिन गौरा ने देखा, उसके पिता जिन पेड़ों से प्यार करते थे, उन पर फल पकने लगे हैं. उसके मन में एक नये तरह का उत्साह भर गया — जीने का उल्लास कि इन्हें रानीखेत के बाज़ार में बेचा जाये. किसी ज़माने में चंद ठाकुरों के गांव की साग-सब्ज़ी और फलों की मांग उस बाज़ार में रहती थी. गौरा सोचने लगी, अब गांव का नामोनिशान मिट गया तो वह कैसे समझायेगी कि ये उसी गांव के फल हैं, जिनकी सुगंध कभी हवा में घुली रहती थी.

गौरा ने हार नहीं मानी. वह बाज़ार पहुंची तो, उसने साफ़-साफ़ बताया कि चंद ठाकुरों के गांव से आयी है. रानीखेत बाजार के व्यापारियों को विश्वास नहीं आया. वे जानते थे कि वह गांव प्रलय की भेंट चढ़ चुका है. वहां कोई नामलेवा नहीं बचा, सिर्फ़ मृतात्माएं अब वहां रहने लगी हैं. गांव में भूतों के डेरे होने के क़िस्से भी चल पड़े हैं. गौरा को यह सुनकर पीड़ा हुई. उसने काफ़ी जद्दोजहद के बाद तय किया कि अब औने-पौने दाम पर फल बेच देगी — परंतु, वह कैसे विश्वास दिलाये कि ये फल चंद ठाकुरों के बगीचे से हैं. जिनकी गंध अभी भी हवा में घुली रहती है. गौरा जब मोल-तोल कर रही थी, एक युवक जिसका नाम गंगा था, ने उसे गौर से देखा और उसकी बात को सुनने लगा.

गौरा ने औने-पाने दाम पर फल बेच दिये. युवक को आश्चर्य हुआ. वह अपनी दुकान की गद्दी छोड़कर उठा और उससे कहने लगा — ''इतने सस्ते दाम पर फल बेचने थे तो मैं एक मुश्त ले लेता.'' गौरा ने कुछ नहीं कहा, वह लौटने लगी — गंगा उसका पीछा करने लगा. सुनसान रास्ते पर बढ़ते उसके क़दम चंद ठाकुरों के गांव तक पहुंच गये. गौरा को गोलू देवता के थान पर पहुंचकर दम लेती देखकर, गंगा के फाख्ते उड़ गये. वह सोचने लगा — 'लड़की ने झूठ बताया कि वह चंद ठाकुरों के गांव की है. वह गांव तो कभी का बह गया था. यह कोई साधारण लड़की नहीं है, कोई आंछरी-चांचरी है जिसकी सुंदरता पर मुग्ध होकर मैं, उसका पीछा करते यहां तक पहुंच गया.'

गंगा सावधान हो गया. आंछरी-चांचरी के विषय में उसने जितना सुना हुआ था, उससे कहीं अधिक ख़्याल उसके मस्तिष्क में कौंधने लगे. भय से हाथ-पांव फूल गये. उसने मन को विश्वास दिलाना चाहा — उसने सुना था पहाड़ों पर औरत बिना घर और घर बिना औरत का जीवन चलता नहीं है. इस लड़की के पास उन दोनों में से एक भी नहीं है. यह कोई चुड़ैल है, जिसने उसे मुग्ध कर लिया है. वह सोचने लगा अच्छा है कि उसे लौट जाना चाहिए. उलटे पांव लौटने को पंख लग गये. रानीखेत बाज़ार में किसी से अपनी मन की बात कहकर हलका हो लेने की कोशिश की. पर किसी को कैसे विश्वास दिलाये, वह फल बेचने वाली कोई साधारण युवती नहीं चुड़ैल है. उसकी फलों से भरी टोकरी तो सभी ने देखी, परंतु उसके पांव हम इंसानों की भांति नहीं थे. उसके ये शब्द भी हवा हो गये. बाज़ार अफ़वाहों से भर गया. आख़िर किसने-किसने उसके पांव देखे? गंगा की बातों पर हर किसी को झोल ही दिखा. कोई यक़ीन करे भी तो किस आधार पर? युवक से पूछा

तो पहले तो उसने मनगढ़ंत क़िस्सा दोहराया. फिर ज्यों-ज्यों बाज़ार गर्म होता गया था उसने भी चुप्पी साधने में भलाई समझी. यूं ही हफ़्ता बीत गया. हर किसी के मन में एक ही उत्सुकता थी कि वह चंद ठाकुरों के गांव के रास्ते पर बैठ जाये और गौरा की झलक पा ले. परंतु, वह आयेगी कब, यह प्रश्न था जो किसी विक्रम-बेताल के जैसे सवाल-जवाब में उलझ गया. यकायक एक दिन गौरा सुबह-सुबह फल लेकर बाज़ार पहुंच गयी. यह वही युवती है, उसकी पहचान गंगा ही कर सकता था. उसने उसे पहचान भी लिया. उसने बार-बार उसके पांवों को देखा तो, किसी भी कोण से भिन्न न लगे. उसने गौरा को पास बुलाया और उसके फल ख़रीद लिये. जब वह लौटने लगी तो, गंगा बोला, ''तुम वही हो जो पिछले हफ़्ते फल बेचने आयी थीं.''

गौरा ने भी युवक को पहचान लिया था. वह मंद-मंद मुस्करायी, ''हां!'' ''एक बात बताओ, चंद ठाकुरों का गांव तो कभी का बह गया, वहां तो गांव की शिनाख़्त नहीं बची और तुम...'' गंगा ने उत्सुकता से पूछा गौरा के चेहरे का रंग यकायक उड़ गया. उसने मन की बात कह दी, ''गांव तबाह न हुआ होता तो, गौरा को ये दिन देखने को कभी न मिलते. जिला परिषद में अध्यापिका की नौकरी छोड़कर यूं न चली आती.'' गंगा के लिए विश्वास करना बहुत कठिन हो गया — एक युवती जो जिला परिषद के स्कूल की अध्यापिका हो — ऐसा कैसे हो सकता है? बात आगे बढ़ाते हुए उसने कहा, ''अगली दफ़ा फल ख़रीदने मैं ही चंद ठाकुरों के गांव आऊंगा.''

''आज ही चलो! फलों से पेड़ों की टहनियां झुकी हैं. चंद ठाकुरों के गांव से इंसानियत की गंध क्या गयी, जंगली जानवरों ने भी उस तरफ़ अपना रुख करना छोड़ दिया. क्या तुमने कभी चंद ठाकुरों का गांव देखा है?'' गंगा की तीव्र इच्छा हुई कि साफ़-साफ़ बता दे, उसका पीछा करते वह गांव तक पहुंचा था. परंतु, वह नहीं कह सका कि उस दिन तुम्हें, मैं चुड़ैल समझ बैठा था. फिर भी वह धीरे से बोला, ''अपने पहाड़ का ही तो गांव है. व्यापार-बट्टा के लिए इधर-उधर जाना होता है. मेरे लिए हर रास्ता, हर गांव एक-सा जाना-पहचाना है.''

कुछ ज़रूरी सामान ख़रीदना था, उसने वह गंगा की ही दुकान से ख़रीद लिया. उसे मन-ही-मन अच्छा लगा कि उसके विषय में किसी ने तो पूछा. वह भी एक युवक ने. उसने भी सब कुछ साफ़-साफ़ बता कर, मन हलका कर लिया. कई दिनों से बोझ-सा बना था. कुछ सोचती, मुस्कुराती और जीवन के सुख-दुख के क्षणों को याद करती, गौरा लौटने लगी.

गंगा भी शायद ऐसा ही कुछ-कुछ महसूस करने लगा. गौरा के पांव यकायक ठिठक कर रुक गये, ''दानी काका आप यहां.'' आश्चर्य से आंखें उस व्यक्ति पर चिपक गयीं. ''हां, मैं ही हूं — ठीक पहचाना.''

''अब गांव चलोगे या फिर...''

''और कहां जाऊंगा, भला इस उम्र में. बड़ी दुविधा में फंसा था कि अब गांव को जाऊं तो किस रास्ते. जेल से मुक्त हो चुका पर, चंद ठाकुरों के गांव की पगडंडी पर चलना आसान नहीं है. यदि उस पर चलना है तो एक नयी ज़िंदगी की राह पर चलना जैसा होगा. मैं उस रास्ते पर पांव नहीं रख सकता.''

''नहीं काका ऐसा कुछ भी नहीं है — आपको 'दानी लाशी' कहने वाला अब कोई नहीं है. दुनिया जानती थी कि दानीराम तब पतरौल था. वह बेगुनाह था. उस समय जो कुछ हुआ, अनायास हुआ, ख़ैर...'' गौरा ने गांव की पगडंडी पकड़ी. और उसके पीछे-पीछे दानीराम. बातों का सिलसिला चल पड़ा. दोनों एक दूसरे को आपबीती सुनाते रहे. उनके मन में एक दूसरे के प्रति करुणा, सहानुभूति के भाव जागते रहे. गौरा के लिए दानीराम कोई अपरिचित या फिर दूर-दराज के किसी गांव का निवासी नहीं था. कभी वह चंद ठाकुरों की पंचायती जंगल का पतरौल था. गांव के बड़े-बुज़ुर्गों से लेकर बच्चों तक की जबान पर उसका नाम चढ़ा हुआ था. हर कोई उसे 'दानी पतरौल' के नाम से संबोधित करता था. वैसे भी वह अपनी चौकीदारी की ड्यूटी के प्रति सख़्त इंसान के रूप में जाना जाता था. उसके सुकुमार मन का पाठ उसकी बांसुरी की तान से हर कोई समझ लेता था. पेड़ों की ओट में छिपी घसियारिनें उसकी एक आवाज़ से जंगलात की चारदीवारी की सीमा पार कर जाती थीं. भले ही वह सबके लिए एक हंसोड़ व्यक्ति था, उसका पहनावा किसी मसखरे की भांति होता था. परंतु, घास-लकड़ी की चोरी करते पकड़े जाने पर जुर्माने से बचने की कोशिश हर घसियारिन की होती थी. उसकी आवाज़ पर वे दहशत में जीतीं. रोज़ की भांति एक दिन दानीराम जंगल गया था. अचानक उसकी नज़र चोरी-छुपे घास काट रही पार्वती घसियारिन पर पड़ी. उसने दूर से ही उसे पहचान लिया. उसने उसे दूर से ललकारा और जंगल की सीमा से बाहर निकल जाने की चेतावनी दे दी. पार्वती ने पतरौल की आवाज़ की अनसुनी की या फिर वह अपनी धुन में उसकी आवाज़ सुन नहीं सकी. वह घास काटती रही. दबे पांव दानी पतरौल उसके समीप गया और उसे घास काटने से रोकने लगा. उसने पार्वती की काटी हुई घास को अपने कब्जे में ले

लिया. जिसका पता पार्वती को नहीं चला. वह अभी भी दराती से बदस्तूर घास काट रही थी. दानी पतरौल के लिए उसे रोकना ज़रूरी था. उसकी दराती छीनना ज़रूरी था...

दानी पतरौल को सामने देखकर पार्वती सकते में आ गयी. उसने दराती छीने जाने के भय से जंगल की सीमा को पार कर लेना चाहा. वह भागने लगी. अब दानीराम के लिए बग़ैर दराती के घास जब्त करने का कोई मायने नहीं था. पंचायत में पार्वती की पेशी उसी के सबूत के आधार पर सुनिश्चित हो सकती थी. उसने ज़ोर-ज़बरदस्ती दराती छीनने की कोशिश की.

संयोगवश पार्वती का पांव फिसल गया और वह लुड़कती गहरी खाई में गिर गयी. मामला गांव पंचायत से न्याय पंचायत तक पहुंच गया. न्याय पंचायत ने उसे हत्या का मामला बताकर पटवारी के हवाले कर रानीखेत तहसील की हवालात में बंद करवा दिया. दानीराम पतरौल पर हत्या का मुकदमा दर्ज हो गया. और कुछ ही दिनों में वह जिला जेल, अल्मोड़ा की सलाख़ों के भीतर पहुंच गया.

सात साल की सजा काटकर आज दानीराम पतरौल लौट आया है. यही व्यथा कथा उसने गौरा को रास्ते भर में सुनायी थी. वह सज़ायाफ्ता ज़रूर है, किंतु अनजाने में घटी दुर्घटना के लिए अपराधी है — ऐसा गौरा भी जानती है. सांझ ढलने लगी. गौरा और दानी पतरौल गांव लौट आये. अब तक दानीराम ने न गांव के हालचाल जाने थे और न ही गौरा ने उसे बताया. वे दोनों बातों में इस क़दर मशगूल हो गये थे कि उन्हें इतनी भी सुध नहीं रही, वे कहां तक पहुंच गये हैं.

गांव की सीमा शुरू होते ही गौरा ने कहा, ''यह है आपका गांव काका! आपके चंद ठाकुरों का...''

''अरी! बातों ही बातों में यहां तक ले आयी, तुम्हारे पिताजी कहा करते थे — ये बच्ची नहीं बातों में दादी है — एक सिरे से बात को पकड़ती है तो, ख़त्म करने की सुध ही नहीं रखती.'' इतना भर कहा दानीराम ने, फिर एकदम शांत. दोनों के बीच थोड़ी देर तक नीरवता छायी रही. यादों की पीड़ा तेज़ होती रही. फिर गौरा ने आगे जोड़ा — ''अब तो वैसे भी मुझमें कहानी कहने की सामर्थ्य नहीं रही काका! भूल गयी हूं सब कुछ.''

''अपने घर-परिवार को कौन भूल सकता है बेटी! तुम बातों ही बातों में यहां तक ले आयी — एक बार भी मेरे क़दम नहीं डगमगाये. क्योंकि, उन्हें पता है. यह रास्ता अपने गांव का ही रास्ता है... चंद ठाकुरों के गांव का रास्ता.''

''सब कुछ बदल गया है काका! पूरे गांव का भूगोल बदल गया है. आवाजाही के रास्ते बदल गये हैं.''

''मैं तो आगे-आगे चल रही थी और आप बेफ़िक्र चले आ रहे थे मेरे पीछे-पीछे. एक बार गांव में किसी को आवाज़ देकर तो पुकारो, वहां लोगों की आवाज़ ही गुम हो गयी है.''

''लोग बोलना-बतियाना सभी कुछ भूल गये हैं. यहां तक कि दानी पतरौल की आवाज़ को बार-बार दोहराने वाली पहाड़ियां भी ख़ामोश हो गयी.''

''क्या कह रही हो बेटी! तुम मुझे यहां लाकर डरा रही हो क्या?''

''नहीं काका, मैं आपको डराकर क्या साध लूंगी, सच कह रही हूं. वो सामने पहाड़ी हुआ करती थी, गहरी अंधेरी रात की बात छोड़ो, चांदनी रात में भी एक अजीब तरह का भय होता था परंतु, आज तारों की रोशनी में ताज़ा टूटी पहाड़ी का हिस्सा साफ़-साफ़ दिख रहा है... वहां हरियाली की ठौर पर मटमैला रंग दिखने लगा है.''

''यह सब कैसे हुआ.''

''मुझे कुछ नहीं मालूम. सिर्फ, इतना भर जानती हूं कि मैं आश्रय ढूंढते यहां तक चली आयी, गोलू देवता क्षमा करें — यदि मेरे पिता का नाम इस घंटे पर खुदा नहीं होता तो, मैं यक़ीनन इसे चंद ठाकुरों का गांव होने का विश्वास भी नहीं कर सकती थी...''

''तो तुम यहीं रहती हो?...''

गौरा ने एकदम चुप्पी साध ली. दानीराम के मन में अपने परिवार के विषय में जानने की उत्सुकता बढ़ने लगी. जिसे उसे अभी तक मन में ही छुपाकर रखा था. वह चारों तरफ़ नज़र दौड़ाने लगा. तारों की मध्यम रोशनी में कहीं-कहीं मौन साधे पेड़ों के शीर्ष, उसे हिलते-डुलते लगे. बदन में अजीब तरह की झुरझुरी-सी होने लगी. स्मृतियों में सात साल पहले का वह पहाड़-जंगल याद आने लगा. पल भर में दुनिया इधर-से-उधर होती लगी. पलक झपकते पार्वती घसियारिन फिसलती महसूस हुई — देखते-देखते उसके शरीर के परखचे उड़ गये. यह तो.... ओह यह क्या — वह गांव का रास्ता भूलने लगा है.

''अरी! यह गांव का ही देवता है न बेटी. तुम विश्वास से कह रही हो.''

''हां, काका — तुम्हें यक़ीन न हो तो, सुबह अपनी आंखों से देख लोगे.'' गौरा जो अभी तक अंधेरे में हाथ-पांव चला रही थी, उसने माचिस की तीली से दीया जला दिया.

दिप-दिप जलते दीये की पीली रोशनी में दानीराम ने गौरा को निहारा. मन भर आया. कुछ कहना चाहा — ''बेटी! जीवन में यह सब कुछ देख रही हो — शायद किसी का...''

वह अपना वाक्य भी नहीं कह पाया. मन में अजीब-ग़रीब विचार पैदा होने लगे. उसकी अंगुलियां स्वत: आंखों के कोर को छू गयीं. इस उम्मीद के साथ कि माथे पर उभरी मोटी-मोटी लकीरों के पानी को बहने का रास्ता मिल जाये. परंतु, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ — वह पल भर को जीवन में घटित भयानक घटनाओं को याद करता, यह भूल गया कि सात साल पूर्व ही उसकी आंखों के सामने... ''तुम तो मास्टरानी बन चुकी थी बेटी?'' दानीराम ने पूछा.

गौरा कुछ बताती उससे पहले उसने जोड़ दिया, ''भगवान भला करे रूपसिंह नेता का जिन्होंने गांव व इलाक़े से हरेक को रोज़ी-रोटी दिलवा दी. एक दिन वे मुझे जेल में भी मिलने आये थे. कह रहे थे — ''हमारा बेटा बारहवीं कर लेगा तो, उसके लिए भी रोज़ी-रोटी का जुगाड़ करवा देंगे. पता नहीं, इस बीच क्या कुछ किया होगा? सात साल की सज़ा सात युग जैसी.''

''आप लौट आये हैं. यह कम है काका! पुरानी बातों को याद करना बुरा नहीं है, परंतु उन्हें फिलहाल दोहराने से कोई फ़ायदा नहीं, सुबह होने पर अपनी आंखों से देख लोगे.''

''ठीक कह रही हो बेटी!'' कहकर दानीराम ने लंबी सांस ली. और फिर एकटक गौरा को भोजन तैयार करती देखता रहा. वह गौरा की मदद के लिए हाथ नहीं बढ़ा सका. उसके मन में कई तरह की कुंठाएं रह-रहकर सिर उठाने लगीं — कभी यह गांव उसके ठाकुरों का था. मैं एक अनपढ गंवार पतरौल और गौरा एक पढ़ी-लिखी मास्टरनी तथा चंद ठाकुरों की बेटी. उससे भी अधिक जो बात उसे कांटे की तरह चुभने लगी, वह है तो सज़ायाफ़्ता दानीराम लाशी. दानी पतरौल कहना तो अब कोई पसंद करेगा भी नहीं. इसी उधेड़बुन में वह स्वयं उलझ गया.

सुबह होने को आयी. चारों तरफ़ हल्की धुंध थी. धुंधलके में उसने गांव को देख लेना चाहा, उसे कुछ भी नहीं दिखा. लगा, सूरज के सातों घोड़े उसके वर्तमान को अतीत की तरफ़ खींच रहे हैं. गौरा की आंख खुल गयी, उसे आश्चर्य हुआ कि दानीराम इस उम्र में भी अपनी सुबह उठने की आदत नहीं छोड़ पाया है. उसने पूछा, ''रात में नींद तो क्या आयी होगी काका! मुझे तो अच्छी गहरी नींद आयी. बुज़ुर्ग कहते थे, जितना बड़ा परिवार होगा, उतनी ही गहरी नींद आयेगी.''

''बड़े परिवार में हर कोई अपनी नींद सो पाता है. हर किसी के सुख-दुख में सब साथ होते हैं, जब तक जीवन है, तभी तक सुख-दुख की यादें होती हैं.''

''सो तो ठीक है काका! जीवन में हम दु:ख को ही याद करते रहेंगे तो पहाड़ जैसा जीवन चलाना मुश्किल होगा, क्यों न हम नयी उम्मीदों के साथ आगे बढ़ें — देखो सामने की पहाड़ी पर उग रहा सूरज शाम ढलते पहाड़ी के पीछे छुप जायेगा. हर रोज़ के उतार-चढ़ाव को कोई गांठ बांध ले तो! सूरज तो रोज़ उगता है और उसके उगने के साथ ही धरती का यह कोना जीवंत हो जाता है.''

''मैं समझ रहा हूं, सब कुछ समझ रहा हूं. कहां है हमारा गांव, परिवार. पुरानी यादों के सहारे जीवन कठिन होगा बेटी! क्यों न हम दोनों मिलकर इस गांव को बसा लें.'' अनायास उसके मुंह से एक अजीब तरह की चीख़ निकल पड़ी. जैसे कोई डूबने वाला अंतिम बार बचा लेने को पुकार रहा हो. उसने अपनी पत्नी और दोनों बेटों का नाम लेकर पुकारा और उन्हें चीख़-चीख़कर बताने लगा — ''मैं लौट आया हूं, — मैं अपराधी नहीं था, मैं लौट आया हूं.''

सचमुच दानीराम पतरौल की आवाज़ गुम हो गयी हैं. पहाड़ियां भी एकदम गुमसुम — किसी भी ओर से उसकी आवाज़ प्रतिध्वनित नहीं हो रही है. उसने ग़ौर से प्रतिध्वनि सुनने के लिए कान के पीछे हाथ लगाया और बुदबुदाया,''अब पहाड़ियां भी अतीत को याद करना छोड़ चुकी हैं, उसे भी ऐसा ही करना चाहिए.''

उसने सहजता से लंबी सांस भरी, फिर स्वयं को संभाला. उसकी आंखें गांव की सरहद के उस पार, सामने की पहाड़ी पर बनी पगडंडी पर अटक गयीं. 'कौन आ रहा है इस तरफ़, कहीं उसका अपना बेटा तो नहीं, उसी ने आवाज़ पहचान ली होगी. देखो, वह इतनी तेज़ी से खिंचा चला आ रहा है.'

गौरा ने चूल्हा सुलगा लिया. धू-धू कर लकड़ियां जलने लगीं. सूरज की रोशनी के साथ-साथ हवा में गरमाइश बढ़ने लगी. उसकी बातों ने भी आंच पकड़ ली, ''काका एक वचन दो, आप यहां से कहीं और जाने के लिए नहीं सोचोगे. हम दोनों इस दलदल को फिर से आबाद करेंगे और सरकार से आपकी मदद के लिए विनती करेंगे.''

चंद ठाकुरों का गांव प्राकृतिक आपदा की भेंट चढ़ गया, फिर भी गौरा के हौसले को, उसकी जीने की जिजीविषा को दानीराम मन ही मन नमन करने लगा. गौरा उसकी अपनी बेटी होती तो वह झट से उठकर जाता और उसे बांहों में भर लेता. भगवान से प्रार्थना करता ऐसी बेटी सभी को दें. कितनी सहजता से कह रही है — ''गांव को फिर से बसायेंगे... भविष्य में किसी को भी ऐसी आपदा न झेलनी पड़े.''

गौरा बड़ी देर तक दानीराम को समझाती-बुझाती रही.

उसके मन में जब-तब उठ रही यादों पर मिट्टी डालती रही, ''पुरानी यादों के सहारे जीवन नहीं चल सकता काका! यदि उन्हीं को लेकर बैठे रहे तो हर कोई कहेगा — मामला इतना साफ़ था तो कोर्ट से सात साल की सज़ा क्यों होती — कुछ न कुछ तो रहा ही होगा...''

''हां बेटी! मैं भी ऐसा ही सोचता हूं...''

अभी बातों का सिलसिला चल ही रहा था कि वह व्यक्ति जो पगडंडी को नाप रहा था उनके समीप आ पहुंचा. उसे पहचान कर गौरा ने कहा,''अरे तुम यहां, इस समय?'' अप्रत्याशित बात को गंगा ने आरंभ करते हुए कहा, ''आप दोनों इस दलदल में गांव बसाना चाहते हैं. डबरे में इकट्ठे पानी को पीना चाहते हैं. यह विचार अच्छा है — मैं भी आप लोगों की मदद कर सकता हूं.''

''कैसी मदद!'' गौरा ने टका सा उत्तर दिया.

''मैं आप दोनों को, मांगे बग़ैर मदद देने को तैयार हूं.''

मुझे मालूम है — सरकार आप की मदद को आयी थी — परंतु आपने...''

''मुझे किसी तरह की मदद की न ज़रूरत थी और न है — दानीकाका को इसकी ज़रूरत हो सकती है....'' गौरा ने झट से कह दिया.

''ठीक है,'' गंगा ने कहा, ''मदद ऋण के रूप में दूंगा, उसके लिए मेरी भी बात आपको माननी होगी.''

दानीराम के हाथ यकायक जुड़ गये. इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता था. यहां तक कि ज़बान पर आये शब्द पेट में चले गये थे. उसके लिए पेट की चिंता पहली थी, वह जीवित रहने के लिये गौरा पर बोझ नहीं बनना चाहता था.

''आप लोग अपने लिए घर बनायें और इस दलदल को आबाद करें. सेब-आलूचा पैदा करें या साग-भाजी उसकी ख़रीद मैं ही करूंगा.''

''यह भी कोई बड़ी बात है — आज से ही मैं फल की टोकरी...'' गौरा ने कहा.

दानीराम ख़ुश हुआ और गौरा के लिए यह दोजख़ में डालने की शर्त नहीं थी. दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा और सहमति प्रकट कर दी.

यकायक दानीराम का चेहरा फ़ीका पड़ने लगा. एक तरह से आलू बुखारे की भांति चेहरा लटक गया. ''क्या हुआ काका! अच्छा नहीं लगा यह फ़ैसला.''

''नहीं, नहीं यह बात नहीं है बेटी! सोच रहा हूं अपना भरा-पूरा परिवार होता, सभी मिल-जुलकर इस दलदल को उपजाऊ बनाते तो, समय से पहले ऋण मुक्त हो जाते, परंतु ऋण का बोझ कंधे पर कब तक ढोता रहूंगा. यही सोच रहा हूं.''

''अरे काका ऐसा तो मैं भी नहीं सोच रही, एक बार सरकारी अमला यहां आया और उसकी ऋण देने की बात पर आज मुझे हंसी आ रही है. सोचती हूं, यदि, मैं आपकी तरह मर्द होती तो पूरे दलदल को आबाद कर चुकी होती.

परंतु, उन्होंने साफ़-साफ़ कहा यह मदद औरतों को नहीं, सिर्फ़ मर्दों को मिल सकती है. उनकी इस बात को सुनकर हैरान हुई थी और मैंने साफ़-साफ़ मना कर दिया.''

गंगा लौट गया. शायद यह सोचते हुए कि स्त्री-पुरुष में फ़र्क उसके लिए कोई मायने नहीं रखता. वह तो व्यापारी है. जो माल देगा उसे वह... उसके लिए तो यह खेती है. खेती स्त्री-पुरुष में कभी फ़र्क नहीं करती.

दोनों खेती में जुट गये. गौरा को अपने एकांत को बांटने का साधन मिल गया. वह दानीराम से कहीं ज़्यादा बेफिक्र और सुकून महसूस करने लगी. उसने कहा भी, ''यह कोई मुश्किल नहीं, अभी सेब और आलूचा तैयार हो चुके हैं. उसके बाद सब्ज़ियां, समय कैसे बीतेगा, पता भी नहीं चलेगा.''

दानीराम ने सहमति में सिर हिला दिया.

एक दिन दानीराम खेत में काम करते हुए अपने बारे में सोचने लगा. अब सोचते-सोचते वह दिन में भी कई बार सपना देखने लगा. जब वह शुरू-शुरू में यहां रहने लगा था, कभी ऐसा बुरा सपना नहीं देखा. कई बार उसने सोचा, गौरा से पूछे ऐसा सपना वह क्यों देखता है? परंतु, उसकी हिम्मत उसका साथ छोड़ देती थी. बात मन को घुन की भांति खाती रही कि गौरा उसे आंछरी-चांचरी प्रतीत होने लगी है. जिसने उसे अपनी गिरफ़्त में ले लिया है. रह-रहकर उसे गौरा से डर भी लगने लगा है. कहीं वह रात-बे-रात उठकर आये और उसका गला दबोच ले, या फिर भरी दोपहर में जब वह खेत में थक कर चूर हो जाये, उस थकावट का फ़ायदा उठाकर उस पर चिपट पड़े और उसका ख़ून चूसकर हमेशा-हमेशा के लिए गहरी नींद सुला दे....

दानीराम अब दहशत में जीने लगा. एक दिन जब वह सो रहा था, गौरा की नज़र उस पर टिक गयी बोली, ''काका आज मुंह लटकाये क्यों हो?''

दानीराम सकपका गया. उसने अपने को एकदम संभाल लिया और साफ़-साफ़ बोला, ''न मालूम क्यों लगता है, यह जगह अब मेरे रहने लायक नहीं है. सुबह शाम, सोते-जागते मुझे अपने चारों ओर आंछरियां-चांचरियां मंडराती महसूस होती

हैं.''

''यह आपके मन का भ्रम है काका! आपका गांव है यह. चंद ठाकुरों का गांव, मैं तो आपके यहां आने से पहले अकेले रहती थी. मैंने अकेले में, कभी सपने में, ऐसा नहीं सोचा और अकेली इस बियावान में रही, भरोसा था तो सिर्फ़ इस राजा का, जिसने मुझे यहां रहने की हिम्मत दी और इस ठौर को पुन: रहने लायक बनाया और आप यह सब क्यों सोचते हैं.''

''कुछ तो है बेटी! तुम्हारी बात अलग है. तुम अपने राजा के सहारे उन आंछरी-चांचरियों से लड़ सकती हो. मैं तो राजा के मंदिर को छू भी नहीं सकता.''

''ऐसा क्यों, क्योंकि तुम पतरौल हो, यह गांव तुम्हारे ठाकुरों का था. ठाकुरों के मंदिर में तुम्हें जाने की इज़ाज़त नहीं थी. नहीं, ऐसा नहीं है — जब इंसान अकेला होता है तो, उसे एक साथी की तलाश होती है. जब संकट में होता है तो मदद की ज़रूरत होती है. इस मंदिर से मुझे दो सीख मिली हैं. इसके अलावा यहां कुछ भी नहीं है. आप अपने मन की कमज़ोरी को फेंक दो काका! तुम जंगल के पतरौल हो. यानी जीव, जंतु और प्रकृति के रखवाले राजा और पतरौल ही तो होते हैं. आप जैसा सोच रहे हैं, ठीक नहीं है. अब जब गांव आबाद होने लगा है — दलदल में फ़सल उगने लगी हैं. ऐसे में आपकी नकारात्मक सोच ठीक नहीं. इसे स्वयं बदलना होगा.''

गौरा को दानीराम की सोच पर आश्चर्य हुआ. वह सोचने लगी, आख़िर वह ऐसा क्यों सोचने लगा है. अब जबकि दो जून पेट भरकर अपनी गहरी नींद सो रहे हैं. उसने गहरी सांस ली और स्वयं से कहा — 'खाली पेट तो स्वप्न भी साथ नहीं देते. जब पेट भर जाता है. फिर भी क्या भूख बेचैन करने लगती है. सपने भी क्या उसी बेचैनी में आते हैं. यही मानवीय कमज़ोरी है. दानी काका इसमें आपका दोष नहीं है. यह तो दुनिया का एक दस्तूर है.'

इसे संयोगवश कहें या फिर प्राकृतिक प्रकोप का एक और चक्र. अचानक आसमान पर बादल घिर आये. घने काले बादल. उन दोनों के जीवन के अंतहीन पिटारे में से कौन से संकट आने वाले हैं? इसी को लेकर वे दोनों तरह-तरह के अनुमानों में उलझने लगे. अचानक बारिश टूट पड़ी. दलदल जो अब आबाद हो चुका था, उसमें पानी भरने लगा. सामने की पहाड़ियां जो रिरिया कर टूटती थीं, जिन पर हरी घास ने जकड़ बना ली थी, मंदिर जो उनकी आस्था का केंद्र था — जो उनके सुख-दुख के दिनों का केंद्र बन गया था उसमें भी हलचल होने लगी. अचानक इस तरह अनहोनी की बारिश ने उनके मन को हिला दिया. बाहर बिजली कड़कने लगी. पहाड़ियों ने भयानक गरजन के साथ टूटना शुरू कर दिया. खेत बहने लगे. आवाजाही का रास्ता, जिन पर चलते गौरा और दानीराम के पांव के निशान बनने लगे थे वे सब मिटने लगे हैं.

उन दोनों के देखते-देखते भविष्य के सपनों का महल एक बार फिर खंडहर में बदलने लगा. वे उस बियावान में घिरने लगे. दुनिया से एकदम अलग-थलग. इस उम्मीद के साथ कि एक सुबह होगी, सरकारी अमला आयेगा और फिर उनसे अपने साथ चलने को कहेगा.

परंतु, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ. हफ़्ता भर तक वे दोनों सरकारी अमले की राह देखते रहे, दूर-दूर पहाड़ियों पर बनी सर्पीली पगडंडी पर कोई टहनी हिलती तो, उन्हें किसी के होने का अहसास होता. जब वह टहनी अपनी एक ही ठौर पर प्रतीत होती तो, उनका अपने जीवित रहने के विश्वास पर से भरोसा उठने लगता. फिर भी, वे दोनों एक दूसरे को भरोसा दिलाते रहे, उनका विश्वास उस समय मज़बूती से चिल्लाया जब उन्हें पगडंडी को नापते, उनकी तरफ़ आती कोई आकृति दीखी. गंगा उसी रफ़्तार से चला आ रहा था, जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी.

इस क्षण गौरा को लगा, फिर कोई देवदूत आ पहुंचा है. वह उनकी अवश्य मदद करेगा. मगर दानीराम के पांव तले ज़मीन खिसकने लगी. वह युवक गंगा है जो इस ओर आ रहा है. शायद अपने ऋण वसूली के लिए. अब उसके पास देने को कुछ बचा नहीं है. सब कुछ तो बह चुका.

लेकिन ऐसा वे दोनों सोच रहे थे. गंगा ने देखा, आज फिर गांव दलदल में बदल गया है. गौरा आज अकेली नहीं है, उसके साथ दानीराम बैठा अजीब मुद्रा में सोच रहा है.

''यह सब फिर से...'' गंगा ने आश्चर्य से पूछा.

''हां, फिर से...''

''आप लोगों को यह जगह छोड़ देनी चाहिए.''

''अब कौन-सी जगह बची है हमारे लिए...''

''यह दुनिया चंद ठाकुरों के गांव से कई गुना बड़ी है. उसमें रहने के लिए अभी जगह शेष है — आप दोनों एक बार यहां से दूर अलग रहने का प्रयास करके देख लो.''

''मैं, इस ठौर को छोड़कर नहीं जा सकती. मैंने, इस धरती के राजा से उसके खेल में हमेशा जीवनभर भागीदार बनने का वचन लिया है. मैं इस ठौर को छोड़कर जाने वाली नहीं हूं. हार-जीत तो सियासतदानों की होती है.''

गंगा एकदम चुप हो गया. उसे उम्मीद थी कि गौरा

और दानीराम दोनों उसकी बात को मान लेंगे. दानीराम अभी तक चुपचाप उन दोनों की बातें सुन रहा था. उसके हाथ अनुनय-विनय की मुद्रा में जुड़े हुए थे. वह बोला, ''एक बात कहूं बेटी! जब तुम्हारी खाने-खेलने की उम्र थी, तब जीवन के बहुत कष्ट झेले हैं. फिर इस मंदिर के एकांत में जोगिन की ज़िंदगी को भोगा है, अब तुम्हारी मेहनत सफल हो रही है. बाक़ी जीवन एक गृहस्थ की तरह व्यतीत करने के लिए इस ठौर को छोड़कर कहीं दूर चली जाओ. गंगा एक होनहार युवक है. इसकी बात मान लो.''

''यह क्या कह रहे हो काका! मेरी ज़मीन से मुझे बेदख़ल करने की सोच रहे हो?''

''तुम्हारी ज़मीन अपनी है. मेरा यह अपना सोचना है. मैं अपने बारे में कुछ भी नहीं सोच सकता. मैं कहां जाऊं. अब तो एक-एक हड्डी, एक-एक रग से पीड़ा उठती है. दर्द होता है. चीख़ने की सामर्थ्य भी नहीं बची. अब मुझे एकांत की ज़रूरत है.''

''क्या आप यहां, इस वीरान जगह पर अकेले रह पायेंगे.''

''शादी के बाद कौन अपनी बेटी के घर रहने जाता है. मुझे तो इसी ठौर पर रहना है बेटी!''

''यह क्या कह रहे हैं काका! ऐसा नहीं कहते.''

''कहने को बहुत कुछ है बेटी! यह ज़रूरी नहीं अपने ख़ून से जनमी ही बेटी हो. गौरा मेरी अपनी बेटी है. जिसने न केवल मुझे पिता का प्यार दिया, बल्कि मुझे मेरे अधिकार भी दिये हैं.''

दानीराम का कंठ भर आया. यह घटना किसी लोककथा से कम नहीं थी.

यकायक दानीराम के होंठों पर एक कटु मुस्कराहट आ गयी. उसने गंगा को नि:संकोच भाव से देखा जो अब शांत भाव से गौरा की बातों के एक-एक शब्द को सुन रहा था. दानीराम ने गंगा के सामने गौरा के विवाह का प्रस्ताव रखा.

गंगा पहले तो संकोच करने लगा, फिर धीरे से बोला, ''मैं भी यही सोच रहा हूं कि क्यों न इसी ठौर पर रहकर, इस परिवार का हिस्सा बन कर रहने लगूं. इस गांव को, फिर से, आबाद करूं और इससे हमारा व्यापार का भी विस्तार होगा. आप लोगों की एक खोयी हुई ज़िंदगी फिर से लौटेगी?

''मैं भी, ऐसा ही सपना देख रहा हूं.'' दानीराम ने अपनी सहमति दी.

गौरा ने इतना भर सुना, फिर एक लंबी सांस लेकर अनंत आकाश की तरफ़ एकटक देखती हुई बोली, ''और मैं.....''

ए-३४७, सेक्टर-३१,
नोएडा-२०१३०१
मोबाईल - ९८६८९६१०१७.
ई-मेल : harisuman_bisht@yahoo.com

"कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१३"

*"**कथाबिंब**" के प्रकाशन का यह ३६वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०१३ के "कथाबिंब" के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं "**कथाबिंब**" की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१०००० रु.) :

- **छोटा-सा एक हादसा** ! - *सुरेंद्र "अंचल"*

: श्रेष्ठ कहानी (७५० रु.) :

- **अंतराल** - डॉ. स्वाति तिवारी
- **सामगुली** - मदन मोहन प्रसाद

: उत्तम कहानी (५०० रु.) :

- **महाकुंभ** - संतोष श्रीवास्तव
- **भीगी हथेलियों का स्पर्श** - सुरभि बेहेरा
- **इंसान होने का अपराध** - डॉ. नीहारिका
- **पंद्रह अगस्त** - शिव प्रताप पाल
- **आदाब** - डॉ. अमिताभ शंकरराय चौधरी

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत "कथाबिंब" त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. *प्रकाशन का स्थान*	:	*यूनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९,रेतीवाला इंड. एस्टेट, भायखला, मुंबई -४०० ०२७.*
२. *प्रकाशन की आवर्तिता*	:	*त्रैमासिक*
३. *मुद्रक का नाम*	:	*मंजुश्री*
४. *राष्ट्रीयता*	:	*भारतीय*
५. *संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता*	:	*उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.*
६. *कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता*	:	*स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री*

*मैं, **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

*(हस्ताक्षर - **मंजुश्री**)*